RNI-UPBIL/2011/38102 ISSN-2231-5837

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(मानविकी एवं समाज विज्ञान पर केन्द्रित अर्न्तराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

Volume -9: Issue - 41 Jan - Mar. 2021 Gaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 5.114

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

Asstt. Editor
MUKTA SONI

Art Editor
Dr. (MS) PANKAJ SHARMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Chief Editor
Dr. HARI SHARAN VERMA

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

- **The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.**
- **The editor does not owe any kind of responsibility in this regard**



Dr. Hari Sharan Verma
Chief Editor



Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor



Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 4100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 6100 रुपये)

विदेश में :–
(व्यक्तिगत) 26 यू.एस. डॉलर (आजीवन) (संस्थागत) 32 यू.एस. डॉलर (आजीवन)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय कार्यालय

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ० पी.के. शर्मा, (ई–36 बलवन्त नगर विश्वविद्यालय मार्ग, गवालियर, मध्यप्रदेश फोन : 09039131915
3. डॉ० राजकुमारी सिंह (प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपुत मुरादाबाद उत्तर प्रदेश। फोन : 09760187147
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास)
स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 किरण मिश्रा, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, राम गुलाम राय पी0 जी0 कालेज, देवरिया गोरखपुर–273001 मौ0 :7007018819
9. डॉ0 ऊषा रानी, हिन्दी –विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला –5
10. डॉ0 रविन्द्र सिंह, सहायक अध्यापक, हिन्दी श्री हरिहर इंटर कांलेज पटवारा टोडी फतेहपुर (झाँसी) उत्तर–प्रदेश

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ० राजनारायण शुक्ला द्वारा आदर्श प्रिंट हाऊस, बी–३२, महेन्द्रा एन्क्लेव, शास्त्री नगर, गाज़ियाबाद में मुद्रित कराकर, SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०) से प्रकाशित।
सम्पादक : डॉ० राजनारायण शुक्ला। **पंजीकरण संख्या** : ISSN-2231 - 5837

संरक्षक मण्डल :

1. **डॉ० रामसजन पाण्डेय** (कुलपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
2. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
3. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० एस.पी. वत्स,** (पूर्व कुलसचिव, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
5. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
6. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० प्रतिभा त्यागी,** (प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
6. **डॉ० जंगबहादुर पाण्डेय,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची–**834008**
फोन :09431595318
7. **डॉ० माया मलिक,** (प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
8. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
6. **डॉ० उत्तरा गुप्ता** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, आर. एन. कॉलेज, मेरठ)
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

कॉलेज, गाजियाबाद)

9. **डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर) हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गुना) म०प्र०)
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर) 09419058585
12. **डॉ. सुरेश कुमार** (सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.एल.जे. एस. कॉलेज, तोशाम, भिवानी)
13. **डॉ० उर्मिला अग्रवाल,** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
14. **डॉ० शशिबाला अग्रवाल** (रीडर, हिन्दी विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ)
15. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
16. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
17. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
18. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
19. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
20. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
21. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (वरिष्ठ सहायक प्रो०, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
22. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
23. **डॉ० शीला गहलौत,** प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
24. **डॉ० राजीव मलिक,** (प्रो. एवं अध्यक्षा, हिन्दी–विभाग, भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर)
25. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
26. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
27. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
28. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
29. **डॉ0 किरण मिश्रा,** सहायक प्रोफेसर, राम गुलाब राय कालेज, गोरखपुर
30. **डॉ0 प्रवेश कुमारी,** सहायक प्रोफेसर बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,रोहतक
31. **डॉ0 राजपाल,** सहायक प्रोफेसर राजकीय स्नातकोत्रर महाविद्यालय, हिसार

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयवीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ. जे.के. शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, एस.जे.के कॉलेज, कलानौर (रोहतक)
7. **डॉ. रेशमा सिंह,** (एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी–विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू

विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)

8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ० जगवीर सिंह गुलिया,** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय मकड़ौली कलां रोहतक

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप शर्मा,** सहायक प्रोफेसर बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० सरिता दहिया** असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
3. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
5. **डॉ० नीलम रानी,** प्राचार्या, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद)
6. **डॉ० उमेश चन्द्र कापरी,** सहायक प्राफेसर, शिक्षा विभाग, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद) **Mob.: 09711151966, 7428160135**
7. **डॉ० सुनीता बडेला,** एसो० प्रो०, शिक्षा विभाग, हेमवतीनंदन बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल–२४६१७४
8. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
9. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
10. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
11. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गर्ग,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
3. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
4. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram
5. **डॉ० हरेन्द्र सांगवान,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० रेणु सिंह राना** (रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, गिन्नी देवी मोदी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोदीनगर)
3. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
5. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
6. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)

3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1. **डॉ० संजीव कुमार सिंह** (रीडर गणित विभाग, ए.आर.ई.सी. कॉलेज, खुरजा)
2. **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
3. **डॉ० मीनाक्षी गौड,** रीडर एवं अध्यक्षा गणित विभाग, नानकचन्द ऐंग्लो, संस्कृत कॉलेज, मेरठ
4. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चर्रार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ
5. **डॉ0 रश्मि मिश्रा,** सहायक प्रोफेसर, जी0 एल0 बजाज इन्सटियुट ऑफ टैक्नोलजी एण्ड मैनेजमेन्ट नोएडा –201300, मौ0 8287829254

कम्प्यूटर विभाग:

1. **डॉ० रेखा चौधरी,** एसोसिएट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विभाग, राजकीय इंजीनियरियंग कॉलेज, भरतपुर, राजस्थान
2. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
3. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
4. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** (रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. **डॉ० सुनीता सैनी,** प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी ।)
5. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}
6. **डॉ0 दानपति तिवारी,** एसो0 प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या, उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली
2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
   Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
   H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
   Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
   Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
   Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
   H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
   Mob. 9996363764

9. **Principal**
   Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
    Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
    H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
    Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
    H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Assistant Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

16. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	Child Sexual Abuse: An Overview	Ravinder Singh Khatana	10–14
2.	हिन्दी दलित : कहानी की वैचारिक पृष्ठ भूमि	प्रताप सिंह	15–19
3.	'क्याप' का उत्तर आधुनिक दृष्टि से अध्ययन	कविता शर्मा	16–24
4.	हरियाणवी लोकगीतों में जीवन मूल्य	डॉ0 केशवदेव शर्मा	25–28
5.	वीरेन्द्र आस्तिक, रामनारायण रमण और रमाकांत के नवगीतों में उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग के दर्द की अभिव्यक्ति	ममता	29–32
6.	Journal Of On-site Material Management	Dr. Santosh Kumar Sharma	33–37
7.	Major Factors of Pakistans Foreign Policy	Sunita Kumari	38–43
8.	'सूर्यबाला' के कथा–साहित्य में वृद्धावस्था की समस्या	मनीषा, डॉ0 कृष्णा जून	44–46
9.	भगवान दास मोरवाल के उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' स्त्री–विमर्श	डॉ0 कृष्णा जून, पूनम कुमारी	47–49
10.	Recent Trends in Banking Sector---Challenges	Priyanka Rani	50–53
11.	"फर्रूखाबाद घराना– एक अध्ययन"	डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा, राजेष कुमार आर्या	54–56
12.	मुशर्रफ आलम जौकी के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक मूल्य विघटन	गुलशन समीना रियाज	57–59
13.	वाह जिंदगी : जीवन के इंद्रधनुषीय रंग लिए हुए	डॉ. सुधांशु कुमार शुक्ला	60–65
14.	गुरुनानक और उनकी समाजिक–चेतना	डॉ0 तृप्ता	66–69
15.	केशवचन्द्र सेन द्वारा ब्रह्म समाज को नया रूप देने के प्रयास	डॉ0 संध्या मिश्रा, डॉ0 प्रेम शंकर	70–73
16.	Salman Rushdie And The Post- Modernistic And The Post-colonial Trends	Dr. Subham Chatterjee, Dr. Anil Kumar	74–77
17.	साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में चित्रित प्रशासनिक भ्रष्टाचार	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	78–80
18.	The Portrayal of the Grotesquery of Governance in his Fiction	Dr. Subham Chatterjee, Dr. Braj Gopal Singh	81–85
19.	भारत में नवजागरण आन्दोलन की उत्पत्ति एवं उसका स्वरूप	डॉ0 एम.एस. त्यागी, इन्द्रजीत सिंह	86–93
20.	Personal Index of Unmarried Educated Working Women	Rashmi Yadav	94–104
21.	भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का परिदृश्य	डॉ0 एम.एस. त्यागी, इन्द्रजीत सिंह	105–109
22.	मधु कांकरिया के कथा साहित्य में चित्रित पारिवारिक समस्या	सुमित्रा	110–113
23.	महिलाओं की समस्याएँ तथा महिला सशक्तिकरण का एक मूल्यांकन–	डॉ0 नीरज कुमार, सुमन कुमारी	114–117
24.	हरियाणवी लोकगीतों में स्त्री–स्वर	पूजा	118–121
25.	C-conformal Transformation of Finsler Subspace	Mahesh Chandra	122–124
26.	भारतेनदु युग में हिन्दी उपन्यास का विकास	रश्मि सिंह	125–127
27.	ममता कालिया के उपन्यासों में पुरुष के संघर्षों का चित्रण	रजन बाई	128–131
28.	Curvature Tensors In Finsler Subpace	Mahesh Chandra	132–134
29.	Social Conflict In The Plays Of Eugene O'neill 'the Hairy Ape'	Dr. J. K. Sharma, Raja	135–138
30.	डॉ0 धर्मवीर भारती के कथा साहित्य का भाषायी अध्ययन	सुधा गंगवार, डॉ0 आर0एस0 मिश्रा	139–140
31.	Cultural Materialism in O' Neill's plays 'The Emperor Jones'	Dr. J. K. Sharma, Raja	141–144
32.	हिंदी सिनेमा में चित्रित कृषक–व्यथा	डॉ0 राजेश कुमार	145–150
33.	C-conformal Transformation of Finsler Subspace	Priya Sethi, Gargi Sharma	151–156
34.	भक्ति आंदोलन का उदय और विकास	श्रीमती सुमन लता	157–159
35.	भारतीय संस्कृति में तीर्थ महत्व निरुपण	डॉ0 अनिल कुमार शर्मा	160–162
36.	ममता कालिया के उपन्यासों में नारी की समस्याओं का चित्रण	रजन बाई	163–166
37.	A Study of Antiwar Vision In Earnest Hemingway's Works	Ashok, Dr. JK Sharma	167–173
38.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं अन्य प्राचीन धर्म ग्रन्थों में नारी की स्थिति एक विवेचन	डॉ0 शेरपाल	174–176
39.	A Study of Antiwar Vision In Khaled Hosseini's Works	Ashok, Dr. JK Sharma	177–183
40.	महापंडित राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में वर्णित भाषा व शैलीगत विविधता	डॉ0 अनिता	184–188
41.	अस्मिता के अस्मिता पर विमर्श	डॉ0 सीमा शेखर (विश्वकर्मा)	189–191
42.	दक्षिण एशिया का परिवर्तित परिदृश्य एवं अन्तः क्षेत्रीय आयाम	डॉ0 एम.के. सिंह (एसो. प्रोफेसर), प्रेम चन्द	192–197
43.	"An Investigation Into The Achievement of Science Among The Secondary School Students in Relation to Their Verbal Intelligence Creativity and Reading Interest"	Dr. Jai Pal Singh 'Vyast', Dr. Ramesh Singh	198–201
44.	दक्षिण एशिया की शन्ति एवं सुरक्षा में चीन की भूमिका	डॉ0 एम.के. सिंह, प्रेम चन्द	202–207
45.	"A Study & Test of Some Factors Related to the Achievement of Secondary School Students"	Dr. Jai Pal Singh 'Vyast', Dr. Ramesh Singh	208–210

अनुक्रमणिका

क्र. विषय लेखक पृष्ठ स.

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
46.	कबीर का दार्शनिक चिंतन	पूजा	211–214
47.	योगदर्शन की अवधारणा एवं व्यावहारिक पक्ष	डॉ0 मंजू चौहान	215–218
48.	बालेन्दु शेखर तिवारी के व्यंग्य साहित्य में पारिवारिक समस्याएं	प्रवेश कुमारी	219–221
49.	तलाक की अग्नि में स्वाहा बालमन : आपका बंटी	पूजा	222–224
50.	Mechanism behind Comprehensive Physical fitness	Dr. Narrender Duggal	225–227
51.	डॉ0 हरिशरण वर्मा कृत'आश्रयकुटी' नाटक में संवेदनशीलता	डॉ0 प्रवेश कुमारी	228–230
52.	भारतीय संस्कृति और नारी– विमर्श	डॉ० दान पति तिवारी	231–232
53.	वैदिक साहित्य और नारी की महिमा	डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी	233–235
54.	नाथ सम्प्रदाय में साधनात्मक समन्वय भावना	डॉ0 किरन मिश्रा	236–237
55.	A Study on How Yoga Leads to Social Connectivity With Integrity	Dr. Dheeraj Sangwan, Dr. Rambir Jakhar	238–248
56.	Ruskin Bond's Fiction as a Social Document	Shilpi Agarwal	249–252
57.	An Examination of Arthur Miller's Plays in Respect of Moral Elements	Dr Anjul Bhagi, Dr A. K. Sharma	253–256
58.	Folklores, Myths and Supernatural Element as Portrayed in Ruskin Bond's Stories	Shilpi Agarwal	257–260
59.	Arthur Miller- A Writer of Social Tragedy	Dr Anjul Bhagi, Dr A. K. Sharma	261–264
60.	साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में आपात स्थिति का चित्रण	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	265–267
61.	सस्कृत सन्दर्भे अवधीब्रजोर्दूभाषानां भाषा वैज्ञानिकत्वम्	डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी	268–270
62.	देवेन्द्र नाथ टैगोर के नेतृत्व में ब्रह्म समाज की नीतियों में परिवर्तन	डॉ0 संध्या मिश्रा, डॉ0 प्रेम शंकर	271–274
63.	नारीवादी आंदोलन का भारतीय समाज पर प्रभाव	डॉ0 निभा रानी	275–277
64.	प्राचीन भारत में विज्ञान व तकनीकी विकास	डॉ0 प्रखर	278–279
65.	नारी अस्मिताः चेतना और सशक्तीकरण का एक मूंल्याकन	डॉ0 नीरज कुमार, सुमन कुमारी	280–283
66.	मद्यु कांकरिया कृत 'हम यहाँ थे' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ	सुमित्रा	284–286
67.	नमिता सिंह मूँछोंवाली पुस्तक समीक्षा	डॉ0 मधुकांत अनूप बंसल, पिंकी गर्ग	287–287

1

CHILD SEXUAL ABUSE: AN OVERVIEW

Ravinder Singh Khatana

Abstract

This article examines social science evidence on the nature, prevalence and effects of child sexual abuse, as well as the Indian legislative framework and case law regarding child sexual abuse. This article conducts a synthesis of social science evidence, synthesis of Indian statutes and case law regarding child sexual abuse analysis of the law, and theoretical analysis of principles from the United Nations Convention on Child Rights 1989.

Key Words

Childsexual abuse, United Nations Convention on the Rights of the Child, criminal law.

Introduction

In India, child sexual abuse laws were largely archaic, even after two decades of acceptance of the United Nations Convention on the Rights of a Child 1989 (referred to as UNCRC). Punishments for sexual abuse of children were under the general criminal law of the Indian Penal Code 1860 (referred to as IPC).The sensitivity of the issue of child sexual abuse and the hesitation of victims to report incidents were the reasons for a glaring deficiency of reported cases and legislation in India. The absence of national mandatory reporting procedures ensured there was no legal obligation to report incidents to the law enforcement agencies. The late 1990s heralded the computer revolution in India. In the early 2000s, police operations in the USA and the UK found evidence of uploading of child pornography from India. Also, the American media widely reported shameful incidents of various Indian professionals being party to sexual abuse of children through electronic means. There was a blatant absence of statistics in India regarding the problem of child sexual abuse. It is a social reality that, unless public-spirited organisations and the media step in, the victim and his/her family do not receive support from the community and hence fail to press charges. Such absence of strong community support serves to hinder criminal proceedings to prosecute the offender at the initial stage itself, as the criminal justice machinery in India does not, by itself, play a pro-active role. It ought to have been the existence of these undocumented factors that propelled social activists and non-governmental organisations working in the field of children's rights to exert pressure upon the national government to collect of statistics regarding the extent of abuse, as well as for the enactment of stronger laws.

The first official prevalence study and the enactment of national special legislation in 2012

The Ministry of Women and Child Development of the Government of India conducted an official study on abuse of children in 2007 encompassing 13 states in India. This study entitled “A Study on Child Abuse: India 2007” found the prevalence of child sexual abuse to be high: 53.22% of children have faced one or more forms of sexual abuse and 21.90% of child respondents have faced severe forms of sexual abuse. Three evidence groups comprising of children on the street, children at work and children in institutional care reported the highest incidence of sexual assault. Fifty per cent of abusers were persons known to the child or in a position of trust and responsibility. Most children did not report the matter to anyone.

The passing of the Criminal Law (Amendment) Act 2013 In December 2012,

The brutal gang rape of a female student in the Indian capital of Delhi and her subsequent death led to mass protests against the Indian government for failing to provide adequate security for women. On 22 December 2012, a judicial committee headed by J. S. Verma, a former Chief Justice of India, suggested various amendments to the criminal law to deal with sexual assault cases. The committee's report indicated that failures on the part of the government and police were the root cause behind crimes against women. Soon after, the Criminal Law (Amendment)

Act 2013 came into force, amending the IPC, Indian Evidence Act 1872, the Code of Criminal Procedure 1973 on laws related to sexual offences, as well as the POCSO. This amendment gave a new definition of the offence of "rape", as well as inserted new sexual offences like harassment and voyeurism. It also inserted a provision into the POCSO clarifying which provisions were to prevail in the case of conflict between the IPC and POCSO. Currently, statutes prosecuting child sexual abuse in India are the IPC and the POCSO.

The nature and scope of the provisions on sexual offences in the POCSO from a child rights' perspective

The promulgation of the POCSO shows that Indian law has made positive advances in responding to child sexual abuse. This legislations provides clear substantive provisions defining the offences and laying down punishments. The six offences of sexual abuse – penetrative sexual assault, aggravated penetrative sexual assault, sexual assault, aggravated sexual assault, sexual harassment and using a child for pornographic purposes – cover the entire gamut of penetrative, contact and non-contact offences of sexual abuse of children.

The gap in the IPC regarding sexual offences against children: sections 375, 376, 377

the pre-2013 provisions on rape in sections 375 and 376 IPC were problematic in three ways: firstly, only penile-vaginal sexual intercourse was recognised within the offence of rape; secondly, male children were not granted protection from penetrative sexual abuse; and thirdly, women sex offenders were not apprehended by the criminal justice system because the law does not recognise non-consensual penetrative sexual offences committed by a woman. After the 2013 amendment, other forms of penetrative sexual intercourse with a woman by a man also came within the definition of rape. This step of recognising unwanted oral, anal and other bodily-part intercourse within the offence of rape under sections 375 and 376 IPC eradicated the restricted interpretation given to the term "rape". Yet these provisions continue to be problematic, as they exclude male children who are penetrated by males and females, and female children who are penetrated by women, from within the scope The current interpretation of the offence of carnal intercourse in section 377 IPC, obtained from a combined reading of the new definitions of rape under sections 375 and 376 post-2013 along with case laws in Sakshi's case (2004), Naz (2009) and Suresh Kumar Kaushal (2014), is problematic. Though section 377 punishes only voluntary acts, the court has interpreted this to include types of child sexual abuse which are excluded from section 376.350Section 377 would now technically apply to: (1) consensual penile-anus, penile-oral, finger-anal, finger-vaginal penetration, or object-vaginal penetration of a man by any person; (2) penileanus, penile-oral, finger-anal, finger-vaginal or object-vaginal penetration of minor children irrespective of consent, by any person; and (3) bestiality. Section 377 IPC was designed to criminalise voluntary carnal acts, not non-consensual and abusive carnal acts. The law does not protect men who seek legal recourse for being forced into non-consensual and abusive intercourse with other persons; non-consensual and abusive acts by women upon other women are also not addressed. Discussions on these reforms are beyond the scope of this thesis. However, it is necessary to argue for a separate provision in general criminal law regarding punishment of sexual penetration of minor children by any person, as in the POCSO, as the absence of provisions prosecuting penetrative sexual abuse of children of all genders by both men and women renders the law confusing, inconsistent and discriminatory. This is problematic from a theoretical perspective when evaluating the law using the standards of the UNCRC, and the social science evidence about the prevalence of child sexual abuse. Despite the 2007 MWCD Report showing higher statistics of boy-child sexual abuse contrary to popular conception, the substantive law in India – the IPC – continues to ignore the propensity of sexual abuse of boy-children. From a child rights' perspective, the IPC needs to be amended further in order to accommodate provisions punishing sexual offenders of boychildren.

The current criminalisation of all sexual activity (both abusive and non-abusive) of children below the age of 18

The enactment of the POCSO, the age for sexual relations was 16, as seen in section 375 IPC which punishes statutory rape of a girl below the age of 16irrespective of consent. But

the age of sexual consent of male children was not stipulated by law. After the POCSO and the 2013 amendment to the IPC, the age of consent for sexual activity was18 for both sexes. These provisions in the IPC and POCSO which criminalize all sexual activity (both abusive and non-abusive) of children below the age of 18 present legal and practical issues, as shown in Chapter 4. The anomaly regarding inconsistency in the IPC between the genders regarding the age of consent (the age of consent of women is specified through section 375) and the conflict with the POCSO regarding which law prevails has been removed by section 42A POCSO , which makes the law regarding the age of consent of men and women at 18. The absence of a general law which allows for sexual autonomy of a person below the age of 18 in certain circumstances, at the same time protecting children from sexual assault and abuse, renders the law incorrect in providing adequate protection to the class of "mature" children between the ages of 16 and 18 who wish to engage in consensual sexual activities which do not amount to assault or abuse or compulsion due to customary practices.

The Committee on the Rights of the Child has reinforced these Convention rights and made declarations which provide more substantive insights into the nature of the abstract rights. In 2011 in its General Comment No. 13 on Article 19 regarding the right of the child to freedom from all forms of violence, the Committee elaborated on the meaning of "sexual abuse" for the purpose of interpreting and applying Article 19, defining sexual abuse and exploitation in Article 19 to include: (a) The inducement or coercion of a child to engage in any unlawful or psychologically harmful sexual activity;

(b) The use of children in commercial sexual exploitation; and

(c) The use of children in audio or visual images of child sexual abuse;

(d) Child prostitution, sexual slavery, sexual exploitation in travel and tourism, trafficking (within and between countries) and sale of children for sexual purposes and forced marriage.

Many children experience sexual victimization which is not accompanied by physical force or restraint but which is nonetheless psychologically intrusive, exploitative, and traumatic. The Committee stated that sexual abuse comprises any sexual activities imposed by an adult on a child, against which the child is entitled to protection by criminal law. Sexual activities are also considered abuse when committed against a child by another child, if the child offender is significantly older than the child victim or uses power, threat or other means of pressure. Sexual activities between children are not considered sexual abuse if the children are older than the age limit defined by the State party for consensual sexual activities.

The statutory exclusion of child-wife rape above the age of 15 years from the scope of the amended offence of rape in the IPC

The retention of Exception 2 of Section 375 of the IPC regarding sexual intercourse with child-wives above the age of 15, in the light of the POCSO and the Prohibition of Child Marriages Act 2006, is problematic, as all sexual intercourse, both consensual and non-abusive or non-consensual and abusive, with children under the age of 18 is prohibited. Exception 2 of Section 375 of the IPC states that sexual intercourse by a man with his own wife, the wife not being under 15 years, is not rape. This conflicts with POCSO provisions prohibiting sexual activity with children below the age of 18, as well as the Prohibition of Child Marriages Act 2006, which establishes the age of a person for marriage as 18 for women, and 21 for men.370 But the Prohibition of Child Marriages Act 2006 ensures that child marriages are not void ab initio, and only rendered voidable at the option of the contracting party, provided that such marriage, whether consummated or not, was repudiated within two years of either of them attaining the marriage age.371 These problems present legal and practical issues of incongruence.

There are two options to address this issue: 1. The law must make marital rape a punishable offence, which allows all married women to prosecute their husbands if there is non-consensual abusive sexual intercourse. This would allow married girl children above the age of 15 to prosecute their husbands for rape; or 2. The law must remove the statutory exception for married girl children above the age of 15to be subjected to intercourse by their husbands. Exception 2 to

Section 375 IPC should be amended so as to exclude sexual intercourse with a wife below the age of 18 years. This would clarify that Indian law penalises child marriage, in accordance with Article 19 of the UNCRC. Ideally, making marital rape a punishable offence is the way forward in guaranteeing women's rights and children's rights. However, it is a practical reality that in India it is easier for the legislature to exercise the second option.

Conclusion

1. Gender-neutral definitions of sexual abuse offences in the POCSO allow for better protection of children as a class, fulfilling the obligations of the UNCRC with regard to equal treatment in Article 2 and protection from inducement or coercion to engage in any unlawful sexual activity in Article 34.

2. The general law does not protect male children from penetrative sexual abuse by men and women. It does not protect female children from penetrative sexual abuse by women. The IPC does not fulfil the equality obligations in Article 2, nor does it fulfil the obligation in Article 34(a) of the UNCRC to prevent the inducement or coercion of a child to engage in any unlawful sexual activity.

3. Allowing children within a particular age group to have freedom to decide matters of sexual consent with persons within a particular age group may assist in the fulfilment of obligations under Article 12 of the UNCRC to facilitate the giving of due weight of views of a child in accordance with his age and maturity. Such freedom extends to non-abusive, consensual sexual activity, and the legal system ought to prevent abusive and non-consensual sexual activity in an age-appropriate manner in accordance with Article 19 of the UNCRC, which exhorts the State to take protective measures against all forms of sexual abuse, including sexual activities when the child offender is significantly older than the child victim or uses power, threat or other means of pressure.

4. Adequate leniency must be granted in the case of age-appropriate sexual behaviour, which means recognition of the right of every child alleged as, accused of, or recognized as having infringed the law to be treated in a manner consistent with the promotion of the child's sense of dignity and worth as per Article 40.

5. Provisions which condone child marriage, and provide exemptions for rape of child-wives above the age of 15, ought to be abolished, in order to fulfil obligations under Articles 34 and 19 of the UNCRC; the latter provision specifically stipulating that States must ensure protection from sexual abuse, while the child is in the care of parent(s), legal guardian(s) or any other person who has the care of the child. Since the husband has care over his childwife, it is necessary that Exception 2 of Section 375 IPC be amended to exclude sexual intercourse with a wife below the age of 18 years.

Suggestions

1. It is suggested that as responsible citizens, India should make its law enforcement mechanisms more effective so that people regain their faith in the Judicial system. With heavy backlog of cases and long delays in trial, Indians seem to have lost their faith in our legal system. This is evident from the low reporting of crimes of sexual abuse of children in India.

2. Collection, preservation and analysis of electronic evidence requires clear set of laws, recommended software and training to forensic experts. It is suggested proper Data mining and profiling techniques may be deployed in investigation of online abuse cases. These can also be useful to collate and analyse information from wide variety of material available online.

3. It is suggested that parents must use 'self-regulation approaches' such as technical software to filter objectionable content available online to protect their children from accessing undesirable content on internet. In U.K, such software are distributed by the Government for free.

4. It is suggested that an effective coordination ought to be created between Parliament and the Law Enforcement Agencies to analyse practical difficulties faced while interpreting existent law and presence of various lacunae in law in order to strengthen our legal framework for curbing online sex abuse of children. For example, a new Section to prohibit spamming, stalking and hate speech /defamation is required under IT Act, 2000 as Section 66A has been struck down as unconstitutional by the Supreme Court.

5. It is suggested that our National plan of action for welfare of children must give prominent attention to curbing online

sexual abuse of children. Current action plan and policies donot give this area the urgent attention it demands. It is suggested that greater financial aid ought to be provided by the Government.

REFRENCES

- Akdeniz, Y., Internet Child Pornography and the Law. National and International Responses. (Aldershot, Ashgate,2008)
- Bakshi, P.M., Constitution of India. (Universal Publishing Co, Delhi, 6th ed., 2005).
- Davidson, J., child sexual abuse-media representation-government reaction. (Routledge, Abingdon, UK, 2008)
- Kothari, C.R & Garg G, Research Methodology. (New Age International Publishers, 3rd Ed, 2014)
- Richardson T.I & Williams, M.V Child abuse and Violence (Nova Science Publishers, 2008)
- Taylor, M. & Quayle, E, Child Pornography: An Internet Crime (Brunner-Routledge, Hove, 2003)

I) Nair, P.M.,& Sen, S. (2005).Trafficking in Women and Children in India. New Delhi, Orient Longman, pp. 153-154.

II) Adenwalla, M. (2000).Child Sexual Abuse and the Law.India Centre for Human Rights and the Law,Mumbai.

III) Kannabiran, K. (2009). Sexual assault and the Law. K. Kannabiran, & R. Singh, (Eds.), Challenging the Rule(s) of Law: Colonialism, Criminology and Human Rights in India., New Delhi: SAGE, pp. 78-118.

IV) Bajpai, A. (2006). Right to Protection Against Sexual Abuse and Exploitation. Child Rights in India: Law, Policy, and Practice. Delhi: OUP, pp. 208-278 at p. 225.

V) Moirangthem, S., Kumar, N.C., Math, S.B. (2015). Child sexual abuse: Issues & concerns. Indian J Med Res 142(July) pp.1-3.

VI) 7Pathak, H. (2016).Beyond the Binary: rethinking Gender Neutrality in Indian Rape Law. Asian Journal of Comparative Law, 11:367-397.

VII)Satish, M. (2017).Discretion, Discrimination and the Rule of Law- Reforming Rape Sentencing in India. Delhi: Cambridge University Press.

VIII) Kakkar, L., Varadan, S., & Kumar, P. (2007). A Study on Child Abuse: India 2007. Ministry of Women and Child Development, Government of India. http://www.childlineindia.org.in/pdf/MWCD-Child-AbuseReport.pdf

Ravinder Singh Khatana
H.No. 661 , First floor,
Sector 43, Chandigarh pin 160044,
ph no. 9855560617
ravinder.khatana86@gmail.com

2

हिन्दी दलित : कहानी की वैचारिक पृष्ठ भूमि

प्रताप सिंह

सारांश –

दलित कहनी की वैचारिक पृष्ठ भूमि अंबेडकरवाद है , किन्तु साहित्य में विचार सीधे सीधे नहीं आतेद्य अतः विचार दृ प्रक्रिया को समझना और विवेचित करना भी इस संदर्भ में आवश्यक है कोई भी विचार बौद्धिक क्रिया , स्मृति और कल्पना की उत्पत्ति है चिन्तनशीलता मानव की विशेषता है। विचरों का तार्किक संरूपण एवं अन्त : क्रियात्मक सम्प्रेषण मानव समाज तथा उसकी समस्त सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के निर्माण एवं विकास की आधार भूत प्रक्रिया है। संवेदनशील मानव मस्तिष्क प्रकृति की आनुवांशिक उपज है विचारों का उद्धभव और विकाससंवेदनशील मस्तिष्क से संबन्धित होता है मनुष्य की वैचारिक क्षमताओं का विकास समस्त पर्यावरण के साथ अन्त क्रियाओं से अर्जित अनुभूतिओं स्मृतियों का आंतरिक सम्बन्ध है। इन सम्बन्ध से निर्मित विचार मानव समूहों की संवेदनाओं एवं सम्प्रेषणो की सूक्ष्मतओं के विस्तार के साथ साथ उत्तरोत्तर विकसित होते है विचार साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य में वृद्धि करते है दूसरी तरफ विचार साहित्य को कलात्मक अराजकता से बचाते है वही विचार साहित्य को उचित सामाजिक धरातल प्रदान करते है विचार साहित्य के दृष्टिकोण को स्वछ्न्दता प्रदान करते है और उसमे निहित मूल्यवन्ता को व्यापकता प्रदान करते है इसलिए विचार और विचार धारा का सवाल भी इस प्रसंग में उठाया जाता है वही रूप विचार धारा का दास बनाकर नहीं रखा जा सकता है क्योकि इससे कलात्मक सौन्दर्य ही नहीं खण्डित होता बल्कि विचार और साहित्य की प्रभावोत्पाकता भी कम हो जाती है वही विचार यथार्थ को गतिशील और प्रभावशील बनाता है वही कला की सामाजिक भूमिका को स्पष्ट और साफ करने में सहायक होता है एक लेखक की विचार धारा उसके वर्ग या समुदाय द्वारा संचालित होती है , किन्तु मानव चेतना में वर्ग के अतिक्रमण की क्षमता होती है साहित्य रचना के तीनों तत्वों दृ भाव , विचार , और इंद्रियबोध में विचार की भूमिका रचना के महत्व को प्रतिपादित करने के सर्वाधिक कारगर और सहायक सिद्ध होती है। सत्या तो यह है कि बिना विचार के रचना के अस्तित्व गृहण करने कि कल्पना भ्रामक है साहित्य मनुष्य द्वारा रचा जाता है विचार शील और बौद्धिक होता है

विचार कि अवधारणा का स्वरूप

विचार कि अवधारणा और उसके स्वरूप को लेकर चिन्तको और अयेताओं तथा विद्वानो मे मत भिन्नता बनी हुई है परंतु इस बात से सभी सहायक है कि विचार निजी चेतना का अंग होता है और चेतना मानव को मस्तिष्क में निरंतर क्रियाशील रहती है इस विषय में डॉ0 गणपती चन्द्र गुप्त का कहना है कि " विचार मे सत्य के अनुसाधन का उद्देश्य रहता है, जबकि भाव मे सत्य के अपेक्षा सुख , तृप्ति और आनन्द प्राप्ति का लक्ष्य रहता है , यह दूसरी बात है कि कई बार सत्यनुसाधन कि प्रवृति भी ऐसी भावना के रूप में विकसित होती चली जाती है कि जिससे कि सत्य की उपलब्धि आनंदोंपलब्धि के तुल्य हो जाती है 1,

यहाँ पर सत्य की उपलब्धि और आनन्द की उपलब्धि की तुलना समाधीन नहीं जान पड़ती विचारो में तथ्य और सत्य दोनों के अनुसंधान का लक्ष्य निहित रहता है इसके साथ हि सत्य केसाक्षात्कार से विचार की सत्ता अस्तित्व ग्रहण करती है समाज के आसपास के परिवेश के प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना विचार का अस्तित्व मे आना संभव नहीं है कल्पना और विचार मे कोई मौलिक विरोध इसलिए नहीं है कि कभी कभी मानव के विचार के अनुरूप हि उसकी कल्पना प्रक्रिया द्वारा साहित्य मे लेखन सम्पन्न होता है। इस विषय के संदर्भ में मुक्तिबोध जी ने लिखा है

" विधायक कल्पना द्वारा पुर्नरचित जीवन एक अनुभव यानि एक व्यास है तजुर्बे कि तस्वीर नहीं, वरन तत्समान के सारे अनुभवो का वह वस्तुत रू एक सामान्यीकरण है इसलिए उन मानस प्रत्यकक्षो में विशेष प्रतिनिधिकता आ जाती है द्य व्यवस्थित रूप में शब्दबुध रूप में चित्र अपनी हि प्रतिनिधिकता के फलस्वरूप पाठक या श्रोता के अन्तः करण में तत्समान चिंतों का जागृत कर देता हूँ" । 2,

इसलिए कल्पना जब विधेयात्मक होती है तो विचार में पर्यावसित हो जाती है और तब तक वह जीवन का पुनसृजन एक विशेष दृष्टिकोण अथवा विचार दर्शन के अंतर्गत करती है

अब प्रश्न यह हैकि विचार को परिभाषित करने के लिए उसकी अवधारणा के साथ उसके लक्षणो पर गौर करना आवश्यक है या नहीं इस प्रश्न का सम्बन्ध इस बात से है कि अनुभव और विचार के दून्दु हो अथवा नहीं

इस विषय पर डॉ0 बलदेव वंषी ने लिखा है :–

" प्रथमत रू विचार ऐन्द्रिक प्रत्यक्ष से संबद्ध होता है तत्पश्चात मूर्त अथवा शाब्दिक प्रतिक्रियाओ के माध्यम से कल्पनातात्मक विचार के स्तर से उठ जाते है इन्हे भाषा द्वारा अभिव्यक्ति मिलती है किसी समस्या के उपस्थित होने पर विचार उपस्थित हो जाते है लक्ष्य के निर्धारित होने के स्थिति , मे उसके समाधान कि और प्रवृत्ती लगती

है समाधान के उपायों कि दुंढ़ होती है तत्पश्चात पूर्व परीक्षित या निरीक्षित अबुभावों कि स्मृति जगती है स्मृत तथ्यों का नयी दिशओं के अनुसार उपयोग करना तथा अन्त मे आंतरिक भाषण ये प्रमुख पाँच तत्व विचार की प्रक्रिया के अंग माने गये है इस प्रक्रिया से स्पष्ट है कि समस्या कि उपस्थिती कि दशा में साहित्य मे विचार कि वही प्रक्रिया अपनायी जाती है जो व्यावहारिक जागत मे सामन्यात रू अपनायी जाती है।

इस वक्तव्य से अभिप्राय यह कि कल्पना जन एक स्तर को प्राप्त करती है टाटा पूर्व परीक्षित अनुभावो कि स्मृती से जुड़ती है तब जाकर नयी दिशाओं के उपयोग हेतु प्रस्तुत होती है इसके बाद दह विचार मे बदल जाती है अतः अनुभवो और विचार को एक मानना उचित नहीं है क्योकि अनुभव मे चयन कि स्वतंत्रता नहीं होती और विचार मे उसकी स्वतंत्रता होती है विचारो में तर्कशक्ति कि प्रधानता होती है वही अनुभव में संवेदना कि प्रमुखता होती है अपनी पूर्वावस्था में विचार प्रत्यक्ष का रूप ले लेते है , फिर उनके विकास की सम्भावना बनी रहती है

साहित्य और विचारो के सम्बन्ध का विवेचन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अनुभूति दृविचार निरपेक्ष नहीं होती और न अनुभूति निरपेक्ष विचार होता है सामाजिक परिस्थितियों में ही वैचारिक अवधारनाओं का विकास होता है । और कविता में उसका अन्तगृयन आंतरिक तत्वों कि बुनावट में निहित होता है इस लिए डॉ बलदेव वेशी का कहना है कि " वैचारिक सरोकारों संघर्षो से जुड़कर काव्यनुभूति का पुन संस्कार होता है वह विचार कि अनुवर्तिनी बनती है अपने समय की लड़ाइयों मे हिस्सेदारी कायम करके अपनी अनूगूँजे सुदुर समय तक फैला देती है ऐसी कविता तब तक अपनी प्रांसगिकता और प्रामाणिकता मे चिरस्थायी पैदा कर इतिहास का स्थायी हिस्सा बना जाती है। 4,

काव्य रचना के संदर्भ मे विचार को एक प्रत्यय के रूप मे ग्रहण करने के साथ उसकी बुनियादी सरोकारों और निष्पत्तियों के निर्धारण की समस्या भी खड़ी होती है।

डॉ0 राम विलास शर्मा ने लिखा है कि " मनुष्य कि उपज है और विचार मानव मस्तिष्क हीन विचार और चेतना का अस्तित्व केवल कल्पना कि वस्तु है चेतना प्रकृति के एक ऐसे अंश का गुण है , इसलिए वास्तविक केवल चिंतन द्वारा अपने भीतर से उत्पन्न नहीं किये जा सकते है सही विचार के लिए मानव चेतना और ब्रहाय जगत का संपर्क आवश्यक है इस कारण ज्ञान का आधार मनुष्य का प्रत्यक्ष अनुभव है। 5,

यदि मस्तिष्क हिन विचार और चेतना का का कोई अस्तित्व नहीं होता वैसे ही विचार और चेतना से रहित मस्तिष्क भी नही होता द्य यह दूसरी बात है कि यह चेतना और विचार उत्थानशील हो या पतन शील है द्य इस वास्तविक संसार मे कवि का वातावरण या परिवेश और उसकी अन्तदृष्टि की गत्यात्मकता भी विचार प्रक्रिया का ही एक अंग है

किसी साहित्यकार या लेखक की अनुभूति उसके समाज की गतिविधियों और वातावरण में ही जन्म लेती है

इसको हम व्यक्तिगत अनुभूति भी कहते है और यह अनुभूति सामाजिक हलचलों परिघटनाओ और सरोकारों से जुड़ी होती है द्य अतः न अनहुभूति वायवीय हो सकती है और न विचारद्य इसी आधार पर कहा जा सकता है कि विचार अनुभव का झुटलाता नहीं है बल्कि उसे परिपवक्ता प्रदान करता है

इस सम्बन्ध मे रमेश कुंतल जी का कहना है " कला और साहित्य केवल भावुकता का क्षेत्र नहीं य अपितु यह विचार धारा कि दुनिया कि कृति है और वैयक्तिक भावनाओ से अधिक जनता के सामाजिक संबंधो को प्रतिबिंबित करती है प्रत्येक एतिहासिक युग के आधार में जनता के विशेष वर्गीय सम्बन्ध होते है । अतः वर्गीय समाज मे काला कि प्रवृति भी वर्गीय होती है। इस प्रकृति मे एक ओर तो सत्ताधारी वर्ग मे आदर्श तथा दूसरी ओर जन जीवन के धुंधले चित्र भी प्रदर्शित होते है इसके अलावा वर्गो के आपसी विरोध पुराने सम्बन्धो के द्वंद , नई उत्पादन शक्तियों के परिवर्तन से उत्पन्न चेतना कि क्रांतिया भी कला मे अभिव्यक्त होती है " 6,

व्यावहारिक जीवन में विचार अनुभूति कि प्रक्रिया में ही निहित रहते है इसलिए विचार क्रिया भी है और संज्ञा भी यह मानसिक एकालाप नहीं है, बल्कि अनुभव कि संचित और सुचिंतित राशि है वही विचार जब सृजनशील होता है, तब अपनी सामाजिक भूमिका को बेहतर ढंग से निभाने मे समर्थ होता है इसी संदर्भ मे डॉ0 रामदरश मिश्र ने लिखा है ""विचार कविता के लिए अजनबी कभी नहीं रहा है द्य वह अनुभूतिशील कविता के बीच बीच मे सूक्ति बनकर तो उमरता ही रहा है , साथ ही साथ मूल्यांकनकारी दृष्टि बनकर सर्जन के समय अनुभूति का मूल्यांकन करता हुआ। उनकी काठ छाट करता हुआ चलता रहा है

अब विचार कविता के बीच बीच में सूक्ति बनकर उभरने वाला वैकल्पिक तत्व नहीं रह गया द्य वह अनुभूति का भाव दृ भाप के साथ वार्ता करने वाला अनिवार्य तत्व बन गया है। 7,

अतएव यही बात साहित्य की अन्य विधायों पर भी लागू होती है समाज में जनतकनिक चेतना का स्तर देने मैं दलित कहानी की छटपटाहट उसकी वैचारिक का ही शक्ष्य है।

समाज मे बहुत बड़ा तब का आर्थिक एवं सामाजिक विसंगतियो के कारण हाशिए पर चद्ते आये है समाज मे पिछड़े हुए ऐसे वर्ग को मुख्य धारा में लाने के लिए अनेकों समाज सुधारक प्रयास तथा संघर्ष करते रहे है परंतु समाज की वर्ग व्यवस्था और छुआ दृछूत की प्रथा ने भारतीय समाज के बहुत बड़े हिस्से को दयनिय स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है समाज में वही धर्म और कार्य विभाजन का सहारा लेकर स्थापित इस वर्ण व्यवस्था ने

जातिवाद और छुआ : छूत का ऐसा विष वृक्ष खड़ा कर दिया है द्य जिसके द्वारा समाज की प्रत्येक धारा प्रभावित हुए बिना रह सकती द्य साहित्य समाज का दर्पण होता है। सामाजिक राजनैतिक क्षेत्र मे हुई हलचल साहित्य की विभिन्न विधायों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अवश्य अभिव्यक्त हुई है वही विश्व इतिहास और साहिता इस बात का गवाह है द्य पिछले दो दशको में उत्तर भारत में दलित का गवाह है द्यआंदोलन बहुत तेजी के साथ उभर कर आया और नए दलित सामाजिक राजनैतिक विमर्श का सूत्रपाठ हुआ द्य इन संघर्ष और परिस्थिति न दलितों मे एक नई चेतना का संचार किया , जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य मे भी हुई और यही समय हिन्दी में दलित साहित्य आंदोलन का भी रहा है हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य आंदोलन अपने प्रारम्भिक लड़खड़ाहट संघर्ष और विभिन्न विरोध के बावजूद आज एक स्थापित दलित धारा है वही दलित साहित्य में कहानी विधा में सबसे अधिक रचनाए हुई है

डॉ0 जय प्रकाश कर्दम का कहना है उचित है कि –:

" किसी भी नई धारा का विकास प्रचलित धारा कि प्रवृति तथा उसके मूल्य और मान्यताओं का प्रति असहमति असन्तोष और आक्रोश का परिणाम हैः चाहे वह धारा सामाजिक हो, चाहे राजनैतिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक उस धारा के अपने मूल्य मानदण्ड और मान्यताए होती है किसी भी साहित्यिक धारा के मूल्य , मानदंड और मान्यताए उस धारा को अद्भुत और विकसित करने वाले साहित्यकार और उनके समाज कि शिक्षा संस्कृति और उसके चिंतन के आधार पर बनती और विकसित होती है उस धारा के उद्भव, उददेश्य और आवश्यकता के पीछे उसके समाज कि सामाजिक आर्थिक राजनैतिक परिस्थितियों के साथ साथ उसकी सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि या परम्परा का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है है"8,

यहाँ पर दलित कहानी कि विचार भूमि कि बात है तो कुछ ऐसे तथ्या सामने आते है जो स्थापित विचारो और स्वीकृत पंरपराओ के खिलाफ प्रतिरोध और की संस्कृति रचते है कहानीकार या लेखन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को एक एतिहासिक अंतवस्तु के रूप मे विकसित करता है।

अब प्रश्न यह है कि स्वीकृत परम्पराएं और विचार क्या है ? तथा दलित कहानी साहित्य में इनकी उपस्थिती किस रूप में है ?

उत्तर प्रदेश कि राजधानी लखनऊ मे होने वाले प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन में सभापति के रूप में साहित्य कि भूमिका पर विचार करते हुए मुंशी प्रेमचंद जी ने कहा था कि रू– " जो दलित है पीड़ित है , वंचित है , चाहे वह व्यक्ति हो अथवा समूह , उसकी हिमायत और वकालत करना साहित्य का फर्ज है द्य हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा होगा, जिसमे उच्च चिंतन हो , स्वधीनता करना का भाव हो , सौन्दर्य का सार हो , सृजन कि आत्मा हो , जीवन कि सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हममे गति संघर्ष और बेचौनी पैदा करे , सुलाये नहीं क्योकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। 9,

इस वक्तमय से स्पष्ट है कि साहित्य या तो अपने मूल रास्ते से भटक गया था ? अथवा दलित शोषित और वंचित बहिस्कृत , तिरस्कृत व्यक्ति या समुदाय कि इबाट पूरी शिक्षित के साथ नहीं उठा रहा था ? और गाँव व देहात मे जमीदारों और मजदूरों के बीच कृषि फसल संबंधी संघर्ष हूर और दलित समाज के अंदर भी दमन, शोषण, यातना ,वेदना, के खिलाफ विद्रोह और प्रतिशोध की चेतना जागृत हुई दलित कहानी की पृष्ठ भूमि को जानना जरूरी है द्य मुंशी प्रेमचंद के बाद शोषितों, पीड़ितों और वंचितों, को लेकर रचनात्मक लेखन की हो धारा शुरू हुई वह निरंतर जारी रही दलित साहित्य की पृष्ठ भूमि हिन्दी दलित कहानी की विचार भूमि है ? दलित साहित्य समाज मे समानता स्वतंत्रता , बन्धुता , एवं न्याय– पर आधारित आदर्श समाज का सत्य साहित्य है जो पारम्परिक रूढ़िवादी व्यवस्था के सामाजिक परिवर्तन में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह करता है दलित साहित्यकार और साहित्य सामाजिक परिवर्तन लाना के लिए दलित समुदाय को शिक्षा , संगठन संघर्ष ,और प्रज्ञा ,करुणा एवं शील के विचार व्यवहार से आंतरिक और बाह्रय संघर्ष ले लिए तैयार करता है। दलित साहित्य रूढ़िवादी मूल्यों पर चोट करता है हो व्यक्ति या समुदाय के संघर्ष की राह मे बाधा उत्पन्न करते है। वही हिन्दी दलित कहानी मे ये सभी गुण विधमान है ज्यादार दलित कहानी की रचना वह व्यक्ति करता है जो स्वयं दलित है कहानी के माध्यम से दलित जीवन के विभिन्न पहलुओ को उजागर करता है द्य समाज का वह वर्ग हो वर्ण व्यवस्था तथा जाति पात का शिकार होता है द्य तथा इसी वर्ग यानि दलितों पर अत्याचार , शोषण , गरीबी , वेदना , यातना , होती रही है द्य तथा इसके साथ ही बेगारी भी ली जाती है ।

हिन्दी के प्रसिद्ध दलित लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते है कि –:

" दलित जीवन की पीड़ाए असहनीय और अनुभवदग्ध है। ऐसे अनुभव जो साहित्यक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके । एक ऐसी समाज व्यवस्था में हमने सांस ली है। जो बेहद क्रूर और अमानविय है ,जो दलित के प्रति असंवेदनशील भी। 10,

यहाँ पर सामाजिक व्यवस्था कोई और नहीं बल्कि भारतीय समाज की वही वर्ण व्यवस्था है। जिसमे दलित समाज की बहीस्कृट , और तिरस्कृत कर सबसे निचले पायदान पर रखा गया है । ओमप्रकाश वाल्मीकि की उपर्युक्त पंक्तियाँ , सिर्फ एक लेखक का वक्तमय नहीं है

बल्कि उस दलित व्यक्ति की भी पीड़ा है , जिसने एक दलित होने के नाते भारतीय समाज में लंबे समय तक यातना , उपेक्षा , प्रताड़ना और शोषण जैसी दयनकारी स्थितियों को देखा

तथा भोगा है। अतः दलित कहानिया समाज की वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की इन दयनकारी स्थितियों के खिलाफ आवाज उठती है। दलित कहानियाँ दलित समाज की उत्पीड़न को कहानी की मुख्य ' थीम ' बनाते हुए दलित समाज के अंदर वर्ण व्यवस्था क्रेंद्रित शोषण एवं दमन और वेदना , यातना के खिलाफ प्रतिरोध तथा संघर्ष की चेतना का विकास करती है ।

ओम प्रकाश वाल्मीकि जी अपनी कहानी ' प्रमोशन ' मे वर्ग विभाजन और वर्ण व्यवस्था को एक ही बात कहने वालों की पोल खोलती नजर आती है ।

दलित कहानियाँ हिन्दी कहानी परम्परा से अलग हो जाती है। तथा दलित कहानियाँ अपना अलग बजूद बनाते हुए साहित्य की दुनिया मे सामाजिक आसिम्ता के सवाल को वर्ण व्यवस्था के साथ जोड़कर एक बड़े सवाल के रूप में उठती है।

इस प्रकार ओम प्रकाश वाल्मीकि की "सलाय ", जय प्रकाश कर्दम की " नो बार " , सूरज पाल चौहान की " साजिश " और "अहिल्या" , मोहन दास नेमिशराय की " अपना गाँव "और आवाजे , डॉ0 सुशीलाटाक भौरे की " सिलिया ", दयानन्द बटोही की " सुरंग ", एस . आर हरनोट की " जीवन काठी " ,विपिन बिहारी की "कंधा " , शत्रुधन कुमार की " हिस्से की रोटी " , प्रहलाद चंद दास की" लटकी हुई शर्त " ,श्यौराज सिंह बैचेन की " शोध प्रबंध " , कुसुम वियोगी की " अंतिम बयान ", अजय नावारिया की "उपमहादीप" आदि कहानियाँ वर्ण व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में हासिए की जिन्दगी व्यतीत कर रहे दलितो की वास्तविक पीढ़ा । जातिय संस्कृति , संघर्ष और समकीज महत्व के कार्यो में आहूत अरु शूद्र होने के कारण वंचित और तिरस्कृत किये जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए सदियो से हो रहे शोषण, अन्याय , अत्याचार , दमन , के खिलाफ प्रतिरोध की एक संष्कृति विकसित करती है।

दलित साहित्य में दलित कहानी की विचार धारा दलितों और सावर्णों के बीच सत्या का उद्घोष करती है यदि दलित कहानियों का अध्ययन किया जाय तो ये आशीर्वाद , यथार्थपरम और चेतना मूलक कहानियाँ है द्य दलित साहित्य मे चेतना का मुख्य स्त्रोत बाबा साहब डॉ बी0 आर0 अंबेडकर का चिन्तन है द्य दलित मसीहा बाबा साहब ने जातिविहीन , वर्ग विहीन समाज के रूप मे ऐसे समाज की कल्पना की , जो समता , न्याय, स्वतंत्रता , और भ्रातृत्व पर आधारित हो , तथा जिसमे ऊंच नीच , छुआ छूट आदि के लिए कोई जगह न हो। दलित कहानी का प्रयोजन स्पष्ट है, उसका लक्ष्य है दलित समाज को गुलामी से अवगत कराना , उसे इस गुलामी के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करना और सवर्ण समाज के सक्षम अपनी व्यथा और वेदनाओ का ब्यान करना । दलित कहानियों पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध कलाकार और हंस पत्रिका के संपादक राजेंद्र यादव ने कहा था कि " यह सायोंग नहीं है कि तीसरी दुनिया का सारा संघर्षरत लेखन अपने आपको अश्वेत साहित्य से ही जोड़ता रहा है दृ दलित साहित्य का मॉडल तो लगभग वही है। चाहे वह अमेरिका का नसल भेद हो गोरी दुनिया के अल्पसंख्यको की नियति हो या फ्रेंच अमेरिकन उपनिवेशी चुंगल मे छटपटा अफ्रीका को हम कही भी अपने को उनसे अलग नहीं पाते । गरीबी , भुखमरी, अकाल , वर्ण , और वर्ग संघर्ष या सांप्रदायिकता की अपने समाज के भीतर लड़ी जाने वाली लड़ाइयाँ और फिर उपनिवेशी शोषण , वामन की क्रूर या बारीक मुठभेड़ हमारी स्थितियो का प्रतिरूप ही लगती है । 11,

हिन्दी साहित्य में दलित कहानियाँ की स्थिति भी लगभग यही है यह भुखमरी गरीबी शोषण और दमन ही है ,जो दलित समाज की भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मुख्य धारा से जोड़ाती है और दूर भी करता है ।

बाबा साहब की जीवन गाथा , उनका कार्य और वाणी तथा उनके अमूल्य विचारो से दलित समाज , दलित आंदोलन और दलित साहित्यकार जागृत हुए द्य अतएव दलित मसीहा बाबा साहब ही दलित साहित्य की सच्ची और सत्या प्रेरणा है ।

अंबेडकर बाद के परिभाषित करते हुए शरण कुमार लिमबाले कहते है " दलित साहित्यकारों की दलित जनता के लिए ,सवर्ण लेखको की स्वीकृति की परवाह किए बिना अपना लेखन करते रहना चाहिए। दलित लेखको की समीक्षाभिमुखी होने ले बजाय जीवनाभिमुखी होना उनके लेखन की स्वस्थ वृद्धि के लिए आवश्यक है । सवर्ण लेखको की स्वीकृति की अपेक्षा दलितो की अनुभूति एवं उनकी जागृति अधिक महत्वपूर्ण है। दलित लेखकों का जीवनोंमुखी होकर लिखना ही दलित साहित्य मे अंबेडकर बाद कहलाता है ।12,

निष्कर्ष:

दलितों को उनकी असिम्ता का अहसास सही मायनों में बाबा साहब डॉ0 अंबेडकर ने ही कराया द्य उन्होने ही दलितो को अन्याय तथा शोषण ,दमन , यातना और वेदना , अत्याचार के खिलाफ संघर्ष केरने के लिए प्रेरित ही नहीं की या बलिकी उनमे विश्वास पैदा किया की वो किसी से कम नहीं है द्य उनमे भी ऊपर उठने तथा आगे बढ़ने की सम्भावनाए है। बाबा साहब का चिंतन जाति भेद के अंत का आधुनिक विचार है। इसी विचार और चिंतन के आधार पर आज का आधुनिक दलित साहित्य पथ पर निरंतर प्रगतिशील है ।

संदर्भ

1. डॉ 0 गणपती चन्द्रगुप्त : साहित्य विज्ञान , पृष्ठ संख्या –158
2. मुक्ति बोध रू नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ संख्या –152
3. डॉ बलदेव वंशी : आधुनिक हिन्दी कविता में विचार पृष्ठ संख्या –22
4. डॉ बलदेव वंशी आधुनिक हिन्दी कविता में विचार पृष्ठ संख्या–103

5. डॉ0 राम विलास शर्मा रू आस्था और सौन्दर्य पृष्ठ संख्या –44
6. रमेश कुंतल मेघ रू क्योकि समय एक शब्द है पृष्ठ संख्या –34
7. डॉ राम दर्श मिश्र रू विचार की भूमिका पृष्ठ संख्या –27
8. डॉ जय प्रकाश कर्दम रू इक्कीसवी सदी में दलित आंदोलन पृष्ठ संख्या – 46
9. प्रेम चंद रू आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श पृष्ठ संख्या –105
10. ओम प्रकाश वाल्मीकि रू जुठन , पृष्ठ संख्या –7
11. राजेंद्र यादव रू आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श पृष्ठ संख्या –145
12. शरण कुमार लिम्बाले : दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ संख्या –64

प्रताप सिंह
आर . बी . डी महिला महाविद्यालय,
बिजनौर
एम . जे . पी . यू .
बरेली : उ० प्र०
73531663829

3

'क्याप' का उत्तर आधुनिक दृष्टि से अध्ययन

कविता शर्मा

सारांश –

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक नए युग का प्रारंभ हुआ जिसे उत्तरआधुनिक युग नाम दिया गया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यह समय आधुनिकता के ठीक बाद का समय था। हमें इस ओर ध्यान देना होगा कि बीसवीं शताब्दी में ऐसे कौन से बदलाव साहित्य और समाज में आए जिस कारण इस युग को एक अलग नाम देने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। क्या यह बदलाव हमें बेहतरी की ओर लेकर जा रहें थे अथवा यह मात्र बदलाव को दर्शाने का ही उद्देश्य लेकर आगे बढ़ रहा है? क्या इस तरह के निरंतर बदलावों से मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर व्यक्ति संतुष्टि प्राप्त कर पा रहा है अथवा नहीं? क्या यह अंसतुष्टि का भाव एक द्वंद्वात्मक स्थिति के उत्पन्न होने का कारण है, जिससे मनुष्य अर्न्तविरोधों से घिरकर कुंठा का शिकार हुआ और उसे किन्हीं बदलावों की जरूरत महसूस होने लगी। क्या उत्तरआधुनिक युग के प्रारंभ का कारण यही मानवीय अन्तर्विरोध साबित हुए। अक्सर उत्तरआधुनिकता को पढ़ते हुए ऐसा लगता रहा जैसे यहां आगे बढ़ने का नहीं पीछे के बारें में सोचने, उसपर विचार करने और उनमें से अच्छी चीज़ों का चुनाव करने की बात हो रही है। जिसे आधुनिक समय में तुच्छ समझकर नकार दिया गया। इसी नकार से उत्पन्न कुंठा एक नए युग के रूप में हमारे सामने है। जिसे हम उत्तरआधुनिक युग के रूप में जान रहे हैं। इससे आगे यदि हम सोचे तो यह आधुनिक दौर से असंतुष्टि के जिस भाव को लेकर आगे बढ़ा उससे एक अंतहीन यात्रा पर निकल पड़ा जिसका परिणाम कोई निश्चित नहीं। '' उत्तर आधुनिकता अतीत को वर्तमान से टकराती है। 'अतीत राग' की पैरोडी बनाती है। सिर्फ नएपन के पीछे भागकर उत्तर–आधुनिकता हमें अतीत को 'दोबारा सोचने' के लिए कहती है। अतीत और वर्तमान दोनों एक–दूसरे की कसौटी से देखते जाते हैं।''एक ओर जहां इसमें अतीत के नकार की बात है वहीं उसमें कुछ बदलावों की अपेक्षा रखते हुए उसके स्वीकार को भी अपनाने की बात है। यह न तो पूरी तरह से स्वीकृति का दौर है और न ही पूरी तरह से अस्वीकृति का। यूं देखा जाए तो अनिश्चितता, अवास्तविकता, नकार, विभेद ही इस युग की मुख्य विशेशता बनकर उभरी हैं।

वैश्विक स्तर पर उत्तरआधुनिकता का प्रारंभ बिन्दु फ्रांस की क्रान्ति से जोड़कर देखा जा सकता है। 1968 में जिस जनआंदोलन की शुरूआत फ्रांस में हुई वहीं से रूस अमेरिका से होते हुए भारतीय साहित्य में इसकी छाप दिखाई पड़ने लगी। फ्रांस में सत्ता के केन्द्रीकरण और शक्ति के वर्चस्व के विरोध में जो जनशैलाब तथा छात्र आंदोलन के रूप में जो आक्रोश बनकर फैला उसकी छटा सम्पूर्ण विश्व के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवेश पर पड़ने लगी। परिणामस्वरूप प्रत्येक राश्ट्र में कुछ बुनियादी परिवर्तन होने प्रारंभ हुए जिनका असर वहां के साहित्य पर दिखाई पड़ता है। ऐसे ही कुछ परिवर्तन भारतीय संदर्भो में भी देखे गए जिन्हें महसूस कर यहां उत्तरआधुनिकता एक विमर्श के रूप में चर्चा के केन्द्र मे आई।

उत्तरआधुनिकता अग्रेजी के पोस्ट मॉर्डनिज्म का हिन्दी रूपान्तरण है। पोस्ट मॉर्डनिज्म यानि मॉर्डनिज्म के बाद की स्थिति। साधारणतः उत्तरआधुनिकता का अर्थ आधुनिकता का अगला चरण ही लिया जाता है। जबकि गहराई से देखा जाए तो यह आधुनिकता के आगे की स्थिति को बाद में तथा आधुनिकता की समाप्ति को पहले लेकर चलता है। आधुनिक युग की तमाम प्रमुख विशेशताओं का इस युग में नकार किया गया। उत्तरआधुनिकता को व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए हमें साहित्य के साथ साथ कला, संस्कृति, विज्ञान तथा समाज को भी इसमें शामिल करना होगा। यद्यपि कला के क्षेत्र में उत्तरआधुनिकता का कोई ऐसा संरचनागत ढांचा नहीं है जिन्हें शब्दों के माध्यम से किसी श्रृंखला में पिरोया जाए। इस दौर में कला के क्षेत्र में भी बाज़ारवादी संस्कृति तथा आपाधापी के इस युग में मानवीय इच्छा जिसका कोई केन्द्र नहीं एक तरह के मोहभंग की स्थिति के कारण एक बेढंग सा कलाचित्र बनकर हमारे सामने है। जिसे हमें ठीक उसी रूप में स्वीकारना भी होगा। यही आज के उत्तरआधुनिक समय की जरूरत है जिसे इसी रूप में पूरा किया जा सकता है। '' उत्तर–आधुनिकता में जरूरतों और अपेक्षाओं का संकेन्द्रण है और भी उपभोगितावादी नाभिकेन्द्रीय तत्व हैं। यहॉ हर चीज़ 'जिन्स' में बदल चुकी है। टी0 वी0 पर दिए जाने वाले लगातार विज्ञापनों के द्वारा यह प्रक्रिया और संबलित होती जा रही है। उपभोगितावादी जीवन–शैली को समर्थित करने के लिए जिस प्रभूत अर्थ–कोश की अपेक्षा है उसे मुहैया कराया जा रहा है। इनके साथ ही वहॉ खुला–खाली समय भी है, जिससे उपभोग–मग्न हुआ जा

सके।''भूमण्डलीकरण की जो प्रकिया इस दौर में प्रारंभ हुई उसने सम्पूर्ण कार्य–व्यापार की प्रणाली को प्रभावित किया। कही न कही यहां पूंजीवाद का नकार लेकर इस युग का प्रारंभ हुआ था और यहां यह उसको पोशित करता हुआ दिखाई देता है। जिसके केन्द्र में फिर से अर्थ ही आकर ठहर जाता है। बाकी सब कलाएं गौण हो जाती है। बावजूद इसके कि यह किसी तरह का कोई लक्ष्य साथ लेकर नहीं चलती न ही किसी व्यक्ति विशेष को ही केन्द्र मानकर चलती है। यह कह सकते हैं कि आधुनिकता में जिस केन्द्रीयता का वर्चस्व स्थापित हो गया था भूमण्डलीकरण तथा बाज़ारवाद के प्रभाव से यह केन्द्र टूटा है और इसका दायरा विस्तृत हुआ है।

उत्तरआधुनिकतावादी विचारधारा को हिन्दी साहित्य में लाने का श्रेय मनोहर श्याम जोशी को जाता है। यद्यपि पश्चिम में प्रारंभ हुई इस विचारधारा का प्रारम्भ इससे बहुत पहले ही हो चुका था। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग ऑर्नल्ड टायनबी ने सन् 1920 में किया था। तत्पश्चात इस विचारधारा पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने वाले सबसे पहले आलोचक ल्योतार हैं। जिन्होंने अपनी पुस्तक 'द पोस्ट मॉर्डन कंडीशन –अ रिपार्ट ऑन नॉलेज'में आधुनिकता के सन्दर्भ में उत्तरआधुनिकता को व्याख्यायित करने का प्रयास किया। उत्तरआधुनिकता को किसी एक निश्चित परिभाषा में बांध पाना कठिन है। इसे दो तरह से समझने का प्रयास किया जा सकता है। एक तो किसी भी शब्द के साथ जब उत्तर शब्द का प्रयोग किया जाता है तो सामान्यतः इसके दो अर्थ हो सकते है एक तो उस शब्द में निहित या उसके द्वारा व्यंजित पूर्व–स्थिति अब नहीं रह गई है और कोई नई स्थिति उभरकर सामने आई है और दूसरा उत्तर–स्थिति ,पूर्व–स्थिति का अगला चरण या विस्तार है। अर्थात आधुनिकता से आगे की स्थिति।

उत्तरआधुनिकता के अन्तर्गत किसी घटना या तर्क को किसी निर्धारित पद्धति से देखने, उसे समग्रता में परिभाषित करने या उसका अर्थ खोजने की कोशिश करना ही अपने आप में बेमानी है, तब किस तरह से उसे परिभाषित किया जा सकता है। उत्तरआधुनिकता जीवन के किसी एक पक्ष को दूसरे की तुलना में निम्न या उच्च नहीं मानती है और जीवन के विविध पक्षों में कोई असंगति भी नहीं खोजती है और न ऐसी खोज को महत्त्व ही देती है। तो स्वभाविक है कि उत्तरआधुनिकता से जीवन की समग्रता को लेकर किसी एक विचार का निष्पन्न होना संभव ही नहीं है। '' उत्तरआधुनिकता आज तक के मानवीय इतिहास , दर्शन, अध्यात्म, ईश्वर, महावृतान्तों में ही अविश्वास प्रकट नहीं करती, बल्कि अभिजात कला और साहित्य का भी निषेध करती है। उसका विश्वास न तो व्यक्ति की पूर्णता में है और न अपूर्णता में।''हमेंसमझना होगा कि एक पूरी तरह से नकार की स्थिति का इस युग में प्रांरभ हुआ। पूर्व के निषेध और गैरजरूरी समझे जाने वाले मुद्दों और व्यवहार तथा विषय इस युग में स्थान पा सके। इस प्रकार उत्तरआधुनिकता एक बहुआयामी वैचारिक अवधारणा है। इसमे साहित्य, सौन्दर्य, बाज़ार, दर्शन आदि सभी दृष्टि से भी आगे की साहित्यिक सोच का एक नया आयाम देखने को मिलता है।

पश्चिम में तो उत्तरआधुनिकतावादी विचारधारा की एक सुदृढ़ परम्परा रही ही है, किन्तु हिन्दी साहित्य में मनोहर श्याम जोशी एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने कथ्य तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से उत्तरआधुनिकता को अपनाया है। 'क्याप' मनोहर श्याम जोशी द्वारा रचित ऐसा ही उपन्यास है जिसमे उत्तरआधुनिकतावाद की तमाम प्रवृतियां मौजूद हैं। 'क्याप' नाम ही अपने आप में उत्तरआधुनिकतावाद का परिचायक है। जिसका अर्थ है– कुछ अजीब–सा, अप्रत्याशित–सा, अस्पष्ट, अनगढ़–सा। ये सभी उत्तरआधुनिकतावादी दौर की विशेषताएं कही जा सकती हैं। उपन्यास के अन्त में कथावाचक कहता है –'' यह कथा तो क्याप जैसी हुई! धैर्य धन्य पाठको, वही तो रोना है।'' उपन्यासकी कथा प्रारम्भ होती है एक रहस्यमय हत्याकाण्ड की जांच पड़ताल से और इस बीच इतिहास, प्रेम, राजनीति का इस तरह से घालमेल दिखता है कि पाठक को उस पूरे उलझे हुए गुच्छे से एक सिरा निकालना पड़ता है। कथावाचक कथा के अन्तर्गत आने वाली उपकथाओं के बीच ही बार बार पाठकों से आग्रह करता है–'' मैं समझ सकता हूँ कि आप अधैर्यवानों को आपत्ति होने लगी होगी कि मैं रहस्यमय ढ़िणमिणाण भैरवकाण्ड के बारे में कूर्मांचली कथा में भूल–सुधार करना भूल–भाल कर आप लोगो को इतिहास की भूल–भूलैया में भटकाता चला जा रहा हूँ लेकिन जैसाकि मैं निवेदन कर चुका हूँ कि सारी पृष्ठभूमि स्पष्ट किये बगैर इस काण्ड पर प्रकाश डालना असंभव है।'' उत्तर आधुनिकता में किसी एक मुद्दे पर सीधे–सीधे बात न करके उसकी पूरी पृष्ठभूमि खंगालते हुए अन्य मुद्दों को भी साथ में जोड़ा जाता है जो कि सम्बन्धित कथा से कहीं न कहीं किसी न किसी तरह का जुड़ाव रखते ही हैं।

उत्तर आधुनिकता एक तरह की एब्सट्रैक्टनुमा अवधारणा है। जिसकी कोई निश्चित परिभाषा, आकार,प्रकार नहीं है। इसी तरह का एब्सट्रैक्शन मनोहर श्याम जोशी के लगभग सभी उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों को

समझना थोड़ा बोझिल भी हो जाता है। क्याप की कहानी भी कितने ही कोण एक साथ लेकर चलती है जो आपस में गुथे हैं। उसमें नायक नायिका की प्रेम कहानी भी है, उसमें राजनीतिक उठा पटक भी है, जातिवादी संकल्पना भी इसका आधार बनती है तथा इसके साथ ही इसमें हल्ली हैरीसन तथा अन्य काल्पनिक पात्रों की गोण कथाएं भी साथ–साथ चलती है। इस तर बहुआयामी कथानक उत्तर आधुनिक युग की ही विशेषता है। जिसमें बहुआयामी कथानक, बहुसंख्यक पात्र, यथार्थ तथा कल्पना का घालमेल सब एकसाथ निहित रहता है।

उत्तरआधुनिकतावाद के प्रमुख व्याख्याकार ल्योतार ने 'विकेन्द्रीकरण' को उत्तरआधुनिकतावाद का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण माना है। जिसके केन्द्र में कोई घटना, कहानी या किरदार न होकर एक तरह का बिखराव रहता है, जिसका अन्त अनिश्चय की ओर जाता है। 'क्याप' उपन्यास का कथानक इसी तरह से एक रहस्य के साथ आरम्भ होता है और बीच में हल्ली–हैरीसन की प्रेम कथा, कस्तूरीकोट का भौगोलिक इतिहास, कथावाचक के मार्क्सवादी कका खीमराम की कथा, कथावाचक मैं और उत्तरा की प्रेम कथा से होते हुए अन्ततः रहस्योद्घाटन की ओर लोटती है किन्तु उसे रहस्यमय ही बना छोड़ देती है। मानो सबकुछ जानकर भी पाठक अनजान ही बना रहे। '' अपने समाज की आधी अधूरी आधुनिकता और बौद्धिकों की अधकचरी उत्तर–आधुनिकता से जानलेवा ढ़ंग से टकराती प्रेम कथा की यह 'क्याप' बदलाव में सपनों की दारुण परिणति को कुछ ऐसे ढ़ंग से पाठक तक पहुँचाती है कि पढ़ते–पढ़ते मुस्कुराते रहने वाला पाठक एकाएक खुद से ही पूछ बैठे कि 'अरे! ये पलके क्यों भीग गई।''कॉमिक ढंग से चलते चलते कथा एकदम से भावुकता तक कैसे ले आती है इसका अंदाजा भी पाठक पढ़ते पढ़ते नहीं लगा पाता। कैसे नायक कथावाचक 'मैं' और उत्तरा की प्रेम कहानी हास्य–व्यंग्य से आगे बढ़ती बढ़ती मार्मिकता तक पहुंच जाती है। ऐसे मोड़ कथा में उपकथाओं में कई बार बनते बिगड़ते देखे जा सकते हैं।

प्रसिद्ध उत्तरआधुनिकतावादी आलोचक 'डेनियल बेल' ने सन् 1960 में विचारधाराओं के अन्त की घोषणा की। उन्होंने कहा किसी एक विचारधारा के वर्चस्व से किसी अन्य के अहित होने की संभावना बनी रहती है। अतः विचारधाराएं साम्यावाद की समर्थक नहीं हो सकती। उत्तर आधुनिकता में सीधे तौर पर किसी भी तरह के वर्चस्व का नकार है। वह चाहे किसी विचारधारा का हो, किसी सत्ता का हो, या किसी व्यक्ति विशेष का ही क्यों न हो। क्याप उपन्यास में भी मार्क्सवाद जैसी व्यापकतम विचारधारा के प्रति भी मोहभंग देखा जा सकता है–'' जब मैं वर्ग–चरित्र, वर्ग–शत्रु और सर्वहारा–जैसे शब्द उचारते हुए उन पर लानत भेजता कि आप अमीर बनने के चक्कर में ग़रीब के लिए लड़ना भुला बैठे हैं तब वे कहते, ' कामरेड अगर क्लीशे जपते रहने से क्रान्ति हो सकती न ता कभी की हो चुकी होती। अतिवादिता से अन्धे होकर देख ही नहीं पा रहे हैं कि अगर हमने सत्ता के पद सॅभाल लिये हैं तो इसीलिए कि सत्ता–प्रतिष्ठान से सर्वहारा के हित में काम करा सकें।''आधुनिक युग में मार्क्सवाद सबसे बड़े महावृतांत के रूप में उभरा था वहीं उत्तर आधुनिक युग में मार्क्सवाद के प्रति भी मोहभंग की स्थिति पैदा हो गई। ''कका ने कहा–'हे मार्क्स' और दम तोड़ दिया। पता नहीं मुझे क्यों लगाा कि उन्होंने 'हे मार्क्स' नहीं, 'हाय मार्क्स' कहा था और वह उनके एक अधूरे वाक्य का हिस्सा था जो पूरा इस प्रकार होता–'हाय मार्क्स, हमने तेरी उम्मीदों पर पानी फेरा।''नायककी मार्मिक बनती जा रही कहानी के माध्यम से लेखक ने इस मोहभंग की स्थिति को बहुत बेहतरीन ढ़ग से अपनी लेखनी में उतारा है। इस उपन्यास में मार्क्स का प्रतीक बन चुके कका की मृत्यु मार्क्सवाद या किसी भी विचारधारा के अन्त की ओर करते माने जा सकते हैं।
19वीं शताब्दी में नीत्शे ने 'ईश्वर की मृत्यु' की घोषणा की थी।

व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को स्वीकारता है। ईश्वर के उपस्थितिमान मनुष्य सब कुछ उसपर छोड़ देता है और स्वयं को संभावनाओं की खोज से बचाने का प्रयास करता है। ईश्वर की परिकल्पना मनुष्य के बोखलाए हुए असहज विवेक का परिणाम है। ईश्वर की उत्पत्ति का कारण यही से उपजा माना जाता है। ईश्वर की इसी अन्धी श्रद्धा पर इस युग में प्रश्न चिह्न लगा। इस उपन्यास में कथावाचक मैं पुलिस द्वारा पकड़ लिए जाने पर जेल में अपनी यातना को दोहराते हुए कहता है–'' उन लोगों के जाने के बाद मैं रात–भर सो नहीं सका। भगवान–जैसी चीज़ में मुझे न तब विश्वास था न अब है। बचपन में ही मैं अपने कॉमरेड कका की इस स्थापना से पूरी तरह सहमत हो गया था कि अगर भगवान–जैसा कोई होता तो दुनिया इतनी क्याप–जैसी क्यों होती?'' नायक की यही उक्ति ईश्वर के प्रति नकार के भाव को स्पष्टता के साथ बयान करती है। नायक पर अपने मार्क्सवादी कका का पूरा प्रभाव रहा और धीरे–धीरे उनके द्वारा स्थापित सभी मान्यताओं से नकार का भाव भी स्पष्ट होता चला गया।

उत्तरआधुनिकतावाद के अन्तर्गत उन मुद्दो,समस्याओं, वस्तुओं,विचारों आादि को प्रस्तुत किया जाता है जिन्हें आधुनिक दौर

में अप्रस्तुतियोग्य माना गया या जिन्हें हाशियें पर ही छोड़ दिया गया। उपन्यास में एक ऐसे चरित्र को नायक के रूप में गढ़ना जिसमे आधुनिक उपन्यासों के नायको की भांति स्पष्टता, तार्किकता, निर्णयकुशलता, निडरता, साहसिकता जैसे आवश्यक माने जाने वाले गुणों का सर्वथा अभाव ही दिखाई देता है। उपन्यास का नायक कथावाचक मैं तमाम तरह की वैचारिक उलझनों से घिरा रहता है जिसके कारण वह निर्णय नहीं ले पाता। उसका उलझाव अपनी जाति, सामाजिक–स्थिति, आर्थिक–स्थिति के कारण उपजे हीनताबोध को लेकर है। जिसके कारण वह प्रेम को प्राथमिकता न देकर क्रान्ति के नाम पर अपनी सामाजिक हैसियत को तवज्जो देता है। उपन्यास की नायिका उत्तरा जब घर से भागकर नायक के साथ चलने को बोलती है ता तब वह उससे कहता है–'' देखो कूरियर का काम करते हुए मैं किसी को भी साथ नहीं ले जा सकता। और इस समय तो दुगुना ख़तरा है।'' वह बोली, 'तो क्या मैं रात में सड़कों पर भटकते हुए पकड़ नहीं ली जाउँगी? तुम जाकर अपने प्रोफेसर साहब से कह क्यों नहीं देते कि घर से कोई जरूरी तार आ गया कि फौरन चले आओ। बल्कि बताने की भी क्या ज़रूरत है,बाद में चिट्ठी लिख देना।' मैंने कहा–' मैं न इस तरह का झूठ बोल सकता हूँ और न क्रान्ति के तकाज़े से मुहँ मोड़ सकता हूँ।''इसी उलझाव के कारण वह अन्ततः प्रेम और क्रान्ति दोनों में असफल साबित होता है। नायिका द्वारा आत्महत्या कर लिए जाने पर आन्तरिक अपराधबोध के चलते एक स्थान पर वह कहता है–'' अगर इस सम्पन्न और सुखी ब्राह्मण परिवार को मैंने उत्तरा से विवाह करके दुखी बनाया होता तो मेरे कारनामे को क्रान्तिकारी इसलिए जय–जयकार योग्य माना जा सकता था। लेकिन उत्तरा को मौत के मुहँ में धकेल कर दक्षिणपन्थी और वामपन्थी दोनों की दृष्टियों से मैं अब तो धिक्कार योग्य ही ठहर सकता हूँ।'' संभवतः लेखक ने यहां नायकत्व की परम्परागत अवधारणा को तोड़ते हुए एक ऐसे नायक की परिकल्पना की है जिसे नायक मानने में समाज परहेज कर सकता है, जबकि वास्तविकता यही है। लेखक उपन्यास में सत्य को उसके असली रूप में ही सामने लेकर आया है।?

'क्याप' कथागत तथा भाषिक संरचना की दृष्टि से भी उत्तरआधुनिकतावादी कृति ठहरती है। उत्तर आधुनिकतावादी विचारक 'रोला बार्थ' जिन कथागत और भाषिक कोड्स की बात करते हैं उनका प्रयोग लेखक ने इस उपन्यास की संरचना में किया है। जिनमे पहला है 'व्याख्यात्मक कोड' इसके अन्तर्गत कथा एक सस्पेंस से प्रारम्भ होती है और सम्पूर्ण कथा उसी सस्पेंस को उद्घाटित करने में गति प्राप्त करती है। '' व्याख्यात्मक कोड इस मूलभूत प्रहेलिका से सम्बद्ध है कि लेखन के प्रारम्भ में प्रश्न उठता है कि यह क्या है?यह कौन है?क्या हो रहा है?हत्या किसने की?नायक का उद्देश्य कैसे पूरा होगा?इससे पूर्व इस प्रश्न का समाधान हो कि वह कौन है, उपन्यास में एक के बाद एक मोड़ आता है जिससे वास्तविकता तक पहुँचने में निरन्तर विलम्ब होता चला जाता है।''क्याप की सम्पूर्ण कथा इसी संरचनागत ढ़ाचे से निर्मित है। कथा डी.आइ.जी. मेधातिथि जोशी और माफिया सरगना हरध्यानू बाटलागी के हत्याकाण्ड से शुरू होती है और बीच में कई उपकथाओं से होते हुए अन्त में निष्कर्ष तक पहुँचती है।

दूसरा कोड प्रतीकात्मक कोड है। जिसमें ऐसे शब्द चिह्नों का प्रयोग किया जाता है जिसके माध्यम से किसी अन्य वस्तु या अर्थ का बोध होता है। '' प्रतिकात्मक वह है, जो अर्थ के दो ध्रुवों के अन्तर एवं 'ऐंटिथिसिस' को सामने लाता है जिनसे बार्थ के अनुसार अर्थ–बाहुल्यपरक वातावरण निर्मित हो जाती है।'' 'क्याप' में इस तरह के कई प्रतीक चिह्नों का प्रयोग किया गया है। 'गौंत की शीशी' पवित्रता का प्रतीक है। 'सोहन हलवे की टीकिया' जो प्रेम के प्रतीक के रूप में नायक को नायिका की स्मृति से जोड़े रखती है।

'रोला बार्थ' अपने आलेख ' द डेथ ऑफ दि ऑथर' में लेखक की मृत्यु की घोषणा करते हैं। क्याप की सम्पूर्ण कथा में लेखक अनुपस्थित है। पूरे उपन्यास में लेखक ने कहीं भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया है। क्याप की कथा 'कथावाचक' मैं द्वारा सुनाई गई है। कही भी लेखक का दृष्टिकोण सामने नहीं आता। इसी कारण क्याप एक स्वायत्त कृति मानी जाती है। उपन्यास की शुरूआत में ही लेखक कहता है–'' अफसोस कि यह कहानी पहले लिखी जा चुकी है। यह अफ़सोस उस सैद्धान्तिक स्तर पर ज़ाहिर न समझा जाय कि हर कहानी ही एक तरह से पहले लिखी जा चुकी होती है क्योंकि कहानी में जो तीन तत्व होते हैं – घटनाएँ,पात्रों के चरित्र एवं उनकी भूमिकाएँ और देशकाल–उनमें से पहले दो के अन्तर्गत कुछ मौलिक कर दिखाने की सम्भावना शायद गुणाढ्य के बृहत्कथा लिख डालने के साथ ही चुक गयी थी।''लेखक की मृत्यु की घोषणा करता यह युग मौलिकता के उस नकार को परिभाशित करता है जिसे उत्तर आधुनिक युग की प्रमुख विशेशता के रूप में जाना जाता है। लेखक का रचा कुछ भी मौलिक नहीं सबकुछ घटित हो चुका है। केवल नया है तो उसका प्रस्तुतीकरण जिसकी परिकल्पना भी लेखक रचे जाने से पूर्व ही अपने मस्तिश्क में कर चुका होता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि उत्तरआधुनिकतावाद वास्तव में अतीत के नकार, वर्तमान की उलझन और भविष्य के प्रति अनिश्चितता को लेकर चलने वाली एक सोच है। इसी पूरी परिकल्पना पर ही 'क्याप' की कथा चलती है। जिसमे इतिहास का अन्त और तमाम तरह की उलझनों से जूझता नायक कथा को गति देता हुआ आगे बढ़ता है और कहीं भी भविष्य को लेकर आश्वस्त दिखायी नहीं देता।

सन्दर्भ सूची

- क्याप : मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण–2008.
- उत्तर आधुनिकताः साहित्य और संस्कृति की नयी सोच : देवेन्द्र इस्सर, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, प्रथम संस्करण–1996.
- उत्तर आधुनिकताः स्वरूप और आयामः बैजनाथ सिंहल, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण–2003.
- उत्तर आधुनिकताः कुछ विचार, संपादन– देवशंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन–1996.
- संरचनावाद उत्तरसंरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्रः गोपीचन्द नारंग, साहित्य अकादमी, द्वितीय संस्करण–2004.
- गप्प का गुलमोहरः मनोहर श्याम जोशीः संपादक– कुसुमलता मलिक, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2012.
- उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिन्दी उपन्यासः चमनलाल गुप्तः किशोर–विद्या–निकेतन प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2012.
- भेद खोलेगी बात हीः विजयमोहन सिहं, सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2003.
- हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावलीः डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन–2012.
- आलोचना से आगेः सुधीश पचौरी

कविता शर्मा

बी–147, मिंटो रोड कॉम्प्लेक्स,

नई दिल्ली–110002

फोन नंबर – 7838082760

4

हरियाणवी लोकगीतों में जीवन मूल्य

डॉ0 केशवदेव शर्मा

सारांश –

लोकभाषा से अभिप्राय सर्वसाधारण में बोली जाने वाली भाषा से है, अर्थात् जिसे आमजन बोल व समझ सकें, वह लोक भाषा कहलाती है। यह सही है कि लोक भाषा का स्वरुप व व्यापकता तथाकथित शिष्ट भाषा की अपेक्षा कम व्यापक होता है। निम्न कहावत ही इसके प्रमाण–स्वरुप कही जा सकती है–

कोस–कोस पर बदले पानी,
चार कोस पर बदले बानी।।

इसी प्रकार लोक भाषा साहित्य से हमारा अभिप्राय रहा है – क्षेत्र विशेष में सर्वसाधारण द्वारा बोली–समझी जाने वाली भाषा का रचित व प्रचलित साहित्य। यहाँ एक सवाल उठता है कि किस आधार पर मान लिया जाय कि अमुक रचना लोक भाषा की श्रेणी में आती है या नहीं। ब्रज, अवधी, राजस्थानी, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, मैथिली, बांगरु, अहीरवाटी, कौरवी आदि लोक भाषाऍं (बोलियॉं) भी हैं और इनमें रचित साहित्य हिन्दी भाषा के शिष्ट रुप का उत्कृष्ट उदाहरण भी है। कुछ आलोचक और भाषा विश्लेषक शिष्ट भाषा रुप और लोक भाषा रुप के नाम से भाषा को विभाजित करने का प्रयास करते हैं, परन्तु उनका यह मंतव्य सर्वमान्य नहीं रहा। भाषा पर मनुष्य के शिक्षा–संस्कारों एवं व्यावसायिक–संस्कारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यह ठीक है कि लोक भाषा कृत्रिमता से सर्वथा मुक्त रहती है, लेकिन युगीन कृत्रिमता कुछ न कुछ प्रभाव तो छोड़ती ही है, लोक साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है।

लोक भाषा साहित्य अत्यन्त व्यापक है, जिसे निम्न उपशीर्षकों से समझा व विश्लेषित किया जाता है–

लोक कथा साहित्य
लोक वार्ता साहित्य
लोक नाट्य साहित्य
लोक गीत साहित्य
लोकोक्ति साहित्य
लोक – पहेलियां
राग – रागनी साहित्य इत्यादि

इन सभी लोक भाषा साहित्य रूपों में मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति संदेश व जिज्ञासा का भाव प्रमुखता से परिलक्षित होता है। लोक साहित्य में लोकगीतों का अपना महत्व है। सहज सरल शैली में गाए जाने वाले गीत जीवन की व्यवहार–दशा का यथार्थ और प्रभावोत्पादक वर्णन लिए रहते हैं। जीवन जीने की कला का प्रदाता लोकभाषा साहित्य ही है। सांस्कृतिक सद्भाव के अनूठे रचनाकार लोककवि अमीर खुसरो की 'बाबुल का गीत' की निम्न काव्य–पंक्तियों में एक बेटी द्वारा पिता के प्रति कहे गए शब्दों में जीवन–व्यवहार के प्रति एक सच्चाई की गूँज सुनाई पड़ती है, जो रह–रहकर भाव–विहवल कर देती है–

काहे को बियाहे बिदेस, सुन बाबुल मोरे।
हम तो बाबुल तोरे बाग की कोयलिया
कुहकत घर–घर जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।
चुग्गा चुगत उड़ि जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।।

हिन्दी–साहित्य की समृद्धि में लोक भाषा साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पिछले कुछ दशकों में लोक, जन, जनवाद, लोक–चेतना, जनमानस आदि को लेकर जो साहित्य मंथन हुआ है, उसके मूल में लोकभाषा साहित्य ही रहा है। लोक भाषा के माध्यम से जो जीवन–ज्ञान देने का प्रयास किया गया, उसका विकल्प शिष्ट साहित्य आज तक नहीं बन सका है। उसका जीवन–बोध समग्रता–भाव का पोषक रहा है। सहजता और स्वभाविकता तो मानो लोक भाषा साहित्य का प्राण ही है, जैसे–

'देस्सां में देस हरियाणा, जित दूध दही घी खाणा'

इस लोकोक्ति से बोध होता है कि भारतवर्ष के हरियाणा राज्य के लोगों का जीवन सुख–समृद्धि से परिपूर्ण रहा है। दूध, दही, घी की बहुतायत रही है। ऐसी ही अनेक लोक–उक्तियॉं (लोक कहावतें) पढने और सुनने को मिलती हैं। इस तथ्य के विवेचन में हरियाणवी लोक भाषा साहित्य

विशेषतः हरियाणवी लोकगीतों के उद्वरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा, क्योंकि हमारे राष्ट्रभाषा साहित्य अर्थात् हिन्दी साहित्य में हरियाणवी लोक भाषा साहित्य का पर्याप्त योगदान रहा है। हरियाणवी लोक गायक पं0 लख्मीचंद उत्कृष्ट कोटि के लोक कवि व रागिनी गायक रहे हैं। लोक भाषा साहित्य में जीवन–मूल्यों (जीवन–दर्शन) को हरियाणवी लोकगीतों के आधार पर विवेचित–विश्लेषित करने का प्रयास किया है। हम जानते हैं कि हरियाणा के पास लोक की विराट सम्पदा है, जो वहॉ के लोगों की सादगी, सरलता, निश्छलता, त्याग, समर्पण, बलिदान जैसी सद्वृत्तियों का जीवंत रुप है। आज भी लोक संगीत शास्त्रीय संगीत पर हावी है। लोक साहित्य की गेयता, संदेशपरकता और सपाटबयानी विशेष पहचान लिए हुए है। लोकवाद्यों की मीठी लय–धुन श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती है।

हरियाणवी लोक भाषा, लोक–संस्कृति, लोकाचार, लोक–साहित्य अपनी वैविध्यपूर्ण पहचान लिए रहा है। इसका कारण है कि इस राज्य के एक तरफ पंजाब है, राजस्थान है तो दूसरी तरफ दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भू भाग है। 'दिल्ली दीप हरियाना' नामक लोकोक्ति भी इसी विचारधारा की ओर संकेत करती है। इसकी भौगोलिक स्थिति को डॉ0 के0सी0 यादव ने स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''वर्तमान हरियाणा प्रदेश भारत के उत्तर–पश्चिम में 27^{0}–39^{0} से 30^{0}–55^{0} अक्षांश और 74^{0}–71^{0} से 77^{0}–36^{0} रेखांश के बीच में स्थित है। यमुना नदी इस प्रदेश की पूर्वी सीमा निर्धारित करके इसको उत्तर प्रदेश से पृथक करती है। इसके पश्चिम में पंजाब तथा उत्तर में शिवालिक पर्वत श्रेणियां तथा हिमाचल प्रदेश है। इसके दक्षिण–पश्चिम में अरावली की पहाड़ियॉ और राजस्थान का मरु प्रदेश है।''[1] हरियाणा की भौगोलिक संरचना में सांस्कृतिक विविधता के दर्शन होते हैं। कृषक–संस्कृति यहॉ के जन–जीवन की पहचान है।

यद्यपि समग्र लोक भाषा साहित्य को ग्राम्य–संस्कृति का जागरुक प्रहरी कहा जाता है, इसमें भी लोकगीतों को तो संस्कृति के मुँह बोलते चित्र तक कहा गया है।[2] केवल इतना ही नहीं, डॉ0 सदाशिवकृष्ण फड़के तो लोकगीतों को जीवन के लिए आनन्ददायक गुण की संज्ञा देते हुए लिखते हैं, ''लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फल नहीं। वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास–प्रश्वास हैं। सहजानन्द में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सच्चिदानन्द में विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाऍ हैं।[3] छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के संदर्भ में डॉ0 श्यामचरण दूबे ने अपना मत प्रस्तुत करते उनकी अमरता का प्रतिपादन किया है। उनके शब्दों में, ''गीतों के बोल कभी लिपिबद्ध नहीं किये गए, फिर भी अनादि काल से उनका अस्तित्व अमरत्वपूर्ण होकर चलता आ रहा है। केवल श्रुति के माध्यम से प्रत्येक नवीन पीढ़ी अपनी प्राचीन पीढ़ी से गीतों की निधि प्राप्त करती आ रही है।''[4]

इन सभी तथ्यों से पता चलता है कि निश्चित ही लोकगीत मानव–मन की सहज–सरल–सरस–स्वाभाविक लयात्मक निर्झरी हैं। उनकी ग्राम्यत्व शैली कृत्रिमता और दुरुहता से सर्वथा परे रही है। हरियाणवी लोकगीत भी इन विशेषताओं से परिपूर्ण हैं और जीवन–संस्कृति के अमर गायक हैं। कहने के लिए तो, भारतवर्ष की पहचान ही कृषि, कृषक और ग्राम रहे हैं, लेकिन इन सभी में हरियाणा प्रदेश का लोक–जीवन अग्रगण्य रहा है। यहॉ की लोक–संस्कृति में भाईचारा, त्याग, सेवा, पूजा–पाठ, ज्ञान–ध्यान, जप–तप, दान–पुण्य एवं भक्ति भावना का प्रमुख स्थान रहा है। ग्रामीण जनता की धर्म और कर्म के प्रति विशेष आस्था रही है। मिल–जुलकर साथ कमाना और खाना हरियाणवी लोक–जीवन की संस्कृति और पहचान रही है। आमतौर पर लोग कहते मिल जाएंगे–

'चोंच दी ए वोह चुग्गा बी देगा।'
'जिब लगि सांस तब तक आस।'
'घरां खीर तो बाहर भी खीर।' इत्यादि

यहॉ के लोकगीतों में प्राप्त जीवन–मूल्यों को ध्यान में रखते हुए डॉ0 कुन्दनलाल उप्रेती ने लोकसाहित्य को सामान्य धरोहर कहा है और इन्हें विश्व मानव की भूमि पर प्राप्त माना है।[5] हरियाणवी लोकगीतों में जीवन के विविध भाव रूप मिलते हैं, जिनमें सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, धार्मिक जीवन, राजनीतिक जीवन एवं जीवन–दर्शन आदि के प्रति सहज, सरल व सजग अभिव्यक्ति प्रमुखता से परिलक्षित होती है।

1. सामाजिक जीवन मूल्य : लोक और समाज में परस्पर सह–अस्तित्व का सम्बन्ध माना गया है क्योंकि कभी लोक समाज में बदलता रहता है, तो कभी समाज लोक में। लोकगीतों का प्रस्फुटन भी इन्हीं लोक और समाज के धरातल पर होता है। लोक मानस अपनी सामूहिक स्थिति के कारण अपने समाज से निकट का सम्बन्ध रखता है। सामाजिक जीवन को किस प्रकार जिया जाय और तालमेल बनाए रखा जाय, इसकी झलक हरियाणवी लोकगीतों में देखी जा सकती है। समाज में सभी जातियों के अपने–अपने कर्म हैं और उनका महत्व है, इसकी झलक निम्न लोकगीत में

देखने को मिलती है–

होलर कहै री अम्मा मुझे कठला घड़ा दे।
चल सुनरे की दुकान रे लाला तुझे कठला घड़ा दूँ।
होलर कहे री अम्मा मुझे झुंझना मँगा दे।
चल बिसाती की दुकान रे लाला तुझे झुंझना मँगा दूँ।
होलर कहे री अम्मा मुझे टोपी सिला दे।
चल दर्जी की दुकान रे लाला तुझे टोपी सिला दूँ।
इक नानी, दूजी मामी रे लाला, तीजी मौसी रे विवाह दूँ।

सामाजिक जीवन की व्याख्या–विवेचना करते इस प्रकार के अनेक लोकगीत हरियाणवी लोक जीवन में गाए–सुने जाते हैं, जैसे– मैं चंदा सी नारि, घर क्यौं तू सौतिन ल्याया आदि।

2. पारिवारिक जीवन मूल्य : परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पारिवारिक मोह–ममता से मुक्त नहीं हो पाता। लोक जीवन में तो यह खिंचाव–आकर्षण और भी गहरा है। पारिवारिक जीवन में माता–पिता, पुत्र–पिता, भाई–भाई, बहिन–भाई, पति–पत्नी, सास–ससुर, जेठानी–ननद, देवर–देवरानी आदि के प्रति किये जाने वाले आचरण–व्यवहार का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। हरियाणवी लोकगीतों में इन सभी सम्बन्धों के आदर्श रूप के साथ–साथ जीजा–साली का हास्य व्यंग्य प्रमुखता से चित्रित मिलता है। पारिवारिक जीवन में पारस्परिक सहयोग का जो भाव अपेक्षित है, वह हरियाणवी लोकगीतों में प्रमुखता से परिलक्षित होता है, जैसे –

कांट्टो लाग्यो रे देवरिया मो पै संग चल्यौ ना जाय।
अपने महल की मैं अलबेली,
जोबन खिल रहे फूल चमेली
धूप लगे कुम्हलाये कांट्टो
कांट्टो लाग्यो रे देवरिया
मो पै गैल चल्यौ ना जाय।

लोक–जीवन में उपालम्भ–भाव (उलाहना देना) भी विशेष महत्व लिए रहा है, जैसे–

तूं दिल्ली में सैर करै कुणबा मेरी गैल करे।
बेरया नै कै चाल्यां सै यो मेरी जान कै गाला सै
चाकी ऊपर धरया पीसणा मेरे पै पिसवावै सै।
पीस खोट के नीचे आई फेर जेठ फरमावै सै।
मैं होक्के की घूंट मार लूं तू धार काढ़ ले झोटी की
भरया हेल भरी कूड़े की गोबर भी गिरवावै सै।
तू दिल्ली में सैर करे.....

3. राजनीतिक जीवन : लोक साहित्य विशेषतः लोकगीतों में राजनीतिक जीवन का पर्याप्त चित्रण मिलता है। हरियाणवी लोकगीत, राग–रागनियां तो राजनीतिक उद्‌बोधन की पहचान रही हैं, जैसे –

दादा जी मत करो शादी उम्र बारह वर्ष की है
लिखा दो नाम कांग्रेस में, करुँगी देश सेवा
उठा लो तिरंगा झण्डा, करुँगी देश की सेवा
बनूँगी सरस्वती देवी

इस तरह के अनेक लोकगीत गाए व सुने जाते हैं, जिनसे राजनीतिक समझ व जागृति का पता चलता है। राजनीतिक सजगता हरियाणा के लोगों की पहचान है।

4. धार्मिक जीवन : धर्म भारतीय संस्कृति की आत्मा व पहचान रहा है। प्राचीन काल से लेकर आज तक मानव धर्म–चिंतन करता रहा है। हरियाणा की पावन भूमि कुरुक्षेत्र को तो धर्म–कर्म की भूमि कहा गया है–

'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः'
ममका पाण्डवाश्चैव किम् कुर्वत संजय।।[6]

लोक–जीवन में धर्म–कर्म को लेकर अनेक गीत मिलते हैं, जैसे–

काहे की तेरी ओबरी, काहे के जड़ाए किवाड़, सच्चा हनुमान बली।
अंगड़ चंदन की ओबरी, चंदन जड़ाए किवाड़, सच्चा हनुमान बली।।
भजन करै नै भगवान का, रे मत भूलै भाई।
भजन करै नै करतार का, रे मत भूलै भाई।।
जब तू था बालक तू गोद खिलाया, तेरे दादा नै तेरा जन्म मनाया।

इस प्रकार के अनेक लोकगीत हरियाणा के ग्राम्य जीवन में

सुने जा सकते हैं, जिनसे पता चलता है कि आज के इस वैज्ञानिक वातावरण में भी हरियाणा के लोग धर्म–कर्म को अपना जीवन का मूलाधार मानते हैं।

5. जीवन–दर्शन : जीवन दर्शन से अभिप्राय लोक–जीवन में आशावाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्म में विश्वास, आत्मा–परमात्मा, आत्मिक शक्ति, आदर्शवाद, कर्मवाद आदि के प्रति चिंतन से है। लोक–जीवन के प्रत्येक कार्य में इन सभी तत्वों का समावेश रहा है, जैसे –

अरे भैया रघुवीर भात सबेरे ल्याइयो।
मेरे सीस में किलफां ल्याइयो, मेरा टीका रतन जड़ाइयो।
गले की ल्याइयो जंजीर भात सबेरे ल्याइयो।।

एक अन्य उदाहरण अवलोकनीय है–

किसी का बिरहम नहीं दुखाना चाहिए

अर्थात् किसी की आत्मा को दुख नहीं देना चाहिए। कहा भी जाता है –

'आत्मा सो परमात्मा।'
'जैसी करनी वैसी भरनी।'

कर्मों का फल मनुष्य को न केवल इस जन्म में, अपितु मृत्यु के बाद भी भोगना पड़ता है, ऐसा लोक में विश्वास है। एक हरियाणवी लोकगीत में इसकी भावाभिव्यक्ति देखी जा सकती है–

धरमराज तेरे करम्यां की एक दिन करै संभाल।
ताते चिमटे लाल कराके तरवा दे तेरी खाल।
धरमराज तेरे.....।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि लोकभाषा साहित्य भले ही किसी भी उपभाषा या बोली का हो, उसमें मानव–जीवन की समग्र भाव–संपदा व सहज, स्वभाविक सच्चाई है। उसे सांस्कृतिक व राष्ट्रीय संदर्भों में व्यापक स्थान मिला है, लेकिन आज जिस प्रकार का संकीर्णतावादी व मौकापरस्ती सोच का वातावरण कृत्रिमता परोसेने का प्रयास कर रहा है, उसमें लोक साहित्य का सकारात्मक अवदान लोक भाषा साहित्य की सरलता, उन्मुक्तता, उदारता एवं महत्त्ता का अवश्य प्रतिपादन करेगा और उसका विराटत्व अतीत की तरह भविष्य में भी जन–भावना का प्रतिबिम्ब बना रहेगा। अस्तु, लोकभाषा साहित्य विशेषतः लोकगीत मानव जीवन संस्कृति की अभिव्यक्ति है।

संदर्भ :–

1. हरियाणा का इतिहास, डॉ. के.सी. यादव, पृष्ठ संख्या – 03
2. आजकल में देवेन्द्र सत्यार्थी का आलेख, उद्धृत–हरियाणवी संस्कार गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या–17 से उद्धृत
3. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक पृष्ठ संख्या 250–251
4. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, भूमिका, पृष्ठ संख्या–01
5. लोकसाहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या 45 से उद्धृत
6. श्रीमद् भगवद्गीता प्रथम अध्याय, श्लोक संख्या–01

डॉ0 केशवदेव शर्मा
डी0लिट्0
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
एस0डी0 कॉलेज, पलवल (हरियाणा)
M. No. : 9991101864

5

वीरेन्द्र आस्तिक, रामनारायण रमण और रमाकांत के नवगीतों में उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग के दर्द की अभिव्यक्ति

ममता

सारांश –

नवगीत नाम है उस चेतना का जो संवेदन से मानवता का अर्थ निकालने का भाव है। जीवन और समाज के अनेक उतार–चढ़ावों के बीच, विषमता की खाइयों को पाटते हुए सामाजिक सरोकार से जुड़ा आम व्यक्ति ही नवगीतकार है। युगीन विषमताओं की गूँज जब कवि मानस पर छाने लगती है तो परिवर्तन की रणभेरी साहित्यकार ही बजाता है और राष्ट्र के नव–निर्माण का आगाज करता है। गीतकार आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिज्ञ, सांस्कृतिक अद्यःपतित स्थितियों को जीते भोगते मर्मस्पर्शी वर्ग के सत्यों के अंकन, अपने गीतों को हथियार बनाकर समाज की विषमताओं पर प्रहार करता है और राष्ट्रीय त्रासदी के गीत गाता हुआ अपने सामाजिक दायित्त्व का निर्वाह करता है। अतः आज के पतनशील समय के शिकार, अपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग के दर्द की अभिव्यक्ति की, ये नवगीत आवाज बने हैं।

मुख्य–शब्द :

नवगीत, संवेदन, विषमता, राष्ट्रीय त्रासदी, उपेक्षित, पीड़ित, चिंतन, सर्वजन हिताय।

उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग से हमारा तात्पर्य समाज या राष्ट्र के उस वर्ग से है जिनकी प्रत्याभूत अधिकारों तक स्वतंत्र पहुँच सुनिश्चित नहीं हो पाती है। ये वर्ग सदैव अधिकारों, संसाधनों, सामाजिक जीवन के सहभागिता हेतु संघर्षरत रहता है। हमारे देश को आजाद हुए 73 वर्ष से अधिक का समय हो गया है फिर भी समाज में कुछ वर्ग ऐसे हैं जो त्रासद परिस्थितियों को आज भी भोग रहे हैं, जी रहे हैं। सरल शब्दों में कहें जो समाज का निम्न वर्ग, गरीब किसान एवं मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग, दलित वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग, आज भी उपेक्षित और पीड़ित है।

साहित्यकार और समाज का अभिन्न रिश्ता होता है। साधारण जन की चेतना जिन सामाजिक समस्याओं एवं विसंगतियों को देखकर भी नहीं देख पाती हैं, सुनकर भी सुन नहीं पाती हैं उन समस्याओं एवं विसंगतियों को बस साहित्यकार की आँखें ही देख पाती हैं और कान सुन पाते हैं।

यह जीवन एक संगीतमय वाद्ययंत्र के समान है, जिसकी रचना सुरों से, संगीत से ओत–प्रोत है। बस आवश्यकता है तो एक ऐसे कलाकार की, जो उसे कलात्मकता के साथ अपनी अंगुलियों से इसे छू दे और एक गीतकार से बढ़कर ऐसी कलात्मकता किसकी अंगुलियों में हो सकती है। गीत के अखण्डत्व और मन–सानिध्य से इस क्लांत जीवन को संतुलित किया जा सकता है। इस दृष्टि से मधुर कंठ के कुबेर वीरेन्द्र आस्तिक, साहित्य के एकान्त साधक रामनारायण रमण और जनपक्षधरता एवं चौकन्ने कवि रमाकांत वही कलाकार हैं।

इस देश के जनतंत्र का जो सपना जनता ने देखा था उसे, आज संसद में छटपटा कर दम तोड़ते हुए देखा जा सकता है। समानता, स्वतंत्रता, बंधुता एवं धर्मनिरपेक्षता के कानून सिर्फ कानून बनकर संविधान की पुस्तक तक सीमित रह गए हैं। सरकार के बड़े–बड़े कानूनी वादों से उपेक्षित बस यही पूछता है :

''जैसा हूँ वैसा देख नहीं सकते
क्यों दर्पण होने का दावा करते
भूखे–प्यासे पर
बरस नहीं सकते
क्यों सावन होने का दावा करते।''[1]

सरकारें कहती हैं कि गाँवों का विकास हमारी प्राथमिकता है। वह चाहे केन्द्र हो या प्रान्त, सत्ताधारी विकास का बखान करते अघाते नहीं हैं। किन्तु स्थिति एकदम इससे अलग है। हर नागरिक, आम आदमी यही कहता है कि विकास कहाँ हुआ, कुछ दिखलाई नहीं पड़ता है। हाँ, अपराध बढ़े हैं, सामाजिक असमानता बढ़ी है, शोषितों की संख्या बढ़ी है, किसानों की आत्महत्याएँ बढ़ी हैं, मजदूरों का पलायन बढ़ा है, हत्या और गुण्डागर्दी बढ़ी है, बलात्कारों की संख्या का विकास हुआ है। रमण जी इन परिस्थितियों से आहत होकर लिखते हैं :

''मिला बहुत/पर दिखा न कुछ भी
भैया, गाँवों में विकास है/पहले जैसी भूख–प्यास है,
लोकतंत्र की छाया में/परधान बहुत खुशहाल हुए
फर्जीवाड़े की रस्में हैं/रस्मी मालामाल हुए।''[2]

अन्धेरा और अवामनना जिंदगी का पर्याय बन जाए, तो जीवन किसके सहारे चले, भारत का गरीब, दीन–हीन कृषक अपने खेत में खड़ा शायद यही सोचता है कि दीन–दलितों का तो ईश्वर ही सहारा है :

''बचपन में सपने देखे थे/जीवन जीने के
बाबू साहब बनकर/रहने, खाने–पीने के
मालधनी के सपने/व्यर्थ अतीत हुए
भजन भाव अब/मालधनी का एक सहारा है
सब कहते हैं ईश्वर ने/दीन–दलित को तारा है
मालधनी के सब दुख–दर्द/अगीत हुए।''[3]

गरीब कृषक की स्थिति उसके पूर्वजों के समय से यथास्वरूप चली आ रही है। देश में प्रगतिवाद के नारे बुलंद बने रहते हैं परन्तु उसकी परिस्थितियों में न तब अंतर आया था न आज अंतर आया है :

''अब भी दीन–हीन हो तुम
जैसे थे, बाबा, आजा
बीच–बीच में बजा बहुत
ये प्रगतिशील का बाजा
सम्मोहन से तुम हारे
होठों को रहे सिले''[4]

देश ने लम्बे समय तक परतन्त्रता की यातनाएँ सहकर स्वतन्त्रता प्राप्त की। कहने को तो शासन प्रणाली लोकतन्त्रात्मक है, जहाँ 'जनता को, जनता के लिए और जनता के द्वारा' का बिगुल बजता रहता है लेकिन वास्तविकता उससे कोसों दूर है। राजनेता जनता को गुमराही के अँधेरों में धकेलते हैं। आस्तिक जी नेताओं के इसी लक्ष्य पर निशाना साधते हुए कहते हैं :

''दौड़ संसद तक लगाना लक्ष्य लेकिन
बुद्धि की आँखें अँधेरा कर रही हैं
और कागज़ पर व्यवस्था आँकड़ों की
जिन्दगी में अव्यवस्था भर रही है।''[5]

भूख, गरीबी, लाचारी के बोझ से इस देश की साधारण जनता कभी पीठ तानकर खड़ी नहीं हो पाती। रोटी, कपड़ा और मकान की जद्दोजहद में ही सर्वहारा वर्ग जीता है और जीते जी मरता रहता है। रामनारायण रमण जी जो स्वयं कृषक परिवार से हैं, प्रतिदिन किसानों के संघर्ष को जीते हैं, कोल्हू के बैल सी किसान की जिन्दगी को उनकी भावुकताकुछ यूँ बयान करती है :

''हम जीवन के संघर्षों में
प्रतिदिन क्या से क्या होते हैं।
अपने ही कंधों पर जैसे
हम अपनी अर्थी ढोते हैं।''[6]

देश तो स्वतन्त्र हो गया परंतु आजादी के 73 वर्षों बाद भी गरीब, मजदूर, कृषक, महाजन वर्ग से आजादी न पा सका। आज भी उसका ब्याज मूल से कहीं अधिक हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि प्रेमचंद का होरी आज भी रमण जी के गीतों में मिलता है :

''आशाओं का केन्द्र बिन्दु मन
अपनी परिधि बढ़ा देता है
जैसे दुष्ट महाजन दो के
दो सौ गुना बढ़ा देता है
तन पर अगरू सुगन्ध बसाये,
पर मन पर स्याही पोते हैं।''[7]

नवगीत स्त्री–विमर्श का प्रवक्ता तो नहीं है, पर इस देश की धूप, हवा, मिट्टी और प्रकृति की तरह स्त्री को भी एकमूल्य मानते हैं और इस मूल्य का लगातार क्षरण होता देख चिन्तित हैं। समाज में स्त्री जिस तरह उपेक्षा का पात्र बन रही है, गीतकार उन परिदृश्यों, घटनाओं पर शर्मसार हैं। विपन्न वर्ग की स्त्रियों की दशा तो और भी अधिक अमानवीय और निर्मम व्यवहारों को झेल रही है, लेकिन गीतकार चुप नहीं है :

''पारवती है गुम हफ्तों से
थाना डांट भगा देता है
अब तक रपट न लिख पाई है।''[8]

बाजारवाद ने स्त्रियों को एक प्रोडक्ट बना दिया है, तभी गीतकार की संवेदना बाँध तोड़कर व्यक्त होने लगी है :

''माँ, तुमने/कब था यह समझा
औरत होना है दुर्घटना
क्या तन क्या श्रम/सब पर ही तो
डाका–सा पड़ते रहना।''[9]

इस हिंसक समय–साल में स्त्रियों पर लगातार खतरे बढ़ रहे हैं। गाँव हो या शहर, महानगर हो या राजधानी स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है। उसके प्रति परिस्थितियाँ असहिष्णु होती जा रही हैं। रमाकांत जी को चिन्ता है कि ऐसे तो चलेगा नहीं क्योंकि यूँ रहा तो कुछ बचेगा भी नहीं :

''राजधानी में लुटी है
द्रोपदी फिर
खेलती रस्साकसी
नेकी–बदी फिर
कौन जीते, कौन हार देखियेगा
धर्म ने फिर ओढ़ ली खालें पुरानी।''[10]

भले ही संविधान में मोटी–मोटी पंक्तियों में, मोटे–मोटे शब्दों में धार्मिक विषमता, जाति, वर्ण व्यवस्था को मिटा दिया है परन्तु समाज की नींव से लेकर अट्टालिकाओं तक आज भी यह जिन्दा है। यथार्थ के अद्यतन संदर्भों तथा समाज के नैतिक मूल्यों को ये विसंगतियाँ वर्तमान में भी कमजोर बना रही हैं और गद्दोधारी अपनी लोलुपता में इन्हें बढ़ावा दे रहे हैं :

''यादव, ठाकुर और/बाजपेयी से हैं/मतदाता
हरिजन कहे जा रहे/माया ही है/भाग्य विधाता,
भाग्य विधाता के/जलवे हैं/यहाँ वहाँ चीत्कार।''[11]

कभी राजनीति के नाम पर, कभी धर्म के नाम पर, कभी अर्थ के नाम पर कमजोर वर्ग का शोषण हो रहा है :

''जो कमजोर उसी को मारो।
हत्या तय कर दो, ललकारो।
बाहर उगलो ऋषि की भाषा
भीतर से काटो, मक्कारो।''[12]

आम आदमी के समानान्तर समता, स्वतन्त्रता, सामाजिक

न्याय आदि जनतांत्रिक मूल्यों के संकट में पड़ जाने की विडम्बना पर नवगीतकार की सीधी नजर है। गरीब परिवारों में बच्चों का शोषण होता है। छोटे–छोटे आठ–दस बरस के बच्चे बालश्रम में लिप्त हो जाते हैं। उम्र की जिस अवस्था में उन्हें स्कूल जाना चाहिए, उस अवस्था में वे शराबी और गलत लोगों के हाथों में पड़ जाते हैं। आस्तिक जी ऐसे बच्चों को देखकर व्यंग्य से सुलग उठते हैं क्योंकि उन्हें समाज में मनाए जा रहे बाल–दिवस की याद हो आती है :

''कितने बच्चों का
कितने दादाओं से शोषण होता है
'बाल दिवस' वह आदर्श
कि जिसका अब दोहन होता है।''[13]

स्वतंत्रता के इतने लम्बे अन्तराल के बाद भी भारत माँ के भाल पर आज भी भिक्षावृत्ति का टीका सजा हुआ है :

''अन्धा बाप
साथ में बेटा
हाथ, कटोरदान है
भूत, भविष्य, वर्तमान है।''[14]

नवगीतकार आधुनिक माहौल की कुंठाओं, अभावों से असंतुष्ट है। एक तरफ जहाँ साहित्यकार का हृदय उपेक्षित एवं दलित वर्ग के दलन से बेचैन है वहीं दूसरी तरफ उस वर्ग में उत्पन्न हुई अनेक समस्याओं पर चिन्तित भी है। साहित्यकार को समाज में फैली बेकारी, बहु प्रजनन, निरक्षरता आदि विघटनकारी शक्तियों से भी जीवन–मूल्यों में गिरावट की चिन्ता है। गीतकार को इस बात का भी रंज है कि सरकार, नेता, अफसरशाही, सामाजिक संस्थाएं उपेक्षितों के लिए वाद–विवाद तो बहुत करती हैं, बस समस्या का समाधान नहीं खोजती हैं :

''देखो वाद दौड़ते हैं
फिर थक जाते हैं
फोड़े फूट रहे होते
जब पक जाते
हम जैसे थे
वैसे ही रहते हैं।''[15]

'रमुआ', 'रामदीन', 'कविता', 'रधिया', 'पारवती', 'मीरा', 'रधिया बनाम मिस रजिया' आदि इन नवगीतकारों के मात्र काल्पनिक पात्र नहीं हैं अपितु सर्वहारा वर्ग की पौध हैं जो बिना चाहे कुकरमुत्ते की भाँति उग आई हैं। ये पात्र समाज की उपेक्षा का शिकार हैं। इन पात्रों में हमारे देश का प्रतिबिम्ब झलकता है :

''जीवन क्या है?देखो
कचरा बस्ती में
मीरा का रहना।''[16]

और

''रमदीन मत घबराना/यह दिन बिमारी के
गर्मी, उमस, पसीना/दूर की तनिक न हवा यहाँ
मजदूरी भी मिली नहीं/ठंडा है तवा यहाँ
टूट गये हैं तन–मन/इस भूखे दुखियारी के।''[17]

नवगीतकार मात्र कवि नहीं है। वह एक हैरान, परेशान मध्यमवर्गीय व्यक्ति है। मध्यमवर्ग को जब रोजगार नहीं मिलता तो वह अपने क्षेत्र विशेष से पलायन कर जाता है। अपनी जन्मभूमि को छोड़ने और पलायन के दुःख को कवि कुछ इस तरह देखते हैं :

''सबर नहीं होती कुशवाहा
छोड़ो खेती–पाती
चलो शहर में दौड़ घूमो
यही कहे इमराती
अच्छा है चण्डीगढ़ जाना
दिल्ली में मुस्काना।''[18]

निष्कर्ष :

कवि के गीतों का प्रेम, बेचैनी, चिंतन जब तक 'सर्वजन हिताय' से नहीं जुड़ता है, वह अधूरा रहता है। उसके गीतों का यही भाव कवि को लोक से जोड़ता है, जीवन से जोड़ता है। स्वामी विवेकानन्द जी के इस विचार की भाँति ही – ''पारलौकिक ज्ञान एवं प्रेम सार्थक तब होते हैं, जब हम यथार्थ से, इस लोक से जुड़े रहें और हताश हुए व्यक्तियों के प्रति दया एवं करूणा की अनुभूति करते रहें।'' हालांकि स्वामी जी का प्रेम दर्शन यहाँ पारलौकिकता की ओर संकेत करता है, लेकिन वही प्रेम, बेचैनी और चिंतन यदि मानव जीवन, जीव सेवा से जोडें तो उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग के लिए नए आयाम खोल देता है। विकास की अँधी दौड़ समाज में असमानता को और अधिक बढ़ाती जा रही है। गीतकार का अनुभव एवं दूरदर्शिता, वैचारिक गंभीरता एवं परिपक्वता, समाज एवं राष्ट्र के प्रति उसका दायित्व बोध उसे स्वयं से ज्यादा सर्वहारा वर्ग के हित के लिए सोचने पर मजबूर करता है। कवि अपने साथ समाज को भी चेतना का स्वर देता है ताकि उच्च वर्ग लेकर निम्न वर्ग तक, देश–दुनिया के लोग अपना मौन तोड़कर कुछ सकारात्मक कार्य करें, मानवता की भलाई के लिए।

कहने को सरकारी और गैर–सरकारी स्तर पर कई मानवीय प्रयास किये जा रहे हैं, पर आम आदमी को, पीड़ित समाज को कितना लाभ मिला है? यह अपने आप में एक बड़ा सवाल है। आँकड़े क्या कहते हैं? प्रत्येक बुद्धिजीवी को इस पर विचार करना चाहिए। साहित्यकारों की मानें तो, यह ढिंढोरा पीटने वाली स्थिति ज्यादा दिखाई देती है, जमीनी हकीकत कुछ और है। इसके लिए दोषी हम और हमारा पूरा समाज है, जिन्हें अपने अधिकारों का स्वयं ही पता नहीं है।

वीरेन्द्र आस्तिक, रामनारायण रमण एवं रमाकांत जी के गीत अपने आप में सम्पूर्ण हैं, निर्मल गंगाजल की तरह हैं। ये नवगीत

परिवर्तन की आहट बनकर आए हैं। ये उपेक्षित एवं पीड़ित वर्ग की जड़ता,ऊब और सन्नाटे को चीरने का प्रयास हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन नवगीतकारों के ये नवगीत अपनी सफलता और सार्थकता को सिद्ध करके समाज के सर्वहारा वर्ग के लिए नये मूल्यों की प्रतिष्ठा का आधार स्तम्भ बनेंगे।

सन्दर्भ

1. वीरेन्द्र आस्तिक, आकाश तो जीने नहीं देता, पृ. 64
2. रामनारायण रमण, नदी कहना जानती है, पृ. 43
3. रमाकांत, बाजार हँस रहा है, पृ. 20
4. उपरिवत्, पृ. 29
5. वीरेन्द्र आस्तिक, तारीखों के हस्ताक्षर, पृ. 102
6. रामनारायण रमण, मैं तुम्हारे गीत गाऊँगा, पृ. 12
7. उपरिवत्
8. वीरेन्द्र आस्तिक, दिन क्या बुरे थे, पृ. 78
9. उपरिवत्, पृ. 79
10. रमाकांत, बाजार हँस रहा है, पृ. 48
11. रमाकांत, जो हुआ तुम पर हुआ हम पर हुआ, पृ. 51
12. रामनारायण रमण, नदी कहना जानती है, पृ. 53
13. वीरेन्द्र आस्तिक, आकाश तो जीने नहीं देता, पृ. 71
14. उपरिवत्, पृ. 68
15. वीरेन्द्र आस्तिक, गीत अपने ही सुनें, पृ. 74
16. उपरिवत्, पृ. 78
17. रामनारायण रमण, नदी कहना जानती है, पृ. 27
18. रमाकांत, जो हुआ तुम पर हुआ हम पर हुआ, पृ. 23

ममता
शोधार्थी,
पी. एच. डी,
(हिन्दी विभाग)
म.नं. 954, सेक्टर–23
भिवानी (हरियाणा)
पिन–127021
मो.नं. 9868058963

6

JOURNAL OF ON-SITE MATERIAL MANAGEMENT

Dr. Santosh Kumar Sharma

Abstract:-

Site material management is a process for controlling field and office activities on construction site related to the materials. The site material management system attempts to insure that the right quality and quantity of materials are appropriately delivered and handled onsite in a timely manner. Planning and controlling all of the efforts necessary to ensure that the correct quality and quantity of materials are properly specified in a timely manner and most importantly are available at the point of use when required. Materials management is the system which represents a major expense in construction, so improving site material management improves opportunities for reducing the overall project costs. Poor management can result in increased costs during construction. Efficient management of materials cans result lt in substantial savings in project costs. This project is about on-site material control and the aim is to minimize delays, wastage of material and indirectly the cost. The project's focus is on material quality control, proper storage facility, material accounting on site of Amanora future towers. The project concentrated on the products that contribute the most to construction organization revenue. Study will be done to understand and analyze the above practices on the construction project of Amanora future towers.

Keywords: Site material management, codification, stores management, material logistic.

Introduction

Materials management is a critical component of the construction industry. As such, organizations need to understand the effects of proper materials management techniques on the effectiveness of project execution.

Too often, construction projects suffer from delays, budget overruns, and claims. A properly implemented materials management program can achieve the timely flow of materials and equipment to the jobsite, and thus facilitate improved work face planning, increased labor productivity, better schedules, and lower project costs. A proper material logistics implementation on the site will minimize the probable delays, material damages, waste produced on site, etc.

Now or project focuses on management of materials incoming on site. Managing the materials on site is a key process for project success. For many years it has evolved and changes with respect to the ever growing complexity of projects. It is very important to understand the management of site material and how these procedures differ from those of other industries. Site Materials management is a process of ever-growing responsibilities and functions.

Scope of Work

This project is about on-site material control and the aim is to minimize delays, wastage of material and indirectly the cost. The project's focus is on material quality control, proper storage facility, material accounting on site of Amanora future towers. The project concentrated on the products that contribute the most to construction organization revenue.

Problem Statement

Materials costs money in terms of storage space, equipment, personnel, insurance, deterioration, obsolescence and, above all, the cost of the capital required in financing stocks. On the other hand, it costs money to run out of stocks-
idle wages, loss of production, loss of profit and expediting to overcome the disorganization following a shortage.
This illustrates the importance of materials and site material management and raises the following questions among the top management of the company. Is the inventory managed with the aim to obtain the optimal inventory level? Are effective and efficient inventory policies in place?
We are going to discuss the aspects as applicable to the construction project as major expenditure incurs in raw materials, consumables, spare parts of equipment, wastages and if they are properly checked from time to time the expenses can be reduced substantially. Thus material management on construction site is of at most importance.

Research Objectve

In this seminar we are keeping following inventory management objectives which are necessary on the construction

a) Storing and inventory control.
b) Reduce wastage.

Literature Review

From the various paper studied it can be seen that improvement in management for materials on site is required to be maintained on major projects sites. It helps in overall economy and cost saving of various materials which are used for execution of project. We are going to keep this approach in present project work.

Theoretical Approach

The materials on the site are to be controlled right from their arrival on the site to their consumption on the site. Hence throughout their journey on the site materials are to be properly handled for having efficient material management on the site.

Codification

Process of codification

Codification is the process of representing each item by a number, the digit of which indicates the group, the subgroup, the type and the dimension of the item. Many organizations in the public and private sectors and railways have their own system of codification, varying from eight to thirteen digits. The first two digits normally represent the major groups, such as raw materials, spare parts, sub-contracted items, items, hardware items, packing material, tools, oils, stationery, etc. the next two digits indicate the sub-groups, such as ferrous, non-ferrous, etc. dimensional characteristic of length, width, head diameter usually constitute the further three digits and the last digit is reserved for minor variations.

Systems of codification

Following are the systems of codification commonly found:

1) Alphabetical system
2) Numerical system
3) Alpha-numerical system
4) Brisch system
5) Kodak system

Alphabetical system

Under this system, alphabets become the basis and codes are allotted to each item in alphabetical order. Each item is grouped according to its nature, use, etc. and the first alphabet of the name of the material is the starting point of codification. Subsequent sub-alphabet are used depending upon other characteristics of the material in question

Numerical system

Against alphabet system, the numerical system is based on numbers; simple numbers block numbers or dash/stroke number.

Alpha-numerical system

This system, as the name suggest is the combination of both the alphabetical and the numerical system, and also to take advantage of the numerical system, the system allows alphabets to be retained to a limited extent and then uses the number codes. The material are first grouped under some main classes and then sub-grouped under the numbering system.

Brisch system

The Brisch system of codification, developed by a British industrial engineer is one of the earliest developed codification system. It is a comprehensive system, consisting of seven digit and is applied in three phases. The seven digits split into groups such that similar items are brought together. The preliminary set of categories of assemblies, subassemblies and bought out items. The classification is done after duly considering materials, sizes, function and uses.

Kodak system

The Kodak system, developed by Eastman Kodak Company of New York consists of ten digits divided into groups of three, four and three. In addition to the classification based on materials, function and use of the item, importance is given to the mode of procurement of the item by the first two digit. When arranging within a group, the numbers used are 00 to 99. If nuts and bolts are to be coded, then bolts can have the number 28 and nuts 29, because b is head of n in the alphabet.

Stores Management

Purpose of stores

Stores play a vital role in the operations of a company. It is in direct touch with the user department in its day-to-day activities. The most important purpose served by the stores is to provide uninterrupted service to the manufacturing divisions. Further, stores are often equated directly with money, as money is locked up on the stores

The Importance of Efficient Stores Management

In an enterprise with a small quantity of stock, one person might be placed in charge of it, if the owner/manager does not look after it himself. Where the volume of stock is too large to be handled on a part -time basis, one or more storekeepers will be required. Enterprises with large quantities of stock must employ trained stores personnel (storekeepers, clerks, etc) under the control of a Store Manager (who might go by the designation of Head or Chief Storekeeper, Stock Controller, Stores Administrator, or a similar title).

It is impossible to state at what stage a Store Manager will be appointed by a particular enterprise, as circumstances and sizes vary so greatly. But whatever its size and the volume of

its stocks, the success of the enterprise can depend to a large extent on the efficient management of its Store and stocks.

Stores location and layout

Storage system has to accommodate the inflow of inputs of materials and bought components from outside sources, the in-process inventories and the outflow of finished goods to customers. The system's efficiency may be compared and assessed in terms of unit cost (per volume or weight) of moving goods through storage sites or storage over a given period. It usually takes into account the element of labour, space and equipment needs and cost.

The design, size and location of a store must, therefore, be an integral part of wider system design and management strategy. It must be realized, however, that what happens in a storehouse affects the whole range of other activities.

Material accounting

The primary basis for material accounting is cost. Materials are ordered on a continuous basis and there is no prescribed procedure which can be used in the determination of materials cost for accounting purposes. There are a number of standard procedures with combination and variations, but the major objectives are to clearly reflect the periodic performance. However, the records which are usually kept by the stores department have two broad characteristic 1) only quantities are shown in records, and (2) regular balancing of materials is done.

For this purpose, the following records and documents are kept

i. Bin card
ii. Store ledger
iii. Stock identification card
iv. Materials received note
vii. Material transfer note

1. Bin card

It as an essential record kept in stores for following purposes:

i. Exact position of material is known as against each receipt and issue
ii. Information with regards to stock levels and the quantity balance on hand is immediately known.
iii. Code number and full description of the material are given on the card
iv. It serves as a check on stock ledger and helps physical verification of stores.

2. Stores ledger

It gives the following information as against bun cards:

I. Supplier's name and address, wherever possible
ii. Quantity ordered each time and invoice no. and price.
iii. Expected delivery with due Date in the 'remarks.
iv. Stocks level

3. Stock identification card

These cards are kept in the stores against each bin or rack where stocks are actually kept in order to identify the materials. They contain following information:

i. Material code no. and full description.
ii. Respective stores ledger folio and bin card number.

4. Material received note

When materials passed are passed on to the stores after proper verification and approval by the inspection authority, the materials and supplies are taken into stocks through a document known as material received note.

They are sent to

i. Inspection department for approval
ii. When approved, it is passed to the appropriate authority for checking and then it is sent to
iii. Accounts department for recording and according and accounting of material

5. Material requisition slip

When material passed on to the production department after receipt of a document known as material requisition slip, the quantity is required to be filled inn always by the documents issuing center. Stores department must take proper care as to the following points

i. M.R. slip must be signed by the authorized person.
ii. The material required is up to the mark with the proper code no. and/or description of the material.
iii. Quantity issued is then and there entered and this is signed and checked by the materials receiving center, as no separate issue voucher is raised.
iv. Three copies are prepared one for issuing authority, another for stores record and the other for stock.

6. Material returned note

When materials are not required by the production department, they are returned to the stores with an authorization called materials returned note.

7. Material transfer note

When material are transferred from one department to another department or from one job to another, a materials transfer note is prepared and sent to the stores account department for adequate recording of material issued to that particular department.

Surplus and obsolescent material

Surplus

A surplus item is one stock is likely to last longer than the normal period of consumption.

Items are rendered surplus under the following situations:

I. Over buying
ii. Reduction in production program of a product
iii. Production simplification

Obsolete materials

An obsolete item is one which has been suspended by another item due to change in designs, modification or substitution.

Obsolete materials differ from surplus material as the latter could consumed in near future while former are unlikely to be used.

An item is rendered obsolete under following points:

I. Design change
ii. Product simplification
iii. Sales returns
iv. Wrong purchase
v. Components manufactured against old drawing.
vi. Changes in manufacturing process.

Disposal of surplus and obsolete materials

The disposal of surplus and obsolete material can be affected in various ways, the returns being different from different channels. The reason is very simple and logical. Surplus materials, if sold as scrap to a scrap dealer, are hardly expected to expected to fetch 20 to 30 % of original cost while if the surplus material is returned to the original supplier, it may bring in 90 to 95 % of original cost. Therefore selection of the appropriate channel therefore is important some of them are as follows:

i. Return to original supplier
ii. Sale to the sister companies
iii. Use within the organization
iv. Sale to the vendors
v. Sale to the actual users
vi. Sale as scrap
vii. Disposal of scrap by auction sale.

Logistics Services and Techniques

Logistics services and techniques are very helpful on a construction site for smooth operation of construction.

Concerned authority should look into proper implication of such logistics services and techniques on a construction site.

Logistic Services

Dedicated, trained logistics specialists can provide valuable experience and knowledge to a construction project.

Logistics specialists can either be employed internally by the client or main contractor or can be hired from specialist external organizations for either a key task or for the entire duration of the project. Logistic services can generally be grouped into the following services:

"On-site logistics specialist - the on-site team receive all material deliveries and distribute materials, equipment and plant so that operatives handle materials only when assembling or installing. This team may also plan the infrastructure processes needed to deliver the project including site planning, welfare of the workforce, traffic management and health and safety.

"Full supply chain logistics planning - main contractors employ (either directly or indirectly) professionally trained logisticians who can plan across the range of, procurement, storage, distribution and back loading activities.

" 4th party logistics - an overarching service to co-ordinate other logistics providers where there is more than one supply chain.

Logistic Techniques

1) Just-In-Time Delivery (JIT)

JIT delivery is a service of frequent deliveries in work packs or task loads, 'pulled' just in time for the trade to perform the next task without incurring any delays. This can be done either through a CCC or individually by suppliers. JIT deliveries reduce or even eliminate the need for on-site storage of materials.

2) Demand Smoothing

Demand smoothing enables the peaks and troughs in the demand of materials to be evened out over a period of time or duration of the project. Demand smoothing is a means of looking at the program of project activities in the entire value chain and identifying how the activities can be balanced or 'smoothed' to reduce the

amount of transport resources, materials and labour needed to carry out the task or activity.

3) On-site Marketplaces (MP)

A MP is a temporary storage area for consumable materials, fixings and small tools that are widely used and shared between a numbers of trade contractors working on-site.. When stocks become low they are replenished by the individual trade contractor or through the store-man who will order on their behalf.

4) Material Logistics Plan Good Practice Guidance

The major benefit is the assurance of available materials in a known and secure location when required and removes the need for individual trades to set up their own small materials storage areas and controls on-site. This leads to productivity benefits and cost reduction.

5) Pre-assembled and offsite fabrication

It is generally considered good practice that, where possible, materials should be obtained configured as far as possible to their final use. Similar to pre-assembly, offsite fabricated materials are generally preferable to those constructed on-site, since wastage can be more efficiently controlled and transport requirements are usually reduced.

Conclusion

From all the above study for this paper of site material management and the methodology to be adopted the conclusion
comes as

a) There should be a centralized inventory management team co-ordination between the site and the organization.
b) Proper control, tracking and monitoring of the system is required.
c) Awareness and accountability should be created within the organization about material.
d) There is a need of an efficient system integrating all aspects of site material management.
e) Firms employing proper material management system are seen to have increased their overall efficiency by 35%.

References

[1] Arunprakash N. and Nandhini N, Study on Stock Management Practices in Construction Companies Department of Civil Engineering, Kongu Engineering college, Perundurai, INDIA.

[2] Daweiyu, Vendor Managed Inventory in the Swedish Construction Industry, master's thesis 2020.

[3] L.C. Jhamb, Inventory Management, Everest publishing house, 2011. [4] Larry Barnet, P.E, Construction Equipment Security, 2003.

[5] I.D. Tommelein, Materials Handling and Site Layout Control, Civil and Environmental Engineering Department, The University of Michigan, Ann Arbor, MI 48109-2125, USA, 2000.

Dr. Santosh Kumar Sharma
M. COM, MBA, LLB, LLM With Ph.D.
House No. 5113 Sector-3
Ballabgarh, Faridabad
Mo.-9899882948
santosh.sharma2013@gmail.com

7

Major Factors of Pakistans Foreign Policy

Sunita Kumari

Introduction

Since its inception in 1947, Pakistan has been facing numerous tumultuous challenges both internally and externally encompassing the issues of democracy, social equality, political stability and economic development. The very idea of the creation of Pakistan came under questions from different quarters within and outside. The creation of Pakistan was criticized by many from litterateur? s religious ideologues and political analysts who declared it a creation as a result of pathological politics, which is empowered by basic elements such as exclusion, subjugation, threats and use of force etc. Oldenburg quotes critically renowned Salman Rushdie? s argument regarding Pakistan? s creation and declare it a place which was just insufficiently imagined. Within the very first years of its independence Pakistan had to go through sour relations with two of its immediate neighbors India and Afghanistan. It was just few months after the partition of subcontinent that Kashmir dispute between India and Pakistan emerged in October 1947, which resulted in first proper war between India and Pakistan in the spring of 1948. Again within the very first year of independence Pakistan on its North West frontier encountered with another neighboring country Afghanistan being the only country, which voted against Pakistan? s admission to the United Nations for its claims on Durand Line. Pakistan, geographically located thousands of miles away in two different parts which were known as East Pakistan and West Pakistan before celebrating its first silver jubilee, tragically disintegrated in the wake of 1971 third Indo-Pak war. Oldenburg goes to an instinct and declares this division of East and West Pakistan as inevitable. India played its role during 1971 that resulted in Pakistan? s disintegration apparently on humanitarian grounds to stop the genocide in East Pakistan, which was rightly challenged by Cordera who claims that India waged a full-fledged war on the basis of realpolitik calculations.

Whether it was Kashmir dispute, the 1971 disintegration of Pakistan or the period followed afterwards, Pakistan, in one way or the other remained in the limelight of international community. At international stage, Pakistan had twice proved its successful foreign policy, primarily at the United Nations Security Council? s resolution to hold plebiscite, removal of troops and establishment of interim government in Kashmir, which was based on Pakistan? s proposals. Second success of Pakistan? s foreign policy was from 1969 to 1972 when Pakistan played its role for the rapprochement between Peoples Republic of China and the United States. According to the declassified documents of the US department of state Pakistan played active role in backtrack diplomacy between the US and China that resulted in re-establishing Sino-US relations. Initiatives taken by the then president of Pakistan Yahya Khan and Pakistan? s ambassadors to the United States and China paved the ways for both the US and China to resume the.

The Cold War And Indian Factor

Pakistan? s involvement in international politics and active foreign policy resulted in changing the world system from bipolarity to unipolarity by the end of cold war. Pakistan had its own international, regional and domestic reasons for joining the cold war. Thus Pakistan played its active role for the proxy war fought in Afghanistan to contain the then USSR from expanding to southern flanks. After the partition of subcontinent in 1947, American policies towards both Pakistan and India were clear to see both the states oriented towards west and not to be influenced by communist threats internally and externally. As discussed earlier, Pakistan? s successful foreign policy towards US begun from 1969 to 1972 when Pakistan played its role in Sino-US rapprochement. Pakistan which had fought three wars within first twenty five years of independence was looking for balancing Indian threat which was greatly imbalanced after 1971 war which resulted in the creation of Bangladesh. It was therefore in Pakistan? s interest to join American led cold war for gaining military aid and procurement of arms and defense equipment from the US. Therefore, throughout the history US influence on Pakistan? s foreign policy formation left unforgettable prints till today.

India-Pakistan Rivalry

Although it is now more than six decades since both countries attained independence, India and Pakistan have not achieved a satisfactory relationship,

despite several attempts to do so. Instead, there have been tensions from the Cold War era, three major wars, a nuclear arms race, the perennial dispute over Kashmir and strains over water sharing rights. Conversely, although both countries have engaged in posturing over Kashmir and issues of national security such as terrorism, it remains to be seen whether either Pakistan or India would want a major conventional conflict. Indeed, there are proponents in both countries who advocate reconciliation, and although the prospects of normalising relations appear remote at this stage, such an outcome in future may not be completely unrealistic.

Currently, trade relations between India and Pakistan are small but have shown signs of growth over the last decade; in 2000 trade was an estimated US$500 million, but by 2008 it was reportedly over US$2 billion. As suggested by a report published by the Washington-based Peterson Institute for International Economics, this figure does not include indirect trade to Pakistan via other countries, such as Dubai, Oman and Iran. Clearly, the likely benefits for both countries of normalising relations are substantial, as the trade flows under optimum conditions reportedly have the potential to reach over US$40 billion annually. Similarly, the normalisation of relations also has the potential to benefit both countries from the standpoint of energy initiatives, such as the proposed Iran-Pakistan-India and the Turkmenistan-Afghanistan-Pakistan-India pipeline projects.

But for dialogue to succeed, both countries need to harmonise their conflicting strategic interests and also find means to engage in dialogue without serious domestic political fallout. For example, Pakistan has grown uneasy about India? s growing presence in Central Asia; for example: the use of an air base in Tajikistan since 2002; defence cooperation programmes with Tajikistan and Uzbekistan; and India? s initiatives to access and exploit mineral and energy reserves in the region.

Some Pakistani officials are also concerned with other Indian initiatives in the region, namely: the provision of concessional loans to Tajikistan and Uzbekistan, such as the US$17 million loan to Tajikistan for the modernisation of hydroelectric infrastructure; the provision of financial aid to develop a trans-Afghan highway and railroad; a highway linking Turkmenistan, Afghanistan and Iran to the Persian Gulf port of Chah Bahar, which is also being upgraded and expanded with significant Indian aid. But, while India? s presence in Central Asia is of increasing concern, Pakistan appears to be most alarmed by Indias expanding inroads in Afghanistan.

Nuclear Pakistan And The Us Factor

The peaceful nuclear explosions of 1974 by India were alarming for Pakistan, which resulted in Pakistan? s traditional approach of creating balance of power in the region. During seventies and eighties when the United States was engaged in the Cold War against the then USSR with Pakistan as the front line state, the US did not pay much attention to Pakistan? s nuclear program and its development. United States, primarily because of its own political and economic interested continued to aid Pakistan for playing its role as a front line ally of the US during the cold war. Soon after the culmination of the cold war in 1992, United State imposed both economic and military sanctions on Pakistan through Pressler Amendment on the basis of Pakistan? s nuclear program and its development and requested the President to personally verify if there was any development on Pakistan nuclear program. The US aid was now conditional to the developments of Pakistan's nuclear program. Pakistan, which had developed its nuclear program and capabilities to make nuclear weapons during eighties, had no options to compromise on its nuclear program to balance the developments in Indian nuclear program, which was at very advanced stages during same period of time. After Pakistan? s nuclear tests in response to Indian nuclear test in 1998 the United States imposed another set of sanctions in its efforts to denuclearize Pakistan and the region.

The 9/11 And Pakistans Foreign Policy

In the wake of 9/11 attacks almost three years after 1998 nuclear tests, Pakistan once again had to play an active role as front line state in the US led war against terrorism. Pakistan, compelled by the United States to once again play its role as frontline state in another US led war on terrorism (WOT) chose to be the part of WOT because of its regional and international situation. Pakistan in order to counter Indian efforts to make international community recognize Indian crisis as terrorism not the fight for liberation joined American led war on terrorism. Pakistan has always declared to have strategic depth in Afghanistan, joined the war against its own homegrown Taliban regime which was yet another major shift in Pakistan? s foreign policy because of international power? s pressure towards both India and

Afghanistan (Pattanaik, 2008). Change of regime in Afghanistan as a result of WOT has once again put Pakistan in an awkward situation where successor government was opposition to the Pakistan? s homegrown Taliban government. Nonetheless, Pakistan played as an active frontline state of the US during WOT. As in past, the strains of deficit of trust existed between the triangular relations as Pakistan being the most critical player in these relations. Pakistan was continuously asked for doing more in order to fight against terrorism and on the other hand the new regime did not trust Pakistan for its favorable role towards Taliban in the past.

China And Pakistans Foreign Policy

Over the last decade Pakistan's strategic partnership with China has become increasingly important to its future security, stability and prosperity. ? The Pakistan-China relationship is much more than a strategic confluence of interests between two countries, affirmed Pakistani President Asif Ali Zardari in early 2009. Similarly, in February 2010 Pakistan? s Foreign Minister, Makhdoom Shah Mahmood Qureshi, told an audience at the Shanghai Institute of International Studies: ? Pakistan-China relationship has three constituents: strategic partnership; economic cooperation, and people to people contacts. In this calculus, the security dimension has been the strongest; but now the two sides are making conscious efforts to underpin this relationship with strengthened economic cooperation, and deepened cultural interaction at the level of the people.

Although modern bilateral relations with China and Pakistan have fluctuated since they officially began in 1951, there has been a notable strengthening of relations after the US intervention in Afghanistan in 2001. Spanning the period from 1999 to 2009, there have been a number of key examples of Chinese investment and support such as: assistance with the construction of a 300-MW nuclear power plant in Punjab Province; a joint-venture partnership in developing and producing the Al-Khalid-2000 Main Battle Tank and the JF-17 Thunder multirole fighter aircraft; provision of $198 million out of $248 million to build Gwadar port; signing of a bilateral free trade agreement; co-operation in civil-nuclear technology as demonstrated by the Khusab Nuclear Programme; acquisition of modern Chinese-built F-22P frigates; initiatives to build a fibre-optic line, an oil and gas pipeline, and a rail track connecting Gwadar to China; and the provision of an EXIM Bank loan of US$105 million for Pakistan Railways to purchase 75 Chinese-made locomotives.

By 2010 bilateral trade had increased to US$7 billion, up from US$2 billion in 2002, and both countries have since announced plans to increase this further to US$15 billion by late 2011. Since 2010, over sixty Chinese companies have been operating in Pakistan on 122 projects, involving some 11,000 Chinese businessmen, engineers, technicians and workers.

In the same year China offered to invest US$10 billion in Pakistan for two hydro-power projects to generate 7,000 and 12,000 MW. Similarly, in December 2010, China again signed 22 new agreements with Pakistan as part of its agenda to further expand trade and cooperation. They covered agriculture and livestock, banking and finance, civil aviation, culture, diplomacy, electronics, energy, mining, politics and space technology.

Afghanistan In Pakistan's Foreign Policy

Due to Afghanistan? s location, the outcome of the US-led intervention in shaping the current and future political and security environment is of critical importance to Pakistan. In line with this, Pakistan has traditionally sought to retain a zone of influence, or buffer, which it has done historically with elements of the ethnic-Pashtun population. It would appear that such a policy was pursued with a view to sustaining Pakistan? s internal security and stability. Similarly, Pakistan would also be looking to influence an Afghan government to ensure that it does not support any dissident elements that are detrimental to Pakistan? s security.

In this sense, Pakistan could possibly adopt a number of strategies that are intended to shape Afghanistan? s security environment in a manner that aligns with its core interests: co-opt or accommodate key Taliban factions by supporting the movement generally; restrict the movements influence to the Afghan side of the border; or to militarily confront the Taliban. At this stage it would appear that the second option is the most likely, with the last option the least likely.

In today's context Pakistan's economic interests in Afghanistan remain modest. There are reportedly over 100,000 Pakistani professionals and

skilled workers who reside and work there. Two-way trade between the countries is estimated at US$1.5 billion and, in 2010, both Pakistan and Afghanistan showed serious interest in improving transport infrastructure by jointly constructing the Chaman-Kandahar and the Peshawar-Jalalabad rail links. Similarly, for some time now Pakistan has granted Afghanistan transit rights to India for its exports. Recently, Pakistan has also demonstrated serious interest in seeking transit rights through Afghanistan to Tajikistan, by building a highway and railway through the Wakhan Corridor.

These Pakistani initiatives, however, appear to be partly a reaction to counter India? s growing influence in Afghanistan. Since the US-led intervention first began in 2001, India is known to have opened four consulates throughout Afghanistan, in Herat, Jalalabad, Kandahar and Mazar-e-Sharif. Today, as emphasised by the Centre for Strategic and International Studies in Washington, India? s presence can be summarised by the following examples: growth of bilateral trade, which in early 2008 was worth US$358 million; the provision of US$1.2 billion to fund infrastructure development projects, such as the Zaranj-Delaram highway, Salma Dam power project in Heart Province, and Afghanistan? s new parliament; the presence of over 4,000 Indian engineers, labourers and security personnel (reportedly including 500 Indian policemen), working on various development projects; involvement in training Afghan police, civil servants and diplomatic staff; and further assistance in the spheres of education, health, energy, telecommunications and transport.

Such a large Indian presence has also invited Taliban hostility, given India? s traditional support to the Northern Alliance, which has resulted in numerous attacks against Indian nationals engaged in development and reconstruction work. To complicate matters further, India has also accused Pakistan? s covert intelligence agency, Inter-Services Intelligence, of encouraging Taliban hostility. Some US reports have gone as far as to suggest that Pakistan and India are engaged in a ? shadow war? in Afghanistan, but these allegations appear to be unsubstantiated. Nonetheless, what remains evident and appears to be intensifying, is the India-Pakistan rivalry, which, if left unaddressed, could have major and destabilising implications for the region? s future.

Pakistan's Foreign Policy - An Analysis

An inquiry into the problems, their causes and outcomes that Pakistan is facing can help understand the dilemmas of its foreign policy. Stephen P. Cohen has very rightly pointed out different dimensions of failure in Pakistan including the failure to live up with past expectations, failure of vision, failure of leadership, failure of vision and economic failure. However, after extensive research on Pakistan professor Stephen P. Cohen has not painted a total gloomy picture, rather has left some advices for Pakistan and appreciated the resilience of Pakistani society. As a matter of fact, since its inception Pakistan remained in trouble internally and externally both. What caused this, wrong choice and wrong decision-making in different situations where Pakistan? s leadership whether political or military, was put to test, most of the time it failed. On the other hand, during first two decades, Pakistan did pursue a proactive foreign policy, particularly vis-à-vis India and Kashmir dispute (Cohen, 2004). However the Pakistan was unable to pursue proactive policy-making approach in the coming decades. The major reason responsible for Pakistan? s failure to deliver minimum expectation of the social contract was intermittent military coups or the legacy of military dominance over civil leadership. A commentary on foreign policy of Pakistan aimed at educating Pakistan? s parliamentarians by Professor Hasan-Askari Rizvi has very briefly and precisely discussed various phases of Pakistan foreign policy from 1947 till the 9/11. However, it lacked addressing the dilemmas of Pakistan? s foreign policy, which need to be understood to reconsider the orientation of Pakistan? s foreign policy making, its process and mindset. Shankar? s Indian perspective on Pakistan? s foreign policy seems interesting where he points out the internal division within Pakistan over the issues of strategic and policy level significance which has roots in the history, and primarily Indian foreign policy making mindset has made Pakistan keep ? deficit of trust? as basic and fundamental principle in its foreign policy vis-a-vis India.

Shah in his detailed and objective commentary of Pakistan? s foreign policy argues that there are three basic dilemmas of Pakistan? s foreign policy. Firstly, the situations and challenges that Pakistan has faced during the past haunt Pakistan even today. For example, in the wake of Cold War a huge influx of Afghan refugees to Pakistan has left unforgettable influence on Pakistan? s policy making while restricting Pakistan? s options in foreign policy. Secondly, the international powers? interests from Pakistan

also have visible impact on its foreign policy. For example, Pakistan enjoyed very good relations with the United States and the Western powers during the Cold War, the time when Pakistan? s role was inevitable for the West and the US. Once Pakistan played its role to fulfill its allies? interests, Pakistan was left alone in the middle of nowhere with number of problems to be fixed. Thirdly, what Shah argues is that Pakistan and Pakistanis generally defy logic. For example, Pakistan? s commitment to the Muslim countries, and not accepting Israel from the very beginning whereas Israel was later welcomed by Pakistan? s friendly Muslim countries. On the top of that, the countries that Pakistan has supported in the past like Iran, Jordan and Turkey, showed indifference in return to Pakistan. One of the fundamental problem with Pakistan? s foreign policy or in general the policy making mindset it the role of military in the political process of the country. The military leadership in Pakistan shapes, reshapes and deforms public opinion. Since such public opinion is usually engineered and populist, thus has a very short life and when the opinion takes natural shape, it adds to the problems of Pakistan. Throughout the years one element of Pakistan's foreign policy remained consistent and that is Pakistan's ability to manage its relations with the United States but at the same time not to keep all eggs in one basket with over dependence on the US for rescuing Pakistan at the time of difficulties.

References

1) Bilal, M. U. R. Pakistan: a new history. *Contemporary South Asia*, *21*(4), 478 479.
2) Sengupta, V. Of other histories and identities: partition novels from the Indian subcontinent. *Social Semiotics*, *19* (4), 499 513.
3) Ahmed, I. The 1947 Partition of India: A Paradigm for Pathological Politics in India and Pakistan.Asian Ethnicity, *3*(1), 928.
4) Oldenburg, P. A Place Insufficiently Imagined: Language, Belief, and the Pakistan Crisis of 1971. *The Journal of Asian Studies*, *44*(4), 711733.
5) Hilali, a. Z.. Kashmir dispute and UN mediation efforts: An historical perspective. Small Wars & Insurgencies, *8*(2), 6186.
6) Rafique, Z., & Anwar, M. A.. Insurgency in Afghanistan:implications for Pakistan"s internal and external security. Defense & Security Analysis, 30(3), 266–282.
7) Cordera, S. India"s response to the 1971 East Pakistan crisis: hidden and open reasons for intervention. Journal of Genocide Research, 17(1), 45–62.
8) Xia, Y. China"s Elite Politics and Sino-American Rapprochement, January 1969 February 1972. Journal of Cold War Studies, 8(4), 3? 28.
9) Burr, W. Sino-American Relations, 1969: The Sino Soviet Border War and Steps Towards Rapprochement. *Cold War History*, *1*(3), 73? 112.
10) Wohlforth, W. Unipolarity, Status Competition, and Great Power War. *World Politics*, *61*(1), 28? 57.
11) Grau, L. W., & Ahmad Jalali, A. Forbidden Cross-border Vendetta: Spetsnaz Strike into Pakistan during the Soviet-afghan War. The Journal of Slavic Military Studies, 18(4), 661? 672.
12) Mcmahon, J. in United States Cold War Strategy South Asia : Making a Military to Pakistan , Commitment - 1954. *Organization*, *75*(3), 812? 840. (2011).
13) Schofield, V. Pakistan: 2011. The Round Table, 100(417), 623? 628.
14) Desilva, Sergei, ? Pakistan? s Strategic and Foreign Policy Objectives,? Strategic Analysis Paper, 5 May, 2011, Future Direction International, Australia, p. 4
15) Jawaharlal, P. THE INDIAN NUCLEAR BOMB - LONG IN THE MAKING Nuclear Power : The Early Beginnings, 1? 7. (1998).
16) Anwar, M., & Michaelowa, K. The political economy of US aid to Pakistan. Review of Development Economics, *10*(2), 195? 209.
17) Scroll, P., & For, D. Pakistan in crisis. Strategic Comments, 6(3), 1? 2.
18) Arnold, G. The Politics of Nuclear Weapons in South Asia. The Round Table, 101(4), 378? 379.
19) Miraglia, S. Deadly or Impotent? Nuclear Command and Control in Pakistan. Journal of Strategic Studies, *36*(6), 841? 866.
20) Kean, T. H., Hamilton, L. H., Ben-Veniste, R., Fielding, F. F., Gorelick, J. S., Gorton, S., … Thompson, J. R. The 9/11 Comission Report. The 9/11 Comisssion Report, 58. (2004).
21) Pattanaik, S. S. War on Terror and its Impact on Pakistan"s Kashmir Policy. *Strategic Analysis*, *32*(3), 389–412.
22) Desilva, Sergei, 'Pakistan's Strategic and Foreign Policy Objectives,' Strategic Analysis Paper, 5 May, 2011, Future Direction International, Australia, p. 4
23) Cohen, S. P. The idea of Pakistan.
24) Scroll, P., & For, D. Adelphi Series Chapter One : Pakistan " s nuclear programme, (July 2015).
25) Barracca, S. Military Coups in the Post-Cold War Era: Pakistan, Ecuador and Venezuela. *Third World*

Quarterly, *28*(1), 137–154.
26) Overview, A. Pakistan"s Foreign Policy: An Overview 1947-2004, (April). (2004).
27) Shankar, M. Dilemmas of Pakistan"s Foreign Policy. Strategic Analysis, 6(3), 161–168.
28) Shah, S. A. Pakistan"s foreign policy dilemmas in the new millennium. *The Round Table*, *90*(360), 345–356.
29) Milam, W. B., & Nelson, M. J. Pakistan"s Populist Foreign Policy. *Survival*, *55*(1), 121–134.
30) Curtis, L. The reorientation of Pakistan"s foreign policy toward its region. *Contemporary South Asia*, *20*(2), 255–269.

Sunita Kumari
Assistant Professor
Department of Political Science
Govt. College, Sihma
Distt. Mahendergarh
(Haryana)
8295055509

8

'सूर्यबाला' के कथा–साहित्य में वृद्धावस्था की समस्या

डॉ0 कृष्णा जून, मनीषा

सारांश –

आधुनिक होने की बदलती जीवन शैली एक बार तो आँखों में चमक भर देती है लेकिन जब हकीकत से सामना होता है तो स्थिति काफी भयावह नजर आती है। परिवार और समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले बड़े बुजुर्ग आज उपेक्षित होने लगे हैं, उनकी स्थिति काफी दयनीय होती जा रही है। विकास की दौड़ में आगे निकलने वाला व्यक्ति बुजुर्गों के सम्मान के मामले में नकारा साबित हो रहा है। परिवार की संपत्ति समझे जाने वाले बुजुर्ग आज अपने परिवार पर बोझ बन कर रह गए हैं। जिन बच्चों की खुशियों और जरूरतों को पूरी करने के लिए माता–पिता ने अपनी पूरी जिंदगी लगा दी वही आज बच्चों द्वारा अपनी जिंदगी से निकाल दिए जा रहे हैं और माता–पिता की उपस्थिति उन्हें स्वतंत्रता की राह में बाधा लगने लगी है। भौतिकवाद इस कदर लोगों पर हावी हो गया है कि अब अपने का बोध समाप्त होता जा रहा है। आर्थिक तौर पर सक्षम होने और आत्मनिर्भर होने की चाह लोगों में प्रबल रूप से विद्यमान होने लगी है। जिसकी पूर्ति आज व्यक्ति माता–पिता से अलग अपनी स्वतंत्र दुनिया बसा कर करने लगा है। एक ऐसी दुनिया जिसमें बुजुर्गों की जरूरत ना रहे। इस समय की बुजुर्ग पीढ़ी आज घोर उपेक्षित है, इसका कारण है, हमारी आधुनिक सोच और स्वार्थपूर्ण जीवन शैली।

मुख्य शब्द : अकेलापन, आर्थिक स्थिति, आत्मनिर्भरता, स्वार्थपूर्ति

प्रस्तावना :

वृद्धावस्था की समस्या हमारे साहित्य और समाज के लिए महत्त्वपूर्ण बिंदु है। संयुक्त परिवार में वृद्धजनों की समस्या बहुत कम थी और ना ही तब तक यह सामाजिक समस्या थी, लेकिन एकल परिवार का प्रचलन बढ़ने के कारण यह समस्या आज एक सामाजिक समस्या के रूप में सामने आ रही है। आज इसे विश्व स्तर पर एक सामाजिक व मानवीय मुद्दा माना जा रहा है। परिवार की संपत्ति समझने वाले बुजुर्ग आज परिवार के लिए बोझ बन कर रह गए हैं। वृद्धों का जीवन दयनीय होता जा रहा है। सूर्यबाला ने समाज के इस महत्त्वपूर्ण अंग को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देने का प्रथम प्रयास किया है। मानवीय रिश्तों कोपरत–दर–परत थहाने की कोशिश की गई है। परिवार में बुजुर्गों का महत्त्व और आज की युवा पीढ़ी द्वारा उनका इस्तेमाल कैसे किया जाए,उसको अभिव्यक्त किया है।

'निर्वासित' कहानी में बुजुर्ग माता–पिता के साथ किया गया व्यवहार व्यक्ति की स्वार्थपूर्ति को दर्शाता है। रिटायर पिता के पास डेढ़ साल तक हर महीने 100 रूपयेभेजना और बाद में अचानक पत्र लिख माता–पिता को अपने पास बुलाना, माता–पिता के लिए एक सुखद क्षण था लेकिन उन्हें नहीं पता था कि वहाँ जाकर उन्हें कितनी पीड़ा सहनी पड़ेगी और सबसे असहनीय पीड़ा बुजुर्ग माता–पिता को एक–दूसरे से अलग रहने की। बेटे का घर उन्हें परायो जैसा लगता है, वह खुलकर बात नहीं कर सकते, अच्छे से पूजा–पाठ नहीं कर सकते। बहू का दर्शन ज्ञान और अकाट्य तर्क का उन पर वार हमेशा रहता है। वह उन्हें कहती है – ''अम्मा जी, जरा बाबू जी से कहिएगा, इतनी जोर से पाठ ना किया करें। वहाँ घर की बात और थी यहाँ सब ऑफिसर्स ही रहते हैं और फिर भगवान तो सब जगह हैं। देखिए ना कबीरदास जी ने भी कहा है तां चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय। आप और बाबू जी मन में पूजा–पाठ कर लिया कीजिए, ये गुस्सा होते हैं।'' बहू के कहे ये शब्द बहुत पीड़ा पहुँचाते हैं, लेकिन स्वंय को समझा लिया जाता है। सभ्य और विकसित होता व्यक्तिअपनी परंपराओं को छोड़ता चला जा रहा है। समाज में खुद को सभ्य दिखाने में माता–पिता द्वारा किया गया व्यवहार उन्हें ऊब पहुँचाता है। माता–पिता अपने बच्चों से कुछ देर बैठकर बात करना चाहते हैं लेकिन उन्हें उनके पास बैठने का समय ही नहीं है। दो संपन्न और कमाऊ बेटों द्वारा माता–पिता को अलग–अलग रखने का फैसला लिया जाता है। एक के पास माँ रहेगी और एक के पास पिता और जिसका छोटा बच्चा होगा, उसके पास माँ भेज दी जाएगी और पिता को बुला लिया जाएगा। ये सुनते ही माता–पिता का दिल दहल जाता है और पिता माँ से कपड़े रखने के लिए कहते हैंतो उनसे अपना अपराध पूछती है फिर कहते हैं –''अब जब दो बेटे हैं तो एक ही दोनों का खर्च उठाए, ठीक नहीं लगता न। है कि नहीं ? ठीक ही सोचा दोनों ने, अभी यहाँ बेबी छोटी है, तुम यहाँ रहोगी। सात–आठमहीने बाद छोटी की डिलीवरी होगी, फिर तुम वहाँ चली जाओगी छोटी के पास। मैं यहाँ .....''यह कहानी बुजुर्ग माता–पिता की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली स्थिति को सामने लाती है। जरूरत के हिसाब से किए गए समझौते में लगता है बुजुर्ग माँ से बुजुर्ग पिता की अपेक्षा ज्यादा उपयोगी है। क्योंकिजहाँ पर ज्यादा जरूरत है,वहाँ पर माँ भेजी जाएगी। लेखिका नेयहाँ आज के आदमी के स्वार्थ और संवेदनशील होते जा रहे संबंधों को दिखाएं हैं, जिनके अंदर की संवेदना मर गई है, जो वृद्धावस्था में माता–पिता को एक–दूसरे से दूर करने की दुःखद पीड़ा को महसूस नहीं कर सके। माता–पिता द्वारा बच्चों के लिए दी गई कुर्बानियों के साथ बच्चों द्वारा उन्हें अपने पास रखने का समझौता ज्यादा भारी पड़ता है।

'साँझबाती' कहानी में बूढ़े माँ बाप की इसी स्थिति को स्पष्ट करते दिखाई देती है। माता–पिता अलग–अलग बेटों के पास रहने को मजबूर है और जब भी आपस में मिलते हैं एक–दूसरे की

पीड़ा को बता कर दुःखी नहीं करना चाहते। आधुनिक और सभ्य होने की होड़ में उनके बच्चे विसंगतियों में डूबते जा रहे हैं। बहुएँ क्लबों में जाती हैं और बच्चे अपनी मस्ती में मशगूल हैं उनके माता–पिता को उनकी कोई परवाह नहीं है। इस कहानी में आज के समाज में युवा पीढ़ी के भटकाव की स्थिति को भी स्पष्ट किया है। अभिभावकों का बच्चों को अनदेखा करना जिससे बच्चे बुरी संगति में पड़ जाते हैं और जिसके पास गाँव में माँ रहती है। वह शराब के नशे में धुत रहता है, पति और पत्नी में लड़ाई झगड़ा रहता है, बच्चे एक–एक सप्ताह तक घर नहीं लौटते। माँ का उनसे बात करने का मन करता है लेकिन करें कौन ?वह पूरा दिन सबकी राह ताकती रहती है और चौकीदार से, ठेले वालों से, मोची से बातें करके अपने समय को काटती हैं। बूढ़े पिता को घर में रखने की जगह नहीं है, उसके लिए स्टोर रूम जैसी जगह तलाशी जा रही है, वह अपनी पत्नी से कहता है– ''किचन से बाहर ही तरफ जो स्टोर है, उसकी बात चल रही है, कल जस्सी की बहू को बोलते सुना, वह जो कबाड़ से अटा पड़ा है, उसमें,इतना नहीं कि एक कबाड़ और ना आ सके।''

यह कहानी दिखाती है कि बच्चों के बड़े होने पर माता–पिता उनके लिए बोझ बन जाते हैं। अपने ही परिवार में उन्हें तिरस्कृत व उपेक्षित भाव से देखा जाता है। वे या तो वृद्धाश्रमों में भेज दिए जाते हैं या फिर जिंदगी को बेबसीके साथ में बिताने को मजबूर हो जाते हैं। उनके इस तरह के व्यवहार में वृद्धों को काफी कमजोर कर दिया है, जिस सम्मान के वे हकदार हैं, उन्हें वह सम्मान नहीं मिल पा रहा है। 'साँझबाती' और निर्वासित कहानियाँआज के उपभोक्तावादी युग में मूल्यों की संवेदनशून्यता को दर्शाती है। बुजुर्गों के लिए आदर–सम्मान, अपनत्व, लगाव का तो जैसे इनके लिए कोई महत्त्व नहीं रह गया है। इस भाग–दौड़ भरी जिंदगी में उनके लिए माता–पिता के साथ संवाद का अभाव है। माता–पिता उनसे बातें करने को तरसते हैं, लेकिन उन्हें फुर्सत ही नहीं है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण माता–पिता को बच्चों पर निर्भर रहना पड़ता है। देश में बदलते सामाजिक–आर्थिक और आबादी संतुलन के साथ वृद्धजनों के रहन–सहन की दशाएँ भी चुनौतीपूर्ण दिखाई दे रही हैं।

एकल परिवारों के चलन और निरंतर प्रवास के कारण मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों में वृद्धों को अकेलेपन का सामना करना पड़ता है। गाँव में रहे तो उनको अपने बच्चों के प्रति प्रेम उन्हें उनके पास आने को कहता है और शहर में आए तो फिर उनके रुढ़ व्यवहार का शिकार होना पड़ता है।

'बाउजी और बंदर' कहानी एक बूढ़े अकेले आदमी की यातना को दिखाती हैं। जिंदगी के आखिरी पड़ाव पर खड़ा व्यक्ति जो अपनी जिंदगी के बचे हुए दिनों को अपने बहु–बेटे व पोते–पोतियों के साथ बिताना चाहता है लेकिन बहू–बेटा उनके ना आने की जुगत भिड़ाने में लगे रहते हैं। बूढ़े पिता का बच्चों के प्रति प्रेम को समझ पाने में भी असमर्थ है, कहते हैं – ''पता नहीं ये बूढ़े लोग मोह–माया का इतना ओवर स्टाकक्योंभरे रहते हैं, अपने दिल में। जब देखो तब उलीचने को तैयार। इनके दिल ना हुए मोह – माया के दलदल हो गए जीना हराम।'' बुजुर्गों को बच्चों के साथ रहना अच्छा लगता है लेकिन माता–पिता द्वारा दिए गए संस्कार बच्चों के लिए दादा–दादी के प्रेम से भारी पड़ते हैं। प्रस्तुत कहानी में बहु द्वारा बूढ़े ससुर के लिए काम ढूँढना और आने पर उन्हें बंदरों को भगाने का काम सौंपना उसकी भावनात्मक शून्यता को दर्शाती है और उन्हीं बंदरों पर प्यार लुटा कर अपने जीवन की सार्थकता ढूंढना बाउजी की दूरदर्शिता को दिखाता है। यहाँ पर मनुष्य से प्रेम और जानवरों से प्रेम की तुलना में एक जानवर को महत्त्व दिया जाता है क्योंकि इन पर प्रेम लुटाओ तो ये नफरत नहीं प्रेम ही देते हैं लेकिन मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि उसे प्रेम में भी सिर्फ अपने स्वार्थ सिद्ध करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है।

एकल परिवारों के बढ़ते चलन के साथ बुजुर्गों के लिए अकेले रहना उनकी मजबूरी बनता जा रहा है लेकिन आज नियति ने समाज को परिवर्तित करना शुरू कर दिया है। परिवर्तन के इस दौर में बुजुर्गों की घर में थोड़ी ही सही पर जगह बनना शुरू हो गई है। स्त्री और पुरुष दोनों नौकरी करते हैं तो उनके पास बच्चों को संभालने का समय नहीं है और आया कि हर दिन सुनती खबरों से परेशान होकर बूढ़ेमाता–पिता को पास रखने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। काम करते बेटे बहू के साथ रहते हुए बच्चों के साथ–साथ और घर की जिम्मेदारी भी उन पर आ जाती है। बच्चों की जिम्मेदारी निभाना बड़ा चुनौतीपूर्ण काम है और इन जिम्मेदारियों को निभाने वाला व्यक्ति और भी कठिन है जबकि देखने वाले को लगता है कि बच्चों के साथ घर की जिम्मेदारी निभाते हुए बुजुर्ग मजा लूट रहे हैं।

'मौज' कहानी इन्हीं तथ्यों को स्पश्ट करती है। बेटे–बहू के जाने पर सुबह उनका टिफिन तैयार करना, बच्चों को तैयार कर स्कूल भेजना, बच्चों के आने पर स्कूल का काम, घर का काम, पार्क में ले जाना यही सब उनकी दिनचर्या बन जाती है। इस उम्र में घर का इतना काम करना मुश्किल भी है लेकिन वे इसे हंसते–हंसते करते हैं, तभी तो आदित्य दोस्तों के बीच बड़ी बेफिक्री से कहता है कि–

''माँ पिताजी को अच्छी कंपनी है, बच्चों के साथ हंसते–खेलते मग्न रहते हैं। उबने का सवाल ही नहीं। यूँ ही रोजमर्रा की जिंदगी में थिंग्स आर मच बेटर दिव देट .....पहले माँ को कितने काम करने पड़ते थे ..... सुबह अंगीठी सुलगाने से लेकर झाड़ू पौछे तक। सब माँ ही करती थी। सिर्फ बर्तन साफ करने के लिए दाई लगी थी और अब देखो बर्तन,झाड़ू, कपड़े, बाथरूम सब दाई करती है। दिनभर बच्चों के साथ हंसना–खेलना शाम को उन्हें लेकर पार्क की सैर....मौज से कट रहा है बुढ़ापा .....।''यहाँ लेखिका ने घर में घुटने वाले बुजुर्गों की कथा मासूमियत और सहजता से की है। बच्चों के अनेक छोटे–बड़े कामों में बेशक खुद को घुटने और कमर दर्द हो लेकिन फिर भी आज की बुजुर्ग पीढ़ी बहु–बेटे के तानों और उलहानों के लिए अभिशप्त है।

परिवार की शान कहे जाने वाले हमारे बड़े–बुजुर्ग आज परिवार में अपने ही अस्तित्व को तलाशते नजर आ रहे हैं। तिनका–तिनका छोड़कर अपने बच्चों के लिए आशियाना बनाने वाले यह पुरानी पीढ़ी के लोग अब खुद आशियाने की तलाश में दर–बदर भटक रहे हैं। उन्हें रहने का ठिकाना नहीं है। परिवार वालों के लिए वो बोझ बनकर रह गए हैं।एक–एक रुपये के लिए उन्हें अपने बहू–बेटों पर आश्रित रहना पड़ताहै। कहीं पर जाना हो तो केवल किराए के रुपए या फिर टिकट लेकर दे दी जाती है।

'रहमदिल' कहानी वृद्धों की ऐसी दयनीय स्थिति को स्पष्ट करती है। मुल्लाजी को बिना पैसे दिए रेल टिकट देकर उन्हें जाने के लिए कहा जाता है, लेखिका लिखती है– '' रेलवईवाल पचास रूपये मागँ रह जुर्माने की खातिर मुल्लाजी के पास पाँच रुपया भी नहीं। चुप बेसरम पाँच रूपइया होवेगेई कहाँ बेचारे मुल्लाजी के पास। बेटे–पतोहू ने तो एसेई टिकट कटाकर अहसान जता दिया होगा। पाँच दस थमा दिए होंगे हाथ में राह खर्च के लिए और जश्न मना रहे होंगे की बूढे से पिंड़ छुटा। अरे जान के हिज्ज होई गया था, बेचारा बुढ़ा बेटे–पतोहू को।''

ऐसे ही 'जश्न' कहानी बूढ़े माता–पिता को अनुचित मिले सम्मान को दर्शाती है, उनके जीते–जीते उन्हें सोने की सीढ़ी भेंट की जाती है। समारोहपूर्वक दिया गया यह तोहफा देकर उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि बहुत जी लिए, अब अपना बोरिया बिस्तर समेटो, लेकिन उनका मोह परिवार से भी कम नहीं हुआ है वे अपने बच्चों और बच्चों के बच्चों की किलकारीयों को छोड़कर जाना नहीं चाहते। उल्लास, उत्साह और भरे पूरे होने के अहसास से शुरू हुई यह कहानी भय, डर, निराशा सब कुछ खो देने का अहसास कराती है।

लेखिका ने समाज में यथार्थ को यहाँउकेरा है। आज बदलता सामाजिक परिवेश और बदलती पारिवारिक स्थितियों ने परिवार के बुजुर्गों के लिए जीवन को और दुष्कर बना दिया है। घर के बुजुर्गों और नए परिवार बसाते बच्चों के बीच एक दूरी सी पैदा हो गई है और ये दूरी गाँव और कस्बों से अधिक शहरों में देखने को मिलती है। जिंदगी मेंइस वक्त जब उम्र की शाम होने लगती है तो अधिकतर घरों में बुजुर्गों की स्थिति अनदेखी कर दी जाती है और उन्हें बेकार का सामान समझकर या तो घर के किसी कोने में डाल दिया जाता है या फिर घर से निकाल दिया जाता है और उनकी यह स्थिति उनके मानसिक अवसाद का कारण बन जाती है। सबसे ज्यादा यह स्थिति मध्यमवर्गीय परिवारों के वृद्धों के जीवन के उत्तरार्ध का पहाड़ बन जाती है। कामयाबी बच्चों को टहलने–घुमाने की जिम्मेवारी की फिक्र में वहाँ वृद्धों की सुबह–शाम रूठ जाती है, वहीं पर उनकी हैसियत एक नौकर से ज्यादा नहीं होती।

बुजुर्गों के लिए ऐसी स्थितियाँ पैदा होने का सबसे पहला कारण है, आर्थिक स्थिति का कमजोर होना। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्हे बच्चों को दिए पैसे पर निर्भर होना पड़ता है और उनकी अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। घर की आर्थिक स्थिति ठीक ना हो पाने के कारण कुछ व्यक्ति चाहकर भी उनका ख्याल नहीं रख पाते हैं और दूसरा कारण आधुनिक और विकसित होने की होड़ में लगा व्यक्ति और औद्योगीकरण का विस्तार। जीविका कमाने के लिए बच्चों को घर से दूर जाना पड़ता है, जिस कारण का माता–पिता के प्रति लगाव कम हो जाता है, ऐसे में सबसे पहले वृद्धों के पास आर्थिक स्वतंत्रता बहुत जरूरी है। उनके पास पर्याप्त पैसा होना जरूरी है ताकि उनमें असुरक्षा की भावना समाप्त हो जाए और वे आत्मनिर्भर बन सकें तथा अपनी जरूरतों को खुद पूरा कर सके। उन्हें भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक सहायता की अत्यंत आवश्यकता होती है ताकि वे अकेलेपन और अवसाद की स्थिति में ना आए उनके लिए युवाओं को समय प्रबंधन कर उन्हें कुछ समय देना होगा। उन्हें अनदेखा ना कर उन्हें आपसी संवाद के लिए समय बहुत जरूरी है। घर के बुजुर्गों के लिए उनकी पूंजी उनके बच्चे होते हैं, जिसे वे सहेज कर रखना चाहते हैं इसलिए उस पूंजी को बचाने के लिए आज की युवा पीढ़ी को अपने बुजुर्गों के प्रति उत्तरदायित्व को समझना बहुत जरूरी है।

संदर्भ :

1. सुर्यबाला, एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम, पृ. 89
2. वही, पृ. 94
3. सूर्यबाला, सांभाबती पृ. 105
4. सूर्यबाला, ग्रहप्रवेश, पृ. 37
5. सूर्यबाला, गौरा भुजवती, पृ. 77
6. सूर्यबाला, थाली भर चाँद, पृ. 29

डॉ0 कृष्णा जून
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा, भारत

मनीषा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा, भारत
nishuhooda12@gmail.com

9

भगवान दास मोरवाल के उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' स्त्री–विमर्श

डॉ0 कृष्णा जून, पूनम कुमारी

सारांश –

हिन्दी कथा साहित्य में अपनी अलग देशज छवि के लिए पहचाने जाने वाले भगवान दास मोरवाल का संबंध हरियाणा के 'काला पानी' कहे जाने वाले मेवात से है। साधारण से दिखने वाले इस साहित्यकार/कथाकार का व्यक्तित्व कितना असाधारण है, यह उनके साहित्य में स्पष्ट झलकता है। लोक की अनुभूतियों को उकेरने वाला यह साहित्यकार अपने गहरे एवं विलक्षण कथात्मक अन्वेषण और अछूते विषयों का स्पर्श करने के कारण हिन्दी कथा जगत में विशिष्ट पहचान रखता है। किन्तु इस सबसे अलग मोरवाल जी का उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' स्त्री–विमर्ष के दरवाजे पर दस्तक देता है।

विमर्ष का सामान्य अर्थ है–जीवन्त बहस अर्थात् किसी घटना या समस्या को किसी एक दृश्टि से न देखकर भिन्न–भिन्न कोणों से देखते हुए मानवीय आधार पर निश्कर्श करना। अतः स्त्री–विमर्श से तात्पर्य है कि समाज के इतिहास, परम्पराओं और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का निरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृश्टि से गहन चिंतन–मनन करना। स्त्री–विमर्श का अर्थ है–''स्त्री जाति को एक नए नजरिए से देखने और दिखाने का प्रयत्न। सदियों से सताई गई स्त्रियों के दर्द का ब्यान और विद्रोह तत्वों की खोज।''[1]

स्त्री सदा से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन रही है। परम्परा, संस्कार और सौन्दर्य जैसे प्रसाधनों में उसकी घेराबन्दी करके उसे शिक्षा, अधिकारों और विकास के अवसरों से दूर रखा गया। आज की शिक्षित और आर्थिक रूप से सशक्त स्त्री भले ही पितृसत्ता के दोहरे मापदण्ड़ों को तोड़ने में असक्षम रही हो, किन्तु अपने अधिकारों की सजगता, राजनैतिक पदार्पण, आर्थिक सबलीकरण के कारण पितृसत्ता की जड़ मान्यताओं को खुली चुनौती देती है। डॉ0 रोहिणी अग्रवाल के अनुसार–''पुरूष वर्चस्व को ललकारने–नकारने वाली महिलाएँ समाज में किसी मुकाम तक नहीं पहुँच पाई, स्वयं टूट–टूटकर बिखरती रही हैं, लेकिन उनका यह टूटना अकारण नहीं है वरन् अमीबा की तरह कई–कई हिस्सों में विभक्त हो अपनी चेतना को निरन्तर विकसित व प्रसारित करना है। इसलिए भले ही पुरूश सत्तात्मक व्यवस्था को वह हिला नहीं पाई है, लेकिन पुरूष के नर–पशु रूप को उद्घाटित कर उसने नारी को 'मानवी' समझने की माँग की है।''[2]

स्त्री जीवन की इसी पीड़ाजन्य गाथा का प्रतीक है– भगवान दास मोरवाल का उपन्यास 'बाबल तेरा देस में'। स्त्री जीवन के निविड़ तम की अभिव्यक्ति के साथ–साथ पितृसत्ता द्वारा उसके शोशण की अनवरत श्रृंखला को उपन्यासकार ने बहुत ही गहनता और सूक्ष्मता के साथ दर्ज किया है। इस संदर्भ में भगवान दास मोरवाल लिखते हैं, ''बाबल तेरा देस में आख्यान है स्त्री के उन दुःखों का, जो अपने ही घर के असुरक्षित अभेद्य किले में कैद है। इनकी रेहलगी, बजबजाती अंधी सुरंगों में कहीं पिता, तो कहीं भाई, कहीं ससुर, तो कहीं–कहीं पति के रूप में एक आदमखोर भेड़िया जाति लगाए बैठा है, और जिसके हरेक नाके पर तैनात मैं एक पहरेदार अपने हाथ में थामे धर्म–ग्रन्थों के उपदेशों एक तथाकथित आदेशों की धारदार नुकीली बरछी।''[3]

उपन्यास की स्त्री पात्र किसी बाहरी समाज से पीड़ित न होकर अपने ही शुचित रिश्तों से लहुलुहान है–''बाबल तेरा देस में इसी किले की पितृसत्तात्मक ईंट–गारे से चिनी मज़बूत दीवारों और महराबों के बीच दादी ज़ैतूनी, असग़री, जुम्मी, पारो, शकीला, शगुफ़्ता, समीना, ज़ैबन, मैना और मुमताज़ के मौन प्रतिवाद हैं– वह भी बाहर की दुनिया से नहीं बल्कि माजी–चाँदमल, दीन मोहम्मद, हनीफ फ़ौजी, जगन प्रसाद, मुबारक अली तथा कलन्दर जैसे अपने ही घरों के पहेरूओं से।''[4]

उपन्यास में एक ओर हाजी चाँदमल जैसा पतित आचरण वाला व्यक्ति असग़री की बहु पारो का आर्थिक बल पर देह–शोषण करने की कोशिश करता है, वहीं दूसरी ओर अपनी ही पुत्रवधु का बार–बार देह शोषण करता है और जुम्मी पितृसत्ता मर्यादा के डर से सब चुपचाप सहन करती है–''बत्तो, काई सू कहियो मत, नहीं मैं जीते–जी मर जाऊँगी। ''या मरद की जात की तो झूठी भी सच्ची हो जाए, है और हम चाहे कलेजा चीर के दिखा देएं, हमारे ऊपर कोई अकीन ना करे है, फिर तो याको जब जी करे हो मौका–बेमौका धर दबोचे हो। ऊ भी कहाँ तलक अपने आप ए बचाती फिरती।''[5] उपन्यास की अन्य पात्र पारो जो अपने ही घर में अपने पिता के नैतिक पतन और भाईयों के शराबीपन के भय से ब्राह्मण होते हुए भी फत्तू से विवाह करती है जो कि एक मेव है। पिता के भक्षक रूप ने पारो से जहाँ उसकी पहचान छीन ली, वहीं उसे चन्द्रकला से पारो

बनने पर मजबूर होना पड़ा और मेवात जाकर जातीय छुआ–छूत की पीड़ा को भी सहना पड़ा। चन्द्रकला के पिता की बुरी नजर केवल चन्दा पर ही नहीं थी बल्कि उसकी बड़ी भाभी इस शोशणात्मक परिपाटी की शिकार थी। किन्तु पितृसत्ता के मर्यादा रूपी नुकीले हथियारों के समक्ष बड़ी भाभी भी अपनी व्यथा–कथा कहने में असमर्थ थी। संबंधों, पवित्रताओं और नैतिकताओं के सारे महीन धागे मात्र स्त्री को बाँधने के लिए पुरूश द्वारा निर्मित है जिनके कारण स्त्री अपने ही घर में अपनों के द्वारा ही दमन की पीड़ा को भोगती है–''छोटी, जे तो मैंने भी ना सोची ही कभई। पर एक बात है जा आदमी की जीत अपनी सगी बेटी पर खराब हो जाए बाको कहा ईमान। मैं तो फिर भी घर की बहू हूँ, बाके छोरा की लुगाई ऊ भी बेटी समान।''[6]

स्त्री को दोयम मानकर पुरूष समाज, सत्ता, शिक्षा, सम्पत्ति, धर्म पर केवल अपना अधिकार समझता है। उपन्यास की पात्र शकीला, मुमताज और मैना शिक्षित होने के कारण पुरूष सत्ता के विरोधों का बार–बार सामना करना पड़ता है। बेवा शकीला जब तीन छोटी–छोटी बेटियों के लिए हवेली में से कुछ सम्पत्ति हिस्से की बात करती है तो हवेली के समस्त मर्द एकजुटता से उसका विरोध करते हैं।

उनके अनुसार सम्पत्ति पर केवल लड़के का अधिकार होता है, जो वंश को आगे बढ़ाता है। धर्म की आड़ में स्त्री का शोशण करता पुरूष 'शरीअत' को भी उस समय नकारा देता है, जब इस्लाम स्त्री के हक की बात करता है–''या शरीअत और कुरान–ए–धरी राख अपने पै। जब देखो ऊ सरीअत ई कहवे मैं.....सरीअत ऊ कहवे है.....। दो हरफ कहा पढ़गी हम्मने सिखा री है कानून।''[7] स्त्री शिक्षा और सम्पत्ति का पुरजोर विरोधी युनूस शकीला के बहाने हवेली की सभी औरतों को सुनाते हुए कहता है–''बढ़ी माँ याहे बता देओ कि मुस्लिम कानून के मुताबिक बेसक एक बेवा को अपना मरहूम शौहर का जादाद में हक हासिल है, पर याहे ई बता देओ के हमारा या मेवात में मेवन् के रिवाज़े–आम के मुताबिक, बेटी ए अपना बाप की जादाद में कोई हक हासिल ना है... ।''[8]

पितृसत्ता जिस धर्म की पगडंडी के आधार पर शकीला और मुमताज़ के सम्पत्ति अधिकार को नकार देती है, वहीं पितृसत्ता उसी धर्म की आड़ में स्त्री को अपनी वस्तु, सम्पत्ति या पशु सिद्ध कर स्वयं उनके खुदा बन बैठने की कोशिश में है। ज़ैबन के पति मौलवी अख्तर द्वारा मुमताज को भेंट स्वरूप दी गई पुस्तक 'बहिश्ती ज़ेवर' का उद्देश्य यही था, जिसके नियमों को आगे चलकर ज़ैबन और मुमताज मानने के लिए मजबूर हो जाती हैं–''.....अगर मर्द अपनी औरत को हुक्म दे कि वह इस पहाड़ के पत्थर उठाकर उस पहाड़ तक ले जाए, और उस पहाड़ से उठाकर तीसरे पहाड़ तक ले जाए तो उसको यही करना चाहिए। जहाँ तक हो सके मियाँ का दिल हाथ में लिए रहो और उनकी आँख के इशारे पर चला करो। अगर वह हुक्म दे कि रात भर हाथ बाँधे खड़ी रहो तो दुनिया और आख़िरात की इसी में भलाई है। अगर वह दिन को रात कहे तो तुम भी दिन को रात कहने लगो।''[9] समीना के माध्यम से मोरवाल जी ने पितृसत्ता द्वारा स्त्री को सम्पत्ति समझ उसे खरीदने और बेचने की समस्या को उठाया। दीन मोहम्मद द्वारा समीना की बार–बार की गई सौदेबाजी का शकीला विरोध करती है–''हाँ अम्माँ, मेरा भी यही मानना है कि किसी जानवर की तरह खरीद–फरोख्त से अच्छा है हम इसे वापिस भिजवा दें।''[10]

उपन्यास की अन्य स्त्री पात्र मैना को अपने पति से अधिक शिक्षित और समझदार होने का दंश घरेलू हिंसा और पति द्वारा लगाए गए झूठे आचरण हीनता के रूप में भुगतना पड़ता है। जो जैतूनी दादी के आक्रोश में साफ झलक रहा था–''जुलम हम कररा हैं.....अन्याव हम कररा हैं। जाके देख, छोरी की देह सूजकै कैसी तूमड़ी–सी हुई पड़ी है। ऐसा जुलम तो कोई जिनावर पे भी ना करे है जैसे तमने हमारी छोरी पे करा है।''[11] इसी तरह शगुफ्ता को भी अपने पति मुबारक़ अली द्वारा दिए गए तलाक के कारण एकान्त की पीड़ा को सहन करना पड़ता है। अपने अहं और दंभ के वशीभूत पुरूष मात्र स्वयं को सर्वाच्च्य सिद्ध करने में लगा होता है। पितृ सत्ता के इसी दोहरे पाखण्ड को भगवान दास मोरवाल ने स्वयं पुरूष के द्वारा ही स्वीकारा है–''पर हम एक बात भूल जावे हैं के ये धर्म–ग्रन्थ भी तो हमने ही रचा है। और सारा धर्म–ग्रन्थन् में एक–सी बात है। सारा उपदेश इन बीरणानीन् कू ही दिया गया है..... ।''[12] इस तरह मोरवाल जी ने 'बाबल तेरा देस में' स्त्री की उस पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदत्त की जो उसे अपनो से मिली।

निष्कर्षः

इस प्रकार भगवान दास मोरवाल का उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' स्त्री–विमर्श की समस्त सरहदों का स्पर्श करते हुए समाज में स्त्री की समस्याओं को बखूबी उठाता है।

संदर्भ सूची

1. (समीक्षा सम्पादक) गोपाल राम, हरदयाल
2. डॉ0 रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत्त की संवेदना और स्वरूप, पृ0– 162
3. भगवान दास मोरवाल, बाबत तेरा देस में, फैल्प कवर की टिप्पणी
4. वहीं
5. भगवान दास मोरवाल, बाबत तेरा देस में, पृ0– 131

6. भगवान दास मोरवाल, बाबत तेरा देस में, पृ0 संख्या– 141
7. वहीं, पृ0 संख्या– 456
8. वहीं
9. वहीं, पृ0 संख्या– 386
10. वहीं, पृ0 संख्या– 396
11. वहीं, पृ0 संख्या– 469
12. वहीं, पृ0 संख्या– 471

डॉ0 कृष्णा जून
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा, भारत

पूनम कुमारी
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग,
पी.एच.डी, शोधार्थी,
राजकीय महाविद्यालय,
रिठौज, गुरूग्राम
हरियाणा, भारत
nishuhooda12@gmail.com

10

Recent Trends in Banking Sector---Challenges

Priyanka Rani

Abstract:-

Banking Institution Play a significant role in economic development of the country. Traditionally the banking sector acts as financial intermediaries which mobilize saving of surplus unit and allocate in productive activities promising a better return .After independence Indian banking industry had gone through many reforms, one of the major reform taken place in 1991 where new economic policy of India (LPG) introduced into Indian economy due to macro crisis which brought many challenges for banking sector i.e. stiff competition with foreign bank and private bank , product pricing and spread issues. To meet the challenges by the use of computer to attract, retain, and satisfy the customer and keep hold of customer data, information technology has had helped in manifold to banking sector. Now the role of banks has became more wider and acts as Service provider also, introducing innovative services like Electronic Clearing Services (ECS), Electronic Fund Transfer(EFT), Real Time Gross Settlement (RTGS), National Electronic Fund transfer (NEFT), Mobile Banking, Plastic Money, Online Banking for diminishing operating cost and saving customer time. Banking industry investing large amount of investment in IT sector for innovation. The secondary data, which includes research paper, articles, banking related books internet (websites) used to study the impact of economic reform on banking sector and current trends in banking sector and it also highlights the challenges in front of banking industry.

Keywords: Economic policy, Information Technology, Recent trend in banking. .

Introduction:

The role of Indian banking industry now reconsider from a basic financial intermediary to service provider of a financial services under one place acting like financial supermarket. Today's banking industry of India has passed through many reforms in past. After independence government of India took many steps in banking industries reform i.e. Establishment of central bank of India in 1935, nationalization of imperial bank of India in 1955, nationalization of 14 commercial banks in 1969,& 7 more banks were nationalized in 1980.To meet the financial crisis of 1990's government of India declare new economic policy in 1991.Now the banking industry is competing with foreign banks. A committee under the chairmanship of M.Narasimham was set up, which worked for liberalization of banking practices. Banks instigated use of technology to provide innovative, faster, better quality, convenient services to operate banking functions.

Banking Innovation:

Today we have electronic payment system along with currency notes. Banking sector of India has overlooked the number of changes. The banks now take the innovative approach from ordinary approach and facilitate customer with internet banking, plastic money, ATM, RTGS, NEFT, SMS Banking, Mobile Banking etc. Recent trends in Indian Banking System discussed as under:-

Major Payment Modes in Banking Industry

- The introduction of MICR based cheque processing during the year 1986 to 1988.
- Arrival of Card based payment – Debit Card, Credit Card - late 1980's and early 1990's.
- Introduction of Electronic Clearing Service (ECS) in late 1990's.
- Introduction of Electronic Fund Transfer/Special EFT in early 2000's.
- Real Time Gross Settlement was introduced in March 2004.
- Introduction of Nation Electronic Fund Transfer (NEFT) in 2005/06.
- Introduction of Cheque Truncation System (CTS) in year 2008.

E-Banking

E-banking is a fast, easy and efficient electronic service that enables you to access your bank account and to carry out most online banking transactions 24 hours a day, and 7 days a week. It's known as online banking that enables customers to conduct the financial transactions through financial institution's website. With this service you save your time by

carrying out banking transactions at any place and at any time, from your home or office, all you need is internet access. E-banking enables the following:-

- Accurate statement of all transactions available in your bank account.
- Execution of national and international transfers in various currencies (If enabled).
- Execution of all types of utility bill payments (electricity, water, telephone bills, etc.).
- Setting up Standing Instruction for Auto Payment.

Plastic Money

Plastic money is issued by banks to account holders and customers in the form of Debit Card and Credit Card. These are also used as a form of money through which customers can make payments at Malls, Petrol Pumps and other shopping outlets. But there are some difference and limitations in both form of plastic money, detailed as below:-

- **Debit Card:**This Card is directly linked with the Account of Customer. As the name suggest, payment made by a Debit card is limited to the Balance in linked account. One can also withdraw Cash from ATM by using Debit card Up to the amount in account or limit of Cash withdraw given by bank, whichever is less. It can also be swiped in shopping outlets with POS facility.
- **Credit Card:** This card has nothing to do with Banks account, it can also be issued to the customer not owning any account in the bank. It is a form of short term credit given by banks up to some extent of limit decided by bank. It is specially used in shopping outlets for payment up to the Credit Limit. Credit card is not advised for Cash withdrawal but still if cash withdrawn, one has to bear charges levied on it.

Internet Banking:

Internet banking is online banking. Users can manage their accounts using by using website of financial institution without visiting Branch. Both Monetary and Non-Monetary transactions can be performed using Internet Banking. Monetary transactions includes NEFT, RTGS, IMPS, Utility bill payments, Credit Card payment, Apply for IPO offered by Financial Institutions. On the other hand Non-Monetary transactions are downloading periodical statements of account, applying for Debit or Credit Card, Apply Loan, Apply Cheque book request and many other options available differ between Bank to Bank.

Real Time Gross Settlement (RTGS):

In RTGS fund is transferred electronic on real time basis. "Real time" means dispensation the transaction immediately not afterward and "Gross" means transaction taken places individually order by order without netting. "Settlement" means once the transaction have taken place it is irreversible. It is for high value transactions a minimum limit for RTGS is two lakh and no upper limit. RTGS system not require any exchange of money, RBI makes the transaction by crediting the one person bank account with said amount and debiting the bank account of other person. The beneficiary bank has to make credit in beneficiary accounts within two hours after receiving the fund transfer message .it is chargeable facility of bank from Rs.2 lakh to 5 lakh Rs.30 per transaction and above 5 lakh Rs.55 per transaction charged.

National Electronic Fund transfer (NEFT):

NEFT is an electronic fund transfer system like RTGS started by central bank of India in November 2005. It processed on Deferred Net Settlement which means transactions are completed in batches at specific time. It is not like RTGS where transaction taken place immediately. It is for smaller amount transaction but not having minimum and maximum limit. Maximum charges as per RBI are up to Rs. 10000-Rs. 2.5, from 10001 to 1 lac-Rs.5, from 1 lac to 2 lac Rs 15, and above 2 lac Rs. 25 charged from customer.

Immediate Payment Service (IMPS):

An immediate payment system where inter-bank fund transactions taken place instantly and 24/7 throughout the year including bank holidays. It is started in 22 November 2010 and managed by National Payments Corporation in India (NPCI).

DEMAT:

The DEMAT is Dematerialized account which is opened to keep the record of securities in digital forum. It convert the physical shares into electronic form and hold the certificate of shares, debenture, bonds, and mutual fund. National Securities Depository Limited (NSDL), Central Depository Service Limited (CDSL) are two depository participant in India which held and settled the securities in dematerialized form and also perform the function of rematerialisation. Bank act as depository participant (DP) under NSDL&CDSL after fulfilling criteria. Bank is like agent of depository and act as intermediary between investor and depository.

Challenges in banking sector:

India is a developing country. People of India shows the positive attitude towards innovative banking services like internet banking but many of them have not benefitted from it because of lack of infrastructure and internet facilities and living in remote and scattered and fragmented locations. At present foreign banks also playing in country and provide wide range of services to customer and Expectations of the users increased day by day, to meet these expectation and to retain the customer is a challenging task for bank and on the other side Nonperforming assets of banks is biggest problem, deteriorate the financial health of banks.

Customer Expectation:

The expectation of customer is growing day by day regarding technology. This increase the intense pressure on bank and bring challenge of retention of customer.

Unsatisfactory Returns on Investment:

Investor wants great return on their investment .Banking industries are not making enough return on investment and Equity which shareholder needs.

Increasing Competition:

Financial technology companies operates on software based technology to provide financial services to its customer and affect traditional working of the banks. Banks are unable to cope up with this fin comp and Customers are more attractive towards them which create a lot of pressure on banks. After liberalization competition with foreign banks and private bank increased manifold.

Regulatory pressure:

Regulatory pressure on bank is going increase day by day. Banks have to spend a large amount of fund on building systems, and to keep up with escalating requirements.

Loss in the Rural Branches:

In some rural area till now, barter system of exchange prevail, banking sector bear loss of overhead, infrastructure of that rural branch etc.

Waiving of loan:

Commercial banks are now faced a new problem of waiving of loan of farmer's up to the value of 10000 croreswhich increase the problem of overdue of banks.

Political Pressures:

Political pressure of central and state government create problem in the working of commercial bank like In Personnel selection, Grant of loan to particular party without checking creditability, Announcement of Waiving of loans etc.

Transaction costs:

On one side nonperforming assets and another side maintenance of records of nonperforming assets increase the cost. Operational efficiency of the bank is decreasing due to nonperforming assets.

Timely technological up gradation:

Already electronic transfers, clearings, settlements have reduced translation times. To face competition it is necessary for banks to absorb the technology and upgrade their services.

IT revolution:

The Indian banks are subject to tremendous pressures to perform as otherwise their very survival would be at stake. The application of IT and e-banking is becoming the order of the day with the banking system heading towards virtual ban.

Privacy and Safety:

In online banking major concern about the safety and security of data and personal details, Account details of the account holder and to keep the accounts safe from unauthorized access.

Financial inclusion:

Financial inclusion has become a requirement in today's business environment. Financial Inclusion means providing financial services, including banking services and credit to low income groups at less price, India, RBI has initiated several measures to achieve financial inclusion, such as facilitatingJandhanYojna.

Conclusion:

The Indian banking industry redefined from mere financial intermediary to service provider, “Conventional banking to Convenience banking”& Mass banking to Class banking” with the use of information technology. Today's generation showing very much positive attitude towards internet related banking services and payment settlement system like RTGS, NEFT, IMPS, EFT. Continuous changes in external environment forces the banks to readdress their policies and strategies. Banks need to develop new business model to get advantage of opportunities and overcome the challenges in changing banking scenario

References

- S.B. Verma; E- Banking and Development of Banks, Deep & Deep Publications, New Delhi, 2008
- Kamlesh Bajaj &Dehjaji; E-Commerce, Tata McGraw hill publications Co. Ltd., New Delhi, 2005
- Various issues of Business week, The Economist, Business Today, The Economic times and Financial Express.
- Banking Law and Practice by P N Varshney, Sultan Chand & Sons, New Delhi
- Shekhar K C, ShekharLekshmy "Banking: Theory and Practice" Noida, Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
- Report on Trend and Progress of Banking in India
- Andrade, C "Banking products and services" in Indian institute of banking and Finance
- www.rbi.org.in

Priyanka Rani

Extension Lecturer in Commerce,

Govt .Pg. College for Women, Rohtak

E-Mail- 5588priyanka@gmail.com

11

"फर्रूखाबाद घराना– एक अध्ययन"

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा, राजेश कुमार आर्या

सारांश –

फर्रूखाबाद घराने का आरम्भ एवं वंशावली–

लखनऊ घराने के प्रवर्तकों में से एक उ0 बख्शू खाँ द्वारा फर्रूखाबाद के हाजी विलायत अली खाँ को तबले की शिक्षा प्रदान की गयी। हाजी विलायत अली खाँ की तबले के प्रति लगन एवं प्रतिभा देख बख्शू खाँ ने उनसे अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

तबले की शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात वह अपने मूल स्थान फर्रूखाबाद चले गये, वहाँ जाकर उन्होंने तबले का खूब प्रचार–प्रसार किया। हाजी साहब ने लखनऊ घराने की बन्दिशों एवं बोल निकास की वादन शैली में मौलिक अन्तर कर, एक नवीन वादन शैली का निर्माण किया, जिसे फर्रूखाबाद घराने का नाम दिया गया।

डॉ0 आबान ए मिस्त्री के अनुसार–"हाजी विलायत अली खाँ अपने युग के एक उत्कृष्ट तबला वादक, विद्वान, रचनाकार एवं कुशल शिक्षक थे। उनका वादन अत्यन्त क्लिष्ट एवं लयकारी युक्त था। गुणीजनों का यह मत है कि ऐसा नायक और रचनाकार सदियों में ही पैदा होता है। उन्होंने अपने वादन में चाँटी और स्याही को समान महत्व दिया। इस प्रकार अपनी नवीन शैली के अनुरूप पृथक ढंग के गतों की रचना करके उन्होंने एक नवीन घराने को जन्म दिया जो फर्रूखाबाद घराने के नाम से आज सर्वत्र प्रसिद्ध है।"[1]

फर्रूखाबाद घराने की वंशावली

उस्ताद निसार अली खाँ की परम्परा–

हाजी विलायत अली खाँ के बड़े पुत्र निसार अली खाँ तबला एवं पखावज दोनों में ही सिद्धहस्त कलाकार थे। कई वर्षों तक वह रामपुर के दरबार में दरबारी कलाकार भी रहे। उनकी वंश परम्परा के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके शिष्यों में भाई हुसैन अली तथा उस्ताद मुनीर खाँ का नाम उल्लेखनीय है।

उस्ताद अली अली खाँ की परम्परा– उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ के दूसरे पुत्र उस्ताद अमान अली खाँ एक उत्कृष्ट एवं कुशल तबला वादक थे। दुर्भाग्य से वह कुष्ठ रोग से ग्रसित हो गये। इस अवस्था में परिवार का उनके प्रति अच्छा व्यवहार नहीं था।

जिस कारण वे स्थाई रूप से जयपुर चले गए। इस विषय में कम लोगों को जानकारी है कि जयपुर के उस्ताद अमान अली खाँ, उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ के पुत्र थे। इनके शिष्यों में कत्थक सम्राट जियालाल जी का नाम उल्लेखनीय है।

उस्ताद हुसैन अली खाँ की शिष्य परम्परा– उस्ताद हुसैन अली खाँ, उस्ताद हाजी अली खाँ के तीसरे पुत्र थे, उन्हें अपने पिता से तबला विरासत में मिला था। तबले की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से प्राप्त करने के पश्चात उनकी दीर्घ तालीम, बड़े भाई उस्ताद निसार अली खाँ द्वारा सम्पन्न हुई। फर्रूखाबाद घराने के विस्तार एवं प्रचार में उस्ताद हुसैन अली खाँ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके सुप्रसिद्ध शिष्यों में उताद मुनीर खाँ का नाम विशेष से उल्लेखनीय है। उ0 अता हुसैन खाँ, सुप्पन खाँ, मिअन खाँ, मोदू खाँ तथा पं0 भीष्म देव वेदी आदि का नाम प्रमुख है।

उस्ताद नन्हे खाँ की शिष्य परम्परा– हाजी विलायत अली खाँ के चौथे पुत्र उस्ताद नन्हे खाँ थे। परन्तु कुछ लोग उन्हें हाजी साहब का पौत्र तथा उस्ताद हुसैन अली खाँ का पुत्र मानते है। उ0 नन्हे खाँ ने हाजी साहब से तबले की शिक्षा ग्रहण की और फर्रूखाबाद घराने के श्रेष्ठ तबला नवाज बने।

डॉ0 आबान ए मिस्त्री के अनुसार–"उस्ताद नन्हें खँ के पुत्र उ0 मसीतउल्ला खाँ (मसीत खाँ) रामपुर के प्रसिद्ध उस्ताद माने जाते थे। नवाब हामिद अली के स्वर्गवास के बाद रामपुर दरबार से उनका मन उचट गया ओर वे कलकत्ता चले गये और जीवन के अन्त तक वहीं रहे। उनके पुत्र करामतुल्ला खाँ अपनी परम्परा के अप्रतिम कलाकार थे। आजकल उनके युवा पुत्र साबिर खाँ इस घराने का प्रतिनिधित्व कर रहे है। उ0 मसीत खाँ के शिष्यों में सर्वश्री रामचन्द्र बोराल (कलकत्ता), ज्ञान प्रकाश घोष (कलकत्ता), हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी (मैमन सिंह), मुन्ने खाँ (लखनऊ) तथा अज़ीम खाँ जावरेवाले के नाम उल्लेखनीय हैं।"[2]

"फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली की विशेषताएँ–

फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली में पूरब और पश्चिम वाद दोनों का रूप देखने को मिलता है। इस घराने में लखनऊ घराने की विशेषता होते हुए भी इसकी वादन शैली न तो लखनऊ घराने के जैसी नृत्य से प्रभावित है और न ही पंजाब जैसी जोरदार और न ही दिल्ली के समान किनार की।

श्री सुधीर माईणकर के अनुसार–"लखनऊ घराने का पेशकार विशेष प्रसिद्ध नहीं था किन्तु फर्रूखाबाद घराने के द्वारा निर्मित पेशकार इस घराने की खास वैशिष्ट्य बन गया है। उस्ताद

अहमद जान थिरकवा यह प्रकार इतने रंगतदार रूप से प्रस्तुत किया करते थे कि उससे वह पेशकार हिन्दुस्तान भर में अत्यन्त लोकप्रिय बन गया और पेशकार यानि धी ऽऽकड़ धी ऽ धा ऽ शुरू होने वाला जो उस्ताद थिरकवा प्रस्तुत किया करते थे वही रचना है ऐसा समीकरण बन गया।"[3]

सभी घराने की तरह ही फर्रूखाबाद घराने में भी कायदों और पेशकार आदि बजाने का चलन है परन्तु इस बाज में रेलों को एक नया रूप दिया गया है जिसे फर्रूखाबाद घराने में 'रौ' के नाम से जाना जाता है साथ ही तबले में गत बजाने की प्रथा को महत्व भी इसी घराने ने दिया। पं0 सत्यनारायण वशिष्ट के अनुसार–"फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली को 'मध्यका बाज' कहा है क्योंकि इस वादन शैली पर न तो लखनऊ बाज के समान नाच का प्रभाव है और न ही दिल्ली बाज जैसे इसमें कोमलता है। फर्रूखाबाद के बाज में बनारस बाज के समान अधिक जोरदारी भी नहीं। इसकी इस वादन शैली में घिडान, धिरधिर, कित्तक, तकधा, तक तक, धिरधिर, धिड़नक, नग नग आदि बोल समूह का अधिक प्रयोग होता है।"[4]

वादन की मिठास बढ़ाने एवं गत तोड़ों में सुर को जोरदार बनाने के लिए घराने के तबला वादक 'तक' जैसे बोलों को बजाने के बलिए चारों उंगलियों का प्रयेाग करते हैं। साथ ही 'धिरधिर' के बोलों के लिए पूरे हाथ के उपयोग को महत्व दिया गया है। 'तक' के निकास के लिए लव एवं स्याही दोनों का प्रयोग किया जाता है। स्याही पर चारों 'उँगलियाँ' जोड़कर या कभी तर्जनी उंगली को छोड़कर स्याही पर आघत द्वारा थिरकवा साहब 'तक' का वादन करते थे।

श्री गिरीश चन्द्र श्रीवस्तव के अनुसार–"फर्रूखाबाद के तबलिये वादन का प्रारम्भ चाला या चलन से करते हैं। अहमद जान थिरकवा ने अपने एच0एम0वी0 के एक रिकार्ड में धीऽक धिंताऽधा धिधा धाती धती धा धा धिता इस प्रसिद्ध रचना को फर्रूखाबाद चलन की संज्ञा दी है। परन्तु कभी–कभी तबला वादक कुछ बोल समूह को ले लेते हैं। उसे मध्य लय में विभिन्न प्रकार से उलट–पलट कर जमीन बनाते हैं उसे भी चाला या चलन या फर्शबंदी कहते हैं।"[5]

स्वतंत्र वादन प्रस्तुतिकरण के लिए फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली अत्यन्त सफल एवं उत्तम बाज है क्योंकि 'सोलो वादन के लिए आवश्यक सभी विशेषताएँ इसमें मिलती है। अतः इस घराने के तबला वादकों ने सोलो वदन में बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। इस क्रम में उ0 अहमद जान थिरकवा जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

स्वतंत्र वादन शैली के बोलों में कड़ां धिऽन, धिर धिर टिकतक तकत धा, तक तक, धिर धिर किटतक, धेत, धिग नग धिग तक, नग नग इत्यादि बोल समूहों का प्रयोग किया जाता है।

डॉ0 आबान ए मिस्त्री के अनुसार–इस घरानो की चर्चा करते हुए अहमद जान थिरकवा ने कहा था कि "फर्रूखाबाद का तबला शुद्ध तबला है। दूसरे घराने की भांति उसमें ताशे के बोल (तीं,तीं) नक्कारा के बोल (नाड़ नाड़), ढोल तथा खंजरी के बोल इत्यादि नहीं मिलते। विविध साजों के बोलों से तबले का विस्तार तो आवश्यक होता है किन्तु शुद्धता खत्म हो जाती है। जो भी हो किन्तु फर्रूखाबाद का तबला मधुर संयत एवं संतुलित है इतना मानना पड़ेगा।"[6]

III – मूर्धन्य कलाकारों का सांगीतिक योगदान

उ0 हाजी विलायत अली खाँ– उ0 हाजी विलायत अली खाँ साहब के जन्म एवं मृत्यु के बारे में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं है। कुछ लोगों का मानना है कि वह ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक उस्ताद हद्दू खाँ (1859 मृत्यु) व उ0 हस्सू खाँ (1875 मृत्यु) के पिता कादिर बख्श के समकालीन थे। इस कारण हाजी साहब का समय 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध ही माना जा सकता है। फर्रूखाबाद घराने के संस्थापक एवं संगीत जगत के सुप्रसिद्ध तबला वादक उ0 हाजी विलायत अली खाँ फर्रूखाबाद घराने के आधार स्तम्भ थे। लखनऊ घराने के प्रवर्तक उ0 बख्शू खाँ से तबला वादन की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात वह फर्रूखाबाद चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने तबले का खूब प्रचार–प्रसार किया।

हाजी साहब द्वारा लखनऊ घराने की वादन शैली में बदलाव कर एक नई वादन शैली का निर्माण किया और इस नवीन वादन शैली को फर्रूखाबाद घराने का नाम दिया। नवीन ढंग की अनेक रचनाओं द्वारा फर्रूखाबाद को घराने के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने में सफलता प्राप्त हुई और विलायत अली, उ0 हाजी विलायत अली खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्री अरविन्द मुलगांवकर के अनुसार–"हाजी साहब कलाकार के साथ–साथ एक अच्छे गुरू भी थे। उन्होंने उस युग में तबला का एक विद्यालय खोला था जब विद्यालय की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।"[7]

हाजी साहब की गते वर्तमन तबला वादकों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।, उनकी गतों को प्रस्तुत करके आधुनिक तबला वादक गौरव अनुभव करते हैं।

हकीम मोहम्मद करम इमाम हाजी साहब के लिए लिखते हैं कि "हाजी विलायत अली गत वादन में कुशल थे। हज करने के पश्चात उन्होंने महफिलों में बजाना छोड़ दिया था।"[8]

उ0 मुनीर खाँ–फर्रूखाबाद घराने के सुप्रसिद्ध तबला नवाज मुनीर खाँ का जन्म संगीतज्ञों के एक परिवार में लगभग सन् 1863 में मेरठ के ललिया नामक गाँव में हुआ था। मुनीर खाँ बचपन से ही बड़े परिश्रमी और लगनशील थे। संगीत के प्रति उनका रूझान

देख पिता काले खाँ ने उन्हें तबला शिक्षा के लिए उ0 हुसैन अली खाँ के पास भेज दिया। 8 वर्षों तक तालीम पाने के पश्चात उन्होंने उ0 अली बख्श से 12 वर्षों तक तबले की शिक्षा ली। तबला वादन का अभ्यास करते–करते अच्छा ताल ज्ञान प्राप्त कर संगीत सम्मेलनों में भाग लेने लगे। संगीत सम्मेलनों में संगीत कर बहुत से तबलियों की सेवा करके उनसे ज्ञान अनुभव एवं अन्तरंग विशेषता भी हासिल की।

24 गुरुओं से तबले के बहुत सारे घरानी की रचनाएँ प्राप्त करने के कारण तबला जगत में उन्हें 'कोठीवाले' तबला वादक की उपाधि से नवाजा गया। उ0 मुनीर खाँ महान गुरुओं के संस्कारों एवं आर्शीवाद से स्वयं भी नई–नई खूबसूरत रचनाएँ बनाने लगे।

सुरेश मणिकर के अनुसार–"अपने शिष्यों को आदर्श ज्ञान और कौशल प्राप्त हो सके और वे बड़े कलाकार बन सके, इस दृष्टि से गुरु के पास जिन–जिन गुणों का होना आवश्यक है वे सब गुण उ0 मुनीर खाँ, उ0 हबीबुद्दीन, पं0 सुबरावमामा, पं0 गणपत शव कवठेकर (डवरी) जैसे समर्थ कलाकार मार्गदर्शन एवं तालीम के जरिये निर्माण हो सके।"[9]

11 सितम्बर सन् 1937 को इस महान कलाकार का देहानत हो गया। फर्रूखाबाद घराना इस महान तबला नवाज का संगीत जगत में योगदान अतुलनीय है।

उ0 अहमद जान थिरकवा–फर्रूखाबाद घराना एवं दिल्ली घराने की वादन शैली में सिद्धहस्त अद्भुत कलाकार उ0 अहमद जान थिरकवा का जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में सन् 1891 में एक संगीत परिवार में हुआ था। तबले की प्रारम्भिक शिक्षा अपेन पिता हुसैन बख्श एवं नाना कलंदर बख्श से प्राप्त की। तत्पश्चात उन्होंने उ0 मुनीर खाँ के सानिध्य में शिक्षा ग्रहण की। तबले में थिरकती हुई उंगलियों के कारण उ0 अहमद जान का नाम थिरकवा कहा जाने लगा। थिरकवा जी स्वतंत्र वादन की बन्दिशों में सर्वप्रथम पेशकार से प्रारम्भ होकर चलन, कायदे, रेला, लंगर और उसी के साथ–साथ गत टुकड़े आदि का वादन होता था। वे स्वतंत्र वादन प्रस्तुतिकरण में कठिन लयकारियों के स्थापन पर सरल लयकारियों का प्रयोग उचित माना करते थे। वह बन्दिशों के बोलों के वजन के अनुरूप ही विभिन्न लय में तबला वादन किया करते थे। थिरकवा जी पेशकार के उपरान्त एक भिन्न प्रकार की रचना का वादन करते थे जिसे वह 'पेशकार रंग' के नाम से सम्बोधित किया करते थे। उन्होंने इस रचना को इतना बजाया कि यह तबला जगत में स्थापित हो गयी।नवीन वादन प्रकार को प्रचलित करने की दिशा में थिरकवा जी द्वारा 'चलन' नामक वादन प्रकार तबला संगीत जगत को एक अनुपम भेंट है।

पं0 विजय शंकर मिश्र जी के अनुसार–"अहमद जान थिरकवा जी के शिश्यों में चाँद खाँ बिजनौरी, चचेरे भाई तथा दमाद लगड़े अहमद अली पुत्र नवीन जान, अली जान और मोहम्मद जान, निखिल घोष, भतीजे रशिद मुस्तफा तथा जमीर अहमद, भाई मोहम्मद खाँ, भांजा सरवर हुसैन तथा सब्बन खाँ, सुधीर कुमार वर्मा, मेहंदी हुसैन, नारायण जोशी प्रमुख हैं।"[10]

13 जनवरी सन् 1976 को थिरकवा जी ने अन्तिम साँस ली। इनके द्वारा संगीत जगत को दिये अतुलनीय योगदान के फलस्वरूप वह संगीतमय आकाश में सदैव सूर्य के समान चमकते रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

1.पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, डॉ0 आबान ए मिस्त्री, पृष्ठ सं0 146
2. पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, डॉ0 आबान ए मिस्त्री, पृष्ठ सं0 148
3. तबला वादन कला और शास्त्र, श्री सुधीर माईणकर, पृष्ठ सं0 229
4. तबले पर दिल्ली पूरब, श्री सत्यनारायण वशिष्ठ, पृष्ठ सं0 106
5. ताल परिचय भाग–3, श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ सं0 44
6. पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, डॉ0 आबान ए मिस्त्री, पृष्ठ सं0 150
7. 'तबला', अरविन्द मुलगांवकर, पृष्ठ सं0 297 प्रथम संस्करण (मराठी)
8. मअदन–उल–मूसिकी, हकीम मोहम्मद करम इमाम
9. तबला वादक में नहित सौन्दर्य, सुरेश मणिकर, पृष्ठ सं0 218
10. तबला पुराण, पं0 विजय शंकर मिश्र, पृष्ठ सं0 33

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा
विभागाध्यक्ष संगीत
एम॰ बी॰ पी॰ जी॰ कॉलेज हल्द्वानी
उत्तराखंड (भारत)

राजेश कुमार आर्या
शाधार्थी (संगीत)
एम॰ बी॰ पी॰ जी॰ कॉलेज हल्द्वानी
उत्तराखंड (भारत)

12

मुशर्रफ आलम जौकी के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक मूल्य विघटन

गुलशन समीना रियाज

सारांश –

मूल्य' हमारे जीवन के अत्याज्य एवं अनिवार्य तत्व हैं।जीवन के अनेक आयामों वाला रूप देने में मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। इनके बिना सामाजिक, आध्यात्मिक,सुखद तथा शांतिपूर्ण जीवन असंभव है। अपने मूल्यवान आचरण से ही मनुष्य जीवन को ओरों के लिए श्रद्धास्पद बनाता है। महान व्यक्तित्व मूल्यों से ही ओतप्रोत रहें हैं। इनकी अविद्यमानता में मानव दानव बन सकता है। मूल्यों तथा मान्यताओं के आधार पर ही समाज का परिचालन होता है। इनके अभाव में समाज में अनुशासनहीनता तथा अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है।

'मूल्य' शब्द आधुनिक समय में गंभीरतापूर्वक विचार–विमर्श का विषय बन गया है। यह शब्द वैदिक शब्द 'अर्थ' का पर्यायवाची शब्द है।वैदिक वांग्मय में पहले मूल्य के समानार्थक शब्द 'ऋत' तथा 'सत्य' व्यवहार में लाये जाते थे,किन्तु अब प्राथमिकता 'मूल्य' शब्द को ही दी जाती है । यह शब्द वास्तव में नीति–शास्त्र शब्द का सामानार्थक शब्द है। अर्थ–शास्त्र में यह शब्द 'बाजार' पर अर्थ विनिमय के अपेक्षित प्रतिमान के अर्थ में परिलक्षित होता है । यह शब्द अर्थ–शास्त्र में दो अर्थों में व्यवहृत है । पहला अर्थ है 'विनिमय–क्षमता' अर्थात किसी पदार्थ के आदान–प्रदान में दिया जाने वाला धन,दान,धर आदि तथा दूसरा अर्थ है 'व्यवहार'(उपयोग),जिसका तात्पर्य है मानव– अभिलाशाओं तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि में सहायता करने वाले पदार्थ की योग्यता अथवा सामर्थ्य ।

आधुनिक समय में 'मूल्य' शब्द अर्थशास्त्र तक ही सीमित नहीं रहा है, बल्कि दर्शनशास्त्र ,नीतिशास्त्र,समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में भी इस शब्द का उल्लेख किया गया है।समाजशास्त्र में 'मूल्य' को सामाजिक जीवन का मापदण्ड तथा सर्वोत्तम तत्व माना जाता है।नीतिशास्त्र में 'मूल्य' का आशय है नीति के अनुकूल होने वाला आचरण या व्यवहार ।मनोविज्ञान में 'मूल्य' को मनुष्य की आत्मसंतुष्टि का केंद्र–बिंदु समझा जाता है ,किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक मनुष्य की नैतिक शक्ति को 'मूल्य' की संज्ञा देते हैं ।उनका मानना है कि मनुष्य मूल्य से ही उपयुक्त–अनुपयुक्त में अंतर समझ पाता है । मानक हिंदी कोश में 'मूल्य' को वह गुण या तत्व माना गया है जिस पर किसी की श्रेष्ठता या मान अवलंबित होती है।

मूल्य का विवेचन साहित्य में कई प्रकार के दृष्टिकोणों से किया गया है , जैसे वैज्ञानिकों, भौतिकवादियों,आदर्शवादियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने मूल्य से सम्बन्धित अपने मत इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं–

1.**डॉ.नगेन्द्र** के अनुसार :– "मूल्य पदार्थ की सार्थकता एवं आंतरिक महत्व का ही वाचक है उसके स्वरूप या प्रकृति का नहीं,यद्यपि सार्थकता प्रायः स्वरूप से आबद्ध नहीं होती और स्पष्ट शब्दों में मूल्य का क्षेत्र पदार्थ की प्रकृति की सीमा पार कर प्रयोजन तक पहुँच जाता है।"[1]

2."**प्रो.कृष्णनाथ** ने उस वस्तु को मूल्यवान माना है जिसके लिए एक मनुष्य को बहुत ज्यादा मूल्य चुकाना पड़े।"[2]

3.**डॉ.डेवी** के अनुसार :–"मूल्य परिमाण सापेक्ष, मानव सापेक्ष एवं समाज सापेक्ष है।"[3]

4.**पेपर** के अनुसार :– "कोई भी अच्छी या बुरी चीज मूल्य है।"[4]

'मूल्य' यथार्थतः सामाजिक रूप से स्वीकृत धारणाओं, बातों तथा विचारों को हम कह सकते हैं। ये सामाजिक रूप से स्वीकृत आकांक्षाएँ तथा लक्ष्य होते हैं जो सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा अपने में समाहित किए जाते हैं। यह एक ऐसी सुविचारित धारणा है जो मनुष्य को पशुता से दूर ला कर एक निष्ठावान एवं प्रगतिशील व्यक्ति बनाती है। एक व्यक्ति का विवेक सभी मूल्यों का मूल उद्गम है और उसी विवेक से विचारों का निर्माण होता है ,उन विचारों से धारणाएँ प्रकट होती हैं तथा धारणाओं से मूल्य का सृजन होता है। मूल्य परिस्थिति और गत्यात्मक पर अवलंबित होते हैं। मनुष्य एवं परिधि की अंतर्क्रिया द्वारा ही मूल्यों का उद्गम होता है। इनमें एकरूपता होने की अवस्था अथवा भाव होते हुए भी भिन्नता देखने को मिलती है ,जैसे धर्म का स्वरूप परिस्थिति के अनुसार ही परिवर्तित होता रहता है। शाश्वत मूल्य जैसे अहिंसा, सत्य,परोपकार, दया, प्रेम, करुणा आदि वास्तव में चिरस्थायी नहीं होते हैं, बल्कि उनका अंतर्स्थापित भाव शाश्वत होता है और इस भाव का रूप देशकाल एवं परिस्थिति के अनुकूल बदलता रहता है, किन्तु वह मानव जाति के लिए हितकारी या कल्याणकारी होता है।

"सामाजिक मूल्य वे सामाजिक लक्ष्य ,आदर्श या मापदंड हैं जिनके आधार पर एक परिस्थिति , व्यक्ति या वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है।"[5] सामाजिक मूल्य ही समाज को समूहबद्धता तथा नियन्त्रण बनाए रखते हैं तथा समाज में समानता या एकरूपता उत्पन्न करते हैं। मनुष्य के व्यवहार तथा उन्नति के लिए भी सामाजिक मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं। इन मूल्यों में आदर्शात्मक ,

संज्ञात्मक तथा भौतिक जैसे तत्व निहित होते हैं। देश की संस्कृति बनाए रखने में भी ये सहायक होते हैं। अतः ये मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों के स्रोत माने जाते हैं।

आधुनिक युग में सम्पूर्ण विश्व कई तरह की सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है और दुख इस बात का है की हमारा महान देश भी इससे अछूता नहीं रहा है। हमारा देश इन दिनों भ्रष्टाचार , निर्धनता , बेरोजगारी , क्षेत्रवाद , अपराध , नारी शोषण आदि समस्याओं से त्रस्त है। मुशर्रफ आलम जौकी ने अपने अनुभवों के आधार पर विविध प्रकार की समस्याओं को सूक्षमता से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। आप ने समकालीन युग की घटनाओं और समाज में व्याप्त उत्थान–पतन के अनेक संदर्भ–बिन्दुओं को नितांत सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। अतः अपनी लेखनी कौशल के माध्यम से आप ने अपने युग के स्थूल यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

वर्तमान युग का दौर प्रतियोगिता का दौर है। यह युग स्वार्थ , धनलोलुपता , अहंकार , अधर्म तथा अनैतिकता का युग है। जो भावनात्मक सम्बन्ध माता–पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ पहले होते थे , वे अब समाप्त हो गए हैं। आधुनिक युग में जहाँ युवा पीढ़ी अपने जीवन में प्रगति कर रहे हैं , वहीं उनके वृद्ध माँ–बाप अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में अकेलेपन से जूझ रहे हैं।आज लोग अपनी उन्नति के लिए अपने सम्बन्धियों की भावनाओं तक को दांव पर लगा देते हैं। भावनाओं के मामले में युआ पीढ़ी पीछे रह गयी है। इस उपभोक्तावादी दौर में नई पीढ़ी अपने कर्तव्यों को भूलती ही जा रही है। परिणामतः सारा जीवन सम्मानपूर्वक व्यतीत करने वाले बूढ़े माता–पिता को घृणित जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। उन्हें मृत्यु का इतना डर नहीं रहता जितना अकेलेपन का भय उन्हें सता रहा है।

आधुनिक जीवन में परिवार के सभी सदस्यों के सम्बन्ध–सूत्र एकदम ढीले पड गये हैं। पिता–पुत्र के संबंधों में कृत्रिमता तथा औपचारिकता का समावेश हो गया है , माँ की स्थिति भी अपने ही घर में अत्यंत कष्टप्रद हो गयी है और स्वार्थपरता के कारण सगे भाई भी एक–दूसरे के खून के प्यासे हो गये हैं। इसका स्टीक चित्रण मुशर्रफ आलम जौकी ने 'बयान' उपन्यास में एक बूढ़े पिता 'बालमुकुन्द शर्मा जौश' द्वारा किया है , जिसके दो बेटे 'अनिल' तथा 'नरेंद्र' अपनी निजी विकास की होड़ में एक–दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं - "बच्चों के लक्षण ठीक नहीं तो ये घर टूटने से कोई नहीं बचा पाये गा।यहाँ इस हकीकत को पहचानता हूँ और कम अज कम अपनी जिन्दगी में उसे टूटा और बँटा नहीं देख सकता। आप समझ सकते हैं ———बच्चे मेरे इस जख्म को क्या समझेंगे।"[6] संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति विरासत का आधारभूत केंद्र हुआ करता था किन्तु दुर्भाग्यवश यह विचारधारा एवं भाव समय के साथ धीरे–धीरे घटता गया और एकल परिवार की संकल्पना समाज में तेजी से बढ़ती गयी। इसका मुख्य कारण है व्यक्तिगत– स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वार्थ , औद्योगीकरण तथा भौतिकता की अंधी दौड़ में पश्चिमी सभ्यता के प्रति उन्मुक्तता आदि।

समकालीन युग में आधुनिकता के कारण दाम्पत्य संबंधों पर भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव अधिक बढ़ने लगा है तथा मानवीय मूल्यों में परिवर्तन होने लगा है। अब मियाँ–बीवी भी अपना एक व्यक्तिगत स्वातंत्र्य चाहते हैं। वे दोनों अब स्वतंत्र अस्तित्व की मांग करने लगे हैं। फलतः उनके पवित्र सम्बन्ध में भी अब दरार पड़ने लगे हों पति–पत्नी के बीच जो समर्पण , सेवा , संयम , त्याग जैसी भावनाएँ होती थी ,उनका अब ह्रास होने लगा है। मुशर्रफ आलम जौकी द्वारा रचित उपन्यास 'पोकेमान की दुनिया' में दाम्पत्य संबंधों की छटपटाहट प्रमुख रूप से उभरती है। इस उपन्यास में एक न्यायधीश 'सुनील कुमार राय' की पत्नी 'स्नेहा' अत्याधुनिक विचारों वाली नारी होती है। इसलिए वह अपने बच्चों को भी पाश्चात्य रंग–ढंग अपनाने में साथ देती है किन्तु सुनील कुमार राय अपने देश की रीति–रिवाजों तथा परम्पराओं को नष्ट होते हुए नहीं देखना चाहता। इस बात को ले कर उन दो के बीच कई बार वाद–विवाद हो जाता है। परिणामस्वरूप उनकी दाम्पत्य जीवन में शिथिलता आ जाती है।

दाम्पत्य सम्बन्ध पहले सम्पूर्ण समाज, राष्ट्र तथा परिवार का मूलाधार माना जाता था। भारतीय महिलाएँ पहले अपने पति के कर्म, गुण ,स्वभाव आदि को आधार बनाकर पतिव्रत धर्म का पालन करती थी तथा अपने जीवनसाथी को देवता के समान पूज्य मानकर स्वयं को उसके लिए समर्पित समझती थी किन्तु अब नारी–सशक्तिकरण की प्रक्रिया , दहेज प्रथा , बेमेल विवाह आदि कारणों से दाम्पत्य सम्बन्ध विघटित होने लगा है। ओहदा , शिक्षा , सभ्यता ,उम्र आदि में असमानता भी पति–पत्नी के आपसी समझौता में बाधा डालती है। मुशर्रफ आलम जौकी के उपन्यास 'बयान' में बालमुकुन्द शर्मा जौश तथा उसकी पत्नी के विचारों में तालमेल नहीं बैठ पाता।बालमुकुन्द शर्मा जौश की पत्नी एक अशिक्षित और सामुदायिक नारी होती है , जबकि बालमुकुन्द स्वयं एक उच्च शिक्षित तथा धर्मनिरपेक्ष विचारों वाला व्यक्ति होता है। लेखक ने इसका स्पष्टीकरण इस पंक्तियों द्वारा किया है -"यह औरत ———इसीलिए यह औरत जो उनकी पत्नी थी , कभी उस औरत से वह दिल का टाँका नहीं जोड़ सके। सात फेरे लिए थे ———बस। यह फेरे थे की वह साथ निभाये जा रहे थे ———मगर अन्दर से इस नाटक में वह हर तरह की अदाकारी करने पर मजबूर थे।"[7]

समकालीन युग में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा अपनी चरम सीमा पर चल रहा है , जिसको बढ़ावा देने में अपहरण, बलात्कार , स्त्रियों को जला देना , मारना , पीटना ,छेड़छाड आदि प्रमुख भमिका निभा रहे हों मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज में

घटित बलात्कार कांड , शिवानी भटनागर यौन शोषण कांड , अन्जनामिश्रा कांड , नैना साहिनी तंदूर कांड आदि ने नारी शोषण की अग्नि में घी का कार्य किया ह। अपनी कोख से पुरुष को जन्म देने वाली महिला आज उसी स्वार्थी एवं निष्ठुर पुरुष द्वारा तिरस्कृत की जाती है। 'पोकेमान की दुनिया' उपन्यास में मुशर्रफ आलम जौकी ने एक नारी पात्र 'मैरी फर्नाडिस' के निम्नलिखित संवाद द्वारा समकालीन युग की कुंठित , दरिद्र तथा शोषित नारी का सशक्त चित्रण किया है -" इस दुनिया में क्या होता है , सोच कर जीना अच्छा नहीं लगता सर। अब गुजरात देखिए ,आग लगा हो , वार हो या राइट(त्पवज) , आप देखिए गा यहॉ। सबसे पहले झोंका जाता है , ये लेडिज लोग सबसे पहले जलता है। उसी का रेप होता है। वो भी खुले आम। आप ने पढ़ा होगा सर , वह जाहिर शेख , सबूही मिर्जा-आप ने पढ़ा।राइट खतम होने का नाम ही नहीं लेता। चलता रहा। काहे को खत्म होगा। सब अपुन लेडिज हैं ना , जहाँ रहे गा वहाँ रेप होगा।"[8]

आधुनिक नारी को बाजारवाद में कभी देहयष्टि , कभी फैशन शो, कभी तो सेक्स सिम्बल के रूप में, कभी सौन्दर्य–प्रतियोगिता तथा कभी विज्ञापन द्वारा बाजार के बीच लाकर खड़ा कर दिया जाता है। मीडिया तथा प्रशासन संस्थान भूमंडलीकरण के इस दौर में महिलाओं से सम्बंधित मुद्दों को अधिक से अधिक बिकाऊ खबरें बनाने में लगे हैं । मुशर्रफ आलम जौकी ने 'पोकेमान की दुनिया' उपन्यास में इस समस्या पर प्रकाश डाला है, जिस में एक अल्पवयस्क बच्चा (रवि कंचन) अपनी सैमवयस्क बच्ची (सोनाली) के साथ बलात्कार करता है। सोनाली के माँ–बाप अपनी बच्ची का नाम नहीं उछालना चाहते हैं किन्तु मीडिया(नेशनल टाइम्स रिपोर्टर) इस पूरी घटना को चौंकाने वाली हेडिंग के साथ समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं।

वर्तमान समय में अपराधों की संख्या भी बढ़ती ही जा रही है। आज पूरे विश्व में चोरी , लूट, हत्या, बलात्कार जैसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। प्रतिदिन महिलाओं से जुड़े अपराध के कई मामले सामने आ रहें हैं।कमसिन बच्चियों से ले कर नब्बे साल की वृद्ध स्त्री तक को आज यौन हिंसा का शिकार होना पड़ता है। जब हम अपराधों की प्रकृति पर विचार करते हैं तो यह आभास होता है की आर्थिक असमानता ही लोगों को अपराध करने के लिए उकसा रही है। निर्धनता एवं बेरोजगारी के कारण कई लोग अपराध करने के लिए विवश हो जाते हैं। आज प्रत्येक देश अपराध तथा अपराधियों की चपट में है। स्थानीय युवक बाहिरी अपराधियों से मिलकर हत्या, बलात्कार, अपहरण जैसे गंभीर अपराधिक वारदातों को अंजाम दे रहें हैं। इसका मुख्य कारण बेरोजगारी ही है।बड़ी–बड़ी डिग्रियाँ उत्तीर्ण करके नव–युवाओं को बेरोजगार होने का डर नशे की ओर धकेल रहा है तथा उस नशे से लतपत कब वे अपराध की दलदल में धंस जाते हैं , उन्को खुद इसका आभास नहीं होता।'जिबह' उपन्यास में लेखक ने समकालीन युग की बेरोजगारी के कारण होने वाले अपराधों पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत उपन्यास में एक निर्धन पिता (अब्दुल) का बेटा (अशरफ) बेरोजगारी के कारण मादक दृव्य सेवन , जुआ खोरी , शराब खोरी , डकैती आदि सामाजिक विसंगतियों के चक्कर में पड़कर अपराध करने लगता है। अपने बेटे (अशरफ) को बुरी संगति में देख कर अब्दुल अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करता है -"सुना है कोई गन्दा कारोबार करता है-स्मेक बेचता है ,स्मेक।"[9]

निष्कर्षतः

मुशर्रफ आलम जौकी के हिंदी उपन्यासों के वैचारिक विवरण के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं की स्वतंत्रता के पश्चात स्वाधीन भारत के समस्त क्षेत्रों में सामाजिक, राजनीतिक , धार्मिक एवं आर्थिक मूल्यों का विघटन वृहद स्तर पर होने लगा है।समाज में मानवीय तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. वेदप्रकाश. 'बोधा के काव्य में जीवन मूल्य'.पृ.10
2. अमिताभ वेदप्रकाश. 'हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण.पृ.24
3. वेदप्रकाश. 'बोधा के काव्य में जीवन मूल्य'. पृ.11
4. अमिताभ.वेदप्रकाश. 'हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण'. पृ.29
5. दुबे.सरला. 'सामाजिक विघटन और सुधार'. पृ.145
6. जौकी.मुशर्रफ आलम. 'बयान'.पृ.164
7. वाही. पृ.124
8. जौकी.मुशर्रफ आलम. 'पोकेमन की दुनिया'.पृ.65–
9. जौकी.मुशर्रफ आलम. 'जिबह'पृ.51

गुलशन समीना रियाज
शोध–छात्रा,हिंदी विभाग
कश्मीर–विश्वविद्यालय
श्रीनगर (कशमीर)

13

वाह जिंदगी : जीवन के इंद्रधनुषीय रंग लिए हुए

डॉ. सुधांशु कुमार शुक्ला

सारांश –

साहित्य इतिहास, समाज आदि के सत्य को प्रकाशवान कर भावात्मक–मनोरम धरातल प्रदान करता है। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ–साथ दिशा–दर्शक और प्रणेता भी है। साहित्य वर्तमान का चिंतन, विगत से प्रेरणा तथा भविष्य के प्रति कल्पना की नींव रखता है। मुझे हर्ष है कि भारतवर्ष की मिट्टी, संस्कृति, मूल्यों, गुरू कृपा आदि ने, मुझे साहित्य सेवी बनाने के साथ–साथ अध्यापन का कार्य भी करने का सौभाग्य और अवसर दिया है। भारतवर्ष की पावन धरती पर शोध और अध्यापन कार्य करने के साथ–साथ मुझे दो वर्ष पहले पोलैंड में भी हिंदी अध्यापन, उसकी पताका लहराने, उसका प्रचार–प्रसार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रवास के समय पोलैंड में मुझे अमेरिका, कनाडा, डेनमार्क, लंदन, यूक्रेन, पोलैंड आदि के कई देशी–विदेशी और प्रवासी साहित्यकारों को पढ़ने का अवसर मिला और साथ ही उन पर अपनी लेखनी भी चलाई। इतना ही नहीं मुख्यतः भारतीय दो साहित्यकारों को पढ़ने का भी मौका मिला, इसमें श्री बी.एल. गौड़ जी और डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक जी हैं।डॉ. विवेक गौतम जी का हृदय से आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होंने रमेश पोखरियाल जी का कहानी संग्रह वाह जिंदगी का पीडीएफ मुझे भेजा और उन्हीं के आग्रह पर मैंने उनकी 20 कहानियों को एक ही बैठक में पढ़ लिया। यह कहना भी अनुचित न होगा कि जिज्ञासा और रोमांच से भरी इन कहानियों को मैंने पढ़ा ही नहीं, एक एक शब्द को अपने मानस में उकेरा। इस बात का अफसोस भी है कि पहले मैंने यह कहानी संग्रह या फिर इस साहित्यकार को क्यों नहीं पढ़ा? कारण कुछ भी हो सकते हैं। एक दुर्बलता मेरी भी है कि मैं कभी भी किसी के नाम से प्रभावित होकर किसी की समीक्षा या आलोचना नहीं लिखता हूँ। समीक्षा करते हुए समीक्षक का धर्म निभाना ही समीक्षक का कर्तव्य है। इसी से पुस्तक की तथा समीक्षक की सार्थकता सिद्ध होती है। वाह जिंदगी कहानी संग्रह को लेकर मैं बिना किसी लाग लपेट के, बिना किसी हिचक–झिझक के कह सकता हूँ कि कहानीकार रमेश पोखरियाल जी प्रेमचंद, विशंभरनाथ कौशिक, यशपाल, बी.एल. गौड़ आदि कहानीकारों की श्रेणी में आते हैं।

इनकी कहानियाँ मानव जीवन के हर रिश्ते को दिखाती, समझाती नजर आती हैं। इनकी कहानियों पर इनकी भाषा, इनके स्वभाव अर्थात् व्यक्तित्व की छाया है। व्यक्तित्व की सादगी और ताजगी की तरह बहुत ही सहज भाषा में, सहजता के साथ जीवन की तमाम उलझनों, संघर्षों और जीवन की जिजीविषा को जीवंतता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। भाषायी बोध की क्लिष्टता इन्हें कहीं दूर से भी छू कर नहीं गई है। बहुत ही आसान छोटी सी लगने वाली कहानियाँ जीवन का सबक समझाते हुए, मानस पटल पर अंकित हो जाती हैं। भाषा की मंदाकिनी में जटिल समस्याओं, विमर्शों और भारतीयता, राष्ट्रीयता का भाव अनायास रूप से प्रभावित करता है। कहीं भी कहानीकर उपदेशक के रूप में या फिर किसी बोध को बलात् पूर्वक डालने का प्रयास करते नहीं नजर आते हैं। किसी विचारधारा को थोपते भी नजर नहीं आते हैं। जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं को लेकर जीवन जीने की कला सिखाते हैं। पाठक को भी ऐसे पात्र और घटनाएँ अपने आस–पास मिलेंगी। उसे अपने जीवन से जुड़ी बातों, घटनाओं पर विश्वास होता है और वे इन कहानियों के पात्रों को अपना पात्र, अपने लोग समझने लगते हैं। जीवन में संघर्ष है, संघर्ष से जुझ कर ही आनंद मिलता है, वही वास्तव में जीवन भी है।

कहानी संग्रह का नामकरण वाह जिंदगी ही उसकी सार्थकता को सिद्ध करता है। ईश्वर प्रदत्त जिंदगी बहुत ही खूबसूरत, उम्दा है। अगर जीवन जीने का ढंग, तरीका आता है, तो जीवन खुशहाल हो जाता है। जीवन सुख–दुख, हार–जीत, उतार–चढ़ाव का नाम है। हर हाल में खुश रहने वाले के लिए जिंदगी खुशनुमा होती है, वे जीवन जीते हैं, काटते नहीं हैं। हमें एक सजग नागरिक के रूप में रहते हुए, परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को भी भूलना नहीं चाहिए। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि इनकी कहानियाँ धर्म की सही व्याख्या करती हुई नजर आती हैं। जो जिस जगह, जिस रूप में कार्यरत है, उस पद के अनुरूप ही कार्य करना धर्म कहलाता है। ये कहानियाँ अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्यबोध को जगाती, प्रबोधित करती दिखती हैं। पाठक को बाँध कर रखती हैं और अनायास रूप से पाठकों को सोचने के लिए बाध्य भी करती हैं।

वाह जिंदगी आत्मसंस्मरण शैली में रची यह कहानी लेखक के जीवन को दर्शाती ही नहीं है, अपितु हम सब के जीवन की तस्वीर है। अपने बचपन के संघर्षों के दिन गाँव से शिक्षा के लिए शहर आना और ईमानदारी, कर्तव्य निष्ठा से कार्य करते करते जीवन किस प्रकार गुजर जाता है। दुख के आने पर, लोगों की साजिश का शिकार होने पर बालकनी में बैठे लेखक को एक छाया सी महसूस होती है। वह छाया अपना नाम जिंदगी बताती है। यह लेखक की

कल्पना अपने आप से बातचीत या फिर स्वप्न सा भी हो सकता है। इस माध्यम से कहानीकार ने जिंदगी जीने का भाव जगाया है। हम भाग दौड़ की जिंदगी में जिंदगी की सबसे खूबसूरत प्रकृति को भूल जाते हैं। ऊँचे–ऊँचे पहाड़ नापने की कोशिश नहीं की? क्या कभी देखा इन पहाड़ों के बीच में बहने वाले झरनों को? कभी सुना इन झरनों का संगीत? छूकर देखा कितना निर्मल, कितना शीतल है इनका जल। (पेज–14–15) केवल भाग दौड़ में, पद की गरिमा के कारण अपनी पत्नी और बच्चों को भी समय नहीं दिया। बगीचे के पौधों, फूलों तक को नहीं देखा। उस दिन जिंदगी का भाव समझने–मिलने पर पत्नी कृतिका के साथ गाड़ी से घूमना, बच्चों को परांठे लाकर देना, रिश्तों में ताजगी की ऊष्मा का आना, पौधों को पानी देते हुए भीग जाना, पिक्चर देखना, जिंदगी बहुत खूबसूरत है, बस जरूरत है तो उसे इस नजरिये से देखने की। वाह जिंदगी मैंने मन ही मन उस जिंदगी को धन्यवाद दिया, जो कल ही मेरे पास कुछ समय के लिए आकर मुझे जीना सिखा गई। (पेज–21)

बहुत सामान्य सी कहानी असाधारण सी बात को समझा गई। हम मशीन बनते जा रहे हैं, गधे की तरह तमाम चिंताओं को ढोते हुए, काम के बोझ के तले संजीवनी सी प्रकृति को भूलकर अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं। भौतिक सुखों और अपनी कार्यपद्धति के कारण हम अपनों से दूर, आनंद से दूर, खुशियों से दूर होते जा रहे हैं। सीधी–सादी भाषा की सहजता और सरलता से सीधा जीवन जीना ही जीवन का उद्देश्य है, यह उद्देश्य सार्थक होना कहानी की सार्थकता को दर्शाता है। बहुत कम पात्रों के माध्यम से कहानी का कथानक सीधा सपाट पाठकों को लुभाता है। यह अपने जीवन की कहानी लगने लगती है। प्रकृति का नजारा सूर्य का उदय और अस्त जीवन जीने की दिशा देता है, प्रकृति को देखकर सोचने और बदलने की और जीवन जीने की यह कहानी अद्‌भुत है।

वापसी कहानी अपने नामकरण की सार्थकता को सिद्ध करने वाली ऐसी कहानी है, जो जीवन के आरोपों–प्रत्यारोपों, मन मुटाव को समय की, परिवेश की देन बताती है, इन सब पर मानवीय रिश्तों की गर्मी, ऊष्मा जब पड़ती है, तो घर की वापसी, सुबह का भूला शाम को घर आना जैसा लगता है। वास्तव में उसका स्वागत भी करना चाहिए। यही जीवन भी है। इंसान हालातों, गलतियों का पुतला है, उसे माफ कर देना, गलती मानने पर यही बड़प्पन भी है। कलावती अपने सास–ससुर के, अपने दूसरे पुत्र के पास जाने पर, पुत्र और पति की असमय मृत्यु पर पुत्र के साथ सफाई का काम करते–करते आनंद पुत्र को पालती है। बड़ा हो जाने पर आनंद और अनुभा का विवाह होना, यद्यपि अनुभा आनंद से अधिक पढ़ी लिखी थी, फिर भी उसने अपनी मर्जी से घरवालों को समझाकर आनंद से विवाह किया। दो वर्ष बाद अपनी आजादी, मर्जी के कपड़े पहनने के वाद–विवाद में घर छोड़कर अपने मायके रहने आ जाती है। पिता की नासमझी, पिता का लड़की के प्रति अंधा मोह घर तोड़ने का काम करता है। अनुभा एक लड़की को जन्म देती है, मायके के भाई–भाभी का बदलता व्यवहार माँ की अच्छी सीख से अनुभा बेटी को लेकर अपने घर वापसी करती है। पूरा घर उसकी वापसी से आनंदित हो उठता है। क्रोध में, बहकावे में आने पर घर टूटते हैं। घर को बचाने के लिए क्षमा करना आना चाहिए, ऐसी सीख मामूली सी घटना के माध्यम से कहानीकार ने दी है। समाज परिवेश में रहकर अपनों की सुनो और समझो। यहाँ प्रेमचंद की बड़े घर की बेटी कहानी याद आ जाती है।

साक्षात्कार कहानी बहुत ही सामान्य सी दिखने वाली कहानी लगती है। आज के दौर में भाई–भतीजावाद, सिफारिश के बल पर साक्षात्कार होते भी हैं। कहानीकार ने साक्षात्कार को अपनी संकल्पना से विशिष्ट बना दिया है। मानवता के साथ जीवन जीने वाला, दूसरों की मदद करने वाला, संवेदना से भरा व्यक्ति जीवन में सफलता अवश्य पाता है। कहानीकार ने सिफारिश के ऊपर मानवतावादी दृष्टि को प्रभावशाली और सार्थक सिद्ध किया है। सम्पन्न परिवार का युवक शहरी चकाचौंध में गाँव से आकर रहना चाहता है। चाचा द्वारा मंत्री से सिफारिश लगवाने पर भी मनोहर उस साक्षत्कार में मात्र इसलिए फेल हो जाता है कि उसने घायल किये युवक और वृद्धा को अस्पताल नहीं भिजवाया, उसकी मदद नहीं की। इस घटनाक्रम को कम्पनी के एम.डी. साहब ने स्वयं देखा था। निश्चित रूप से कोई भी व्यक्ति ऐसे संवेदनहीन व्यक्ति को नौकरी नहीं देगा। यह कहानी प्रेमचंद की परीक्षा कहानी और 2019 का नोबल पुरस्कार विजेता की ओल्गा तोकाचुर्क (पोलैंड) की कमरे और अन्य कहानियाँ से मेल खाती है। आचरण को एक सड़क दुर्घटना के माध्यम से दर्शाया है, यह कहानीकार की नयी दृष्टि, नयी सोच को दर्शाती है।

रद्दी वाला कहानी ना केवल मार्मिक है अपितु मानव को छोटा ना समझने की सीख देती है। यहीं तक की बात होती तो भी कोई विशेष बात ना होती। आज के समय में शिक्षा के व्यापक अर्थ को व्याख्यायित करने वाली यह कहानी कर्म प्रधान भारतीय संस्कृति की ओर संकेत करती है। कोई भी काम छोटा बड़ा नहीं होता है। कर्म को पूजा मानकर व्यवसाय को अपनी रोजी–रोटी ही नहीं अपनी मेहनत से अर्जित साधना समझने वाले रद्दी वाले काबेटा आई.ए.एस. अधिकारी बन जाता है। फिर भी रद्दीवाला अपना काम नहीं छोड़ता है। भारतवर्ष अपने कर्म कौशल से जाना जाता था। भौतिकवादी सोच, अकर्मण्यता, स्वयं के काम को छोटा समझने का भाव, हमें बेरोजगारी की ओर धकेल रहा है। कहानीकार मेघना के पिता को हैरानी में डाल देते हैं। जब उन्हें पता चलता है कि हर महीने रद्दी लेने आने वाला उनका समधी बनने जा रहा है। अपने आप को अपने काम से गौरवान्वित करने वाले का बेटा आई.ए.एस. अधिकारी है। फिर भी वह अपना काम करना नहीं छोड़ता है। भारतीय युवा

बेरोजगारी का शिकार शायद अधिक इसलिए भी हो रहा है, उन्होंने चकाचौंध के कारण अपने काम को बंद करके सरकारीसुविधाओं की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। यह कहानी काम के प्रति ईमानदारी को भी दर्शाती है। आपके घर की किसी रद्दी का दुरुपयोग नहीं हो सकता। पास में जो पेपर मिल है, उन्होंने अधिकृत किया है मुझे। (पेज–42) भाषा की सहजता और एक घटना में घटित कहानी निश्चित रूप से बेमिसाल है। बिन कुछ कहे सब कुछ कहने कीकला में बेजोड़ कहानीकार हैं, रमेश पोखरियाल जी।

साक्षात् कहानीमाँ सुरजी के लाड दुलार में बिगड़े बेटे जयदीप की है।माँ की तरफदारी,माँ का प्रेम, शिक्षकों से जयदीप के लिए लड़ना, जयदीप को चोर बना देता है। यह कहानी बड़ी ही सहजता से उन अभिभावकों को सूचित करती है, जो हमेशा पुत्र की तरफदारी, पुत्र का पक्ष लेकर समाज में शिक्षकों से लड़ते हैं। ऐसे अभिभावक बच्चों का भला नहीं करते हैं। वह उन्हें जयदीप जैसा बिगड़ा चोर बना देते हैं। साथ ही यह जयदीप के मंदिर में से भगवान पर चढ़े हार को चुराते समय आत्मा की आवाज, भगवान की कृपा से क्षण भर में उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह चोरी करना बंद करके वह सौ रुपया रोज के किराए पर रिक्शा लेकर सवारी के इंतजार में वही मंदिर के बाहर खड़ा था। आत्मा की आवाज सुनने पर भगवान पत्थर क्या कंकण में नजर आते हैं। लालच में,क्रोध में, अहंकार में, हम अपनी आत्मा की आवाज को सुनकर भी अनसुना कर देते हैं। गुमराह होकर बुरे कामों में लग जाते हैं। मंदिर में श्रद्धा भाव से खड़े होने पर ईश्वर ही ईश्वर सब जगह नजर आता है।

दंड कहानी विमल के महानगर दिल्ली में आकर सरकारी नौकरी से शुरू होती है। उस पहाड़ी हरियाली प्रकृति को छोड़कर महानगरों की चकाचौंध में फँसे सरकारी गबन के झूठे केस में फँसे अर्थहीन विमल और उनकी पत्नी सुगंध की कहानी है। पुत्र शांतनु के 15 वर्ष से ट्यूशन पढ़ाकर नौकरी करने की अथक कहानी है। पिता विमल की अकर्मण्यता, काम ना करने के भाव से पिता–पुत्र के जमे हिमखंड की कहानी है।पिता–पुत्र की संवाद हीनता विमल को जीते जी दंडित करने की कहानी है। पुत्र के बचपन छिन जाने, पढ़ाई में पिछड़ जाने का दर्द, पुत्र शांतनु को पिता के प्रति उपेक्षित दोषी समझने की कहानी है। पिता का दायित्व संतान के लिए सदा होता है। परेशानी या कारण स्वयं बनाकर काम ना करना सबसे बड़ा दर्द है, जो दर्द पूरी कहानी में विमल को परेशान करता है,दंड़ित करता है,पुत्र के सामने नजर तक नहीं मिला पाने की पीड़ा को दर्शाया गया है, जो बहुत ही मार्मिक है।

भाग्यचक्र कहानी भारत में पुत्र रत्न की कामना को संजोए विचार को दर्शाती है। पुत्र–पुत्री के भेदभाव की विचारधारा को अपनाने के कारण परिवारों के विघटन की यह कहानी है।इस घर में अब एक पोता आ जाए तो मैं गंगा नहा लूं सास का अब दिन में कम से कम दोबार तो यह ब्रह्म वाक्य हो ही गया था। (पेज–67)राजेश्वरी के जीवन में उसकीननंद, सास और पति सुरेंद्रके द्वारा पुत्री होने पर तानों–बानो से बेहाल जिंदगी की कहानी है। पति द्वारा घर से निकाल देने की कहानी है। यह कहानी आज के भारत में होने वाले परिवारों की कहानी है। आज समय बदल भी रहा है। अभी और बदलने की आवश्यकता है। पुत्री को पुत्र से कम ना आंकना, जबकि दोनों एक समान है। पुत्री बेटे से बढ़कर माता–पिता का ध्यान रखती है। यह संदेश बहुत सुंदर तरीके से कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। जिस बेटी श्रुति के कारण उसके पिता सुरेंद्र ने उसकी माँ राजेश्वरी को घर से बाहर निकाल दिया था। पुत्र की चाहत में पिता ने दूसरा विवाह किया, उसी पुत्र के कारण आज पिता न्यायालय में खड़ा दोषी के रूप में था। वह भी अपनी बेटी जज के सामने था।

कहानीकार का दूसरा संदेश यह भी है कि भाग्यचक्र घूमता रहता है। यही कारण है कि हमें हमारे कर्मों का फल यहीं मिल जाता है। जैसा कि सुरेंद्र को मिला, पुत्री जज बनने पर यह जानते हुए भी कि यह मेरे पिता हैं, इन्होंने मेरे साथ मेरी माँ के साथ ठीक नहीं किया। जज के धर्म को निभाते हुए कहती है,जो गुनाह आपने नहीं किया उसकी सजा मैं आपको नहीं दे सकती थी, ऐसे संस्कार दिए हैं मेरी माँ ने मुझे और जो गुनाह बाप ने किया है, उसके लिए मेरी माँ बाप को वर्षों पूर्व माफ कर चुकी है फिर मैं सजा देने वालीकौन? (पेज–75) रमेश पोखरियाल जी की शैली अद्भुत है। कहानी कहने लिखने का अंदाज निश्चित रूप से अनूठा है। यह कहानी यथार्थ की जीती जागती तस्वीर है।

वक्त की ठोकर कहानी भाग्यचक्र की तरह ही है। यह दो भाइयों की कहानी है, बड़े भाई सुरेंद्र और उसकी पत्नी के शोषण के कारण एक पैरसे खराब रामलाल छोटे भाई की कहानी है। यह कहानी नसीहत देती है,देख लिया नतीजा अपनों को ठोकर मारने का, जिंदगी ने स्वयं तुम को ठोकर मार दी। आइंदा ध्यान रखना इंसान की दी ठोकर से एक बार आदमी संभल जाता है। लेकिन वक्त की ठोकर से संभलना मुश्किल होता है।(पेज–84) 15 वर्ष बाद बड़े भाई सुरेंद्र को हालातों की मार के कारण छोटे भाई रामलाल के पास आनाऔर छोटे भाई का पिछली बातों को भूलकर बड़े भाई को नौकरी पर लगवाना। टूटे रिश्तो को जोड़ने का काम है। कहानी यही शिक्षा नहीं देती है अपितु जीवन में आगे बढ़ने के लिए हिम्मत,ईमानदारी की जरूरत है।साथ ही यह कभी ना समझे, यह मुझे मिला, यह मेरा अधिकार था घनश्याम सेठ रामलाल से कहते हैं– तुम्हारी ठेली को जिस कार ने टक्कर मारी थी वह कार मेरी ही थी। मैंने जब तुम्हें पार्क में देखा तो पहचान लियाऔर तुम्हें काम दे दिया। लेकिन यह बात मैंने आज तक तुम्हें इसलिए नहीं बताई कि तुम मुझे अपराधी समझते और नौकरी को अपना हक फिर तुम मेहनत नहीं करते और इस मुकाम पर नहीं पहुँच पाते। (पेज–83)ईमानदारी, मेहनत के साथ जीने वाला व्यक्ति संघर्षों का

सामना करता है। टूटता नहीं है, आगे बढ़ता है। ऐसी सीख युवाओं की सोच को बदलती है। रिश्तो की गरिमा समझाती है।

बसंतोएक ईमानदार, मेहनती और साहसी औरत की कहानी है।28 वर्षीय बसंती दो बच्चों, सास और अपाहिज पति का सहारा है। वह गाँव के बुजुर्ग के जरनल स्टोर पर काम करके अपनी लोकप्रियता से,गाँव के नेता के कहने पर पंचायत का चुनाव जीत जाती है। उसकी ईमानदारी और पति के साहसी मन के द्वारा वह जगदीश धोखेबाज नेता के चंगुल में नहीं फँसती है। वह यह मिथक तोड़ देती है कि चुनाव केवल पैसे के बल पर नहीं जीते जाते हैं। यह कहानी अच्छे लोगों को राजनीति में आगे आने को प्रेरित करती है।

सजा तो मिलेगी काठ की हांडी बार–बार नहीं चढ़ती है। यह बात इस कहानी के द्वारा सिद्ध होती है। रघुवीर और उसकी बेटी सीधे–साधे लड़के के परिवार को सगाई के बाद दहेज में फँसाने का काम करते हैं, इस कानून के तहत मुख्यतः लड़की वालों की सुनी जाती है।पुलिस जेल के डर से श्यामलाल जी, उनका पुत्र विनय और उनकी पत्नी रुकमा जैसे लोग डर कर रघुवीर जैसे लोगों के सामने मकान बेच अपनी इज्जत बचाते हैं।कहानीकार ने कहानी यहाँ खत्म नहीं की है। समाज को ऐसे दोषी लोगों को सजा दिलाने के लिए कहानी की चरम सीमा पर उसके बचपन के दोस्त सुंदर सिंह को लाकर खड़ा किया है। जिसके बेटे ने श्यामलाल जी का मकान खरीदा था। रघुवीर सिंह ने पहले सुंदर सिंह को इसी तरह फँसाया था, अबकी बार सुंदर सिंह ने इंटैलिजेंस को सूचित और विश्वास में लेकर रघुवीर सिंह को जेल और अपने दोस्त को बेघर होने से बचाया। समाज में दोषी लोगों को सजा दिलाने का काम भी समाज के लोगों के द्वारा जागरूक होकर किया जा सकता है।इस तरह तेरा घर भी बच गया और उन बदमाश बाप–बेटी का पर्दाफाश भी हो गया वरना इस तरह ना जाने कितने और घर बिकवा देते हैं। (पेज–102)

आस्था जीत गई कहानी में आस्था की जीत की कहानी है। साथ ही ईश्वर के प्रति अगर आस्था सच्ची हो तो भगवान किसी ना किसी रूप में सहायता करने आते हैं। सतीश अपनी पत्नी साधना के साथ, बेटे आयुष के साथ दोकिलोमीटर लंबे जाम में राजमार्ग में फंस जाता है। बेटे का बढ़ता बुखार, गर्मी का मौसम, जाम की किल्लत में थका हारा बेचौन सतीश कभी गाड़ी से बाहर निकाल कर जाम खुलने का बेसब्री से इंतजार कर रहा था। उसके मुख से निकले यह शब्द इतने वाहनों की कतार में कोई डॉक्टर भी तो हो सकता है। हाँ अगर इस व्यक्ति पर ईश्वर की कृपा हुई, तो ऐसा हो सकता है। क्यों न हम सब अपने कर्म से इस कृपा हो इस तरह पहुँचाने का जतन करें 30–35 वर्षीय एक युवक ने कहा और दो आगे की ओर बढ़ेऔर दो पीछे की ओर डॉक्टर की तलाश में निकल पड़े। (पेज–105)डॉक्टर को ढूँढ कर लोगों ने सतीश के बच्चे की जान बचाई। यह कहानी आंदोलनों के कारण आए दिन जाम के दुष्परिणामों की ओर भी संकेत करती है। साथ ही साथ वीआईपी कल्चर के कारण ट्रैफिक जाम कर देना कहाँ की समझदारी है। ऐसे समय में फँसे लोग मर भी जाते हैं, परीक्षा अर्थात् आवश्यक अवसरों से चूक भी जाते हैं। कहानीकार ने इन सब को सामाजिक विद्रूपता समझा है। यह सत्य भी है। ऐसी सोच आज के समय की माँग भी है। ठौरकहानी मेंअच्छे कर्मों का,ईमानदारी का, अपनों का और सबका हित सोचने वाले व्यक्ति को जीवन में उतार–चढ़ाव अवश्य देखना पड़ता है। किंतु उसको उसकी जिंदगी का एक ठौर मिल ही जाता है। ईश्वर उतार–चढ़ाव को संघर्षों को माध्यम बनाकर उसकी परीक्षा अवश्य लेता है। फिर उसे ठौर भी वही देता है। जीवन जीने कीकला सिखाती यह कहानी एक रघुवीर और सावित्री की नहीं है, हर अच्छे इंसान की इंसानियत की यह कहानी है।

कहानीकार ने यथा नाम तथागुण या फिर यह कहीं भारतीय मिथकों के नाम रखे पात्रों के माध्यम से उनकी मानवतावादी सोच को दर्शाया है। यहाँ पर उन्होंने भारतीय संस्कृति के उदार रूपों को सामान्य ढंग से वर्णित करते हुए उन्हें विशिष्ट बना दिया है। नामी प्रसिद्ध बने साहित्यकारों की तरह मिथकीय पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का उपहास नहीं उड़ाया है। वास्तव में ऐसे रचनाकार ही श्रेष्ठ होते हैं, जो कला को जीवन के लिए जरूरी मानते हैं।घर के सबसे छोटे पुत्र रघुवीर का अपनी पत्नी सावित्री के साथ शहर में नौकरी करते हुए अपने हिस्से की जमीन भी बड़े भाइयों के नाम लिखकर हमेशा भाइयों की मदद करता रहता है। बुरे वक्त में उसके बड़े भाई–भाभी उसे ताने मारते हैं। कोई उसकी सहायता नहीं करता, मिल की नौकरी छूट जाने पर दाने–दाने को मोहताज हो जाता है। परिश्रमी रघुवीर बस अड्डे पर सामान ढोने वाले मजदूर की तरह काम करने पहुँचता है। वहीं पर उसे एक सेठ मिल जाता है, जिसकी बेटी की जान रघुवीर ने बचाई थी। वह उसे अपने घर ले जाता है। अपने विद्यालय में उसे, उसकी पत्नी को नौकरी देता है और उसके बच्चे उसी विद्यालय में पढ़ने लग जाते हैं।आखिर इतने बड़े संघर्ष के बाद उसकी जिंदगी को एक ठौरजो मिल गया था। (पेज–114) प्रेमचंद की तरह रमेश पोखरियाल जी की इस कहानी में सावित्री का व्यावहारिक ज्ञान धनिया की तरह दिखता है। वह अपने पति को बार–बार सचेत करती है। कहानी के तत्वों के आधार पर यह एक बेहतरीन कहानी है।

हम हैं ना साथयह कहानीहंसी खुशी संतोष सब चीजें आपके अंदर हैं, ईश्वर ने दी हैं, यह बताती है। हम अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह के कारण इन से छूटते जाते हैं और दुखी रहते हैं।जीवन जिंदादिली का नाम है। यह भाव कहानीकार ने बेहतरीन ढंग से सिखाने का प्रयास किया है। इस कहानी के माध्यम से हंसमुख लाल जैसे पात्र हमारे जीवन में आते हैं। परंतु हम उन्हें पहचान कर भी उनसे कुछ सीखते

नहीं हैं। ऐसे पात्र भाई भतीजे बनकर भी आते हैं और मेरी जिंदगी में तो अवश्य ही आए। यही कारण है कि हंसमुखलाल एक पात्र न बनकर समाज के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जो जिंदादिली से जीते हैं।जिंदगी के एक एकक्षण में एक एक घटना में खुशियाँ छिपी हैं बस उन्हें ढूँढ कर जीनेकी जरूरत है। (पेज–118–119)हंसमुख लाल कमिश्नर ऑफिस के बाहर 15 वर्षों से ठेला लगाता है।उसकी बातों में चुंबकीय शक्ति थी और शरीर में बिजली जैसी फुर्ती। उसके कुशल व्यवहार और हाजिर जवाबी से सब मंत्रमुग्ध रहते थे। चर्चा घरेलू हो या बाजार की, धार्मिक हो या राजनैतिक, वह हर चर्चा में हिस्सा लिया करता और अपने तर्क भी देता था। साथ ही व्यंग्य तथा चुटकुलों से उस विषय को रोचक बना देता।(पेज–116) दीन–दुखियों को बिना पैसा लिए बुलाकर वह चाय पिलाता। पूछने पर अपने को दो बच्चों को सेंट मैरी और बेटी को आंगनबाड़ी में जाने की कहता। पत्नी का पैर खराब होने के कारण घर पर लिफाफे बनाने की बात करता और जीवन में कोई भी टेंशन नहीं है।खुला खाते हैं, एस करते हैं, साहब कहता।शुक्रवार को केवल ठेली बंद करता। फेफड़े में कैंसर से ग्रस्त होने पर भी अपना दर्द घर और बाहर किसी को नहीं बताता।ठेली ना लगने पर शुक्ला जी और रामप्रसाद जी उसके घर पहुँचते तब उनको पता चलता है, वह दोनों उसी वक्त सब इंतजाम करके दिल्ली ऑपरेशन के लिए भेजते हैं। हंसमुख वह तो हतप्रभ था। लोगों का प्रेम देखकर आँखों से आँसू छलक आए उसके। शायद पहली बार किसी ने उसकी आँखों में देखे होंगे। (पेज–122) वास्तव में अगर आपका व्यवहार अच्छा है तो आपकी मदद करने वालों की कमी नहीं है। जीवन जीना आना चाहिए। आप कैसे जीते हैं। यह उम्दा कहानी है।

कफन कर्ज में गरीब मजदूर दिहाड़ी वाले खदानों, रेत मिट्टी नदियों सेनिकालने वाले लोगों की कहानी है। सरकारी रोक अवैध धंधों के कारण यहाँ काम करने वाले मजदूर मजबूरी में यहाँ काम करते हैं।मालिक की सुनें, मार खाएँ और जेल भी जाएँ। काम बंद होने पर गबरू जैसे मजदूर को अपने बेटे की दवाई के लिए भी पैसे मालिक से नहीं मिल पाते हैं। मंजरी दवा ना मिलने के कारण अपने बेटे को खो देती है। सब जगह से निराश गबरु बेटे का इलाज नहीं करवा पाता,जीते जी तो हम बिटवा की रक्षा ना कर पाए अब तो संस्कार करेंगे ही। वरना ऊपर जाकर बिटवा को क्या मुंह दिखाएंगे जाओ बनिए के पास, मालिक के पास जाओ बोलो यह आखिरी कर्जा है और बहुत जरूरी भी है। गबरू एक बार फिर कफन के लिए कर्ज माँगने मालिक के द्वार पर खड़ा था। (पेज–129)गरीबी मजबूरी की यथार्थमयी मार्मिक कहानी प्रेमचंद की याद दिलाती है।पूस की रात की और फिर कफन की।

टेढ़े मेढ़े रास्ते युवा वर्ग के भटकाव की यह कहानी है। टेढ़े मेढ़े रास्ते किसी भी प्रकार से जल्दी से पैसा कमाने की सोच, शॉर्टकट अपनाना, स्वयं को और परिवार को बदनाम करता है। मायाराम फौजी का बेटा लाल सिंह अपने दोस्तों के साथ उनके बंगले का देख कर जल्द अमीर बनने की चाहत रखता है। दिल्ली में नौकरी और पार्ट टाइम करके गाँव में परिवार में माता–पिता को लंबी गाड़ी से हैरान करके प्रसन्न करता था। यह हैरानी दुख में बदल जाती है जब फोन द्वारा उसे सूचना मिलती है कि उसका बेटा 3 करोड़ की हीरोइन के चक्कर में विदेश की जेल में है। पैसों की भूख ने मुझे पथभ्रष्ट कर दिया था और सचमुच पैसों की भूख लाल सिंह जैसे युवाओं को पथभ्रष्ट कर देती है। अभिभावकों को ध्यान रखना चाहिए कि उनका बेटा इतना पैसा कहाँ से लाया?जीवन सीधे साधे ढंग से जीना चाहिए गलत रास्ते गलत मंजिल पर ले जाते हैं। यह कहानी सीधे ढंग से मेहनत करने को प्रेरित करती है।

उम्र कैद आत्मा की, धर्म की आवाज सबसे ऊपर होती है। कानून को धोखा दिया जा सकता है, धर्म को नहीं। यही कारण है आत्मा हमेशा पीछा करती है। यह कहानी आत्मा की आवाज को बेतहरीन ढंग से बयां करती है। नीहारिका कनाडा में पली, शिक्षित नारी है, जिसका विवाह भारत में रह रहे रईसजादे सुहास के साथ हो जाता है।सुहास जो एक लड़की की हत्या के जुर्म पर पैसे और पिता की ताकत के बल पर छूट जाता है। नीहारिका सास–ससुर और घर के वातावरण और अखबार में छपी खबर से किपैसे और ताकत के बल पर रईसजादा हत्या और बलात्कार के जुर्म से मुक्त। (पेज–152) यह ख़बर और घर में पूजा के समय माँ कोकिला का अपने पुत्र सुहास से कहना अब कोई ऐसा काम नहीं करना, जिससे इतना तनाव हो सबको। आई एम सॉरी मॉम, मेरी वजह से सबको इतनी परेशानी हुई। दरअसल, न सुनने की आदत न थी मुझे। वह मामूली से मास्टर की बेटी इतना गुरूर था उसे अपनी सुंदरता पर कि मुझे ना बोल, मुझे! नाथ परिवार के इकलौते वारिस को। बस भूत सवार हो गया मुझ पर। उसे पाने का और मॉम–डैड, आपने भी तो कभी किसी चीज के लिए मना नहीं किया मुझे, जो माँगा वह दिया। (पेज–156) नीहारिका की बेटी पीहू का पूछना रेप क्या होता है? शेफाली कह रही है कि मेरे पापा ने रेप किया है। एक औरत एक बेटी की सोच को दर्शाते हुए कहानीकार ने सुहासको तो बरीदिखा दिया। लेकिन नीहारिका उसका क्या? वह तो सभी कुछ जानते हुए एक दोषी के साथ उम्र भर की सजा भुगतने को विवश है। बहुत ही मार्मिकता और संवेदनशीलता से भरी यह कहानी है।

मेरा कसूर क्या बाल मनोविज्ञान से भरी अमन की यह कहानी है। मात्र 12 वर्षीय अमन के बाल मनोविज्ञान की यह कहानी है, उसके मस्तिष्क में उठने वाले सवालों और जवाबों की कहानी है। अपने भाई नीलेंद्र के द्वारा उसकी भाभी अर्थात् नीलेंद्र की पत्नी अरुणिमा का आए दिनपिटना, उसका चिल्लाना मत मारो मुझे, क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा? तुम तो सब जानते थे, मेरे परिवार के बारे में। (पेज–157) अमन का अपने माता–पिता से कहना पूछना क्यों भाई

भाभी को मारते हैं। पूरे क्रियाकलाप में माता–पिता का मौन बने रहना, दर्द की पीड़ा को अनसुना कर देना। अरुणिमा की गरीबी, पिता की मजबूरी, दहेज ना लाना, दहेज के लोभियों की काली करतूतें हम आए दिन समाचारपत्रों में पढ़ते हैं। यह कहानी उसी दर्द की गाथा है। जला कर मार दी गई अरुणिमा और गवाही में सास–ससुर और नाबालिक अमन को भी जेल हो जाती है। बालमन से युवा हुआ अमन इस पीड़ा से इतना घायल होता है कि8 साल बाद जेल से छूटने पर भी घर नहीं जाता। अपने माता–पिता और भाई के प्रति घृणा से भर जाता है, पर वह तो अपनी भाभी को प्यार करता था। हमेशा उन्हें हँसाता था, फिर उसका नाम कैसे लिखवा दिया गया, उसका आखिर क्या दोष था? समाज की ज्वलंत समस्या को बेहतरीन तरीके से बयां किया है। बच्चों को यह कहानी पढ़नी चाहिए।

नई आशा वृद्ध विमर्श को दर्शाती यह कहानी युवा पीढ़ी को सोचने समझने को मजबूर करती है। अनूप की जिंदगी अपनी पत्नी आशा के साथ ठीक ठाक चल रही थी। सास–ससुर के बीमार पड़ने और एक बच्ची को जन्म देने पर घर के कामकाज के कारण वह बूढ़े माता–पिता को काटने दौड़ती है।अनूप उसे समझता है,देखो आशा माता–पिता अब बूढ़े हो गए हैं। कितने दिन और जीयेंगे, इसीलिए क्यों उनके प्रति अपना मन खराब करती है। (पेज–163)आशा को एक बात भी अनूप की ना भायी। वे बूढ़े माता–पिता अपने कारण बेटे की जिंदगी को खराब देखना नहीं चाहते थे। वे दोनों एक दिन घर से बाहर निकल गए। अनूप सारा दोष आशा को दिया तो वह अपनी बच्ची लेकर अपने मायके चली गई। समझदार पिता ने बहुत समझाया पर जिद्दी आशा नहीं मानी तो पिता बिरादरी क्या कहेगी? शर्म से स्वयं को कमरे में बंद कर लिया। कमरा खुला वह मृत पाए गए। अनूप घर छोड़कर अपने माता–पिता की खोज में वृद्ध आश्रम खोजते खोजते माता पिता को खोज कर खुशी–खुशी घर लौटने लगा। उधर गाँव के दो लड़के अकेली जवान औरत को देखकर आशा के घर घुसे और पकड़े जाने पर आशा पर ही उन्होंने दोष मड़ दिया गया कि आशा ने ही उन्हें बुलाया था। ऐसे बुरे समय में अब आशा को अपने पति और सास–ससुर की याद आई। वह बच्ची लेकर घर पहुँच गई, नई आशा के साथ। सब खुशी–खुशी रहने लगे। सकारात्मक सोच के साथ लड़की के पिता का कर्तव्य, सास ससुर का कर्तव्य, बेटे का कर्तव्य और बहू के कर्तव्य को बेहतरीन ढंग से बयां किया है। गलती होने पर गलती सुधारना बहुत बड़ी बात है। फिर किस से गलती नहीं होती है, आशा को उसके सास–ससुर और पति घर में देखकर खुशी–खुशी अपनाते हैं।

फिर जीवन जीने के लिए यह कहानी हताशा, तनावग्रस्त टूटे मन के हारे व्यक्ति की है। यह मात्र गजेंद्र की नहीं अपितु उस समाज के लोगों की है, जो लोन लेकर बड़े–बड़े काम करते हैं। भविष्य की अनचाही काली परछाई उन्हें ध्वस्त कर देती है। घर में बंद करके जीवन खत्म करने वाले लोगों को दिशा देती है।इस अपमान भरे जीवन से तो संसार त्याग देना बेहतर, उसके पीछे कुछ भी होता रहे उसे क्या पता चलेगा। (पेज–171)यह भाव गजेंद्र को निराश आत्महत्या की ओर ले जाने लगता है। केदारनाथ की प्रलय होटल पर बैंक का कर्जा, सोना बिकना और अब इज्जत का डर। अरे चोरी, बेईमानी, डकैती तो नहीं कि फिर किससे डर।अगर जीना भी मुश्किल है और मरना भी, तो क्या जीने का विकल्प ज्यादा बेहतर नहीं। उसने अपने आप से प्रश्न किया? (पेज–176) यह विचार आते ही वह कई महीनों के बाद सो पाया, एक बार फिर जीवन जीने के लिए।

डॉ0 रमेश पोखरियाल निशांक जी का कहानी संग्रह वाह जिंदगी कहानी के तत्वों के आधार पर खरा उतरता है। सभी कहानियाँ समसामयिक समस्याओं को लेकर लिखी गई हैं तथा कथानक की लघुता और सीधी चाल से चली, कही गई कहानियाँ अपने उद्देश्य को सीधे प्रकट करती हैं। कहानी में जिज्ञासा का भाव लगातार बना रहता है। जब तक कथानक चरम सीमा तक नहीं पहुँचता है। हर कहानी 3–4पात्रों के इर्द–गिर्द घूमती हैं। यह अपनी ही कहानी लगने लगती हैं। कहानियों में संवाद पात्रानुकूल,समयानुकूल, सरल वाक्य में संक्षिप्त रूप से की लिखी है। इनकी भाषा पोखरियाल जी के व्यक्तित्व की भांति सहज सरल हैं। कहीं भी भाषा की क्लिष्टता, संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग नहीं है। सीधे साधे रास्तों पर चलकर जीवन जीने वाले कहानीकार का व्यक्तित्व उनकी कहानियों में झलकता है। इनकी चाहे वाह जिंदगी, वापसी, साक्षात्कार रद्दीवाला, वक्त की ठोकर, दुष्चक्र आदि कोई भी कहानी हो। वह जीवन जीने का संदेश देती हैं। इनके पात्र हमारे जीवन के लगते हैं।नई आशा कहानी में आशा पात्र हमारे घर की बहू की तरह ही है। कहानीकार अपने पात्रों को संभाल कर भटकते समाज को दिशा दी है।मेरा कसूर क्या का पात्रनिर्दोष अमन पाठक को अपना लगता है। रमेश पोखरियाल जी को ना पढ़ना यह हमारा दोष हो सकता है कहानीकार का नहीं। यह कहानीकार प्रेमचंद, अज्ञेय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बी.एल. गौड आदि की तरह साधना में लीन होकर काम करते हैं, जो पढ़ता है उसे आनंद भी मिलता है। इनकी कहानियाँ नौवीं कक्षा से लेकर बी.ए. तक के छात्रों को पढ़नी–पढ़ानी चाहिए। इस तरह की कहानियाँ बहुत शिक्षाप्रद होती हैं। समाज के लिए, युवा वर्ग के लिए और मानवीय रिश्तों को ऊष्मा देने के लिए, संवेदनाओं की तासीर बनाए रखने के लिए इन्हें पढ़ना अच्छा होगा।

डॉ. सुधांशु कुमार शुक्ला
चेयर हिंदी, आई.सी.सी.आर.
वार्सा यूनिवर्सिटी,
वार्सा पोलैंड
.48579125129

14

गुरुनानक और उनकी समाजिक–चेतना

डॉ0 तृप्ता

सारांश –

सिख धर्म के संस्थापक गुरुनानक देव का जन्म वैदिक ऋषियों की पवित्र भूमि पंजाब में हुआ। भारतीय मध्ययुगीन संत काव्य परम्परां में गुरुनानक देव का गौरवूर्ण स्थान है। उनका अद्वितीय प्रखर महिमामय व्यक्तित्व युगबोध की जारूकता से परिपूर्ण था। इसलिए उन्हें युगपुरुष भी कहा जाता है। गुरुनानक जी ने तत्कालीन सामाजिक सोच व सामाजिक दायित्व का नैतिकता पूर्व निर्वाह किया था। गुरुनानक जी ने अनेकों यात्राओं के माध्यम से समस्त उत्तर भारत की जनता में भारतीय संस्कृति और सामाजिक चेतना के जागरण का मंत्र फूँका था। उन्होंने जनता को शासको के अन्याय और अत्याचार का विरोध कर संगठित होने की प्रेरणा प्रदान की। गुरुनानक ने अपने युग की सभी सामाजिक बुराईयों की भर्त्सना की थी। उनका उद्देश्य समाज की तमाम समस्याओं का अध्ययन कर उनका समाधान जुटाना था। उन्होंने अपने समय के इन तमाम अन्यायी व अत्याचारी लोगों का विरोध किया था चाहे वह हिन्दू धर्म का हो या इस्लाम धर्म का मुसलमान हो। उनका मानना था कि सच्चे शहंशाह तो वे लोग हैं जो ईश्वर के अनुयायी हैं और जो सांसारिक शहंशाहों से नहीं डरते। उन्होंने अपनी रचनाओं में क्रांतिकारी भावों को सृजित किया था। अतः कहा जा सकता है कि वे युगदृष्टा और युग सृष्टा थे।

गुरु नानक देव ने अपने युग के समाज को चेताने का पूर्ण प्रयास किया था। उस समय की सामाजिक स्थितियाँ अत्यंत शोचनीय थी। वह समाज को रुग्ण बना रही थी। समाज की दुर्दशा और माहौल भी बिगड़ा हुआ था। समय पतन के गर्त की ओर अग्रसर हो रहा था। नानक ने अपने समय के समाज का चित्रण इस प्रकार किया है–

कलि होई कुते मुही खाजु होया मुरदार।।
कूड़ बोलि बोलि भड़कणा चूका धर्म बीचार।।

गुरुनानक ने प्रस्तुत उदाहरण द्वारा मानव जीवन की तुलना उस पशु से की है जो बुद्धि–विवेक रहित है जो भटके हुए कुत्तों के समान अखाद्य पदार्थों के खाने के लिए ललचा रहे हैं। ऐसे मनुष्य झूठ बोलते हैं चुगली–निंदा करते हैं उनका व्यवहार झूठा है और वह ईमानदारी से रहित है। अपने समाज के भटके हुए लोगों के जीवन को देखकर वह अत्यंत दुखित हुए।

समाज में ऊँच नीच, जाति–पाँति तथा धनी–निर्धन के भेदभाव का भी नानक जी ने वर्णन किया है। इस समय भी समाज जातियों में बँटा हुआ था उच्च–वर्ग निम्न–वर्ग का तिरस्कार करता था। उच्च वर्ग का ही समाज में बोलबाला था। समाज के अन्य वर्गों जैसे– बढ़ई, चर्मकार, कुम्हार, नाई आदि सेवा करने वाले लोगों को हीन दृष्टि से देखा जाता था। इन वर्गों का जीवन अत्यंत दुखद था। इन्हें मंदिर में प्रवेश तथा पूजा करने की अनुमति प्राप्त नहीं थी। उच्चवर्ग निम्न जाति के लोगों को अस्पृश्य मानता था इनकी छाया से भी परहेज करता था। इन लोगों को संपत्ति व जमीन खरीदने का अधिकार नहीं था। उच्च हिन्दू जातियाँ अहंकार व अभिमान में डूबी रहती थी। नानक जी ने मानव धर्म व प्रेम की स्थापना की। उन्होंने कहा कि मनुष्य का मूल्यांकन उसके कर्मों से किया जाना चाहिए जन्म से नहीं। जातिवादी सोच को नानकजी ने निराधार माना। गुरुनानक जी खत्री जाति के होने के बावजूद भी निम्न जाति के लोगों से प्रेमपूर्वक मिलते थे। उदाहरणतः अपनी इमनाबाद की यात्रा के दौरान वह लालो नामक बढ़ई के घर में रूके जिसका दर्जा समाज में अत्यंत नीचा था। लालो गरीब था तथा कठिन श्रम कर अपने परिवार का पालन–पोषण करता था। यहीं पर मलिक यात्रा नामक पठान सूबेदार का दीवान भी था जो कि भंडारा, पशुबलि का भंडारा करवा रहा था। उसने भी नानक को निमंत्रण दिया किन्तु गुरुजी ने उसका निमंत्रण ठुकरा दिया। इससे वह बहुत क्रोधित हुआ और नानक के विरुद्ध प्रचार करने लगा। नानक ने सिद्ध कर दिया कि वह जाति–पाँति में विश्वास नहीं करते वह मानते हैं कि–

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु
ननकु तिनकै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस
जिधै नीच समालीआनै तिथै नदरि तेरी बरवसीस।।

नानक ने उपेक्षितों के साथ स्वयं को जोड़ा और कहा कि नीच जातियों में जो नीच है और नीचों में भी जो बहुत ही नीच है उन्हीं से मेरा संग–साथ। है। वहाँ ही तेरी कृपा दृष्टि होती है।

उच्च जाति के अंतर्गत उस समय ब्राह्मणों ने भी समाज में अपना दबदबा फैला रखा था। वह स्वयं को शुद्ध हिन्दू व वेदज्ञान के महान ज्ञाता एवं संरक्षक मानते थे। इस वक्त का ब्राह्मण वर्ग अत्यंत लालची, कपटी व ढोंगी था। वह लोगों को झूठे आडंबरों द्वारा मोक्ष मार्ग बताते थे। वास्तव में वह स्वयं अज्ञानी थे। अपनी रोजी–रोटी के लिए वह लोगों को झूठे खर्चीले जाल में फँसाकर धार्मिक कार्य करवाते थे। गुरु नानक ने ब्राह्मणों की इस लोभी वृत्ति का विरोध किया और उनकी पोल खोल दी–

ज्ञान नचहि बाजे बाबहि रूप करै सीमार।।
ऊँचे कूकहि वादा गवहि जोधा का बीचारि।।
मूर्ख पंडित हिम्मत हुजति संजै करहि प्यार।।

ब्राह्मण लोगों की कथनी और करनी में असमानता थी वह कहते कुछ थे और करते कुछ थे। ओर वे माँस न खाने का उपदेश देते थे तो दूसरी ओर वे गरीबों का खून चूसते थे।

माणस खाणे करहि निवाज।। धुरी वगाइन तिन गल ताण।।
सुनि वैरवहु लोका एहु विठाण।। मन अंधा नाउ सुजान।।

ब्राह्मणों के दोहरे चरित्र, झूठ और पांखडपूर्ण किरदार को नानक ने धिक्कारते हुए कहा–

कूड़ बोलि मुरदार खाई। अवरी नो समझाावण जाए।
मुठा आदि मुहाए साथै। नानक ऐसा आगू जायै।

नानक का मानना था कि ब्राह्मण वर्ग अपना ज्ञान भुला चुका था। उनकी भविष्यवाणी गलत निकलती थी। वह अयोग्य व नेतृत्व–विहीन बन चुके थे। नानक के समाज में रुढ़िवादी विचारों तथा कर्मकांड, अनुष्ठान का अत्यधिक प्रचलन था। पूरा समाज, ब्राह्मण वर्ग के शिकंजे में फँसा हुआ था। यह पुरोहित वर्ग आम व्यक्ति को कर्मकांड और अंधविश्वासी विचारों में उलझाए रखता था ताकि उनका महत्व बरकरार रहे।

नानक ने जनेऊ संस्कार के संबंध में अपने विचार यूँ व्यक्त किए–

तगु कपाहुहु कतीयै बामण वहै आए
कुहि बकरा रिन्ह खाया सबको आँख पाए।
होइ पुराणा सुटीयै भी फिर पाइयै होर।
नानक तगु न तुटई में तगु हौवे जोर।

नानक कपास के जनेऊ के बदले मानवीय गुणों से परिपूर्ण जनेउ की पवित्रता में विश्वास करते थे। वह जनेऊ कभी भी गंदा और नष्ट नहीं होता था।

नानक ने अपने समय के भविष्य वक्ताओं तथा दंभी पुरोहित वर्ग की आलोचना भी की है। नानक के समय श्राद्ध प्रथा एवं बलि देने की कुरीति भी प्रचलित थी। उस समय समाज की सोच अत्यंत संकुचित तथा रूढ़िवादी विचारों से परिपूर्ण थी। श्राद्ध प्रथा के तहत अत्यंत खर्चीले अनुष्ठान करवाए जाते थे। गरीबी के बावजूद लोग माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् ब्राह्मणों तथा पशुपक्षियों को भोजन इत्यादि करवाते थे जिसमें बहुत अधिक व्यय होता था तथा लोगों को यह आश्वासन दिया जाता था कि यह भोजन तथा उपभोग की सभी वस्तुएँ जो ब्राह्मणों को दान में दी जा रही हैं। सीधे–सीधे उनके मृत माता–पिता तक पहुँच जाएगी। यह धार्मिक कुकृत्य लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ था नानक ने इस कुरीति की भी भर्त्सना की थी। बलि प्रथा के तहत किसी भी पवित्र अवसर तीज–त्यौहार शादी–ब्याह के अवसर पर लोग देवी की प्रसन्नता हेतु भेड़ या बकरी का वध कर प्रसाद स्वरूप उनके मांस की भेट चढ़ाते थे। और इन मूक पशुओं की हत्या कर उनका मांस भक्षण करना तथा बलिदान को लोग अनुचित नहीं मानते थे। नानक ने इन तमाम सांसारिक अनुष्ठानों का विरोध किया।

जो मोहाका धरु मुहै थरु मुहि जिनकी देई
अगै वसतु सिजागी ऐ तिपरी चोर करेई।।
बढ़ी अहि हथ दलाल के मुसफी एड करेई।
नानक अगै सौ मिले जि खटे घाले देइ।।

नानक ने इस कुरीति की व्याख्या उपरोक्त वर्णनों में इस प्रकार की है अपने स्वर्गवासी संबंधियों की आत्माओं को शांति प्रदान करने के लिए किया गया दान अगर ईमानदारी की कमाई में से नहीं है तो वह चोरी है। यदि ठग पराया घर लूटे और उस घर को लूटकर अपने पित्तरों के श्राद्ध के रूप में अर्पित करे तो परलोक में वे वस्तुएँ पहचान ली जायेगी और पित्तर लोग चोर प्रमाणित होंगे। परमात्मा वहाँ यह न्याय करेगा कि दलाल (श्राद्धकर्त्ता ब्राह्मण) का हाथ काट लिया जाए। हे नानक आगे तो मनुष्य को वही मिलता है जो वह प्राप्त करता है, कमाता है और अपने हाथों से देता है।

नानक जी के समय समाज में लोगों के भीतर नशा करने की कुवृत्ति प्रधान थी। लोग नशीली वस्तुओं का सेवन करते थे। किन्तु नानक ने नशे की वृत्ति को स्वयं अपने व्यवहार द्वारा खारिज किया। बाबर ने युद्ध के पश्चात् अनेक साधु–संतों को बंदी बनाया था। नानक के चरित्र और चमत्कारों के बारे में सुनकर वह प्रभावित हुआ। वह आग्रहपूर्वक उन्हें अपने शिविर में ले गया वहाँ उसने गाँजा पेश किया। नानकजी ने बाबर को उसकी पेशकश का जवाब इस प्रकार दिया "मैं ऐसा कोई नशा नहीं करता जो मन को धुँधला कर दे और जिसका नशा उतर जाए। मैंने तो प्रभु के प्रेम का नशा पी रखा है जो मुझ पर हमेशा चढ़ा रहता है। नानक ने उस समय के समाज के लोगों द्वारा अपनायी जा रही विदेशी एवं मुस्लिम संस्कृति वाली जीवन शैली को भी नापसंद कर दिया था क्योंकि इसके प्रभाव स्वरूप लोग अपनी संस्कृति एवं वेशभूषा को भुला रहे थे जो कि उचित नहीं था। विदेशी शासकों को खुश करने हेतु विदेशी संस्कृति और रहन'सहन की नकल कर रहे थे तो नानक ने कहा–

नील वस्त्र ले कपड़े पहिरै तुर्क, पाठणि अमल कीया।

गुरु नानक ने अपने युग की आधी आबादी अर्थात् स्त्रियों की दुर्दशा पर भी विचार किया। उन्होंने स्त्रियों की कमजोर स्थिति तथा पुरुषों के उन पर अत्याचार एवं दुर्व्यवहार को भी सुधारने का प्रयत्न किया। समाज में स्त्रियों का स्थान निचले पायदान पर था। नानक मानते थे कि समाज की सभी बुराईयों का अंत तब होगा जब समाज के लोग स्त्रियों को सम्मान व उनके अधिकार प्रदान करेंगे। नानक ने स्त्रियों के अपहरण और उन पर किए जाने वाले हमलों की भी निंदा की।

मुगल पठाणां भई लड़ाई रण महि तेग वगाई।
ओन्ही तुपक ताणि चलाई ओन्ही हस्ति चिढ़ाई।
इक हिन्दुआनी अवर भटियानी तुर्कानी ठकुराणी।।
इकना पैर न सिर खुर पाटे इकना वास मसाणी।।

सदियों से दबी हुई स्त्रियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बहुत नकारात्मक था। लोग उसे पाप का स्त्रोत, राक्षसी, मायावी तथा दर्शन मात्र से ही मन में कालुष्य भरने वाली छवि से नवाजते थे। नानक ने अपने संदेशों द्वारा स्त्रियों की इस छवि को खारिज किया उनके हक के लिए सवाल उठाए। उन्होंने गृहस्थ जीवन तथा उसमें सभी के सम्मान को महत्वपूर्व माना। साथ ही साथ नानक ने स्त्री–पुरुष के मध्य यौन संबंधों में स्वेच्छाचार को भी निंदनीय माना। पुरुष के स्त्रियों के प्रति आक्रामक रवैये की पुरजोर भर्त्सना की थी।

रन्ना होईया बोदीयाँ पुरुष होए सय्याद
सील संयम सुच भन्नी खाना खाजु अराजु।।
सरल गया धरि अपने पति उठि चलौ नालि।।

स्त्री की प्रसूति के समय सूतक से जुड़े अंधविश्वास का भी नानक ने विरोध किया। समाज में शिशु जन्म से लेकर चालीस दिनों तक घर को अपवित्र माना जाता है। नानक ने इस सोच के बदले अपना यह मत दिया था– 'अपवित्रता तो मन में रहती है, महज जन्म जैसी घटना में नहीं जो ईश्वरीय आदेश का फल होती है। वह कहते हैं कि यदि सूतक मानना ही है तो इस प्रकार का सूतक मानो कि मन का सूतक लोभ है, जिह्वा का सूतक झूठ है। आँखों का सूतक दूसरे का धन तथा दूसरे की स्त्री का स्वरूप देखना है। कानों का सूतक यह है कि बेफिक्र होकर दूसरे की चुगली सुनी जाए। हे नानक, बाह्य वेश में हंसों के समान मनुष्य में भी यदि यह सूतक है तो वे बंधे हुए यमपुरी जाते हैं। सूतक सब भ्रम ही है जो द्वैत भाव के फँसे हुए मनुष्यों को लग जाता है। प्रभु के आदेश से जीवों का जन्मना–मरना होता है, आना–जाना होता है। रोजी के रूप के सारे खान–पान हरि सभी जीवों को पहुँचा देता है, वे सब पवित्र है। नानक कहते हैं जिन मनुष्यों ने यह बात समझ ली है, उन्हें सूतक नहीं लगता।

मन का सूतक लोभू है। जिह्वा सूतक कूडू ×××
नानक जिवो गुरमुखी बुझिया तिन्हा सुतकू नाहि।।

मानव चरित्र का पतन और गिरावट देखकर नानक ने प्रश्न किया था कि अच्छे समाज का आधार उसके चरित्रवान व्यक्ति होते हैं। लेकिन यदि समाज के व्यक्ति धन के लोभी, स्वहितैषी, भोग विलासी और गिरे हुए चरित्र वाले हों तो समाज अच्छा कैसे बन सकता है?

पर दारा पर धन पर लोभा हऊमै बिरवै बिकार।।
दुष्ट भाऊ तजि निन्द पराई काम क्रोध चन्दार।।
महल महि बैठे अगन अपार।।
अमृत सोई जन पावै गुर का शब्द रत्न अचार।

लिहाजा नानक ने तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों के तहत् राजा और भिखारी दोनों को एक समान माना है क्योंकि दोनों ही लोभी वृत्ति वाले थे। उस समय शासन–सत्ता और शक्ति दुश्चरित्र वाले लोगों के पास थी। समाज के पास सच्चा नेतृत्व करने वाले चरित्रों का अभाव था। भ्रष्ट शासन, भ्रष्ट शासक, भ्रष्ट समाज ही सर्वत्र दर्शनीय था।

कादी कूड़ बोलिह मलि खाहि।
ब्राह्मण नावे जीऊ धराई।
जोगी जुगत न जाणे अंध
तीन उजाड़े का बंध।

दरअसल, गुरु नानक एक दूरदर्शी क्रांतिकारी समाज सुधारक थे। छोटी आयु में ही नानक जी ने अपनी यात्राओं के दौरान उस सामाजिक मर्ज को पहचान लिया था जिससे समाज की मानवीय सोच में घुन लग रहा था जो समाज के भीतर ही भीतर खोखला बना रहा था। नानक ने इस मर्ज का इलाज ढूँढकर उसका निदान किया। उनके समय में सामाजिक सुधारों को आज के वैज्ञानिक युग में भी आदर्श माना जाता है। आज भी उनके सामाजिक सिद्धांत व आदर्श सामाजिक स्तर पर खरे उतर रहे है। नानक की सामाजिक सोच का सबसे अहम पहलू था संगठित समाज में सभी को समान भाव से जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करना। उनकी सामाजिक विचारधारा में जन्म, जाति, धर्म, लिंग भेद के आधार पर किसी को भी श्रेष्ठता स्थापित करने की आज्ञा नहीं थी। नानक की समाज भावना मानव कल्याण से ओतप्रोत थी। उन्होंने समाज की तरक्की में इन तत्वों मसलन शोषण, युद्ध, दमन, अन्याय, अत्याचार, कुशासन, भ्रष्टाचार, काला बाजार, कूटनीति, स्वार्थी व लोलुपवृत्ति, विदेशी आधिपत्य को बाधक माना है। इन वृतियों को अपनाने से समाज का स्वरूप कुरूप व विकृत बनता है। नानक सामंतवाद के भी विरोधी थे। नानक ने समाज में प्रथम स्थान परमात्मा को दिया है। प्रभु के डर से ही लोग बुरा आचरण व गलत कार्य करने से डरते थे। उन्होंने ही मानव सेवा की पहल की। उनकी धारणा थी कि शुभ आचरण व सत्कर्मों द्वारा ही स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है। नानक जी ने पूर्व व्यक्तित्व निर्माण पर बल दिया था। इस समाज की मुख्य उपलब्धि उन्होंने प्रभु साक्षात्कार तथा आत्म उपलब्धि को माना। उनके आदर्श सामाजिक मूल्य थे– आत्म नियंत्रण, सदगुणों का विकास, आत्म संयम, दूसरों के दुख–सुख साझा करना, पर हृदय की भावना का आदर, सेवा, सहृदयता, मानव प्रेम तथा दूषित घृणित भावनाओं का त्याग, सामुदायिक भाव आदि को अपनाना लाजिमी था।

नानक की सामुदायिक भावना का आदर्श प्रयोग करतारपुर की सिक्ख बस्ती का उदाहरण माना जाता है। इस बस्ती में सभी लोग साथ–साथ रहकर कर्म–श्रम का महत्व व शक्ति समझकर गृहस्थी व सहधर्मिणी का सहयोग सर्व कल्याण भाव

जाति–धर्म का भेद मिटाकर खेतों, गुरुद्वारे, रसोईघर में मिलकर कार्य करते थे। इसे नानक के आदर्श समाज की धुरी माना जाता है। नानक अच्छे जीवन–स्तर व जीवन शैली के अनुयायी थे। उनका मानना था 'पहले बाँटो फिर खाओ।' नानक काले धन के विरुद्ध थे। वह समाज के लोगों की आय व संपत्ति में एक समानता चाहते थे। वह अमीरों को सदैव गरीब लोगों की मदद करने की सलाह देते थे ताकि अधिकाधिक आमजन उससे जुड़ाव स्थापित कर सके। उनका मानना था कि हमें अपनी इच्छाओं और उपभोग पर नियंत्रण रखना चाहिए। वह सदैव जनभाषा के प्रयोग करने पर ही बल देते थे।

निष्कर्षः

बहरहाल, कहा जा सकता है कि नानक जी ने समाज में विरुद्धों का सामंजस्य स्थापित किया। अपनी बाईस वर्षों के यात्रानुभवों से एक नए समाज–दर्शन की स्थापना की। भावी भारत को समाजवादी विचारधारा का नवमार्ग दिखाया। वास्तव में वह एक सच्चे समाज सुधारक व भक्तात्मा के प्रतीक थे। मूलतः गुरुनानक जी का संदेश जन–जागरण था। सिक्ख धर्म का संपूर्ण सामाजिक इतिहास गुरुनानक जी के कार्यों का जीवंत परिणाम है। उन्होंने वृहत्तर सामाजिक कल्याण ओर सामाजिक–सरोकारों को आत्मसात कर सत्य, संतोष सेवा विचार मिश्रित समाज से जुड़ाव स्थापित किया था। जो कि आधुनिक समाज में आज भी अनुकरणीय है और भाव समाज में भी सदैव रहेगा।

संदर्भ सूची–

- सिक्ख गुरुओं का आर्थिक चिंतन– दास (जयराम)
- गुरु नानक – गुरबचनसिंह तालिब
- गुरु नानकदेव – मिश्र जयराम
- आदिग्रंथ संग्रहीत संतवादी– डॉ. महीप सिंह
- सप्तसिंधु नानक–वाणी– डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र
- गुरुनानक और उनका काव्य– महीप सिंह
- क्रांतिकारी महामानव– गुरु नानकदेव– जसबीर सिंह
- श्री गुरु नानक चमत्कार – पहला भाग भाई साहब भाई बीर सिंह
- सिख विचारधारा गुरु नानक से गुरुग्रंथ साहब तक– डॉ. महीप सिंह

डॉ0 तृप्ता
प्रवक्ता, हिंदी विभाग
अदिति महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

15

केशवचन्द्र सेन द्वारा ब्रह्म समाज को नया रूप देने के प्रयास

डॉ0 संध्या मिश्रा, डॉ0 प्रेम शंकर

सारांश –

प्रस्तुत शोध पत्र के शीर्षक में केशवचन्द्र सेन द्वारा ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाया उन्होंने महिला शिक्षा तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। मदिरापान व बहुविवाह की निन्दा की तथा ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों को प्रमाण सहित सिद्ध करने का उत्कृष्ट प्रयत्न किया। केशवचन्द्र सेन व उनके मित्रों ने ब्रह्म समाज के अन्दर जो संघर्ष किया वह भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके मूल में स्वतन्त्रता का आदर्श क्रियाशील था।

ब्रह्म समाज में शामिल होने के बाद उनका प्रथम महत्वपूर्ण कार्य देवेन्द्रनाथ ठाकुर के सहयोग से 1859 में ब्रह्म विद्यालय की स्थापना करना है, जिसमें प्रति रविवार को कक्षाएँ लगती थी। केशवचन्द्र सेन अंग्रेजी भाषा के माध्यम से इन कक्षाओं में ईश्वरवाद का दर्शन पढ़ाते थे और देवेन्द्र नाथ ठाकुर बंगला भाषा के माध्यम से ब्रह्म समाज के सिद्धान्त पढ़ाते थे। पाँच वर्ष तक यह विद्यालय स्थापित रहा जिसमें प्रशिक्षित होने वाले ब्रह्म समाज के अनेक नवयुवक सदस्य बाद में समाज के धर्म–प्रचारक बनें।

1851 में ही केशवचन्द्र सेन ने बैंक ऑफ बंगाल में क्लर्क के रूप में पच्चीस रूपये मासिक की नौकरी प्रारम्भ की और इतनी कुशलता से कार्य किया कि एक ही वर्ष में उन्हें पदोन्नत कर दिया गया और उनका वेतन दूना हो गया। किन्तु केशव का हृदय अन्यत्र अपना कार्य क्षेत्र खोज रहा था और वह क्षेत्र था ब्रह्म समाज का धर्म–प्रचार। अतएव ब्रह्म समाज के लिए अपना पूरा समय देने के उद्देश्य से जुलाई 1861 में उन्होंने बैंक की सैवा से त्यागपत्र दे दिया। 43 अगस्त 1862 को देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने केशवचन्द्र को आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया, यद्यपि समाज की अभी तक की परिपाटी के अनुसार केवल ब्राह्मणों को ऐसे पद प्राप्त होते थे और केशव ब्राह्मण नहीं थे।

केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज में नये जीवन का संचार किया। ब्रह्म समाज के नवयुवक अनुयायी केशव के नेतृत्व में ऐसी प्रवृत्तियाँ लेकर अग्रसर होने लगे जिनसे भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण को गति प्राप्त हुई। उन्होंने नये सामाजिक आदर्शों का पक्ष लेकर केवल ब्रह्मवाद का आधार ही विस्तृत नहीं किया, अपितु धार्मिक विश्वासों के मौलिक सिद्धान्तों को विवेक के प्रकाश में भी परखा। उन्होंने महिला–शिक्षा का पक्ष लिया, विधवा–विवाह का समर्थन किया, मदिरापान की भर्त्सना की, बहु–विवाह की निन्दा की, ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों का प्रमाण सहित सिद्ध करने का उत्कृष्ट प्रयत्न किया और ब्रह्म समाज के प्रशासकीय काया को दृढ़ता के साथ संवैधानिक सिद्धान्तों के आधार पर संचालित करने की चेष्टा की। राजनैतिक पुनर्जागरण की नींव के एक महत्वपूर्ण तत्व, समाज सुधार को गति देते हुए अनेक अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न किये गये और बहुत सी रूढ़ियाँ तोड़ी गई। केशव के प्रभावकारी व्यक्तित्व और विलक्षण भाषण शक्ति से समाज के विशाल भाग पर इन बातों का प्रभाव पड़ने लगा। ब्रह्म समाज के अनुयायियों के लिए अपने दैनिक जीवन के व्यवहार में केशव ऐसे सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने पर बल देते थे, जैसे जाति का परित्याग करना, जाति अथवा मूर्तिपूजा का कोई चिन्ह या छाप अपने शरीर पर धारण न करना, जनेऊ धारण न करना जिससे कुछ व्यक्ति दूसरों से उच्चतर कहलाते है। नशे की चीजों का प्रयोग न करना, अपने घर की महिलाओं का ज्ञान–वर्धन करना, अपनी पत्नियों को वास्तविक जीवनसाथी बनाना, अपने पड़ोसियों से व्यवहार करने में पूर्ण ईमानदारी बरतना आदि। इस प्रकार के प्रयत्न से भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण और प्रजातन्त्रात्मक हलचल को पर्याप्त शक्ति प्राप्त हुई, क्योंकि इन्होंने समाज के परिष्करण में महत्वपूर्ण योगदान दिया और समाज को प्रजातन्त्र के वातावरण की ओर अग्रसर किया। केशव के कार्यों का एक उल्लेखनीय परिणाम यह भी हुआ कि अनेक हिन्दू ईसाई बनने से बच गये क्योंकि उन्हें ब्रह्म समाज के सिद्धान्त अपने देश के एक परिष्कृत और तर्कसंगत धर्म के सिद्धान्त ईसाई धर्म से अधिक श्रेष्ठ लगे। भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की भूमिका में यह बात उल्लेखनीय है कि ब्रह्म समाज के द्वारा भारतवासियों को अपने ही देश में एक ऐसा धर्म दिखायी देने लगा जो राजनैतिक सत्ताधारी अंग्रेजों के ईसाई धर्म से बढ़कर था। प्रसिद्ध ईसाई धर्म–प्रचारक डॉ0 डफ ने खुले शब्दों में स्वीकार किया कि धार्मिक क्षेत्र में ब्रह्म समाज एक शक्ति है।

सक्रिय समाज सुधार के ऐसे प्रगतिशील विचार जैसे अन्तर्जातीय विवाह, विधवा–विवाह आदि ब्रह्म समाज के वयोवृद्ध वर्ग को पसन्द नहीं आये। इससे ब्रह्म समाज के वयोवृद्ध और नवयुवक वर्गों में खुले रूप में संघर्ष होने लगा। दोनों का संघर्ष अन्तिम बिन्दु पर तब पहुँचा जब नवयुवक वर्ग ने ब्रह्म समाज में प्रचलित इस प्रथा का जोरदार विरोध किया जिसके अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्राह्मणों को वेदी पर बैठने दिया जाता था। यद्यपि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने नवयुवक वर्ग की मांग को प्रथम स्वीकार किया, किन्तु

वयोवद्ध वर्ग ने उन्हें इस बात के लिए बाध्य किया कि राममोहन राय के समय से चले आने वाली हिन्दू प्रथाओं का परित्याग न किया जाये। इस प्रकार ब्रह्म समाज के अन्दर दो दल एक–दूसरे के विरूद्ध खड़े हो गए प्रथम, वयोवृद्धों का परम्परावादी दल जिसके नेता देवेन्द्रनाथ थे और द्वितीय, नवयुवकों का उग्रवादी दल जिसके नेता केशवचन्द्र सेन थे। केशवचन्द्र सेन और उनके नवयुवक साथियों ने ब्रह्म समाज के अन्दर जो संघर्ष किया वह भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके मूल में स्वतन्त्रता का आदर्श क्रियाशील था। विपिनचन्द्र ने लिखा है कि राजा राजमोहन राय ने अपने सर्वोच्च धर्मग्रंन्थों (उपनिषदों) की शिक्षाओं के विरूद्ध बहुदेववाद में विश्वास करने वाले लोगों के सामने एक परमात्मा की सत्ता की घोषणा की।

केशवचन्द्र सेन का कहना था कि वे वैयक्तिक आचरण और गाईस्थिक एवं सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में परम्पराओं, प्रथाओं तथा सामाजिक सत्ता से व्यक्ति के अन्तःकरण की मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे। केशव और उनके साथी यह चाहते थे कि ब्रह्म समाज में उपाचार्यों की नियुक्ति तथा अन्य प्रशासकीय विषयों में एक व्यक्ति की इच्छा न चले, बल्कि प्रजातन्त्रात्मक ढंग से कार्य किया जाये। केशव ने अपने इस संघर्ष को स्वाधीनता संग्राम, या स्वाधीनता का युद्ध कहा। देवेन्द्र नाथ की निरकुंशता की समाप्ति के उद्देश्य से उन्होंने एक ब्रह्म प्रतिनिधि सभा का निर्माण किया जिसमें भारत के विभिन्न स्थानों के ब्रह्म समाजों के प्रतिनिधि शामिल होते थे। विपिन चन्द्र पाल की टिप्पणी है कि "महर्षि देवेन्द्रनाथ के विरूद्ध किया गया केशवचन्द्र का विद्रोह वास्तव में प्रथमतः बाहरी सत्ता के विरूद्ध व्यक्ति के विवेक और अन्तःकरण का विद्रोह था और द्वितीयता, ब्रह्म समाज के प्रशासन में निरकुंशकता के विरूद्ध लोकतन्त्र का विद्रोह था।'' ब्रह्म समाज के दोनों वर्गों का संघर्ष अन्त में इस बिन्दु पर पहुँचा कि केशवचन्द्र और उनके साथी दूसरे वर्ग के पृथक हो गये और केशवचन्द्र ने 11 नवम्बर 1866 को भारत वर्षीय ब्रह्म समाज की स्थापना की। केशवचन्द्र ने इसका अध्यक्ष होना अस्वीकार कर दिया और कहा कि परमात्मा ही भारतवर्षीय ब्रह्म समाज का अध्यक्ष है, उन्होंने विनम्रतापूर्वक उसका सचिव बनना स्वीकार किया। इसके बाद से पुराना ब्रह्म समाज आदि ब्रह्म समाज कहलाने लगा। देवेन्द्रनाथ ने कुछ ही समय बाद इसके कार्यों में सक्रिय भाग लेना बन्द कर दिया और एकान्त आध्यात्मिक साधना में लग गये। केशवचन्द्र ने शीघ्र ही अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया और उसने भारत के बाद के धार्मिक आन्दोलनों तथा सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों को प्रभावित किया।

केशवचन्द्र सेन द्वारा भारत के विभिन्न भागों में जाकर ब्रह्म समाज आन्दोलन को एक शक्तिशाली आन्दोलन नहीं बनाया, अपितु वे प्रथम महापुरूष थे जिन्होंने आधुनिक भारत में अखिल भारतीय स्तर पर धर्म और समाज सुधार आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होंने बम्बई (1864), मद्रास (1864) और उत्तरी–पश्चिमी प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) (1868) का भ्रमण किया और ब्रह्म समाज के रसिद्धान्तों का उत्कृष्ट प्रचार किया। इसके परिणामस्वरूप ब्रह्म समाज की शाखाएँ भारत के अनेक भागों में स्थापित की गई। कहीं–कहीं इनको दूसरा नाम भी दिया गया, जैसे बम्बई में प्रार्थना समाज और मद्रास में श्वेद समाजश (बाद में वेद समाज का नाम ब्रह्म समाज कर दिया गया)। स्थान–स्थान पर दिये गये अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा केशव ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के आदर्शों का बड़ा जोरदार प्रचार किया जिससे आधुनिक भारत में लोकतंत्र और राजनैतिक स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि तैयार हुई जिससे भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण के सन्दर्भ में भुलाया नहीं जा सकता। केशवचन्द्र के भारत के विभिन्न प्रान्तों में जाकर ब्रह्म समाज का प्रचार करने से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को एक समान मंच मिलना प्रारम्भ हुआ जिससे भारत की राष्ट्रीय एकता के विचारों को पोषण प्राप्त हुआ। भारत की सांस्कृतिक एकता के प्रतीक के रूप में वे आधुनिक भारत के प्रथम महापुरूष कहे जा सकते है। 1870 में केशवचन्द्र के इंग्लैण्ड जाने से भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण को एक नवीन स्फूर्ति प्राप्त हुई।

केशव से मिलने उस समय के इंग्लैण्ड का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारक जान स्टुअर्ट मिल भी आया। केशव ने जो समय मिलने का दिया था उससे वह पहले उनके स्थान पर आ पहुँचा। केशव का वह समय पत्रों का उत्तर देने के लिए निश्चित था, अतएव वे उससे उस समय मिलने में असमर्थ थे। केशव के साथ गये हुए भारतीयों को भय लगा कि इंग्लैण्ड के लोग इस बात का बहुत बुरा मानेगें कि उनके देश के अत्यन्त प्रतिष्ठित दार्शनिकों को एक भारतीय प्रतीक्षा करने के लिए बाध्य कर रहा है। केशव ने अपने साथी भारतीयों को ढॉढस बँधाया और कहा कि इस बात की परवाह नहीं करना चाहिए। मिल बरामदें में समाचार पत्र पढ़ता हुआ केशव की प्रतीक्षा करता रहा और भेंट के निश्चित समय पर उनसे मिला। नवशिक्षित भारतीयों को इस घटना से अपने अन्दर बड़ा आत्मविश्वास जागृत हुआ जो भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

केशव के सार्वजनिक भाषणों को सुनने के लिए इंग्लैण्ड में सैकड़ों सुसंस्कृत अंग्रेजों की भीड़ लग जाती थी। इंग्लैण्ड का कोई समाचार पत्र ऐसा नहीं था जिसमें उनके कार्यों का समाचार प्रकाशित न हुआ हो और इंग्लैण्ड का कोई नगर ऐसा नहीं था जहाँ उनकी ख्याति न पहुँची हो। सैकड़ों नर–नारी केशवचन्द्र सेन से हाथ मिलाने आगे बढ़ते थे और इतने उत्साह से हाथ मिलाते थे कि केशव को लगता था कि उनके हाथ कन्धों से उखड़ जायेंगे।

इंग्लैण्ड में दिये हुए केशव के व्याख्यानों ने भारत में एक

नवीन राष्ट्रीय जागृति प्रारम्भ की और भारतवासियों में राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति की तीव्र इच्छा उत्पन्न की। अक्टूबर 1870 में इंग्लैण्ड से भारत लौटने के बाद केशवचन्द्र सेन ने सामाजिक, शैक्षणिक और धार्मिक क्षेत्रों में सुधार करने का महान प्रयत्न किया। उन्होंने जाति–पाँति और छूत–अछूत का भेदभाव मिटाने का जोरदार प्रचार किया। हरिजन आन्दोलन प्रारम्भ होने के बहुत पहले और अछूत प्रथा के विरूद्ध महात्मा गाँधी के अभियान के बहुत पहले केशव ने सुदूर दृष्टि से जान लिया था कि जब तक उच्च वर्गों और निम्न वर्गों और उच्चजातियों तथा नीच जातियों के बीच भेदभाव समाप्त नहीं हो जाते तब तक भारत में राष्ट्रीय एकता की स्थापना नहीं हो सकती थी और न भारत की ब्रिटिश से मुक्ति सम्भव थी। अल्पशिक्षित जनसमुदाय को समाचार पत्र पढ़ने मिल सकें इस दृष्टि से केशवचन्द्र ने बंगला भाषा में प्रकाशित सुलभ समाचार नामक एक साप्ताहिक पत्रिका प्रारम्भ की।

जब केशवचन्द्र सेन इंग्लैण्ड में थे उस समय उन्होंने अपनी रूचि मितहार समाज में दिखायी। भारत लौटने में मितहार के कार्यक्रमों पर अपना कार्य शुरू किया कई सालो तक उन्होंने अपने मित्रों के साथ नव युवकों को मदिरा सेवन के प्रभावों के बारे में प्रभावित करने का कठिन कार्य किया। अपने समाचार पत्र 'सुलभ समाचार पत्र' में वे लगातार आत्मसंयम की शिक्षा देते हुए स्तम्भ प्रकाशित करते थे। उन्होंने लगातार सरकार की आवकारी योजना पर भी प्रहार किया ओर बिना मुआयना किये हुए शराब के लाइसेंसों पर भी अपनी तीखी आलोचना को दर्शाया। इस बारे में उन्होंने व्याख्यान भी दिये। लोगों को जागरूक करने के लिए नारे लिखे गये और आत्मसंयम मासिक पत्रिका मदाना गरल (शराब और जहर), शुरू की गयी। सुधार संस्था का एक, चेरिटी विभाग, लोगों को जागरूक कर रहा था। गरीबों और जरूरतमंद लोगों को शिक्षा एवं फौरी तौर पर मदद के अलावा यह मुत रूप से दवाएं और भोजन, उदर रोग से प्रभावी लोगों के क्षेत्र में प्रदान किया करते थे। गार वयस्म लोगों के लिए एक औद्योगिक स्क्ल की स्थापना 28 नवम्बर 1876 को हुई। इस संस्था का मूल उद्देश्य मध्यम वर्गीय परिवारों को लाभ दायक कला (एक दृष्टिकोण से शिक्षा सुझाव) उनको आत्म निर्भर करने के लिए थी। इस औद्योगिक स्कूल में लोगों के आत्म निर्भर बनाने के लिए बढ़ई गिरी, सिलाई, घड़ी की मरम्मत, छापा खाना आदि के बारे में सिखाया जाता था। इस तरह के कार्यों के द्वारा लोगों को बुरी संगति (मदिरा सेवन, अनैतिकता, पूर्ण आनन्द, आलस्य) से दूर रखा जा सकता है।

भारत का ब्रह्म समाज केशवचन्द्र के नेतृत्व में उनके कार्यों के साथ लगातार ब्रह्म संस्कार के अनुसार शादी का वैधानिक आन्दोलन बहुविवाह, बालविवाह की निषेधाज्ञा का आन्दोलन चलता रहा। ब्रह्म समाज की शादियाँ बिना किसी देवता की (मूर्ति की) उपस्थिति में की जाती थी और वधु की सम्पत्ति और उपहार के स्थान पर कुछ वचन (कस्में) ली जाती थी इस तरह से इस संस्कार को पूर्व की अपेक्षा काफी पश्चात्य बना दिया उन शादियों की वैधानिकता का सवाल उस समय सामने आया जब एडवोकेट जनरल ने इन्हें अवैध करार दिया।

लड़कियों की शादी की उम्र कम से कम 16 वर्ष ही हो चिकित्साविदों की राय प्राप्त करने के बाद केशवचन्द्र सेन ने एक व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने लड़कियों की शादी की उम्र 14 वर्ष स्वीकार करने की विनती की जोकि बहमोमैरिज बिल में उपलब्ध करायी गयी। परिणाम स्वरूप मार्च 1882 में यह नया प्रस्ताव (लड़कियों की शादी की उम्र कम से कम 14 वर्ष होनी चाहिए) यह प्रस्ताव 1872 की विधि–3 विधिक रूप से पारित हो गया।

बहमोमैरिज बिल का पास होना केशवचन्द्र सेन की सुधारक के रूप में सबसे बड़ी जीत थी। इस नियम के परिणामस्वरूप बाल विवाह का उन्मूलन हो गया। बहुविवाह अपराध घोषित कर दिया गया और विधवा पुर्नविवाह एवं अर्न्तजातीय विवाह को मंजूरी प्रदान की गयी लेकिन आज तक यह प्रधान कारणों में से एक रहा है जिसने ब्राह्मण को भारतीय समुदाय के कट्टरवादी गुट की सहानुभूति से वंचित रखा। इस नियम का महत्व काफी हद तक कम हुआ जब केशवचन्द्र सेन ने खुद अपनी लड़की की शादी (जो 25 वर्ष की पूर्ण नहीं थी) कूंच विहार में महाराजा के साथ 1878 में हिन्दू रीति–रिवाज से कर दी। इस घटना के बाद ब्रह्मसमाज के बीच में धार्मिक मतभेद शुरू हो गये और वे जो केशवचन्द्र सेन से अलग हो गये थे ने आनन्द मोहन की अध्यक्षता में साधारण में साधारण ब्रह्म समाज का गठन किया। तब से आगे केशव ने खुद को पूर्णतयरू समुदाय के नैतिक और समर्थकों के साथ 1880 में नया विधान गठित किया। उन्होंने कुछ सामाजिक जीवन के विस्तृत सिद्धान्त लागू किये। जिसे ''नव समेता'' कहा गया और इसको प्रत्येक भारतीय के धर्म जाति और वर्ग ने इसका अनुसरण किया। उन्होंने जीवन के 12 विस्तृत नियमों की घोषणा की।

केशवचन्द्र सेन अब देश के समाज सुधार आन्दोलन में कम रूचि लेते थे। लेकिन उनको सार्वभौमिक सम्मान प्राप्त था और लोगों के द्वारा, जनता के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर उनकी सलाह ली जाती थी, 1889 में उनका निधन हो गया। वह उन नामों में से एक नाम था जो उनके समय में प्रसिद्ध था करोड़ो भारतीयों में ही नहीं वरन् यूरोपियन्स में थी जिसका ज्ञान भारत का था और सभी चीजें भारतीय थी, काफी हल्का था आज की अपेक्षा, उस समय पैदा हुआ जब पाश्चात्य शिक्षा अर्द्धसमाज और अपूर्ण रूप से प्रभावी थी किन्तु उसने पूर्व की कल्पना को पकड़ा था। केशवचन्द्र सेन के जीवन के साथ महत्वपूर्ण और रूचिकर आध्यात्मिक आन्दोलन से परिपूर्ण था जो भारत ने कभी देखा।

केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों के फलस्वरूप अखिल भारतीय

ब्रह्मवाद की नींव पड़ी। उनके नेतृत्व में यह आन्दोलन प्रान्तीय सीमाओं को पार कर एक राष्ट्रीय शक्ति बन गया और देश के विभिन्न भागों में शिक्षित मध्यम वर्ग का मिलन स्थल बन गया। विपिन चन्द्र पाल ने लिखा है कि विशेष रूप से केशवचन्द्र के अधीन ब्रह्म समाज ने ही धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के अखिल भारतीय आन्दोलन को सर्व प्रथम आरम्भ किया और समाज के प्रचारक ही अपने नये धार्मिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता के सन्देश को भारतीय महाद्वीप में दूर–दूर तक ले गये।

निष्कर्षः

आधुनिक भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से ब्रह्म समाज का महत्वपूर्ण योगदान यह था कि इस आन्दोलन ने धर्म और समाज के क्षेत्र में सुधार आन्दोलन प्रारम्भ करके धार्मिक स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत, स्वतन्त्रता, विचारों की स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के आदर्शों को भारत में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। मानववाद, राष्ट्रवाद और लोकतन्त्रवाद के आदर्शो के पक्ष में इस आन्दोलन के नेताओं का स्पष्ट झुकाव था जो भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण के शक्तिशाली तत्व रहे है। देश को विभिन्न स्थिति के अन्धकारपूर्ण गड्डो से निकालकर उसे समुन्नत, उदात्त और श्रेष्ठ स्तर पर लाकर खड़ा करने और उत्थान की ओर अग्रसर करने में ब्रह्म समाज आन्दोलन आधुनिक भारत के धार्मिक आन्दालनों में अग्रगण्य है। फिर भी राम मोहन राय और केशवचन्द्र सेन जैसे ब्रह्म समाज के नेताओं के अन्दर ईसा, ईसाई धर्म और ब्रिटिश शासन के प्रति तीव्र आकर्षण विद्यमान था। जिसके कारण ब्रह्म समाज के अनुयायी हिन्दू समाज और राष्ट्रवादी विचारधारा के सामान्य स्त्रोत से पृथक हो गये और कालान्तर में देश के राजनैतिक पुनर्जागरण के प्रति कोई उल्लेखनीय योगदान न दे सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिवनाथ शास्त्री, 'हिस्ट्री ऑफ दी ब्रह्म समाज', खण्ड प्रथम, पृ0–66।
2. प्रतापचन्द्र मजूमदार, 'दी लाइफ एण्ड टीचिंग्ज ऑफ केशवचन्द्र सेन', पृ0–152।
3. प्रतापचन्द्र मजूमदार, 'दी लाइफ एण्ड टीचिंग्ज ऑफ केशवचन्द्र सेन', पृ0 106।
4. आर0सी0 मजूमदार, 'दी हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपल', खण्ड 10, भाग 2, पृ0 469।
5. प्रतापचन्द्र मजूमदार, 'दी लाइफ एण्ड टीचिंग्ज ऑफ केशवचन्द्र सेन', पृ0 140।
6. उपरोक्त, पृ0 141।
7. विपिनचन्द्र पाल, 'ब्रह्म समाज एण्ड दी बेटिल ऑफ स्वराज इन इण्डिया' पृ0 61।
8. सुलभ समाचार, प्रथम भाग नं0 6, 1277 वी0ए0 (1870 ए0डी0)।
9. शिव नाथ षास्त्री, पृ0 245।
10. वही
11. विपिन चन्द्र पाल, मैमेरीज ऑफ माई लाइफ एण्ड टाइम्स, वाल्यूम–2, एन्ट्रोडक्शन, पृ० 10–11।

डॉ0 संध्या मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

डॉ0 प्रेम शंकर
एम0ए0 (इतिहास), पीएच0डी0
बरेली कॉलेज, बरेली

16

Salman Rushdie And The Post- Modernistic And The Post-colonial Trends

Dr. Subham Chatterjee, Dr. Anil Kumar

Introduction:-

Indeed, when I started reading Salman Rushdie, I was quite bemused by the fictions of Salman Rushdie, his magic realism and the disguises or masks he actually employed in his fictions. Later on, after submitting my synopsis I understood that, to study Rushdie is not at all an easy task. The multidimensional scope and meanings of his narratives baffles me whenever I read the texts of Salman Rushdie. Though it is much heard to unfurl the oeuvre of Rushdie I have continued to study Rushdie in detail. As I had had problems galore in interpreting the texts, yet I studied diligently to comprehend the corpus of his novels. Indeed, his novels are tinged with myths, legends, far-fetched references from all the corners of life along with the "magic realism" which he employed very carefully, at times, wittily to describe the real situation. His narratives are full of overtones and undertones which the author manages through his masterstroke of art. As far as the style of Rushdie is concerned, it is peerless, witty and very sharp hitherto unseen in English fictions. His novels are the replica of his lived experiences oozed out from life itself. Rushdie's novels are quite different from the other Indian novelists in the sense that though he wrote in an extremely difficult language yet the symbols and sense-perceptions are unparalleled in the ethos of Indian English fiction. I have deliberately left the unnecessary portions as my main aim is to focus on the merit and to discover the stylistic motif of his texts.

Indeed, the postcolonial and post-modern Indian English fiction also witnesses at least three generations of Indian novelists in English. The first generation consists, as we have already discussed in the opening chapter, mainly the prominent 'trio' like Mulk Raj Anand, R.K. Narayan and Raja Rao, the second like Bhabani Bhattacharya, Manohar Malgokar, Anita Desai, Kamala Markandaya, Nayantara Sehgal and others enriched the fiction. But the third generation of writers especially, like Salman Rushdie, Vikram Seth, Arundhuti Roy, Upamanyu Chatterjee, Kiran Desai, Manju Kapur, Chatan Bhagat, etc. established the fame in international area. Indeed, Indian English fiction succeeded to win almost every well-known literary prize in the world.

In the post-colonial and post-modernist setup, cultural nationalism has become a recurrent focus. In treatment and tone the native reality and Indian sensibility take a significant turn in every branch of literature. The outcry of east-west encounter becomes prominent in fictions. Sehgal's 'Into Another Dawn', Bhattacharya,s 'Music for Mohini', Rajan's 'Too Long in the West', Jhabwala,s 'The Nature of Passion', portray the same theme. The socio-political problems of India are also pictured in Bhattacharya 'So Many Hungers', Sehgal,s 'Storm in Chandigarh', etc. The contemporary Indian reality takes its significant mode in the writing of the golden trio, Mulk Raj Anand, R.K. Narayan and Raja Rao. Anand's 'Untouchable', Rao,s 'Kanthapura' and Narayan's 'Guide' reveal the better side depicting such reality. Narayan is regarded as the father figure in post-colonial Indian English fiction. Ancient myth, fables, rituals deal with the relevance for the contemporary reality. The recreation of events and situations are highly reflected in the different fiction. Khushwant Singh,s 'Train to Pakistan', Rajan's 'The Dark Dancer', Malgonkar's 'The Distant Dream', Chaman Nahal's 'Azadi' etc. offer a sense of nostalgic vision of the event of partition in India. The post-colonial and post-modern Indian English fiction upholds the Indian spirit at large. It depicts Indian thought, Indian emotion but English only in words. In this way new Indian English idiom originates at this movement. 1

Many novelists of the eighties and nineties attempt to deconstruct the theories of a patriarchal society. They attack the conservative assumptions on women. Shashi Deshpande and Nayantara Sahgal openly question the social system which makes an ideal woman, wife and mother. A similar theme is handled by Arundhati Roy in the nineties. Though most novelists of the last decades of 20' century are aware of the postmodernist and poststructuralist models of thinking and writing, they focus on reforming the society. "This is what Rushdie meant when he said that the important difference is that for him 'books are about the world' whereas in Euro-American post modern writings, the world outside the text does not exist"

(Rushdie, "interview 1984"). The essential part of the argument is that the writers in regional languages enjoy a closer relation to their mother tongues than Indian English writers who use an "alien" language. This is because the writers in regional languages naturally know the dialectal forms of a language, the cultural nuances of a region, the oral tradition, folk tales, riddles, rhymes, religious overtones, etc. of their respective languages. The writer who writes in the language of his region is capable of bringing in the reverberations of the society around him into his literary work. This is denied to the writers in Indian English. According to Meenakshi Mukherjee, " English in India [...] functions on relatively fewer registers and it would not have been surprising if this remained a permanent liability, allowing the novelist to operate only within a limited parameter". This argument sounds to be reasonable and might be true about some writers in Indian English. But in the case of Arundhati Roy, Salman Rushdie and Vikram Seth, it is far from the truth. Because they write with great felicity taking in the cultural nuances of the people whose fictiona1 experience they render in their works.Salman Rushdie has been a model writer for many writers in Indian English fiction since the publication of Midnight's Children in 1981. Almost all the novels he has written question certain accepted principles of history, politics, language or religion. Most of them draw their material from India or the Indian subcontinent. He points out some undesirable aspects of life that cross his mind. Nonconformity is the right term to qualify his works because of this nonconformist feature of his work. Historiography is the art of writing history. It also includes the evolution and techniques of writing history. Cato and Livy are the well-known Roman figures in the field in the beginning. Later Tacitus relied on other histories, speeches, letters and traditions of old families for writing history. Plutarch followed the biographical method of historical interpretation. This is to cite a few examples of the development of historiography in two countries. In a similar way it developed in various parts of the world. In China, there were world famous historians like Confucius, Szuma Ch'ien, Pan Ku and Szuma Kuang. In India, in the ancient times, Puranas were the earliest form. It underwent a lot of changes down the ages. 2

The 20th century upheld history with a great scientific temperament and mixed it with a skeptical note. This aimed at the development of accurate knowledge. The first skeptical note struck by Nietzsche in 1874 was reverberated again in the 20th century. The exponents of this spoke against a lifeless scientism. Yet historiography's scientific method of research and investigation progressed with the blessings of John Bagnell Bury (1 86 1 - 1 927) and George Macaulay Trevelyan (1876-1962). There came a renewed interest in philosophy in historiography with Spengler and Toynbee. In the 2oth century itself, Benedetto Croce and R.G.Collingwood provided a philosophical justification of the relativist mood in historiography. James Harvey Robinson in the 20" century upheld a new history. And in his book titled The New History (1912) he argued that "The New History was to be deliberately present minded in the sense that it would be immediately useful in explaining the present". C.A.Beard followed his line of thought in this regard. Along with this side of historiography, Economic History and Social History too developed. The 20th century also witnessed the development of Total History.

Vikram Seth may be considered both as a writer in one of the regional languages in India and as an Indian English writer. It is a metaphorical way of saying that he writes in an Indian regional language. It speaks about the quality of his writing and the version of English he uses. It is almost like a regional language, though basically it is English. Seth's A Suitable Boy is an excellent example. And, this novel will be able to defend the Indian writers in English in the context of the disparaging comments made recently by the Indian writers in regional languages against Indian English writers. The controversy would have probably triggered by the unkind comment made by Rushdie about the lack of quality of the writing in regional languages compared to that of Indian English writing. 3

The regional writers variously view the Indian English writers as creative travel writers, necromancers and artificial western flowers". Some of them even consider that "Indian Writers in English (IWE) find themselves in a strange place: the emotional content is missing, as is the real core of the Indian experience". Balachandran Nimade comments about the recognition Indian writers have internationally as, "There is something suspicious about this business of overnight success".

The Booker prize winner in 1997, Arundhati Roy, is well- known today as a social activist. The Sydney Peace Prize that she won in 2004 is recognition for her activist role. Since the publication of The God of Small Things and the subsequent media attention she enjoyed, she has committed herself to the cause of the marginalized. It is evident in the services she has been rendering to the NBA

since 1999. Her interest in human welfare and progress is revealed when she criticizes the Indian government in "The End of Imagination" against the nuclear test. Again, she points out the cruelties of the Bush regime in Afghanistan in "Brutality smeared in peanut butter". She inflicts another blow on the world's policeman in "Peace and the new corporate liberation theology" for the U. S. invasion in Afghanistan and its occupation in Iraq. In Greater Common Good, she brings out the absurdity of progress in constructing the Narmada reservoir displacing thousands of adivasis. The God of Small Things, among several other things, is the fictional representation of the problems of the subaltern. Art and activism are united in her fiction and non-fiction works. Peter Boss hard has rightly stated it on the blurb of The Greater Common Good as, "It is inspiring to see art becoming activism for the true common good, and activism becoming a piece of art". Her activistic role was evident when she willingly served a symbolic one-day imprisonment in Tihar Central Jail in 2002 for the cause of the NBA. Her solidarity with the underprivileged was again manifested in her rejection of the Kendra Sahitya Academy award in 2006 to protest against the government's indifference to the people displaced by the developmental projects of the government. In her rather short literary-activistic career she has always expressed her love for the subaltern.

Arundhati Roy differs from the received norms of British English. This aspect is studied in chapter four with the British parameters of grammaticality and acceptability. In her hands it becomes almost a different language bearing the experience of the marginalized people. In the process of subverting Standard English, she gives it a local nature. It "is made to bear the weight and the texture of a different experience. In doing so it becomes a different language". She adapts Standard English to "the exigencies of mother grammar, syntax, vocabulary, and by giving a shape to the variations of the speaking voice". She constructs "an 'english' which amounts to a very different linguistic vehicle from the received standard colonial 'English". U. R. Ananthamurthy acknowledges this ability of Arundhati Roy, like other eminent Indian writers in English, to convey the Malayali culture in her version of English as, "the best of IWE do manage to convey the ambience of the provincial language and ethos. Arundhati Roy's contribution, for instance, is an English author whose energy comes from Malayali culture and ambience". She is successful in her effort, Chapter four analyses her use of the English language in a detailed manner.

History and politics have always been a predominant preoccupation of the Indian-English novelist. This compulsive obsession was perhaps inevitable since the genre developed concurrently with the climactic phase of colonial rule, the stirrings of nationalist sentiment and its full flowering in the final stages of the freedom movement. The Indian English novel developed at a time when the consciousness of being a part of history was a national phenomenon. The intense emotional stirring of a people united in the effort to break free from the shackles of foreign rule made individuals unusually conscious of being a part of a momentous historical movement. This consciousness is exemplified in the novels of Mulk Raj Anand, Raja Rao, Manohar Malgonkar with RK. Narayan providing glimpses; it also finds expression in the later novels of Khushwant Singh, Chaman Nahal and Attia Hossain.

Therefore the theme of History, Politics and the Individual might not appear as particular to the novel of the Eighties. However, the difference of treatment-a shift in the focus, a new array of techniques through which the theme is expressed-gives it an indisputable novelty. History and politics dominated the proceedings in the earlier novels but with the individual relegated to the periphery. The individual gets lost in the movement as can be seen in Raja Rao's. 4

Historical forces have a tremendous effect on almost all things in the world today. To quote Walter Allen:

In the literature of an age, its conflicts, tendencies, obsessions are uncovered and made manifest to a degree which is continually astonishing; good writers are, so to speak., mediumistic to the deeper stirrings of life of their time while they are still unknown to,. or at any rate unsuspected by, the public, politicians and current received opinion. Contemporary novels are the mirror of the age, but a very special kind of mirror that reflects not merely the external features of the age but also its inner face, its nervous system, coursing of its blood and the unconscious promptings and conflicts which sway it."5.

The novels of Salman Rushdie, Amitav Ghosh and Upamanyu Chatterjee are mirrors of this kind, establishing a dynamic inter- action between the individual and the multifarious forces of history. Uma Parameswaran emphasizes this aspect with particular reference to Rushdie: "What Rushdie has done in Midnight's Children, is to recognize and demonstrate that the Indian situation is the perfect metaphor for characteristically twentieth-

century questions about history, language, social and political fragmentation and creativity. Whereas Narayan's view in Waiting for the Mahatma or Singh's view in Train to Pakistan, for example is microcosmic, Rushdie's view in Midnight's Children is certainly macrocosmic. India, because of its size and complexity, and the fecundity of its myth and cult is ideal metaphor for the plight of the individual and history."6

Constantly ruminating, grappling with the current complex is- sues, and trying to come to terms with the present, the novels of the Eighties still finds it imperative to constantly go back to the past. Amitav Ghosh, Salman Rushdie and Upamanyu Chatterjee intersperse their narratives with incidents from the pre-Independent struggle and the partition holocaust. The new techniques in these novels do not present incidents and events of history in chronological order. Current events bring to focus events of the past. So artistically is the new and old synthesized that events of the past come alive, m king it a living experience. In another significant way, the novels of the Eighties present a radically different perception of history. History is no more the biographies of kings and queens but finds an important place for the common man as an active participant in the making of history. Salman Rushdie is deeply concerned with the politics of the sub-continent. In an interview given to Gordon Wise, Salman Rushdie calls himself "a fairly political animal." In the course of the interview, he claims that his novels "Midnight's Children and Shame are novels on historical themes.'7

His presentation of politics and history is innovative. The fusing of these two aspects with the life of the individual has been done with dexterity and imaginative power. Thus he fulfills, what he had said earlier about the purpose of writing Midnight's Children, “to relate private lives to public events and to explore the limits of individuality in a country as populous and culturally variegated as India.”8 “Shame” attempt a similar exploration against the politico-historical scenario of Pakistan. These novels try to highlight complex networks of trans cultural relationship between the individual and historical forces. "It seems to me," Rushdie remarks, "that everything in both books has had to do with politics and with the relationship of the individuals and history.'9 Rushdie's belief that- One cannot separate history and the individual as "they interpenetrate and that is how the writer needs to examine them, the one in the context of the other”, is best exemplified in Saleem Sinai's flamboyant claim that he is "handcuffed to history." The narrator protagonist feels that "his destiny is indissolubly chained to those of my country."Nie Ten Kortenaar comments, "Salman Rushdie's Mid- night's Children is commonly read as an allegory giving imaginative form to India and its history. 10

NOTES & REFERENCES

1)Maik, M.K. 'Indian Pride and Indian Prejudice : Reflection on the Relationship between Regional Indian Literature and Indian Writing in English', Indian Literature XLVII, 2003, p-180.

2) K. Raghavendra Rao, "The Novel as 'Chutney': Unriddling Sal- man Rushdie's Midnight's Children," Perspectives on Indian Fic- tion in English, ed. M.K. Naik (New Delhi: Abhinav, 1985), p. 159.

3)Friedrich Nietzsche, "On the Uses and Disadvantages of History for Life," Untimely Meditations, trans. R.I. Hollingdale (Cam- bridge: Cambridge Univ. Press, 1983), p. 72.

4) David W. Price, "Salman Rushdie's 'Use and Abuse of History' in Midnight's Children," ARIEL: A Review of International English Literature, 25:2 (1994), p. 93

5)Walter Allen, Reading a Novel (London: Phoenix House, 1940), pp. 18-19.

6) Parameswaran, Uma, Post-Independent Indian English novels, New Delhi, Rupa, 1999, p-127.

7)Wise, Gordon, Reflection: Interview with Salman Rushdie, London, Edward Arnold, 1995, p-161.

8) Ibid, p-163.

9)Ibid, p- 166.

10) Nie Ten Kortenaar, "Midnight's Children and the Allegory of History," ARIEL, 26:2, 1995, p- 41.

Dr. Subham Chatterjee
(Asso. Prof. & Hea)
K.G.K. (P.G.) College Moradabad

Dr. Anil Kumar
Deptt. Of English
K.G.K. (P.G.) College Moradabad

17

साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में चित्रित प्रशासनिक भ्रष्टाचार

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांशः

नाटककार समाज का एक संवेदनशील प्राणी है। समाज की विकृतियों से आँख मीचना, उसके लिए असंभव है। साठोत्तरी युग के हिन्दी नाटककारों ने भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया हैं

भ्रष्टाचार शब्द भ्रष्ट एवं आचार शब्दों से मिलकर बना है। 'भ्रष्ट' शब्द का अर्थ प्रायः निकृष्ट कोटि की विचारधारा के लिए किया गया है। 'आचार' शब्द का अर्थ आचरण है। दूसरे शब्दों में भ्रष्टाचार से तात्पर्य निन्दनीय आचरण से है जिसके वश में होकर व्यक्ति अपने को भूलकर अनुचित रूप से लाभ प्राप्त करना चाहता है। रिश्वत, सिफारिश, काला बाजार आदि सब भ्रष्टाचार के ही विभिन्न रूप हैं। भ्रष्टाचार की मूल जड़ प्रशासनिक शिथिलता है – ''आज जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। आज चाहे सत्ताधारी शासक हो या उसका विरोधी हो, दोनों भ्रष्ट और निकृष्ट हो गए हैं, फिर हम यह आशा कैसे करें कि लोग बेईमानी न करें चीजों में मिलावट न करें। (1)

अधिकारी वर्ग जब स्वयं को लोकसत्ता से दूर ले जाता है तभी भ्रष्टाचार का आरम्भ होता है। शासन के इस वर्ग में सुविधा पंथी लोग सत्ता से जुड़कर अनेक प्रकार के लाभ उठाते हैं। व्यवस्था के नाम पर ही वे निज स्वार्थ की पूर्ति करते हैं – ''शासन उत्तम वह है, जिसको लगभग शासन करना ही नहीं पड़ता''। (2)

जीवन और जगत में फैला भ्रष्टाचार आज के सामान्य जन–जीवन की तीसरी महत्त्वपूर्ण चिन्ता है। भ्रष्टाचार वस्तुतः मूल्य–हीनता की स्थिति है। सुख और समृद्धि का जीवन जीने के लिए आदमी आज आदमी के जीवन से ही नहीं समाज और राष्ट्रीय जीवन के हित को भी बेचकर खा जाने को तैयार है। 'सभ्य साथ' नाटक में प्रियदर्शी प्रकाश ने व्यक्त किया है कि किस प्रकार कालाबाजारी और मिलावट द्वारा सामाजिक ढांचे के निर्माण को कमजोर बनाया जाता है साथ ही यह नाटक समाज की नयी पौध को दिशा विहिन और पथ भ्रष्ट बनाने वाले उन व्यवसायियों, नेताओं और सरकारी कर्मचारियों को सभ्य साँप की संज्ञा देता हुआ उनके चेहरे पर पड़े हुए नकाब को उतारकर उन्हें नंगा करता है। भ्रष्टाचार यहाँ नयी पीढ़ी के शोषण से जुड़ जाता है।

'मरजीवा' नाटक हमारे सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में चारों ओर व्याप्त, बेईमानी, ढोंग और भ्रष्ट स्थिति को, मिलावट को सामने लाता है। वह जिन्दगी और मौत दोनों को बेईमानी अथवा ईमानदारी दोनों रूपों में असम्भव होते दिखाता है। जीवन भ्रष्टाचार और पाखण्ड से इतना घिर गया है कि जीवन की वास्तविकता, उसका अर्थ, सौन्दर्य,, सत्य को कहीं है ही नहीं। (3)

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में रिश्वतखोरी की समस्या मुँह बाँए खड़ी है। आम जनता को घूस के बिना न्याय एवं नौकरी मिलना भी असम्भव है जिसके परिणामस्वरूप उत्पन्न निराशा, खीज एवं आक्रोश को अनेकों नाटकों में व्यक्त किया है। ''आचरण समाज रूपी क्यारी का निर्मल नीर है किन्तु जब उसमें मलिनता का एक ही कीटाणु प्रवेश कर जाता है तो क्यारी के पौधों को स्वस्थ रखना असम्भव ही नहीं दुष्कर अवश्य हो जाता है।'' (4)

रिश्वत एक मलिनता का कीटाणु है जो सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रिश्वत वर्तमान की समस्या नहीं है बल्कि अतीत काल से गतिशील ऐसी समस्या है जो शासन व्यवस्था के प्रत्येक पहिए को चलाने के लिए ग्रीस के समाज कार्य करती है। रिश्वत का मूल स्त्रोत कालाबाजारी है। यही भारतीय जन–जीवन के नैतिक पतन का मूल कारण है। काला बाजारी एवं रिश्वत का घनिष्ट सम्बन्ध है जो भ्रष्टाचार की जननी है। काले धन्धे के व्यापारी निश्चित होकर कार्य कर सकने के लिए, पकड़े जाने के भय से मुक्त होने तथा अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए मन्त्रियों एवं सरकारी अधिकारियों को भेंट चढ़ाते हैं – ''यह इसी देश में हो सकता है कि शाम को कानून पास हो तो सारा अनाज गायब हो जाये और दूसरे दिन जब कानून तोड़ लिया जाए तो मनमाने दामों पर बिक्री के लिए वही अनाज फिर निकल जाए। (5)

धन एवं शासन ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। बढ़ती महँगाई, कृत्रिम अभाव, पक्षपात और भौतिक सुखों में वृद्धि की लालसा ही रिश्वतखोरी का मूल कारण है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन स्तर को अधिक से अधिक ऊँचा उठाना चाहता है चाहे इसके लिए उसे कितने ही भ्रष्ट तरीके क्यों न अपनाने पड़े। सरकारी नेताओं से कोई भी काम करवाना हो तो रिश्वत के बिना नहीं हो सकता। नौकरी प्राप्त करने के लिए, विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए अधिकारियों की मुट्ठी गर्म करनी पड़ती है। चाहे कोई व्यक्ति कितना भी योग्य क्यों न हो। जो जितनी जयादा रिश्वत दे सकता है उसे उतनी ही ऊँची नौकरी एवं डिग्री प्राप्त हो जाती है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'नकाब दर नकाब' नाट में मिलता है –

विद्यापति – शशिकान्त का कुछ पता नहीं। इस बार तो

निश्चय ही पास है, सब मोहरे फिट कर दिए गए हैं।

रामदयाल – पास होते ही एम.बी.बी.एस. में प्रवेश की गारण्टी।

कैलाशपति – क्या कह रहे हो।

रामदयाल – ठीक तो कह रहा हूँ। जितना बड़ा डोनेशन उतनी ही गारण्टी सीट की मैंने तय कर रखा है सीट के वास्ते।'' (6)

भारत में राजनीति की स्थिति ईमानदारी एवं गम्भीरता से पूर्ण नहीं है। नेतागण अपनी विजय हेतु पर्याप्त पैसों को व्यय करने भ्रष्ट तरीके से जनता का मत खरीदकर विजय प्राप्त करते हैं फिर चुनाव में खर्च किए गए धन की पूर्ति भी भ्रष्ट तरीके से घूस आदि द्वारा करते हैं। बड़े–बड़े व्यापारी, उद्योगपति, मुनाफाखोर आदि वस्तुओं में मिलावट करते हैं। वस्तुओं का अभाव दिखाकर, जमाखोरी करते हैं, आयकर की खुलेआम चोरी करते हैं, अधिकारियों को मुँहमांगी रिश्वत देते हैं । मुद्राराक्षस के नाटक 'आला अफसर' नाटक में एक अधिकारी द्वारा माँगी गई रिश्वत का उल्लेख करता है – ''चौबे–वही बात आगे बोलू ?चन्द्र हज्जाम सरकारी जमीन पर अपनी दुकान खोलने के लिए आपको दो सौ रुपया दे रहा था और आप उससे पाँच सौ..... ।'' (7)

'मिस्टर अभिमन्यु' नाटक में वर्तमान की समसामयिक परिस्थितियों में घूसदेवी के महत्त्व को दर्शाया गया है। राजनीतिक अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए अफसरों को प्रत्यक्ष का परोक्ष रुप से घूस देते हैं। राजन को कमिश्नर का पद देना तथा सांवलदास के हिसाब को चुकता करना यह सिद्ध करता है कि गयादत्त रिश्वत में सक्षम व्यक्ति है।

विमल – सिर्फ सांवलदास के यहाँ हिसाब करना था। अजीब ढंग से उल्टे–सीधे एकाउन्ट्स बना रखे थे। संयोग से वहाँ गयादत्त जी आ गए।

राजन – और सर सारा एकाउण्ट ठीक हो गया।'' (8)

'मलिका रजिया' नाटक में सत्ताधारियों द्वारा ली गई रिश्वत का पर्दाफाश किया गया है कि अधिकारी लोग किस प्रकार पार्टी के नाम पर रिश्वत लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं ''मरिदाद.. ..... लेकिन दूसरे हुक्मरान आपकी पार्टी की ताकत को कायम रखने और उसको बढ़ाने की आपकी मन्शा को पूरा करने के बहाने पार्टी के लिए रुपया बटोरते हैं और बीच में अपना मतलब बनाकर लाखों का माल खुद भी हजम कर लेते हैं''। (9)

दल–बदूलता की प्रवृति राजनीतिक जीवन का अभिशाप है, लोकतन्त्र की जड़ों पर कुठाराघात है, लोकतान्त्रिक मूल्यों और लोकतान्त्रिक प्रणाली को खोखला करने का षडयन्त्र है, सामाजिक जीवन को विषाक्त करने का घिनौना कृत्य है। व्यक्तिगत चरित्र की गिरावट की चरम सीमा है। उस संस्था की पीठ में छुरा घोपना है, जिसके सिद्धान्तों और मान्यताओं की सीढ़ी पर चढ़कर वह लोकतन्त्र के पवित्र मन्दिर में प्रविष्ट हुआ है– ''आज राजनीति में पार्टी, सिद्धान्तों के लिए नहीं निजि हितों की खातिर अपनाई जाती है। राजनीतिक गिरगिट की तरह रंग बदलते रहते हैं''। (10)

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के 'अब्दुल्ला दीवाना' नाटक में यही स्थिति दृष्टिगत होती है – ''जी हाँ, पहले वह तिरंगे कपड़े पहनता था फिर लाल, सफेद, फिर काला, फिर लाल, फिर पीला, और फिर गेरुआ। कहने लगा कि एक ही रंग का कपड़ा मैं रोज–रोज नहीं पहनूँगा। फिर वह रोज रंग बदलने लगा। जी हाँ, हर रोज।'' (11)

भारत की कार्यपालिका लोकतन्त्र की जड़ खोदने में लगी है। प्रशासन की सुस्ती, भ्रष्टाचार लालफीताशाही, प्रशासनिक अधिकारियों का प्रमाद और निर्णय लेने की बुद्धि की कुण्ठा, सबने मिलकर लोकतन्त्र को ठेस पहुँचाई है। पुलिस विभाग शासन में आन्तरिक सुरक्षा एवं शान्ति बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है इसका भी विकृत रुप उभरकर सामने आया है। पुलिस जनता की भक्षक बन गई है। बाढ़ ही खेत को खाने लगी है। रिश्वतखोरी, भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार आदि बुराईयाँ इस विभाग में चारों तरफ अपना जाल फैलाए हुए है, साथ ही शासक एवं सत्तारुढ़ दल ने सदा अपने स्वार्थ हेतु इसका प्रयोग किया है जिससे वे निरीह जनता पर मनमाने अत्याचार करने से नहीं हिचकिचाते। आज अत्याचार एवं बलात्कार कांडों में कितने ही पुलिस जन लिप्त हैं। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के 'करफ्यू' नाटक में पुलिस के बर्बर अत्याचारों का पर्दाफाश किया है। नाटक–नायिका पुलिस के चंगुल में फँस जाती है। पुलिस के अनैतिक व्यवहार के संदर्भ में वह गौतम को बताती है – ''अस्पताल होकर पुलिस चौकी पहुँचते–पहुँचते उन्होंने मेरे सारे शरीर को बुरी तरह मंथ दिया था। सारे रास्ते कई हाथ एक साथ मेरे जिस्म पर खेलते रहे और मैं..... मैं समाज की रक्षा करने वाले इन जानवरों की लीला देखती रही।'' (12)

मंत्रियों की सिफारिश से अनेक अयोग्य व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्ति प्रशासन में स्वेच्छाचारी को बढ़ाती है। केन्द्र लोक सेवा आयोग के उच्च अधिकारी, चयन कर्ता, स्वयं दुविधा में होते हैं कि यह राजनीतिक प्रभाव को नकारा गया तो उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए अधिकारी राजन को गयादत्त की धमकी मिलती है – ''अगर यह सत्य है तो मैं आपकी बेहतरी के लिए सलाह देता हूँ..... यह आर्डर वापिस लीजिए।'' (13)

संविधान की रक्षा का भार भी न्यायिक संस्था ही वहन करती है। जनतांत्रिक व्यवस्था में आवश्यक है कि न्यायपालिका, दलगत राजनीति से दूर रहे परन्तु आज स्थिति इसके विपरीत है।

सम्पूर्ण न्याय प्रणाली राजनीति के अधिकार में है। आज न्याय व्यवस्था में भी भ्रष्टाचार, रिश्वत, सिफारिश आदि विसंगतियाँ व्याप्त हो गई है। न्याय अब पैसे एवं सिफारिश से खरीद लिया जाता है। आम जनता को न्याय से वंचित रहना पड़ता है तथा उसी को दोषी ठहराया जाता है। बलपूर्वक प्रलोभन देकर न्यायिक को न्याय पथ से विचलित किया जा सकता है। अनैतिक दवाब से सत्य पर आवरण डाला जाता है। 0डॉ0 लाल चन्द ने 'न्याय' नाटक में अदालतों में होने वाले न्याय पर व्यंग किया है। न्याप्रणाली पर टिप्पणी करते हुए नाटक का एक पात्र कहता है – ''इस युग की न्याय व्यवस्था कितनी आपत्तिजनक है, जहाँ कितने ही दोषी बच जाते हैं और कितने निर्दोष सजा पा जाते हैं, जहाँ कितने सच्चे दावे खारिज हो जात हैं और कितने झूठे दावे मंजूर हो जाते हैं।'' (14)

निष्कर्ष:

साढोत्तरी हिन्दी नाटकों में वर्णित स्वार्थ, रिश्वत, सिफारिश, दलबदल, राजनैतिक दबाव से ग्रस्त न्याय स्थिति यथार्थ से उद्‌भुत है। नाटककारों ने इन्हीं वास्तविकताओं का दिग्दर्शन हिन्दी नाटकों में करवाया है। समस्त विवेचन के पश्चात् हम कह सकते हें कि भ्रष्टाचार पर आधारित लोकतन्त्र नितान्त खोखला है। सम्पूर्ण जीवन में भ्रष्टाचार भिन्न–भिन्न रूपों में व्याप्त है। कोई भी सरकारी विभाग इससे अछूता नहीं है। हमारा प्रशासन तंत्र कहने भर को निष्पक्ष है। सच्चाई यह है कि सरकारी हस्तक्षेप से निर्णय बदल दिए जाते हैं, केसों को दबा दिया जाता है, फाइलें गुम हो जाती हैं, रिकार्ड जल जाते हैं, अफसर बदल जाते हैं। समाज के धरातल पर व्याप्त भ्रष्टाचार को विविध कोणों से नाटकों में अभिव्यक्त किया गया है। भ्रष्ट शासन की पोल खोली गई है। कुव्यवस्थता, दोगली नीति, भ्रष्ट शासन और परिवेश की अव्यवस्था की सटीक अभिव्यंजना की गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल, हरा समन्दर गोपी चन्दर, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, पृ0 56
2. जैनेन्द्र, समय और हम, पृ0 371, पूर्वोंचल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 1962
3. गिरीश रस्तोगी, समकालीन, हिन्दी नाटककार, पृ0 103, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, पृ0 सं0 1978
4. तनसुख राम गुप्त, हिन्दी निबन्ध, पृ0 295, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 1981
5. कमलेश्वर, मेरा पन्ना, पृ0 148, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 1978.
6. देवराजपथिक, नकाब दर नकाब, पृ0 28, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 1981
7. मुद्राराक्षस, आला अफसर, पृ0 41, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 1979
8. डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल, मिस्टर अभिमन्यु, पृ0 29, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पं0 सं 1976
9. डॉ0 ला0 शर्मा, मलिका रजिया, पृ0 21, डल.एल. प्रकाशन, दिल्ली, पं0 सं0 1974
10. डॉ0 ओम प्रकाश सरस्वत, बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ0 66
11. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल, अब्दुला दीवाना, पृ0 16
12. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल, करफ्यू, पृ0 41
13. वहीं, पृ0 16
14. डॉ0 लाल चन्द जैन, न्याय, पृ0 98, भारती पुस्तक मन्दिर, पं0 सं0 1972

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सह–प्रोफेसर (हिन्दी–विभाग)

गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय,

पलवल (हरियाणा)

18

The Portrayal of the Grotesquery of Governance in his Fiction

Dr. Subham Chatterjee, Dr. Braj Gopal Singh

Frankly speaking, when I was submitting my synopsis on Upamanyu Chatterjee, I was a bit confused whether Upamanyu Chatterjee is worth researching at Ph.D. level or not because he wrote, at that time, only four novels. On the basis of only four novels, how could I be able to sort out the crux of the problem in his fiction -the question always haunted me. At that time, I have only read 'English, August' in detail and other novels in short. But as I entered into the realm of Upamanyu Chatterjee,s fictions I was surprised as how different my views proves to be in my eyes from my first perception. My curiosity raised on the author as I gradually studied the novels with my own limited critical vision. Only I can say, after reading the novels of Chatterjee that he is quite different from the other.

Indian English literature has had a great legacy of portraying the realistic literature through irony and satire, down from the three musketeers, Mulk Raj Anand, Raja Rao.

R.K. Narayan. The realism of these masters is of different kinds, quite alike the realism of the new novels presented in Salman Rushdie, Vikram Seth, Amitav Ghosh, Arun Joshi and even in Upamanyu Chatterjee. Upamanyu Chatterjee, quite alike the other novelists of his era has depicted the bleak realism and the hard times which he faces in his life. Chatterjee always wrote in an ironic mode, his brand of irony requires as its vehicle a peculiar language. It should be the language that looks playing but at the time unfolds layers of suggestions and innuendoes. He wields his ironic flail against degenerated society which has brought about socio-moral corruption in the national scene. His novels are also political and represent the political reality in a satirical mode. He analyses the matrix of existence in post-modern India and finds it to be largely woven with the warp and woof, mainly political in nature and traces the perversions and total loss of Indeed, the grotesquery of governance is one of most telling aspects that we can emphatically see in the fictions of Upamanyu Chatterjee. From the very first, "English, August", to the latest 'Way to Go' overtly shows Chatterjee's concern for the grotesquery of governance in India. Being an IAS officer, Chatterjee comprehensively understood the work –a- day nature, the delay-syndrome and the legacy of red ribbon over the government files. The very first novel portrays the fact through Agastya's work-a-day life. The entire situation may be looked through Agastya's eyes and deeds.

Agastya sen -a young westernized India civil servant whose imagination is dominated by women, literature and soft drugs. This vivid account of 'real India' by the young officer posted to the small provincial town of Madna is, "funny, wryly observed account of Agastya Sen's year in the sticks,"[1] as described by a reviewer in the observer. However, Chatterjee's heroes are mainly the average men seeking the earth for their favour. If we start seeking examples from the very first novel it will be more crystal clear. At the very second page of the novel, the ambiguity or the split- personality of Agastya is evident. As the novel starts with an ominous beginning Agastya is discussing in an intoxicated condition about the whereabouts of Dhrubo. At that time when the discussion comes to the childhood days, it is said of him:–

*"*That was a ten-year-old joke from their school-days in Darjeeling, when they had been envious of some of the Anglo-Indian boys who spoke and behaved differently, and did alarmingly badly in exams and didn't seem to mind, they were the ones who were always with the Tibetan girls and claimed to know all about sex... And like most names, they had paled with the passage of time and place, all but August, but they yet retained with them the knack of bobbing up out of some abyss on the unexpected occasion, and nudging a chunk or two of his past".[2]

These lines altogether symbolize the hesitancies as well as the shrinking character of Agastya in his childhood days. At the same time, the omniscient narration focuses the erotic nature or at least the eroticism in him. In the succeeding pages we find his longing, remembrances, pain and compulsion when at the guest house in Madna he read the poem written on the wall by R. Tamse, the Deputy Engineer, P.W.D.:–

"Away from my old life and my spouse, So many days at this circuit House, Away from Goa, my dear home, On office work I have to roam".[3]

These lines also symbolize Agastya's captivated condition at Madna and he finds no pleasure in the

administrative service, rather it seems, that the world has been closed to him, no outlet is there to tame his feelings. The frustration of Agastya, his ambiguity finds a brilliant exposure when he asked to himself:–

"I don't look like a bureaucrat, what am I doing here. I should have been a photographer, or a maker of ad films, something like that, shallow and urban"[4].

These lines also show the futility of administrative service especially for Agastya. Upmanyu Chatterjee has finely expressed the views of Agastya at Madna through several word-pictures and symbols. The pent up feeling of Agastya is further revealed when Mr. Srivastav reminded him the conditions and ambience of Madna:–

"'Oh, mosquitoes, yes, I can see that from your face'. A quick side- glance at him. 'I tell you, Madna must be one of the unhealthiest places in India. Hot, humid, disease, everything. Are you boiling your water? I told the naib tehsildar to tell you' ".[5]

What better picture of the dismal condition of Madna as well as of Agastya can we get? Indeed, the problem of mosquito biting, the problem of water, the dust ridden roads, meagre foods and the shabby guest house add more to the existing frustration of Agastya. He has been actually trapped between 'to be or not to be'. The dilemma in him leads to more dismal situations as is expressly hinted in every line of the novel. To Agastya–known to his friends as August, or sometimes English–he has been sentenced to the back of beyond. Seemingly overwhelmed by the heat, this slow - moving novel goes on to describe Madna's petty officials, the pretensions and day-dreams of its citizens, endless governmental meetings, hilarious dinner parties, much drunkenness and boredom and bureaucracy. To amuse himself, at times, Agastya makes up stories about his past: He confides to the District Inspector of Land Records that his (non-existent) wife is a Norwegian Muslim and that his "parents were in Antarctica, members of the first Indian expedition. Yes, even his mother, she had a Ph.D. in Oceanography from the Sorbonne." To the Superintendent of Police he casually lets slip that last summer he climbed Mount Everest. Even the food everywhere seems inedible. At one meeting at Gandhi-Hall he is handed a plate: –

"On it were laddus, samosas and green chutney. He could almost hear the chutney say, 'Hi, my name is cholera, what's yours?"

Refusing the food, he explains to the waiter: –

" 'I can't eat anything today. My mother died today'. The man looked puzzled again. 'I mean, this is the anniversary of my mother's death, and I fast'. For a moment he contemplated adding, 'In penance, because I killed her'. "

All these things adds to the grotesque kind of humour which Agastya enjoys during his stay at Madna. These are a sort of a comic relief from the dry, drab life of the town where restlessness, purposelessness, cyclic journey hover him throughout the day and night. He finds no respite even at the guest house or in the collectorate. However, Agastya's character, as evident in the novel seems to be more ambiguous and round than the other persons in the fiction. He has had a kind of an 'incalculability of life about' as E.M. Forster rightly asserted in his book 'Aspects of Novel'. His heroism is not at all a journey of valour rather he inculcates in him the compulsions of the post-modern man. His heroism can not be compared with the heroism we find in Tom Jones or in Pip in 'Great Expectations', rather he is, as already said, a common man eyeing to have the material world at the best.

Similarly, the second novel 'The Last Burden' is a fascinating portrayal of life in an Indian middle-class family. Jamun, the central character, is a young man, unmarried, adrift. He stays away from his family, which comprises his parents, Urmila and Shyamanand, his elder brother Burfi, his sister-in- law, Joyce, his two nephews (Doom and Pista) and the children's aya. Jamun returns to the family when his mother is hospitalized. Once there he decides to stay on until one of his ailing parents dies. He barely admits to himself that there is another, probably stronger reason for his extended stay in the family home–an old friend Kasturi, now married and pregnant, who has returned to the city. The ordeal of Jamun starts from the very beginning of the novel: –

"In the four days Jamun emerges at twilight for cigarettes and potatoes, milk etcetera. Otherwise in the white rooms of his flat he reads the Gandhi life and hears the rain. In the afternoons the waters slip away under the cauterizing sun. Then the white rooms glut with the exhalations of mud-of fish and sea, the beach and the wet. In the early mornings, from his verandah he observes the cream crabs in the ooze on which the block of flats has been erected. Later in the month, the river will ballon and Hegiste on the ground floor will share his flat with it. At night he hears the polite tap-tap beyond the windows, in the swelter, in the rain".[6]

So the extended paragraph of the novel, or to say, the very beginning gives us the dismal picture of struggle and wisdom and the way through which he combats with life in all sorts of activities. The lines also focus the point of

Jamun's initiation of a journey, the end of which is bottomless or eternal. He starts a journey from ignorance to knowledge without knowing the path in which he walks. So also these lines altogether symbolise the iron determination as well as the frisky nature of the protagonist. Chatterjee tries to give the hint of the ambiguity of the character in the present paragraph. He never tires from the ongoing difficulties or the impediments that fall in between the journey of the protagonist. The way in which the character is presented is well noticed by the readers because the beginning gives us the shock, the way in which the character gives his vent to the outer world, captures the attention of the readers as well of the critics. The critics are of opinion that the opening paragraph categorically foretold the story of the rest of the novel. Not only that the opening paragraph also comprehensively discusses the way in which a quasi- hero is developed. As we had a prolonged discussion at the beginning of the chapter that how should we categorize the heroes in Chatterjee; especially at a time when he wrote, the time was ripe to portray the waywardness or the purposelessness of a person. The post- modern thinkers are also of the opinion that the character of Jamun unfurls the historic vision as well as the ambiguity or the multi-faceted characteristics of the particular protagonist. In a way we can say, that the character of Jamun summarily follows the way of a post-modern man. Some more examples from the text would suffice the point:–

"In his excitation Jamun reckons that it is his mother's self-pity that cries out for him. Yet time and time again, he himself, with a child's raw sentience, has itched to be there. He can't situate her in hospital but when he at last contemplates her in Intensive Care–gunmetal skull on green pillow, stertorous, terrorized exhalations, brow rutted with veiled agony–he recognizes anew her method of living: a bullheaded and dreary conflict because she discerns no choice, in the main with head down and neck steeled, but botching and ebbing decade after decade, the point of the struggle progressively disputable, never taking stock because her mind could unplug, and after it does, what endures is this gentler submerged strife amongst the shards of her life".[7]

The important as well as comprehensive verse-paragraph (as we must say verse because of its language larded with symbol), shows again the minute observation as well as the lived experience of the novelist. How finely Chatterjee builds up the structure and also the superstructure of his novel through these sharp, vivid, minute and poignant observation. In this case the illness of the mother was highlighted with utmost attention as well as with passion. Jamun never intends to fall in such a condition or in the midst of such a chaos, or to say, in a 'hurly-burly' condition. But as life has no definite way of maintaining its pattern rather as life is patternless or designless, so also the life of Jamun and his surroundings. He never feels kinship with this particular world as well as with his family but the given situation, the incidents or episodes in his life compel him to think, his thinking enables him to undergo the journey of frustration, of anger and pain, of ordeal and anguish. All these make the character of Jamun more unpredictable as well as undecidable as post-modern critics as well as the deconstructionists always emphasize in their treatises.

Moreover, the sharp-edged description reminds us of the undecisive qualities of the heroes in T.S. Eliot. As we know,

T.S. Eliot was the progenitor of the new sort of writing in the modern age. All sorts of literature, whatever genre, written after Eliot follows the same 'aesthetic of indeterminacy'. Upamanyu Chatterjee also follows the foot steps of Eliot in the sense that all his heroes or rather characters follow the same dynamics, the dynamics of indeterminacy. Whether 'English, August' or 'The Last Burden' or the fiction 'Weight Loss' we always find the same tensions and 'aporias' as it is the characteristic method of the novelist. Some more textual input would suffice the tale of struggle and pain:–

"At fifteen, and at twenty-eight, Jamun recognized the disparity in what money denotes to him, and to Burfi- rather, at fifteen, he was witheringly certain; at twenty-eight, he fancied that a difference in their attitudes might exist, but also that it might no matter. He himself gauges money to be wily. If he has the money, he'll buy chewing gum, or condoms, or a refrigerator. If the doesn't, he will muzzle himself to do without; the self-discipline becomes in itself quite piquant. But for Burfi, deprivation is failure, a cudgel to his self-esteem."[8]

In this decisive paragraph also the story of deprivation and failure looms large and Chatterjee presents both the characters larger than life. They, as it seems, are the stalwarts of attaining the life and its meaning at any cost. The problem and meaning of life becomes very relevant here, so also the piquancy of the situation. Both the characters having their way to tell the world the shortcomings of their own as well as their perceived emotions and passions. They never fight out or ruled out the given situation in which they are in, rather they wished away all the hindrances of life, though ambiguous in their own way. Now, the question of ethical

purgation that comes into mind should be sorted out. In few sentences, we should try to summarize the point. Ethical purgation is the summum bonum of all human beings whether of a man belongs before modern period or of a story of a person of the post- modern age. The purgation or the biological release as we were hearing from the days of Aristotle still having its relevance in the novels of Chatterjee. Whether Agastya or Jamun or Burfi–all tends to be purgational, or to say, all are having their release through different sorts of activities. The activities may be in the form of taking drugs or marijuana or having condoms in the pocket or through uttering strange like 'hazaar fucked' at the very first novel. Their frustration finds its release through these obscene, rather adulterous activities. In this sense, we can compare the heroes of Chatterjee with the heroes of Henry Fielding, especially with Tom in 'Tom Jones'. In both the novels 'Tom Jones' or to say in Chatterjee's 'English, August', or 'The Last Burden' we find a series of adventure. Though the adventure was not well organized in 'Tom Jones', it was episodic and having no brevity of expression. But in Chatterjee's novels the adventures are not grand in scale, these are more, naive adventures of life in which the heroes plunge deep into the sea of life as well as in the world but ultimately ends with dissatisfaction and frustration. Only journey remains, the works or the naive deeds remain in the pages, in black words, not the essence. This is the way the world ends, and this is also the way the heroes of Chatterjee ultimately reach to their ultimate destination or to say more specially, to the 'doom'.

'The Mammaries of the Welfare State', though it is a sequel to 'English, August', finely delineates the grotesquery of governance and worthlessness of the administrative posts in India. The boon of civil services becomes a bane in the twentieth centuary India.

The pangs, agony and the pressure through which an administrative officer works in the present day scenario are hinted out in the novel. Furthermore, the political interference in decision–making the undue pressures from the political parties and pressure-groups on an administrative officer–has been emphatically shown in this particular novel. An example from the text would suffice the routine-work as well as the arid condition of an administrative officer:–

"Early one June morning, the Municipal Corporation showed up at his door. It had decided that week to clean up his part of Bhayankar–a routinue exercise that it undertakes every month in different parts of the city, to tear down the shacks of those without clout, harass all who do not bribe to devastate the property of the unprepared. Under the noses of the police and the demolition squad, however, Bhootnath Gaitonde waved a stay order from the court. The worm had turned–and moved like lightning."[9]

The passage aptly shows the monotony and the hectic life-style of the officers as well as their works. Moreover, the monotonous activities mar the intrinsic as well as the innermost life of the officers. The problem of delivering the act of development to the general public also comes to the forefront because, at times, the work, especially in the public departments, suffers from the complexity of red-ribbons. And the officers have of undergo these trails and tribulations in their journey to the administrative reforms. In this context, the words of Khushwant Singh are apt to notice. He asserted that "most of the services done by the administrative officers are forgotten, but the lacuna in them highlighted in the print as well as in the electronic media".[10]

This is the other-way of looking to the life of those officers and their lives. Here also Agastya finds no respite as in 'English, August'. His restlessness looms large in the periphery of the novel. He becomes a tiny-tot in the hands of fate, or to say, in the chain of norms, rules and regulations. The entire novel, indeed, is a commentary and a saga of the dismantled predicament and condition of the administrative reforms in India. Through a particular instance, the novelist tries to hint out or focus on the general scenario of the nation.

Now, coming to the last but not the least fiction of Chatterjee's 'Weight Loss', we can unhesitatingly say that novel also focuses on the discrepancies of the society. It is also searing passage through bureaucratic India laughter and disgust, grotesquery and astonishment looms large in the novel. The lines that follow would prove the point:–

"Something seemed to fit into place in Bhola's head accompanied by the click made by the safety catch of a gun in a slick gangster film soundtrack. In a dozen assignations, he had seen Moti naked in the back room of Mrs. Manchanda's flat, shy and happy at being desired, yet with his face suffused with blood, crimson with mortification at his own eternally flaccid state. 'He can't get it up, so that's it.' Bhola blurted out the revelation, and then tensed as he wondered whether Borkar would be puzzled by how Bhola knew."[11]

So the paragraph is sufficient enough to comprehend the hectic schedule of Bhola in the midst of pressure as well as the difficult circumstances. Chatterjee, very minutely discusses the day to day activities here to create a sort of a poignancy in the novel.

Next, 'Way to Go' also presents disorder and chaos.

In a nutshell, the world of the fiction is quintessential Upamanyu Chatterjee,s world; dysfunctional, darkly ironic, but adhering to the social conventions of a predictable order. The novel exposes lethargy of the government servants along with the unpleasant facts of life: tards, suicides. Indeed it's a bleak world where the restlessness hovers around the entire ambience. Chatterjee finely exposes here also the grotesquery of governance through the indifference of the officers at the police station along with the working of the soap opera and through the builders' guild and their obnoxious work.

However, to sum up, we can unhesitatingly say that all the novels of Upamanyu Chatterjee, right from the 'English August' to 'Way to Go' presents very candidly the grotesquery of governance through the characters, situations and even through the entire plot. In a broader perspective, the presentation of the grotesquery is a motif, a tool to portray the essential ironic vision of the author.

Notes and References

1. Stein Allen, 'Westernized Agastya', observer, Vol. II, No.126, 1989, P.– 06.
2. Chatterjee, Upamanyu, 'English, August' Faber & Faber, London, 1988, P.– 02.
3. Ibid. P.–09.
4. Ibid. P.–13.
5. Ibid. P.–15.
6. Chatterjee, Upamanyu, 'The Last Burden', Penguin Books, London, 1993, P.–03.
7. Ibid. P.–08.
8. Ibid. P.–69-70.
9. Singh, Khushwant, 'Administrative Reforms in India', article published in 'Times of India', dated 31st Oct, 2008.

Dr. Subham Chatterjee
(Asso. Prof. & Hea)
K.G.K. (P.G.) College Moradabad

Dr. Braj Gopal Singh
(Deptt. Of English)
K.G.K. (P.G.) College Moradabad

19

भारत में नवजागरण आन्दोलन की उत्पत्ति एवं उसका स्वरूप

डॉ0 एम.एस. त्यागी, इन्द्रजीत सिंह

सारांश –

जिस समय विश्व के अन्य किसी भी भाग में चित्त मानव चिन्तन का कोई रूप मुखरित नहीं हुआ था अर्थात् ईसा के कई शताब्दियों पूर्व भी भारतीय चिन्तकों के सूत्र–सिद्धान्तों ने भारत को विश्व–गुरू के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया था। भारतीय चिन्तन की यह परम्परा वास्तव में वैदिक युग से लेकर आज तक अक्षत रूप से गतिशील है। हमारे इस चिन्तन का आधार हमारा गौरवशाली अतीत ही है, किन्तु आज उस पर वर्तमान की छाप भी प्रबल रूप से अपना प्रभाव बनाये हुए है। यहॉ यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज हमारी ऑखों पर लगे चश्मे के 'लैंसों' को पश्चिमी रंग से इतना गहरा रंग दिया गया है कि भारतीय श्रेष्ठता एवं महानता कई बार अविश्वासी सी प्रतीत होने लगती है। हम अपने गौरवमयी अतीत को भूलने के साथ–साथ यह भी भूल जाते है कि 19वीं शताब्दी में ही स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस सरीखे चिन्तकों और दार्शनिकों ने विश्व के सामने भारत की महानता को प्रकट किया है।[1]

हमारे महा–मनीषी स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, ''भारत में विदेशियों को आने दो, शस्त्र–बल से जीतने दो, किन्तु हम भारतीय अपनी आध्यात्मिकता से समस्त विश्व को जीत लेंगे। प्रेम घृणा पर विजय पायेगा। हमारी आध्यात्मिकता पश्चिम को जीत कर ही रहेंगी।''[2] डॉ. जकारिया के अनुसार, ''भारत की पुनर्जागृति मुख्यतया आध्यात्मिक थी। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने में बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।''[3]

भारतीय चिन्तन धारा किसी एक ही पहलू पर ही अपनी इतिश्री नहीं समझती। अपितु यह जहॉ आध्यात्मिकता मानव चिन्तन के शिखरों पर जाकर ठहरती है वहीं राजनीतिक एंव सामाजिक चिन्तन भी 'मील के पत्थर' के समान अविचलित रूप से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। महाभारत एंव रामायण में राजनीति के जिन गहन सिद्धान्तों के दर्शन होते है वे हमारे लिए गर्व के बिन्दू हैं। भारत के प्राचीन साहित्य एवं वाङमय में चिन्तन के चहुमुॅखी ऐसे–ऐसे पक्ष में मिलते है जो विदेशों के लिए आज भी कल्पना मात्र है। इतना होने के बाद भी विदेशी इस क्षेत्र में हमारा उपहास करते रहे, यह तीखा प्रश्न हमारे सम्मुख आ खड़ा होता है। अरनेस्ट वार्कर सरीखे विदेशी आलोचको ने भारतीय राजनीतिक चिन्तन की तुलना रेगिस्तान से कर डाली।[3] यदि ऐसी कड़वी आलोचना के कारणों पर थोड़ा सा दृष्टिपात करें तो–यह हमारा दुर्भाग्य है कि प्राचीन काल से चले आ रहे हमारे गम्भीर राजनीतिक दर्शन का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई एक मुद्रित ऐसा नहीं है जैसा पाश्चात्य राजनीतिक साहित्य सरीखा ग्रन्थ एक सूत्रीयता लिये हों। लम्बी दासता भी इसका एक बहुत अहम् कारण है जिसमें विदेशियों ने मात्र, न हमें धन से अपितु मन से भी खोखला करने के षड्यन्त्र रचे। ऐसा करने से ही उनकी यहॉ मजबूती होती थी। तीसरा कारण यह है कि अधिकांश विदेशियों को भारत की गौरवशाली परम्परा का समुचित ज्ञान नहीं है और भारतीयों ने विदेशियों को अपना ज्ञान उपलब्ध कराने की कोई चेष्टा नहीं की। जिस कारण विदेशियों को भारत के बारे में अनेक भ्रान्तियॉ उत्पन्न हुई तथा एक और चतुर्थ सबसे बड़ा कारण यह रहा कि विदेशियों से भी अधिक भारतीय स्वयं भी अपनी महान और गौरवपूर्ण परम्परा से अनभिज्ञ है। भारत के अतीत का अध्ययन करने में उन्हें कोई रूचि नहीं है। भारत के आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन की श्रेष्ठता को यदि कभी वे मन में महसूस करते हैं तो भी उसे प्रकट करने मे हिचकिचाते हैं। वास्तव में पश्चिम की आधुनिक भौतिक सभ्यता में वे इतने डूब चुके थे कि पश्चिम की प्रशंसा करना ही वे आधुनिक की निशानी समझते है। भारतीय चिन्तन को समझने–समझाने को वे पिछडापन का प्रतीक मानते हैं एवं ऐसा प्रयत्न करने वालों को 'दकियानूसी' कहने में अपनी शान समझते है।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है कि भारतीय भूमि राजनीतिक चिन्तन के लिये पर्याप्त उर्वरा रही है लेकिन उससे प्राप्त सिद्धान्त एवं सूत्र रूपी फसल को एक सूत्रता में पिरोया जाता। यहॉ। यह भी उल्लेखनीय है कि, ''वस्तुतः निवर्तमान प्रवृत्तियॉ को नई दिशा प्रदान करने, अथवा निवर्तमान चिन्तन को मौलिक स्वरूप प्रदान करने में भी देश की तत्सम्बन्धी एतिहासिक परम्परायें या तो पुनर्जागृत होती हैं या उनमें कुछ सुधार किये जाते है। अथवा एकाएक किसी सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक क्रान्ति के हो जाने से नई व्यवस्था के सृजन के बारे में विद्वान लोग स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करके कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत करते है।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत मे ऐसे अनेक महापुरूषों का

अभ्युदय हुआ जिन्हें पाश्चात्य देशों के इस विकास का अध्ययन करने का अवसर मिला था और भारत के पुनरूत्थान के निमित्त उन्होंने चिन्तन करना आरम्भ कर दिया। यहीं से आधुनिक भारत का सामाजिक तथा राजनीतिक चिन्तन प्रारम्भ हुआ माना जाता है। आधुनिक भारतीय राजनीतिक तथा सामाजिक चिन्तन की कुछ अपनी विशेषताएँ है। भारत का नवजागरण भी भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तन का ही फल है। जब ब्रिटिश साम्राज्य भारत में अपने पूर्ण रूप में स्थापित हो गया तो अंग्रेजों की साम्राज्यवादी शोषण नीति के विरूद्ध भारत को बुद्धिजीवी वर्ग में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न होने लगी। इस वर्ग के महापुरूषों के विचारों ने भारत में एक क्रान्तिकारी नवजागरण आन्दोलन को जन्म दिया। यह भारतीय नवजागरण सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रायः सभी क्षेत्रों में अपने प्रभाव को प्रसारित करने लगे। राष्ट्रीय चेतना के विकास ने नवजागरण के नेताओं केा जो मुख्यता बु(िजीवी वर्ग था, इन विविध क्षेत्रों में सुधार के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने की प्रेरणा दी। इसलिए इस युग में विचारों मे मुख्यतया व्यावहारिक समाधान है। 19वीं सदी के चिन्तकों के विचार स्वतन्त्रता आन्दोलन का संचालन करने की विविध धारणाओं, साधनों, कार्यक्रमों आदि में परिवर्तन आदि की दिशा के व्यावहारिक कदम ही थे।[4]

उन्नीसवीं सदी का काल भारत के वर्तमान नवजागरण का काल है। भारत लम्बे समय तक विदेशियों की राजनीतिक दासता का शिकार होता रहा है। मध्य युग में अफगान तथा मुगल भारत पर अपना सियासी आधिपत्य स्थापित करके यहीं बस गये। किन्तु इसी श्रंखला में अनेक विदेशी लुटेरों ने भारत को लूटा व बरबाद किया। जो विदेशी एवं विधर्मी यहॉ स्थाई रूप से बस गये उन्होंने हिन्दुत्व एवं हिन्दू संस्कृति की जी तोड़ उपेक्षा की और उसके मुकाबले में अपनी संस्कृति का प्रचार–प्रसार किया। इस प्रकार सम्पूर्ण मुस्लिम शासन काल में हिन्दू समाज की स्थिति अत्यन्त पतितावस्था को प्राप्त कर गई थी। उसी समय निराश हिन्दू समाज को थोड़ा बहुत सम्वत भक्ति मार्गी सम्प्रदायों, साहित्यकारों से प्राप्त हुआ। इन महान आत्माओं के कार्यकलापों ने भारतीय नवजागरण के बीजों का वपन किया, जो उचित समय पाकर शनैःशनैः अंकुरित होने लगे थे। मुगलों के लम्बे एवं विधर्मी शासन के उपरान्त भारत को क्रूर एवं नितान्त लोभी–स्वार्थी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का जुआ लम्बे समय तक अपने कंधो पर रखकर अपनी यात्रा जारी रखनी पड़ी तथा ब्रिटिश साम्राज्य की शोषण नीति के प्रतिक्रिया स्वरूप ही भारत की बु(िजीवीं वर्ग में राष्ट्रीय चेतना का प्रस्फुटन होने लगा। इस वर्ग के महापुरूषों के विचारों एवं क्रियाकलापों ने भारत मे एक क्रान्तिकारी पुनर्जागरण आन्दोलन को जन्म दिया। भारत में यह नवजागरण चहुॅमुखी होकर अर्थात् धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों में जागृत होने लगा। 19वीं शताब्दी में जिन भारतीय महापुरूषों ने अपने विचार रखे वे इस बात से आतंकित थे कि भारतीय जीवन में जो अनेक दोष उत्पन्न हो चुके है, उनमें सुधार हुए बिना समाज की उत्थान नहीं हो सकता।[5] इन महापुरूषों ने अपने विचारों को जनता के सामने लाने के साथ–साथ उन पर रचनात्मक कार्यान्वित उत्पन्न हुई और इसके निवारण के हेतु जनमत का भी निर्माण सम्भव हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय चेतना को पुनः जागृत करने में जो महान आत्माऐं एवं नेता रत थे वे मुख्यतया बुद्धिजीवी एंव पूर्ण शिक्षित थे। उन्होंने न केवल भारतीय संस्कृति एंव साहित्य का मन्थन किया था अपितु विश्व इतिहास का भी भली–भॉति अध्ययन–मनन किया था। इसीलिए पाश्चात्य ढंग के विचारों और शासन ने वैधानिक नियमों, स्वतन्त्रता एवं समानता की भावना तथा राजनीतिक एकता के सूत्र में बॉधने का सफल प्रयास किया है। यह बात भी निश्चित है कि पाश्चात्य राजीनीतिक विचारकों ने आधुनिक भारतीय इतिहास की धारा को प्रभावित किया है। वाशिंग्टन, क्रामवेल, मैंजनी, नैपोलियन और गैरीवाल्डी ने राष्ट्रीयता के सुखद स्वप्न संवारने का अवसर दिया है।.....यहीं कारण है कि समानता, शान्ति, एकता एवं शासन–विधान के रूप में संवारने के साथ–साथ देश में लोकतन्त्रीय और संसदीय संस्थाओं पर अधिकाधिक जोर दिया जाने लगा। साम्यवाद, समाजवाद और व्यक्तिवाद की पृष्ठभूमि के बीच राजनीतिक स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रीय संस्थाओं को प्राप्त करने के लिए देश का जनमानस विहल हो उठा।.....हमने अपने अतीत से अच्छे गुणों को संग्रहीत करके नवीन निर्माण की दिशा में जो पग बढ़ाए वह पुनर्निर्माण अथवा नवजागरण के सबल सम्बल है।[6]

19वीं सदी में हीगल सरीखे पाश्चात्य विद्वान का प्रात्यवाद एंव अन्य अनेक विद्वानों द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक चिन्तन की अनेक धाराऐं मात्र भावनामूलक तर्कों पर आरूढ़ होकर विश्व के सम्मुख अवतीर्ण हुई तथा इसी प्रकार विवेकानन्द के युग में भी वहॉ की अनेक विचाराधारायें प्राकृतिक कानून सदृश भावनामूलक धारणाओं पर आधारित थी। अतः उन्नीसवीं का अधिकांश पाश्चात्य चिन्तन भावनामूलक तर्क–वितर्कों पर आधारित रहा।[7] जबकि भारतीय चिन्तन इसे तर्कों से बचा रहा। यद्यपि आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में भी आध्यात्मवाद के तत्व है और अनेक राजनीतिक धारणाओं को आध्यात्मवादी ढंग से व्यक्त किया गया था, किन्तु भारतीय राजनीतिक आध्यात्मिक विचार प्रत्यममूलक न होकर यथार्थ की धरती पर खड़े हुए है। इनकी पृष्ठभूमि भारतीय धर्म तथा संस्कृति है, न कि भावनामूलक तर्क–वितर्क। स्वामी रामकृष्ण

परमहंस, विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द सरीखे चिन्तकों के विचारों को इसी श्रेणी मे अंकित किया गया है। परन्तु इन भारतीय विचारकों ने यथार्थ के साथ आदर्शो का भी समन्वय किया है, इसलिए भारतीय विचारधारा कोरे भावनामूलक तर्कों से अछूती ही बनी रही। भारतीय पुनर्जागरण इसी नींव पर खड़ा भव्य भवन है।

नवजागरण का अर्थ एवम् भारतीय नवजागरण का स्वरूप

नवजागरण को संतुलित–शाब्दिक परिभाषा में ठीक से बॉधना असम्भव सा है। इस शब्द में अंग्रेजी पर्याय 'रेनेसां' का हिन्दी भाषा के कई शब्दों में व्यक्त किया गया है। जैसे नवरूज्जीवन, नव–जागृति, नव–जागरण, नव–जन्म, नव–जीवन आदि। किन्तु ये सभी शब्द 'रेनेसां' के शाब्दिक अर्थ हैं, जों 'पुनः', 'नव' एवम् जीवन अथवा जागृति आदि की व्यंजना द्वारा साधे गये है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि नवजागरण एक निश्चित विराम के बाद विकास की नई दिशा में बढ़ने का नाम है। हम जिस दिशा की तरफ बढ़ते है उस दिशा का निर्माण कहीं पूर्व मान्यताएं करती हैं तो कहीं वाह्या आदर्श करते है। नवजागरण में पूरी तरह से प्रगति एवं विकास की आकांक्षा निहित है, परन्तु प्राचीन के साथ हम अपना पूर्ण रूपेण सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर बैठते, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ नई रचना होगा। सम्भवतः ऐसी रचना को सम्पूर्ण समाज का, जन–मानस का समर्थन प्राप्त न हो। भारतीय नवजागरण भी पूरी तरह से इस तथ्य का प्रतीक है। भारतीय सांस्कृतिक सिद्धान्तों का बिना साथ छोड़े हमने नवीन को अंभीकृत किया है। इस पुनर्जागरण की भावना के पीछे स्पष्टतः धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता के तत्व रहे है। नव जागरण अथवा पुनर्जागरण की भावना जहॉ नहीं होती वहॉ सुधार की सम्भावना नहीं होती।[8]

इस प्रकार, ''अतीत को त्यागे बिना 37 नये पात्रों का पथिक बनना नवजागरण या पुनर्जागरण कहा जा सकता है जो मानवता के सकल प्रहारियों के रूप में दस्तक देते रहे है।''

डॉ. तिवारी एवं करगेती के अनुसार, ''पुनर्जागरण का अभिप्राय किसी भी राष्ट्र या देश के जीवन में एक नवीन स्फूर्ति, नये उत्साह नई उमंग व जोश अथवा गौरव के युग से होता है। इसे उस राष्ट्र या देश के जीवन में बसन्त ऋतु का काल माना जा सकता है।[9] कोई भी राष्ट्र जिसका अतीत उज्जवल रहा हो, प्रायः अपने पुनर्जागरण काल में अपने प्राचीन वैभव और संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। परन्तु यह भी तथ्यपरक बात है कि वह प्राचीन के उन विचारों एवं तत्वों का परिव्याम भी करता है जो वर्तमान की कसौटी परन अथवा भविष्य की तुला पर खड़ा तो होता है लेकिन वह अतीत का उन कुप्रवृतियों, कुप्रथाओं, अन्धविश्वासों तथा मात्र मान्यताओं को पूर्ण शक्ति से त्याग देता है जिनकी, वर्तमान समाज में कोई औचित्य नहीं रह जाता। वह राष्ट्र एवं समाज को उन पतनशील सांस्कृतिक प्रवृतियों से भी अवगत कराता है जो मात्र ढकाहेला स्वरूप होती हैं चाहे वे प्रवृतियॉ नवीन ही क्यों न हो।

इसी संदर्भ में, आज भारत का नव–शिक्षित वर्ग अनेक पाश्चात्य कुरीतियों का शिकार होकर भटकाव की राह पर चलने लगा है जिससे रक्षा करना हमारे वर्तमान मनीषियों का प्रबल कर्तव्य है। इस पाश्चात्य कुरीतियों में मादक पदार्थों का सेवन एवं उन्मुक्त–मौन प्रमुख है। भारत को इन कुरीतियों से बचने के लिए पुनः एक पुनर्जागरण की महती आवश्यकता अबिलम्ब है। पुनर्जागरण किसी भी देश की विकास अवस्था में एक दीर्घकाल के पश्चात् की उन्नति की ओर बढ़ाने की अवस्था का नाम है। ज्योति प्रसाद सूद के अनुसार कुछ समय की निद्रा के उपरान्त राष्ट्र के मानस, आत्मा या अनस्तत्व का जागृत होना, राष्ट्रीय आत्मा की सुषुप्त जीवन–शक्ति का सृजनशील क्रिया में प्रस्फुटित हो उठना नवजागरण है।

उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुए भारतीय नवजागरण के अन्तर्गत हमें लगभग उसी प्रकार की प्रक्रियाऍ देखने को मिलती है, जैसी 16वीं शताब्दी में इटली के पुनर्जागरण के उपरान्त यूरोप में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया था। यद्यपि सुधार आन्दोलन में निरंकुशवादी राजतन्त्रों को दैवी अधिकार सि(ान्त के आधार पर मान्य किया गया था, तथापि इस आन्दोलन में लोकतन्त्र के बीज भी विद्यमान थे।

भारतीय नवजागरण आन्दोलन सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुआ, जिसने भारतवासियों के मानस पटल पर एक स्वशासित एवं स्वनिर्मित देश के राजनीतिक अस्तित्व की इच्छा को जागृत कर दिया। डॉ. अवस्थी के अनुसार, ''भारतीय समता एवं संस्कृति को डूबते हुए देखकर भारत का बौद्धिक एवं दार्शनिक वर्ग चुप नहीं बैठ सका। पतन अपनी चरम सीमा छूने लगा और तब भारत के ये सपूत अंगडाई लेकर उठ बैठे। भारत के धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों को शुभारम्भ हुआ। भारतीय सन्तों, मनीषियों, विद्वानों और विचारकों ने गिरते हुए भारतीयों को समाज ओर धर्म के क्षेत्र में एक बार फिर उठाया। उन्होंने भारतीयों को उनके अतीत के वैभव की याद दिलाई ओर साथ ही उनकी वर्तमान पतित अवस्था का उन्हें ज्ञान कराया। सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों की एक लहर दौड़ गई, उससे गुलामी की बेड़ियों केा तोड़ फेंक कर स्तन्त्र होने की प्रबल लालसा जागृत हो गई।''[10]

इस जागृति के अन्तर्गत की भावना अतीव प्रबल थी, यद्यपि भारतीय नवजागरण आन्दोलन यूरोपीय प्रभावों से मुक्त नहीं

था किन्तु इसका स्वरूप यूरोपीय पुनर्जागरण से कई अर्थो में बिल्कुल भिन्न था। यूरोपीय पुनर्जागरण का स्वरूप जैसा मिल्टन, बैकन, पेरासिल्स, मौनटेन आदि की रचनाओं से दृष्टिगोचर होता है, मुख्यतः बौद्धिक एवं कलात्मक था। इसके विपरीत, भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन आध्यात्मिक एवं नैतिकता से पूर्णतः भरतली 'चाश्नी' में पंगा हुआ था। डॉ. वीरेन्द्र शर्मा के शब्दों मे, ''हमने वेचारिक क्षेत्र में बुद्धिवाद और उदारवाद की मान्यताओं को स्वीकार करके उन्हें पूर्ण रूपेण भारतीय प्रदान की, अनुकरण से जितना हमने ग्रहण किया, उसका भारतीयकरण किया, क्योंकि हमने अन्धानुकरण नहीं किया। यही कारण है कि पाश्चात्य शिक्षा, साहित्य, धर्म और सत्यता के निरन्तर प्रहार भी हमें हमारी आध्यात्मिक, नैतिकता और सांस्कृतिक मान्यताओं से विमुख नहीं कर सके।''[11]

यद्यपि कई पाश्चात्य विद्वान भारतीय पुनर्जागरण को ईसाईयत का फल भी मानते है। किन्तु यह बात सत्य नहीं कही जा सकती, क्योंकि भारत की अतीत में जो प्राचीन काल से ही वे अमर तत्व सम्मिलित रहे है। जिन्होंने चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र मे अमरत्व के अनूठे सोपान सौंपे है। मि0 फार्कुहार की मान्यता है कि,''ईसाइयत के एकेश्वरवाद, दैवी धार्मिकता, ईश्वर के पितृत्व तथा आध्यात्मिक आराधना आदि परम्पराओं का आधुनिक भारतीय चिन्तन पर प्रभाव पड़ा है।''[12] इसी संदर्भ में अल्वर्ट श्वाइट्जर का कथन है कि ''यूरोप तथा ईसाइयत के 'जीवन तथा विश्व को स्वीकार करने' के सन्देश तथा प्रेम के आदर्श का आधुनिक भारतीय चिन्तन पर प्रभाव पड़ा है।[13] किन्तु जिस चीज की दुहाई फार्कुहार तथा अल्बर्ट दे रहे है वह तो हमारी संस्कृति की वह आत्मा है जो यूरोप एवं ईसाइयत के उदय काल से भी पूर्व हमारे जीवन को ऊर्जा प्रदान करती रही है। भारतीय नवजागरण आन्दोलन के कुछ नेताओं ने खुले रूप में इस बात का समर्थन किया कि हमें जानबूझ कर वेदों, उपनिषदों, गीता व पुराणों आदि प्राचीन शास्त्रों के आधार पर अपने वर्तमान जीवन को ढालना चाहिए। उन्होंने उन भारतीयों की निन्दा की, जो हक्सले, डार्विन, मिल और स्पेंसर के विचारों से प्रभावित थे और जिनका जीवन दर्शन आध्यात्मिकता तथा राष्ट्र–प्रेम से पूर्णतः शून्य हो गया था।''[14] भारतीय नवजागरण आन्दोलन में भारत की आत्मा के जागरण की प्रथम अभिव्यक्ति, संस्कृति, दर्शन तथा धर्म में हुई और उसके पश्चात् राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अन्तर्गत अतीत के पुनर्जागरण करने की प्रवृत्ति अधिक बलवती थी। इसके नेताओं ने स्पष्टतः इस बात का समर्थन किया कि ''शुद्ध ब्रह्म की पूजा ही धर्म की सबसे प्राचीन परम्परा है''[15]

भारत में अतीत को पुर्नजीवित करने की यह भावना आक्रामक तथा अहंकार पूर्ण विदेशी सभ्यता के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुई। चूंकि उस युग में पश्चिमी सभ्यता राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक प्रभावपूर्ण तथा आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली थी। अतः भारत में जो उस समय इन दोनों दृष्टियों से निर्बल हो गया था और पाश्चात्य के द्वारा आक्रान्त हो रहा था, उनके विरूद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।[16]

यहा यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि पुनर्जागरण की इस लहर में मतभेदों और सै(ान्तिक संघर्षो का होना, कट्टरपंथियो और सुधारवादियों की टक्कर होना स्वाभाविक था। कट्टरपंथियो, सुधारवादियों, वैज्ञानिक, एवं दार्शनिक विचारकों के मध्य सैद्धान्तिक एवं वैचारिक मतभेदों का जो संघर्ष चला, उसमें अन्ततः विजय सुधारवादियों को प्राप्त हुई। इन सब संघर्षो के दौरान विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विचार नये रूप में उदय हुए तथा इन्हीं के माध्यम से आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन का निर्माण हुआ।[17]

भारतीय नवजागरण आन्दोलन पूर्ण रूप से किसी एक ही पथ का पथिक बनकर अपनी यात्रा नहीं चला, अपितु उन सभी रास्तों में अपनी यात्राएँ की, जिनके द्वारा भारतीय जन–मानस को उसका वास्तविक भारत एवं वास्तविक समाज की प्राप्ति हो सके। क्योंकि सत्यता यह है कि धार्मिक व सामाजिक सुधार तथा विस्तृत सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अभाव में राजनीतिक चेतना का विकास भी सम्भव नहीं है। डॉ. जकारिया के अनुसार, ''भारत की पुनर्जागृति मुख्यतः आध्यात्मिक थी तथा एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण करने से पूर्व इसने अनेक सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया।[18] हम देखते है कि यूरोपीय औद्योगिक क्रांति ने जहां यूरोप को आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सशक्त बनाया, वहीं 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एशिया को आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से शक्तिहीन बना दिया तथा एशिया को अधीनस्थ शक्ति के रूप में जीना पड़ा। यह अवधि अंधकारपूर्ण हो सकती है किन्तु निराशापूर्ण कदापि नहीं, क्योंकि एशिया को अन्ततः नव दिशा की तरफ अपने पग जो बढाने थे। कहना न होगा कि नव–जागरणों से ही अन्ततः चीन को सन–यात–सेन, तुर्की को कमाल पाशा और भारत को तिलक व गांधी मिले जिन्होंने एशिया को पुनः सम्मानित सिंहासन पर आरूढ़ कराया। साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शक्तियों से टकराने को एशिया को जनमानस पूर्णरूपेण तैयार हो गया।

भारत का यह आन्दोलन एक व्यापक आन्दोलन था जिसने राष्ट्रीय जीवन के लगभग सभी पक्षों को प्रभावित किया। पुनर्जागरण की ऐसी भावना राष्ट्रीय जीवन में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक समाज, धर्म, साहित्य एवं राजनीतिक को प्रभावित करती है।[19] इस

नवजागरण आन्दोलन को संचालित करने वाले ऐसे महापुरूषों का भारत में जन्म हुआ जिन्होंने भारत के नाम तथा यश को उन्नत किया। उनके प्रयासों से जिन संस्थाओं की स्थापना की गयी तथा जिन महापुरूषों का इस आन्दोलन में योगदान रहा था, उनके कार्यो तथा विचारों से आधुनिक भारतीय सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक चिन्तन रूपी भव्य भवन का निर्माण सम्भव हो पाया है।

अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी मे भारतीय समाज की धार्मिक, सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों में जो उद्योगति हो चुकी थी, उसके मूल मे कौन सा तत्व सर्वाधिक प्रभावी था, यह कह पाना तो सरल नहीं है। परन्तु इतना अवश्य ही कहा जा सकता है कि इनमें से प्रत्येक एक दूसरे के ऊपर प्रभाव जमाये हुए थे। ऐसी स्थिति मे समाज परिवर्तन चाहता था, लेकिन रूढ़िवादी तत्व इतने प्रबल थे कि वे परिवर्तन चाहने वालों को विद्रोही मानते थे। किन्तु चूंकि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे भारतीय नवयुवकों के एक वर्ग को पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता के सम्पर्क में आने का कुछ लाभ प्राप्त हो चुका था, अतः वह भी भारतीय समाज की ऐसी दुर्दशा से व्यग्र हो उठा था। उसे भारतीय समाज में सर्वथा दोष ही दोष नजर आने लगे और इस वर्ग के लोगों ने भी हिन्दू धर्म में आ गई कुप्रवृत्तियों का उपहास उड़ाना आरम्भ कर दिया , ईसाई मिश्नरी तो इसकी भर्त्सना कर ही रहे थे। हिन्दू धर्म पर चारों ओर से आलोचना के बाण बरस रहे थे, किन्तु कोई उनका उत्तर देने वाला नहीं था। हिन्दू धर्म का नेता पाण्डा पुरोहित वर्ग था, जिसकी सबसे बड़ी पूॅजी रूढ़ियॉ और अन्धविश्वास थीं। भला यह वर्ग क्या कह कर अपने निन्दकों को जबाव देता।[20] उनके लिए जबाव के स्थान पर एक बड़ा सा मौन–मौन ही खड़ा रह जाता। इन मौन को भंग करने के लिए भारत के प्रबुद्ध एवं दार्शनिक वर्ग ने संकल्प ले लिया और वे भविष्य में सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों के कार्यो में लग गये।

भारत में घटित पुनर्जागरण की व्यापकता विभिन्न तरह से सुधारवादी आन्दोलनों का मिला जुला रूप था। यह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, संस्कृतिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों को सम्मिलित करता है। यद्यपि इसका प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में 'आधुनिक भारत के जनक' के नाम से संज्ञायित राजा राममोहन राय ने किया था और उसका पोषण उनके कई अनुयायियों तथा बाद मे अन्य नेताओं, सुधारकों, राजनेताओं, दार्शनिकों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, व शिक्षाशास्त्रियों आदि के द्वारा किया गया तथापि हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि भारत में नवजागरण आन्दोलन अपनी इति 'श्री' रूप तक पहुंच गया है, बल्कि यह अभी जारी है। यद्यपि इसने वर्तमान भारत के प्रत्येक क्षेंत्र आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आदि अर्थात् सभी क्षेत्रों में काया पलट कर दी हैं

यद्यपि भारत में उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण आन्दोलन नया नहीं था, इसके पूर्व भी कई बार पुनर्जागरण होता रहा है लेकिन फिर भी यह अपने पूर्वान्दोलनों से सर्वथा भिन्न एवं व्यापक क्षेत्र को धारण किये हुए था। देश के पतन का मुख्य कारण, विदेशियों का भारत में आगमन तथा यहां अपना प्रभुत्व स्थापित करके भारतीय जीवन के सब क्षेत्रों में अपने विचारों, आदर्शो तथा परम्पराओं को आरोपित कर देना था। विदेशों से आने वाले लोगों का मन्तव्य भारतीयों को जीवन के समस्त क्षेत्रों में पूर्णरूप से शक्ति एवं 'श्री' हीन करके उनके ऊपर अपनी श्रेष्ठता तथा सर्वोपरिता को थोपकर भारत को सदा के लिए पश्चिम का दास बना लेना थां इसके लिए उन्होंने भारतीय परिवेश में आ चुकी बुराईयों तथा आडम्बरपूर्ण आचरण, अन्यायपूर्ण व्यवस्थाएॅ एवं आपसी मतैक्य का सर्वथा अभाव आदि का बड़ी चतुराई से लाभ उठाकर भरत पर अपनी राजनीतिक प्रभुता स्थापित कर ली और उसके उपरान्त अपने असली मकसद अर्थात् यहॉ की असीम धन–सम्पदा एवं वैभव का दोनों हाथों से शोषण करने में जुट गई। इसके साथ–साथ यह भी उल्लेखनीय है कि विदेशी व्यापारियों तथा शासकों के साथ में ईसाई मिश्नरियों का भी भारत में पर्दापण हुआ और उन्होंने हिन्दू संस्कृति को तोड़–मरोड़ कर 'हिन्दू वैदिक धर्म' पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने हिन्दू धर्म के अन्तर्गत प्रचलित कुप्रथाओं तथा अन्धविश्वासों का लाभ उठाकर अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। हमारे सामाजिक जीवन में जो कुरीतियॉ प्रचलित हो गई थी, उसके आधार पर हमारी निन्दा करने के लिए उन्हें एक सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया था। उन्होंने अपने कार्यो की परिणति न केवल हिन्दुत्व की मान्यताओं को तोड़ने तक सीमित रखी, अपितु हिन्दुओं को बहला फुसलाकर व डरा धमका कर अथवा तरह–तरह के प्रलोभन देकर धर्मान्तरण के लिए विवश किया।

परिणामस्वरूप इस सब विषम परिस्थितियों की मिली जुली स्थिति के प्रभाव से भारत में पुनर्जागरण की जो लहर उस समय चली, वह धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलनों के रूप में प्रारम्भ हुई थी। क्योंकि समाज तथा धर्म के क्षेत्र में भारत की उघोगति का एक प्रमुख कारण भारत की राजनीतिक पराधीनता था और पुनर्जागरण आन्दोलन के नेतृत्वकर्ता इस तथ्य को भली प्रकार समझते थे कि राजनीतिक परतन्त्रता से मुक्ति तक जो मार्ग जाता है वह पहले धार्मिक तथा सामाजिक जीवन के उन स्थानों को स्पर्श करते हुए आगे बढ़ता है जिनमें शिक्ष, स्वत्व एवं साहस के अभाव में प्रवेश नितान्त एंव वर्जित है। अतः इस आन्दोलन के महारथियों के लिये भी यह नितान्त आवश्यक हो गया कि भारत से अशिक्षा को

सर्वप्रथम दूर किया जाये, समाज में बराबर की भागीदार नारी की स्थिति में परिवर्तन किया जाये तथा इसके साथ–साथ अपने ही देश एवं समाज के लोगों द्वारा दबे–कुचले वर्ग को उवारकर साथ लया जाये, तभी भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना को विकसित करना सम्भव हो सकेगा और सम्भव हो सकेगी भारत की मुक्ति।

ऐसे प्रमाणों की प्रचुरता विश्व इतिहास में मिलती है जो इस बात को प्रमाणित करते है कि 'जिन देशों ने दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए राजनैति क्रान्तियॉ की है, वहॉ पहले सामाजिक शक्ति को सुदृढ़ करके जन–मानस को स्वतन्त्रता संघर्ष के लिए तैयार किया गया था।[21] भारत की स्वतन्त्रता के पीछे भी जिस शक्ति ने कार्य किया, वह उन्नीसवीं शताब्दी के विविध सुधार आन्दोलनों की उर्जा से ही संचालित थी।

राजा राममोहन राय के 'ब्रह्म समाज' स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'आर्य समाज ' स्वामी रामकृष्ण परमहंस के 'रामकृष्ण मिशन' महादेव गोविन्द रानाडे के 'प्रार्थना समाज', आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेंट की 'थियोसोफिकल सोसायटी' तथा सर सैययद अहमद खॉ के 'अलीगढ़ आन्दोलन' आदि के प्रयासों ने भारत में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों द्वारा भारतीय समाज एवं धर्म को उचित दिशा प्रदान करके अप्रत्यक्ष रूप से भारत की जनता की राजनीतिक चेतना को पहले जागृत किया एवं शनैःशनैः उसे विकसित भी किया। इस विकास के साथ ही इन सामाजिक व धार्मिक सुधारों के पुरोधाओं ने भारत की जनता को स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की और उन्हें एक अभूतपूर्व उर्जा से भर दिया।

डॉ. अवस्थी बन्धुओ के अनुसार, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन के प्रवर्तकों का मूल उद्देश्य किन्ही राजनीतिक सम्भवनाओं और सि(ान्तों को अथवा प(तियों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना नहीं था वरन् सोते हुए भारत को विदेशी हुकूमत के अनाचारों ओर उसके द्वारा थोपी गई विदेशी मान्यताओं के विरूद्ध जगाना था। भारतीय सामाजिक और राजनीतिक विचारक और सुधारक चाहते है कि भारत की जनता जातीयता, साम्प्रदायिकता, शोषण और अज्ञानता के चंगुल से निकलकर राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध हो जाये तथा विदेशी हुकूमत के जुए को उतार फेंकने के लिए मन, वचन और कर्म से उठ खड़ी हो, राजनीति स्वतन्त्रता के लिए 'करो या मरो' के संघर्ष में जूझ पड़े, अपने देश की गौरवशाली परम्परओं के प्रति उसमें निष्ठा पुनः जागृत हो जाय और 'अतीत का भारत' पुनः एक ऐसी अंगड़ाई ले उठे के विश्व में वह अपने विलुप्त गौरव को पुनः प्राप्त कर सके।[22]

वर्तमान भारतीय सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए नवजागरण आन्दोलन की प्रतिनिधि संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय हम यहॉ प्रस्तुत कर रहे है–

ब्रह्म समाज

ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजाराम मोहनराय का सम्पूर्ण जीवन विविध प्रकार के सुकार्यो का मिश्रण रहा है। उन्होंने जिन विचारों को दृढ़ता के साथ पकड़ा उनका प्रसार एवं प्रचार करने के लिए एक साधन रूप में संस्था की आवश्यकता थी, क्योंकि जब हिन्दू धर्म भारत में ही अपने अंधविश्वासों की पूर्ति के निमित्त इस संस्था का जन्म हुआ। श्री राय द्वारा इस संस्था की स्थापना 20 अगस्त 1828 को की गयी थी। उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलन के अन्तर्गत राजा रोम मोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्मसमाज' का स्थान सर्वप्रथम है। उक्त सदी के प्रारम्भिक वर्षो मे ंराजा राम मोहन राय भारत के शिक्षित वर्ग के प्रतिनिधि थे। वे ही सबसे पहले भारतीय महापुरूष थे, जिन्होंने ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप अनेक हिन्दुओं के ईसाई धर्म शिक्षाओं के प्रति आकर्षित होने के दुष्परिणाम को भांप लिया था। जकारिया लिखते है कि, ''उस समय हिन्दू समाज तथा भारतीय राजनीति को आधुनिक रूप देना सबसे बड़ी देश सेवा समझी जाती थी।''[23]

श्री राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज भारतीय संस्कृति के पवित्रीकरण की दिशा में उठाया गया प्रथम एवं महान कदम था। उन्होंने यूरोपीय विचाराधाराओं को समझकर उन्हें भारतीय रूप प्रदान करने का प्रयास किया व कई भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण विभिन्न भाषाओं में लिखित अनेक धर्म ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन किया था। अंग्रेजी भाषा एंव सभ्यता का उन पर पर्याप्त अभाव था। पाश्चात्यता के इस प्रभाव से ही उन्हें भारतीय सामाजिक परिवेश एवं धार्मिक व्यवस्था में आई विकृतियों को देखने की दृष्टि प्राप्त हुई थीं। प्रारम्भ से ही वे हिन्दू धर्म के अन्तर्गत प्रचलित मूर्ति–पूजा के विरोधी हो गये थे। उन्होंने मूर्तिपूजा एंव कर्मकाण्ड को निषिद्ध ठहराते हुए एक ईश्वर की उपासना पर बल दिया। इसका एक कारण यह भी था कि उर्दू तथा फारसी भाषाओं के ज्ञान के कारण कुरआन की भी गहराई से अध्ययन–मनन किया था। चूंकि इस्लाम में भी मूर्ति–पूजा का निषेध है जिसका उन पर प्रभाव पड़ा और पुरोहितवाद के फलस्वरूप हिन्दू धर्म में आ गई कुरीतियॉ उनके सामने अपने असली रूप में खुलकर खड़ी हो गयी, जिनमें उन्हें मात्र ब्राह्मणवाद की स्वार्थ सिद्धि ही प्रतीत हुई। इसीलिए ईश्वर के ऐक्य अर्थात् 'एकेश्वरवाद' में विश्वास किया, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म के अन्तर्गत आ गई रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, विविध देवी देवताओं की पूजा, धार्मिक

कर्मकाण्डों आदि का कट्टरता के साथ विरोध किया था[24] उनका मुख्य उद्देश्य समाज एंव धर्म में सुधार लाना हो गया था। यद्यपि इन्हें उसके लिए अनेक संकटों से गुजरना पड़ा। स्वयं उनके अपने ही परिवार वाले भी उनसे रूष्ट हो गये, यहॉ तक कि उनसे सम्बन्ध तोड़ दिया किन्तु वे अटल रहे।

भारत पूर्णतया काली घटाओं से अनावृत था, जब महामानव स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। ''ऐसे घटाघोप अन्धकार में एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जिसमें गौतम, कपिल कणाद और कुमारिल भट्ट का पाण्डित्य हो, जिसमें हनुमान और भीष्म पितामह का ब्रह्मचर्य हो, जो शंकराचार्य जैसा योगी हो, जिसमें भीम जैसा बल हो, जिसमें महात्मा बुद्ध का अनुपम त्याग और वैराग्य हो, जिसमें मर्यादा पुरूषोत्तम राम का मर्यादा पालन हो, जिसमें योगिराज कृष्ण और छत्रपति शिवाजी की नितिमत्ता हो, जिसमे ंमहाराणा प्रताप का प्रताप और शौर्य हो जिसमें महर्षि पतांजलि और व्यास की आध्यात्मिकता हो इन सब गुणों से विभूषित एंव अलंकृत युगपुरूष महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय रंग मंच पर मानव मात्र को अन्धकार से निकालने के लिए अवतीर्ण हुए।''[35] स्वामी दयानन्द ने राष्ट्रीय पुनरूत्थान के लिए धार्मिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया था। उन्होंन आर्य समाज का निर्माण अंधविश्वासों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए किया था। वे सच्चे राष्ट्रभक्त थे। भारतवर्ष के सुधार के लिए उन्होंने आर्य समाज के माध्यम से एक नव स्फूर्ति का संचार किया। आर्य समाज के निम्नलिखित सिद्धान्त है–

1. आर्य समाज वेदों को ही ज्ञान का सर्वोच्च आधार मानता है।
2. ब्रह्म 'सत् चित् व आनन्द' का ही प्रतीक है, ब्रह्म ज्ञान से ही सब प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है।
3. ईश्वर निराकार, निर्गुण, अजन्मा अज•र, अमर और सर्वव्यापी है।
4. आर्य समाज मन, कर्म और वचन की सत्यता पर विशेष ध्यान देता है।
5. आर्य समाज संसार की आध्यात्मिक, सामाजिक और शारीरिक उन्नति के लिए प्रयन्नशील है।
6. वह सद्विद्या के प्रसार तथा अविधा के विनाश पर जोर देता है।
7. स्वतन्त्रता व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक है।
8. आर्य समाज अंधविश्वासों पर चोट करता है तथा बाल विवाह तथा दहेज प्रथा के विरूद्ध है।
9. वेदों के पठन–पाठन और सन्ध्या व यज्ञ पर बल देता है।
10. स्वदेशी का समर्थक, गौरक्षण का समर्थक है तथा गोहत्या का कट्टर विरोधी है।

प्रारम्भ में आर्य समाज की स्थापना के समय इसके 28 नियम थे परन्तु बाद में ये 10 नियम जो आज तक यथावत् चले आ रहे है, निश्चित किये गये हैं–

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ से जाने जाते है, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार, अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृ(करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्य समाज ने उक्त सिद्धान्तों के प्रति भारत के प्रत्येक क्षेत्र में एक अनुराग पैदा कर दिया। अपने इन्हीं सिद्धान्तों की शीटिका पर आरूढ़ होकर आर्य समाज युग की प्रगति शील आकांक्षाओ की प्राप्ति के लिए सदैव जागृत रहा।

इस प्रकार भारत के राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे यें धार्मिक व सामाजिक सुधारवादी आन्दोलन सक्रिय भूमिका निर्वाहन कर रहे थे। जिसके कारण भारतीयों में अपनी गौरवमयी सभ्यता व संस्कृति के प्रति गर्व का ,मातृभूमि के प्रति भक्ति का और पराधीनता के प्रति आक्रोश का भाव उत्पन्न हुआ। अन्ततः यही भाव राष्ट्रीय स्वाभिमान का आधार बना।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ. 3
2. स्वामी विवेकानन्द जी के शब्द;आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचार की भूमिका से उध्दृत।
3. वही
4. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधारा, तिवारी एवं करगेती, पृ.1

5. वही, पृ.4–5
6. वही. पृ.6
7. आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारधारायें, डॉ0 वीरेन्द्र शर्मा, पृ.7
8. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, पृ.6
9. वही, पृ.7
10. वही, पृ.12
11. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ. 5
12. वही, पृ.13
13. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, डॉ0विश्वनाथ नरवेड़, पृ.32
14. वही, पृ.5
15. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ. 5
16. वही, पृ. 8
17. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृ. 29
18. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधारायें, पृ.15
19. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 434
20. आधुरिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, पृ.43
21. वही, पृ. 44
22. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ.6
23. वही, पृ. 68

डॉ0 एम.एस. त्यागी
रीडर एवं अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)
इतिहास विभाग
के0जी0के0 कॉलेज, मुरादाबाद

इन्द्रजीत सिंह
इतिहास विभाग
के0जी0के0 कॉलेज, मुरादाबाद

20

PERSONAL INDEX OF UNMARRIED EDUCATED WORKING WOMEN

Rashmi Yadav

The inquiries has been made to know the personal index of unmarried educated working women of Bareilly City Through this personal index, we are able to know the complete background of the respondents life like age, religion, class, caste, income, hobby, education, family etc.

After independence, many changes are taking place, in India. These changes take place in many fields like social, economic, political, educational fields etc but the most important change in present day is increase in the population and in education field. The ratio of education increased not only in males but also in females. The women are taking admissions in great numbers not only in women institutions but also in the co–educational institutions. As a result, their attitude towards society, social problems, opposite sex and value for system has completely changed. In ancient time, Indians cannot imagine women studying with men or going out of home for studies. Because of educational change, the young women have gained self-confidence and are prepared to face any type of problem either social or cultural they face them quite easily.

As a result, unmarried educated working women have changed their living style in context of the changed social environment. Due to the changes in social environment women are facing many problems. One of these problems is that many women remain unmarried. When the inquiries are made it is found that the priority to marriage is shifting at second position. New generation women are focusing on earning money or becoming financially strong so that they can also support her family with or with out the male member. Not only is the above mentioned desire of women responsible factor for their unmarried status but the problem of dowry also prevailing in the society. Sometimes the demand for dowry became so high that it becomes impossible to fulfill by the family of bride side. This type of situations compelled girls to remain unmarried or go for job.

Role definitions with respect to the unmarried educated working women have by now fairly settled. Young women no longer have to fly in the face of disapproval if they want to do job, can do. There is no longer any stigma attached to their working outside the home. The young working women are an accepted part of the social scene. They are constituting important public magazines, published for them. They are providing new ideas in fashions, specially designed for them. so, there is no compulsion for them to accept the marriage. Forty years back women were not in a position to make decision either for marriage or career. But now the social values have changed, if she wishes, she can have both, although she is more likely to opt for job rather then marriage. From this statement, we can say that women are now job oriented instead of only a housewife.

It has also been said, by U. A. Rao, that, "Traditionally the role of women in India has been confined to the four-walls of the household. Her participation in the economic processes of the family in particular and the society in general has been minimum and marginal. However, after independence, with rapid industrialization and urbanization, there has been a marked improvement in the educational and employment status of women.

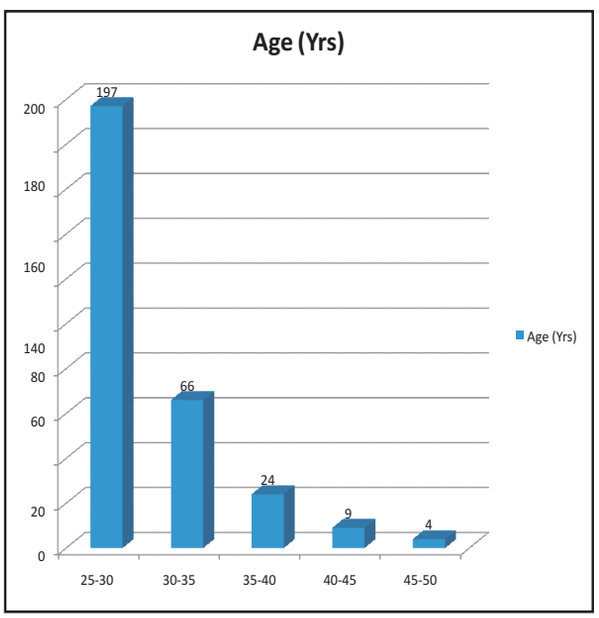
The result of these changes is that a large number of married as well as unmarried women have begun taking up new occupational roles"[1].

The image of women in Indian society is fast changing but it has been difficult to define or identify clearly the changing trends and shape of the image of women. While expressing his views, Bopegamage, A. and Veeraraghavan, P. V. said that "In many societies the style of life becomes distinctive with respect to the following items, facial and body decoration, posture, grooming, gesture, speech pattern of family life, membership of associations,

tastes in various modes of communication and even the area of residence"[2].

Age group of respondents

Age	25-30	30-35	35-40	40-45	45-50
No. of respondents	197	66	24	09	04
%age	65.67%	22%	8%	3%	1.33%

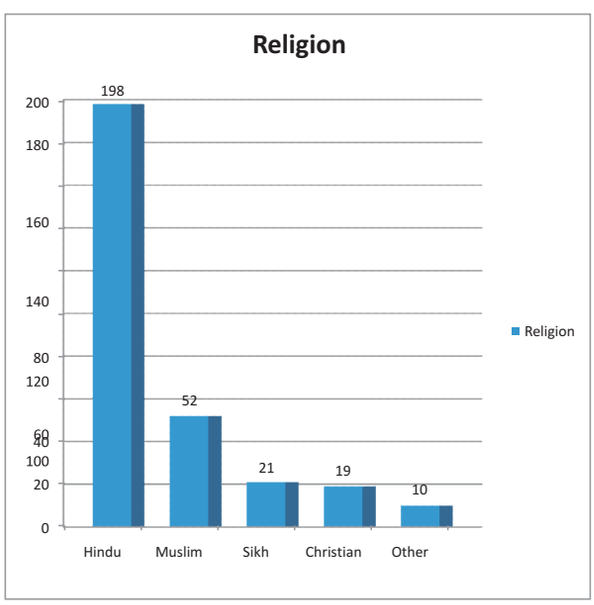


The present study has been started by asking them questions related to their personal life. Researcher has categorized unmarried educated working women"s age into groups, from 25-30 years to 45-50 years.

In order to understand the personal index of the unmarried educated working women of Bareilly City, inquiries are made. The sample of the present study consisted of 300 unmarried educated working women between the age group of 25-50 years. Through this question, it is found that out of 300 respondents, i.e. unmarried educated working women, 197 (65.67%) falls between the age group 25 years to 30 years. It shows that younger women are very enthusiastic towards the job. In present social system job is becoming very normal for women. There are 66 (22%) respondents between 30 years to 35 years. In this age group, most of the women are engaged or got married. Therefore, the number of unmarried educated working women becomes less. As we move further towards the age group of 35 years to 40 years, the number of unmarried educated working women reduces to 8%. In this group, the unmarried educated women have chosen the job for engaging themselves. In the age group of 40 years to 45 years, most of women dropped the idea of getting married and they continue their job for livelihood so the percentage is very low i.e. 3%.In the last age group i.e. 45 years to 50 years, only 1.33% respondents are there. In this stage most of the women live alone, so there is no other option except doing job.

Religion of the respondents-

Religion	Hindu	Muslim	Sikh	Christian	Other
No. of respondents	198	52	21	19	10
%age	66%	17.33%	7%	6.33%	3.33%



This data shows the different religion of unmarried educated working women of Bareilly City. In India religion has deep roots, so Indians are generally religious in nature. Religion has great importance for Indians. That"s why Indians

believe in God and worship Him through religion. Religion has been defined as "action directly oriented to ultimate ends"[3]. There is another thought "Religion also provides an organized culture pattern by which the individual can meet and, it is hoped, surmount the crises of life"[4].

The religious institution is the structure designed to implement this action. According to Thomas, "The religious institutions concerned with ends that are beyond the realm of everyday life and that are ultimate in every sense of the world. These are the ends of life and death, salvation and everlasting life, suffering and resurrection"[5].

There are various factors of oppression. Religion is the most important factor of oppression in India. Religion legitimizes the oppression against women. In the name of religion, women deprived of many rights in India. The most cruel practices such as, "sati" human sacrifices, enforced widowhood, purdah, devdasi system and polygamy were sanctioned by religion and custom. Usually, women meticulously follow religious practices. Violation of religious laws, customs lead to ex–communication of the culprits. In Hindu religion, the women usually keep fast. By doing so, it is believed that their husband will get abundant grace from God.

The faith of all major religions lies on the shoulders of women. At home, women are the teachers of the faith for their children. In the present study, women of different religions are included such as Hindu, Muslims, Christians, Sikhs and others like Jain and Buddha religions are included.

In the present study, most of the respondents are from Hindu religion

i.e. 198(66%), because most of the population of our country is Hindu and found in every part of the country. In recent time Hindu families are now becoming broad minded and they give same freedom to their daughters as their sons. But we can see all this in urban area not in rural area.

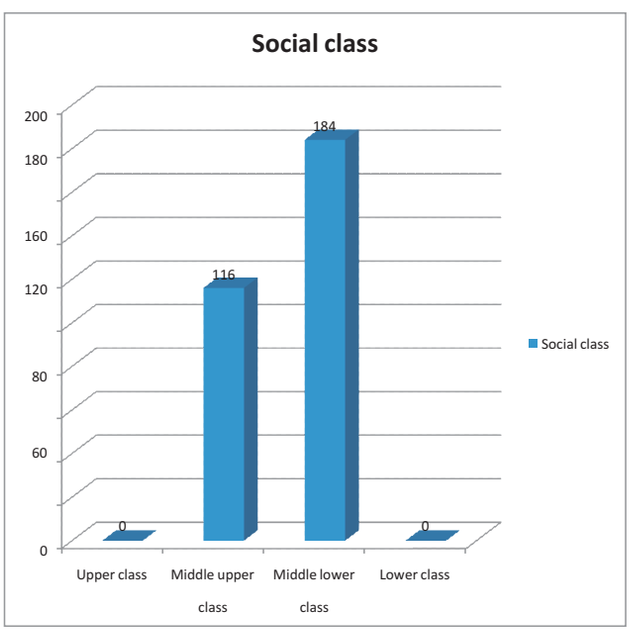
There are 52(17.33%) respondent, which shows the percentage of Muslim religion. In Muslims, the women are not allowed to go out and if they have to go out then, they have to go in *Burkhas*. Only higher middle class allow their girls for higher education. Marriage is a compulsion for Muslim women. So the ratio of unmarried educated working women in Muslims is low.

Sikh religion is another religion found in India, which is low in view of their population. This religion is mainly found in Punjab and Haryana. There are 21(7%) respondents from this religion. The ratio of this religion is less in Uttar Pradesh, that"s why the respondents are less from this religion.

The fourth religion is Christians. i.e., 19 (6.33%) respondents belong to this religion. Most of the respondents are found from Christian"s school because they get preference in these schools. Beyond all these religions, Jain and Buddhist falls in the category of others and the percentage of these respondents is 10(3.33%), which is the lowest one.

Social Class of the respondents

Social Class	Upper Class	Middle Upper Class	Middle Lower Class	Lower Class
No. of respondents	-	116	184	-
%age	-	38.67%	61.33%	-



This table consists of the data of unmarried educated working women regarding the income class of their families. Here two social classes are formed based on monthly income of the family, one in which per month income of the family is `25,000 and other above `25000

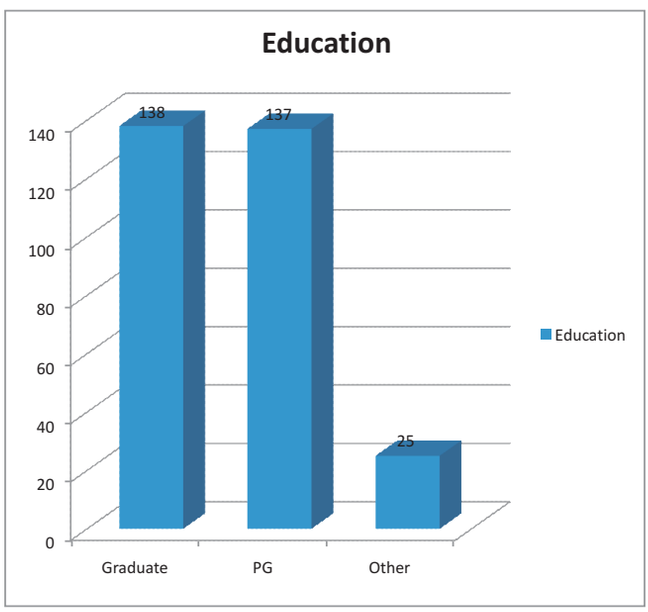
According to Ogburn and Nimkoff, "The fundamental attribute of a social class is thus its social position of relative superiority or inferiority of other social classes"[6]. Another sociologist Ginsberg said that, "A class is a group of individuals who through common descent, similarity of occupation, wealth and education have come to have a similar stock of those ideas, feelings and attitudes and forms of behaviour and who, on any or all of these grounds, meet one another on equal terms as belonging to one group"[7].

A class is a form of social stratification in which allocation to, membership of, and relationships between classes are governed by economic considerations rather than law or religion and ritual pollution (as in caste). Classes, as formations, playing an actual role in developments in society and history, whose existence is more or less perfectly understood by the individuals or households, who compose them. This involves a degree of class-consciousness, class action and class conflict. Various scholars have given different definitions of class, such as MacIver said, "A social class is a portion of community marked off from the rest by social status.""[8] So, Class, as a status group, has a peculiar position in a hierarchy of ascent and descent and the status groups can be called social classes.

In the present study, it is found that 184 (61.33%) respondents are from the Middle lower class of the society. The need of this class is always to cop up with the changing economy. The income of the family does not provide any liberty to spend freely. Therefore, women also started doing jobs. The second class is middle upper class. Rest 116(38.67%) respondents are belonging to the middle upper class of the society. Here income of the family is sufficient for the family, but parents wish that their child, irrespective of gender, should be self-dependent. Therefore, they permitted their child to do job. On the other hand, a few daughters want to spend their time outside, so they started doing job.

Education of the respondents

Education	Graduate	PG	Other
No. of respondents	138	137	25
%age	46%	45.67%	8.33%



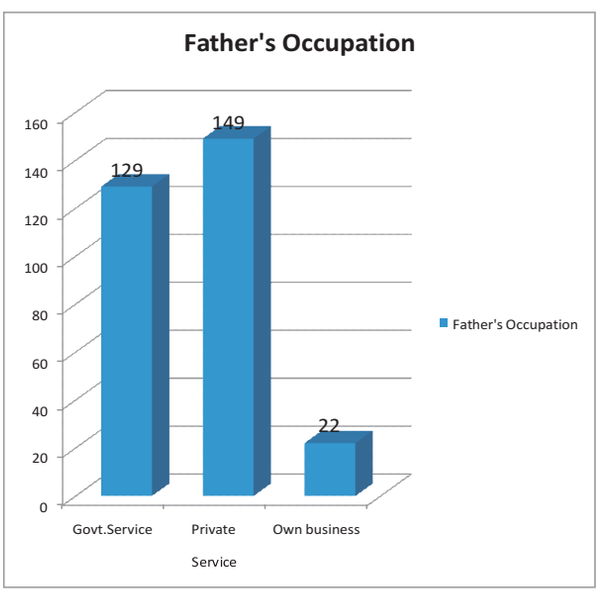
Next factor in the personal index of the respondents is the Education of the respondents. In current social environment, education has become must for all the children, if they wish to survive without problems. Therefore, in present study this question is developed and put to know the education of the unmarried working women. In the ancient time, education of women was not considered as an essential factor for the development of society. Women can get education at home and they were not allowed to go to school / college. But when Britishers came to India they removed many problems. The problem of girl"s education also removed to a great extent and became easy to all. As we are progressing, the role of education is also increasing day by day.

The study revealed that the education of unmarried educated working women is very good and some of them are highly educated. Out of

three hundred respondents, 138 (46%) are only Graduate. Due to family obligations and other financial issues, they started doing job. 137 (45.67%) respondents are postgraduate in different streams. These respondents are doing job because they want to support their family and just to pass the time until the marriage. There are 25 (8.33%) respondents with highly professional degrees. like- MBA (19), B.Tech. (06). These highly educated women started doing job because they want to make use of their education and use it as a career. All these things are showing the status of women education in India is improving. Now the male dominated society has accepted the new role of women. They are giving room to the women to grow in all field and women proving themselves. Presently women can be seeing in all working fields where men are doing jobs.

Occupation of respondent's father

	Govt. Service	Private Service	Own Business
No. of respondents	129	149	22
%age	43%	49.67%	7.33%



Another factor which worked behind the decision for doing job for unmarried educated women is the occupation of father. In India mostly children lives with their parents and they depend on father"s income. In the past societies, all industrial societies, whether of the capitalist or the socialist type, show a certain family resemblance in their occupational structure like the occupational role acquires far greater salience in these societies than in all other societies known to history. As the separation of the occupation from the domestic domain becomes more complete and the other is; the occupational structure itself becomes more differentiated and more complex. While all occupations may in some senses be equally useful. The purpose of the occupation is to earn money. Therefore, father"s occupation plays a critical role in taking decision of family. If father"s income and position is very good, the chance for doing a job reduced significantly. On the other hand, if father"s income is very less or he is not in job, then for a child, job became an essential part in his or her life.

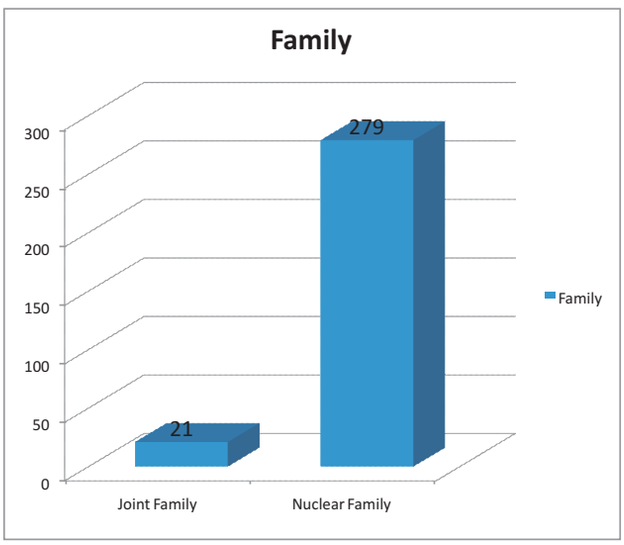
From the study, it is found that 129 (43%) respondents out of three hundred are those whose fathers are government servants. When the cause of their job is asked, most of them told that father"s designation is not high and income sources are limited. Only a few said that their fathers are on the higher post. Now it can be easily understood, that why unmarried women in the family of low income go for job, but in higher income family, daughters are doing job for their self respect and self dependency.

Out of the 300 respondents, 149 (49.67%) are those unmarried educated working women, whose fathers are in private sectors. In private sector, job security is a problem so most of the worker wishes to earn quickly.Due to this uncertainty father send his daughter for job, and wish that she would also contribute in the family income. In some cases, the job of father is not so good, so unmarried women opted for job until her marriage.

There are only 22 (7.33%) respondents belonging to the families of businessman. It is found that in general, parents do not like that their daughter go out for job because they don"t like job or service. Now trend is changing and in this competitive environment, businessman also wants to make their daughter self-dependent, so they too have started sending their daughter for job.

Family of respondent

Family	Joint Family	Nuclear Family
No. of respondents	21	279
%age	7%	93%



Next significant factor related to the personal index of unmarried educated working women is their family. Because, the structure of family, (joint or nuclear), play a vital role in making decision of job for unmarried women. The family is often called the basic social institution because of its important functions of procreation and socialization and because it is found, in some forms, in all societies. The structure of the family varies from society to society. The smallest family unit is known as nuclear family and consists of husband, wife and their immature offspring. Units larger than the nuclear family are usually known as extended or joint family.

As it was said, "the family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children""[1]. Another socialist said, "Family is more or less a durable association of husband and wife with or without children"[2]. „Both the writers explain about the nuclear family. In modern times, nuclear family is found in large number. In normal situation, girls in joint families do not go for job, because there are other members to bear the responsibility. However, in nuclear families, we see limited number of persons taking responsibility. So, in that situation the chances for doing job increases in nuclear families.

The study shows that 279 (93%) respondents are from nuclear families. These families have many opinions regarding the job of girls. A few of those opinions are- firstly, decision generally taken by individuals and less interference of other family members.

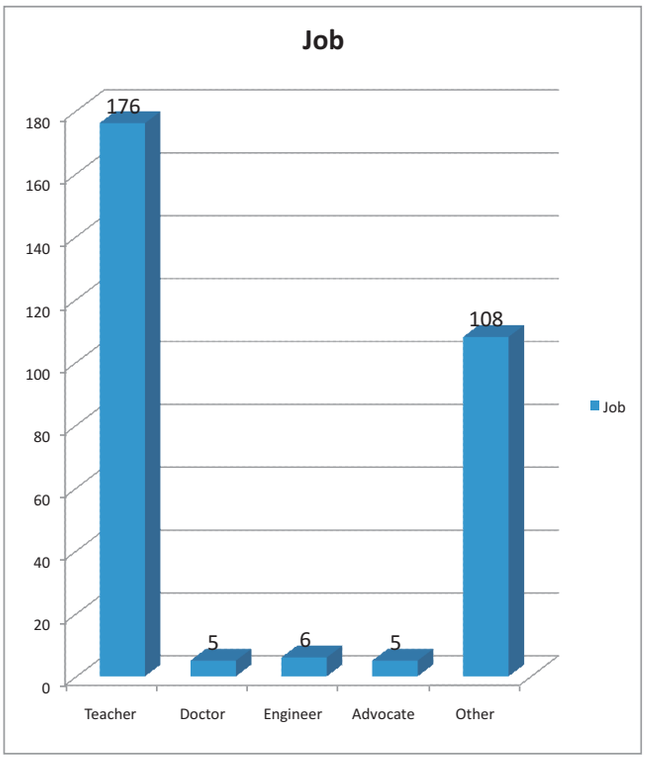
1) MacIver and Page, "Society", p.238 in Agarwal G. K., "Principles of Sociology", SBP, Agra 2008
2) Ogburn and Nimkoff, "A Handbook of Sociology"", p.459, ibid

Secondly, responsible children support their parents by giving financial support, by opt the job. Thirdly, these families show more consciousness towards upcoming future. They give emphasis to the good career for better survival. Fourthly, a few of them also know that by self-dependency their child can survive in current environment, and many other opinions.

The rest 21 (7%) respondents are from joint families. After discussion it is found that unmarried women in these families have no right to make their decisions. They have to be dependent on the head or main controller of the family. But as time is changing the existence of these families is in stake, therefore, parents have given liberty to their children to some extent. By doing so, they tried to prepare their children, especially girls, for the coming situations in their lives. Unmarried women have warmly taken this opportunity and its consequence is that many unmarried educated women are in jobs.

Job Preference by the respondents

Job	Teacher	Doctor	Engineer	Advocate	Other
No. of respondents	176	05	06	05	108
%age	58.67%	1.67%	2%	1.67%	36%



As unmarried educated women have started doing jobs, so it will be worth noticing that which field is the favourable to them. The data shows that the most favourable field for women job is teaching.

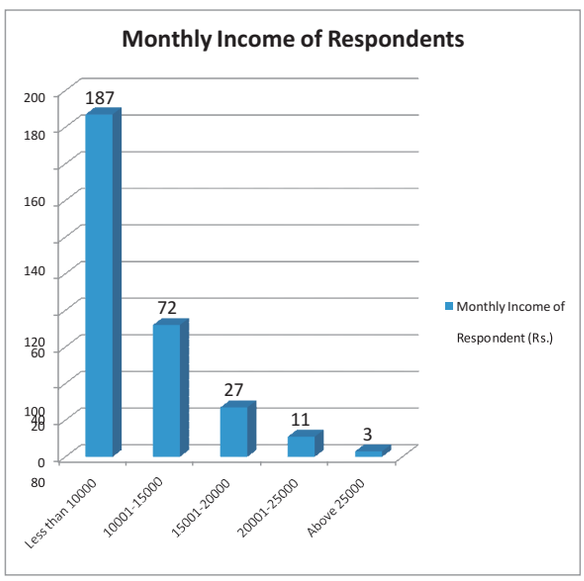
Out of three hundred respondents, 176 (58.67%) unmarried women are working in the field of education. This field is safe and secure for females. One more benefit is that women get time for their family as compared to the other jobs. In Indian society, normally female stays at home and take care of her family and help her children in teaching. Therefore, their first choice is teaching.

In the study, three more job options are given i.e. Doctor, Engineer and advocate. The numbers of unmarried women in these jobs are very less. All these professions have high fee structure (doctor and engineer) and takes time. So, everyone can"t afford these studies, especially for girls. So, the ratio of these professional unmarried women reduces. We have 5 (1.67%) respondents in medical line and 6 (2%) respondents from engineering field. There were 5 (1.67%) respondents who selected the law field for their career.

Rest, 108 (36%) respondents opted for the other field. In the other, (fields) we have- Call centers, BPO, IT, marketing etc. In current economic scenario, these fields are providing many job opportunities especially for unmarried girls. These jobs are mostly available in cities. So we find these unmarried women in these sectors.

Monthly Income of Respondents-

Monthly Income	Less than `10000	`10001-`15000	`15001-`20000	`20001-`25000	Above `25000
No. of respondents	187	72	27	11	3
%age	62.33%	24%	9%	3.67%	1%



As these unmarried educated women are in job, they are getting handsome amount of money and supporting their families as well as their career. Money plays a critical role in the development of personality of any person; it will be good to study about the perks of these unmarried educated working women that they are getting. Keeping this in mind five option are given to the respondents that there are- less than `10000, `10001-15000,

`15001-20000, `20001-25000 and above `25000 p.m.

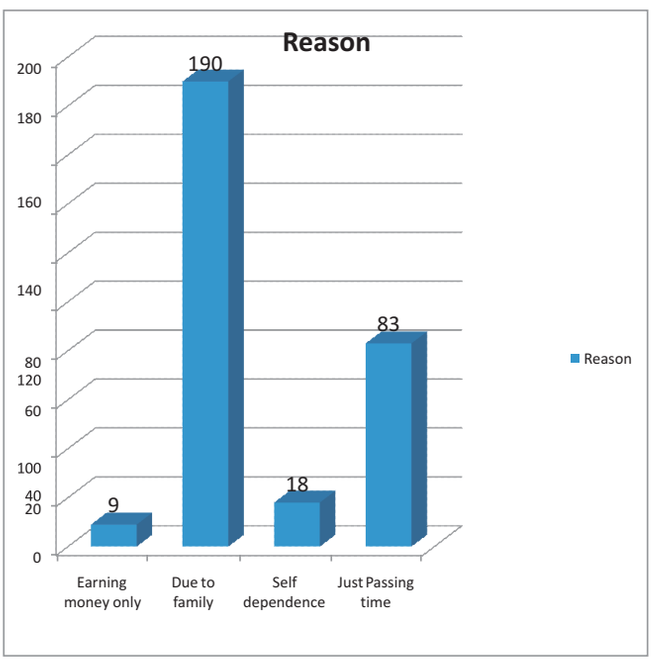
Here the data revealed that 187 (62.33%) respondents are getting salaries less then `10000 p.m. When further enquired about the job position and their salaries, it is found that these are working in private sectors. As we move further to the higher income groups the number reduces drastically. There are only 72 (24%) respondents in second category i.e. `10001-15000

p.m., 27(9%) in third category of`15001-20000 p.m., 11 (3.67%) respondents

in fourth category i.e. `20001-25000 p.m. and only 3 (1%) respondents in the last category means they are getting salary above `25000 p.m.. Actually, asthey start getting good salary packages, their chances of getting good match increase. Some of these respondents, after getting good salary, support their families. Some of them spend their money on their own and in social welfare also.

Reason for doing job-

Reason	For earning money only	Due to family obligations	For self dependence	Just Passin gtime
No. of respondents	09	190	18	83
%age	3%	63.33%	6%	27.67%



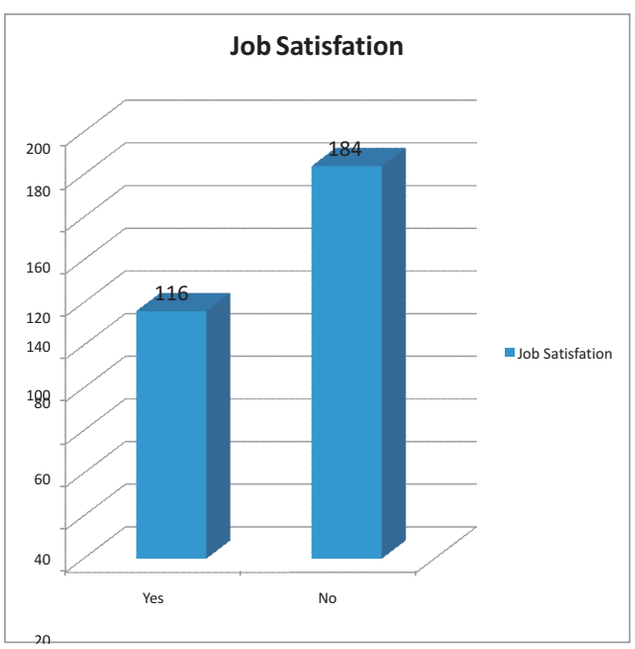
In the schedule, the question has also been tried to frame to know the reason why unmarried women are doing job. Although, many reasons have been discussed before, but this question will support in ascertaining to those causes. In the question, four basic causes are given i.e. only for earning money, due to family obligations, self-dependency, just time pass.

In this response, 190 (63.33%) respondents told that they are in the job due to family obligations. These obligations are- financially weak, parents without job, income of father is not sufficient for the upbringing of the children and the family etc. The second major category has. 83 (27.67%) respondents who have nothing to do at home. Therefore, for keeping themselves engage they are doing job. By doing so, they are also contributing in the family income and in some cases; they find the right person to marry, during the job.

Only 18 (6%) respondents are doing job for their self-dependency. These respondents belong to the well-educated and financially strong families. Their parents know the importance of self-dependency Therefore, they motivate their girls for doing job and girls followed their respective parents. There are 9 (3%) respondents, who opted for the first choice of the question i.e. earning money only. Actually, parents of these respondents are neither expecting any thing from their children and not force them. So these respondents are not having any obligations and they are free. They are doing job only to earn money and they spend it in their own way.

Job Satisfaction of respondents

Job Satisfaction	Yes	No
No. of respondents	116	184
%age	38.67%	61.33%



As it is known that job satisfaction plays an important role in

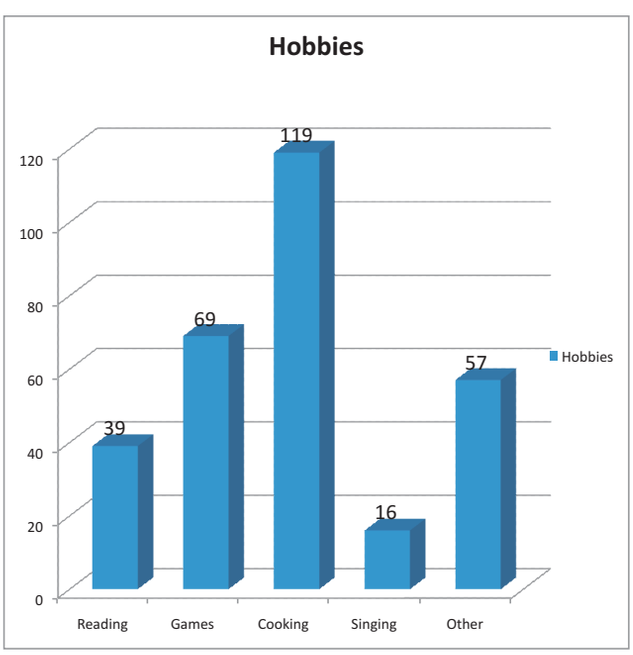
the development of personality. So, this question is framed to know the mental satisfaction of the unmarried educated working women from job.

The data shows that 184 (61.33%) unmarried educated working women are not satisfied from their job. Some of them told that the working conditions are not suitable. The odd working hour disturbed their routine life. So they find themselves a little restless. Out of these dissatisfied working women a few complained about the salary they are getting. Because the salary paid to them is not according to the work. They wish that the salary would be high for the work they are doing. A few told that the behaviour of their colleagues at work place is not good. They feel jealous with each other. So, they spoil the working environment of the organization.

A few said that their boss exploit them by assign them more work and never appreciates their work. All this gets down their moral. Rest 116 (38.67%) respondents are satisfied from their job. They are getting what they want from their job. They also wish to continue their job after their marriage.

Hobbies of respondents-

Hobbies	Reading	Games	Cooking	Singing	Others
No. of respondents	39	69	119	16	57
%age	13%	23%	39.67%	5.33%	19%



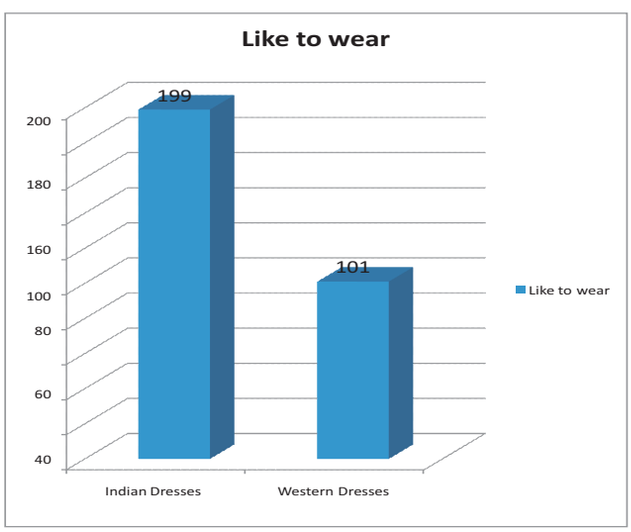
Another factor that reflects the personality of the person is-hobby. Therefore, this question is asked to know about the hobbies of the working women who are educated and unmarried.

The data shows that out of three hundred respondents, 119 (39.67%) love cooking. In Indian society, generally women spent a good span of time in kitchen. So, they are fond of cooking. Secondly, a saying is very prevalent i.e. if you want to win the heart of any man, serve him tasty food. Due to this reason, most of the mothers trained their daughter in the field of cooking and after sometime, it became their hobby. It is generally found that girls also like to play games in their free time, so playing games is the hobby of 69 (23%) respondents.

There are 39 (13%) respondents, who loved reading. They read many magazines regularly. These magazine are- Reader digest, Grihshobha, Meri Shaheli, etc. some of them are still fond of reading comic books. It is good to update with the issues and happening in the world, so a few of them are the regular reader of competitive magazines. Out of three hundred respondents, 16 (5.33%) respondents have sweet voice and they love singing. So, they always try to participate in singing competitions. Rest 57 (19%) respondents have different hobbies like- sewing, watching T.V, listening to music, travelling etc. So, all these hobbies helped them to manage their free time.

Dresses liked by the respondents

Like to wear	Indian Dresses	Western Dresses
No. of respondents	199	101
%age	66.33%	33.67%



Dressing reflects the personality of a person, so it will be worthy to take a glimpse of the dressing sense and liking of unmarried educated working women. So, keeping this in mind, the significance of dressing in the personal life, this question is added to our schedule. Here, the question is framed by asking them what they like to wear; either Indian Dresses or Western Dresses.

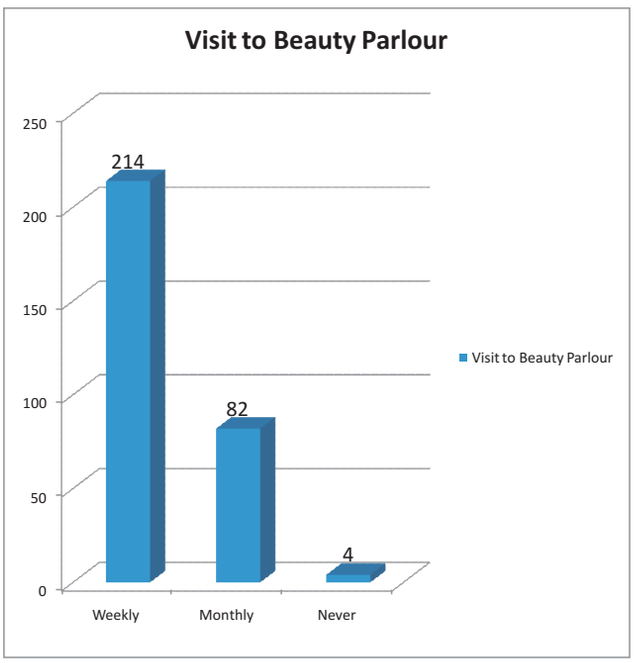
In the response to this question, it is revealed that Indian dresses are more valuable for these respondents than Western dresses. Out of three hundred respondents, 199 (66.33%) respondents" opted Indian dresses instead of Western dresses because they feel more comfortable in Indian dresses because Indian dresses have its own grace and beauty. These are liked by women irrespective because it represents Indian culture. Most of the respondents are in favour of Indian dresses. Some of them are in teaching profession and love to wear saree. A few love to wear salwar-kamiz . They also added that in parties, they prefer to wear Indian dresses, because it looks graceful.

On the other hand out of 101 (33.67%) respondents like to wear Western dresses, in which Jeans and Top is the favorite outfit of unmarried women. They said that Western dresses require less maintenance. These dresses do not need time for stitching as it can be purchased stitched easily. They have no problem with changing fashion because in western style it can easily be matched and maintained. In most of the private organizations, Western dresses are set as dress code for all the employees.

From the past few decades a change has been observed. Generally, in India, females have chosen two life style, one before marriage and otherafter marriage. On the bases of these two life styles, they give priorities to the dresses. It is generally seen that girls love to wear western dresses in current environment instead of wearing Indian dresses before the marriage. After the marriage their dresses mostly selected by their partners who loved the Indian culture. Therefore they start wearing Indian dresses like saaree, salwar suit etc and reflect the Indian culture. So, both of these; Indian and Western dresses have great importance at their own place.

Respondents Consciousness about their looks

Visit to Beauty Parlour	Weekly	Monthly	Never
No. of respondents	214	82	4
%age	71.33%	27.33%	1.33%



One more significant factor of personal index is- Looks i.e. how she looks. As we all know that face is the mirror of the heart. Women are always conscious about their looks. Due to immense importance of looks in life, almost all the female spend time and money to improve their looks. In ancient time the ways were different as compare to current environment. Women only use home-made products and there was no parlour at that time. Now for getting good looks, beauty parlours are available. These beauty parlours have all the possible cosmetics and techniques with experts to become beautiful and smart.

In this question, it is tried to know that what the frequency of visit to beauty parlours is, by these unmarried educated working women. In its response, the data revealed that 214 (71.33%) respondents are visiting beauty parlours weekly. They told that it is the requirement of their job. At working place, the looks of employees show the standard of the organization, therefore top management never compromise with the looks of the workers. Secondly, they have to meet a number of people, so their look plays a critical role for development of the organization. There are 82 (27.33%) respondents, who monthly visit the beauty parlours. Actually, these respondents have many cosmetics at their home and they knew how to use it effectively, so their frequency of visiting parlour is less. Secondly their job condition did not force them to spend more on looks.

There are 4 (1.33%) respondents, who never visited

to beauty parlour. When it was asked to them, why they never visit to parlour, one of them replied that her mother does not like that girl go to market and visit beauty parlour. She also added that in her family no one like to sent the family girls inbeauty parlour for any type of beautification treatment. According to them, only married women can go to beauty parlours and not the girls. One respondent has the opinion that beauty parlours use cheap cosmetic products, and that can be harmful to her skin. So she believes in using homemade things, in spite of going to parlour. Other two told that they cannot afford the expense of beauty parlour. Because the income of their family does not allow them to spend the hard earned money on beautification. Some time they want to visit the beauty parlour but due to family obligations keep themselves quit.

Bibliography

1. U. A. Rao, "A Sociological study of the occupational choices of undergraduates girls students, "Indian Journal of social work." 1976, April. Tata Institute of Social Sciences, Bombay
2. A. Bopegamage, A. and Veeraraghavan,P. V.,"Perception of strata.??in "Status Images in changing India.??
3. Levy M., "Modernization and the structure of societies??, 1966, Vol.II, p.607.
4. Merrill, Francis. E, "Society and culture", Prentice-Hall, New Jersey, 1969, p.263
5. Thomas, O.D., "The Sociology of Religion." Prentice Hall, New Jersey, 1966, pp.1-2.
6. Ogburn and Nimkoff, "A Handbook of Sociology??, p.211
7. Ginsberg, "Fundamental of Sociology", P.324
8. MacIver, "Sociology", p.384 in Agarwal G. K., "Principles of Sociology", SBP, Agra 2008

Rashmi Yadav
Deptt. Of Sociology
Bareilly College Bareilly

21

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का परिदृश्य

डॉ0 एम.एस. त्यागी, इन्द्रजीत सिंह

सारांश –

सत्रहवीं शताब्दी में, यूरोपियनों ने विशाल पैमाने पर भारत में रूचि लेना प्रारम्भ किया। पुर्तगाली, डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी यहॉ विशेष रूप से आये परन्तु इनमें से कोई भी भारत में बसने नहीं आया। अपितु भारत के वैभव से आकर्षित होकर व्यापारिक कम्पनियों के रूप में भारत से व्यापार बढ़ाने के रूप में आया। फ्रांसीसी पर्यटक बर्नियर के अनुसार ''उस समय का भारत एक ऐसा गहरा कुँआ था जिसमें चारों ओर से संसार–भर का सोना–चॉदी आ–आकर एकत्रित होता जाता था पर जिसमें से बाहर जाने के लिए कोई भी रास्ता नहीं था। अठाहरवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक किसी प्रकार का स्पष्ट हस्तक्षेप कर सके। सभी कम्पनियों की नीति केवल व्यापार करने तथा अधिकाधिक लाभ उठाने की थी। यह वह समय था जब भारत में मुगल साम्राज्य समृद्धि, शक्ति तथा गौरव गरिमा के उच्चतम् शिखर पर था।''[1]

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अभ्युदय

31 दिसम्बर, 1600 ई. को साम्राज्ञी एलिजावेथ ने पूर्व के देशों के साथ व्यापार करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को आज्ञा–पत्र दिया। सन् 1608 में शहंशाह जहॉगीर की आज्ञा से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सूरत में अपने माल की सुरक्षा के लिए गोदाम तथा दफ्तर किराये पर लिये। इसके बाद भारत से अंग्रेजों ने व्यापारिक आय को बढ़ाना आरम्भ कर दिया।17वीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों ने कलकत्ते में अपने कदम रखे और इसी शताब्दी का अन्त होते–होते उनके कदम दृढ़ता से जम गये। अनेक स्थानों पर उन्होंने अपनी कोठियॉ स्थापित कर ली। 1691 ई. में 3000रू. अदा करने पर अंग्रेजों ने कलकत्ता में स्वतन्त्र व्यापार आदेश पत्र दिल्ली के बादशाह से प्राप्त कर लिया। इसके बाद 1696 ई. में कम्पनी ने कलकत्ते में एक किला बनाने की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली।

सन् 1707 में ओरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल सिंहासन निरन्तर डॉवाडोल होने लगा। इसके पूर्व ही षड्यन्त्रकारी ताकतों ने सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया था। यहॉ तक कि जिस राज्य की जड़ें इतनी शक्तिशाली थीं उन्हें धूल–धूसरित कर दिया और अब औरंगजेब के वंश में कोई ऐसा न रहा जो इन षड्यन्त्रों को कुचलता।[2] इस प्रकार मुगलों के पतन की निरन्तरता तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बढ़ती शक्ति, दो विरोधी पथों की पथिक बन कर निरन्तर गतिशील रही।

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना का उत्तर देते हुए कार्ल–मार्क्स 22 जुलाई 1853 ई. के 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' को एक पत्र में लिखता है कि मुगलों का वैभव अत्यन्त महत्व का था जिसे मुगल सूबेदारों ने टुकड़े–टुकड़ें कर दिया और सूबेदारों की शक्ति को मरहठों ने विध्वंस किया और मरहठों का अफगानों ने विनाश किया और ठीक उसी समय जबकि ये शक्तियॉ आपस में एक–दूसरे को निगल रहीं थीं, अंग्रजों ने झपट कर सबको अपने अधिकार में कर लिया।[3]

1746 में ऐ अंग्रेज सैनिक कर्नल मिल लिखता है कि, ''मुगल साम्राज्य सोने और चॉदी से भरपूर है। वह साम्राज्य सदा निर्बल और रक्षा–रहित रहा है। यह आश्चर्य की बात है कि सामुद्रिक शक्ति रखने वाले किसी यूरोपीय राजा ने बंगाल को जीतने का प्रयत्न नहीं किया। एक ही मार में ऐसी विपुल धनराशि प्राप्त की जा सकती है कि जिसके सामने ब्राजील और पेरू की खाने फीकी पड़ जायें।''[4]

सन् 1749 में प्लासी का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध में, अंग्रेजी सेनाओं ने धोखाधड़ी, घूस और मक्कारी से नवाब सिराजुद्दौला को परास्त किया। और इस प्रकार से भारत में ब्रिटिश शासन का प्रारम्भ इस युद्ध के बाद ही माना जा सकता है जब अंग्रेजों ने भारत में अपने राज का विस्तार करना प्रारम्भ किया। अंग्रजों की प्लासी की जीत ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव का पहला पत्थर था। प्लासी युद्ध एवं 1764 के बक्सर युद्ध के परिणामस्वरूप अंग्रजों ने बंगाल, बिहार एंव उड़ीसा पर अपना अधिकार कर लिया।[5]

बक्सर युद्ध के बाद बंगाल पर नवाब का आधिपत्य नाम मात्र को रह गया। यह कहा जा सकता है कि वास्तविक अधिकार कम्पनी के पास था तथा उत्तरदायित्व नवाब के हिस्से में आया। कम्पनी और नवाब के द्वैध प्रशासन के बीच देशवासियों का जैसा भीषण शोषण हुआ वैसा सम्भवतः अन्य किसी काल में नहीं हुआ। मि. गौरहम सैण्डसन लिखता है कि, ''अंग्रेजों के आगमन के समय तक बंगाल का प्रान्त निश्चय ही संसार का सबसे समृद्ध क्षेत्र था। इन धन–सम्पदा भरे आबाद क्षेत्र में कभी कोई अकाल नहीं पड़ा था। सदियों से बंगाल अपनी निरन्तर चली आ रही अतुल समृद्धि के लिए प्रसिद्ध था। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने केवल तेरह वर्षों में ही सारे बंगाल प्रान्त में तबाही, गरीबी, भुखमरी, अकाल और मौत फैला दी।''[6] सारा बंगाल त्राहि–त्राहि कर उठा।

बंगाल की त्राहि–त्राहि का क्रन्दन इंग्लैण्ड तक पहुॅच गया। लंदन में ब्रिटिश अधिकारी 'कम्पनी द्वारा बंगाल के नवाब के साथ व्यवहार में क्रूरता अथवा कुटिलता एंव अक्सर बंईमानी की नीति' तथा कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा लगभग दस वर्षों तक बंगाल

के लज्जाजनक शोषण'[7] के कारण अत्यन्त क्षुब्ध हो रहे थे। सन् 1783 में ब्रिटेन को अपने उत्तर अमेरिकी उपनिवेशों [8] से हाथ धोना पड़ा जिससे ब्रिटिश संसद को अपने उत्तरदायित्व का अनुभव भली प्रकार हो गया था। अतः सन् 1784 में पिट का इण्डिया एक्ट पारित करके ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट–इण्डिया कम्पनी की राजनीतिक एवं प्रशासनिक गतिविधियों पर नियन्त्रण के विस्तृत अधिकार ग्रहण कर लिये। ब्रिटिश सत्ता के विस्तार का कार्य भी प्रारम्भ किया गया तथा लार्ड कार्नवालिस को टीपू सुल्तान के प्रदेश के एक बड़े भाग को ब्रिटिश राज्य में मिला लेने का आदेश दिया गया। लार्ड वैल्जली के शासन काल में साम्राज्यवाद को नया प्रोत्साहन मिला और 'गौण–मैत्री' की नीति द्वारा उसने हैदराबाद पर नियन्त्रण स्थापित किया तथा ग्वालियर, बड़ौदा, इन्दौर, नागपुर एवं पूना पूर्णतः उनके प्रभाव में आ गये। लॉर्ड हैस्टिंग्ज के उपरान्त लॉर्ड एम्हर्स्ट ने पूर्व में वर्मा पर विजय प्राप्त की। सन् 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद 1845–46 एवं 1849 के दो सिक्ख युद्धों के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने पंजाब पर भी अधिकार स्थापित कर लिया।[9] अवध का रजवाड़ा जिसके चारों ओर ब्रिटिश राज्य फैला हुआ था, सन् 1856–57 तक लगभग सारा भारत अंग्रेजों के अधिकार में आ चुका था।[10]

9 नवम्बर 1858 की घोषणा द्वारा भारतीय सरकार 'ब्रिटिश ताज' को हस्तांतरित कर दी गई तथा 1जनवरी 1877 को रानी विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी घोषित कर दी गई। नवम्बर 1858 में महारानी विक्टोरिया के नाम से प्रकाशित एक पत्र में घोषणा की गई कि,''भविष्य में ब्रिटिश सरकार देशी राजाओं के सम्मान, गौरव तथा अधिकारों की रक्षा करेगी।'' इसमें अंग्रजी सरकार ने भारतीय जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व की भी घोषणा की। महारानी ने वचन दिया कि उनकी सरकार देश में शान्ति स्थापित करेगी और जनता के चारित्रिक एवं भौतिक हित में शान्तिपूर्ण व्यवसाओं को प्रोत्साहित करेगी। प्रजा के लिए धार्मिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए उन्हें योग्यतानुसार सरकारी पदों पर बिना जाति एवं रंग, भेद–भाव के, समान अधिकार तथा न्याय के सम्मुख सबको समानता का आश्वासन दिया गया।

इन आश्वासनों के प्रति प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए, भारत के शिक्षित वर्ग ने इस घोषणा–पत्र का हार्दिक स्वागत किया तथा उनमें महारानी के प्रति स्वामी भक्ति की भावना को स्रोत उमड़ पड़ा। किन्तु, कम्पनी से ब्रिटिश सम्राट के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित होने पर भी भारत के प्रति ब्रिटिश नीति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। विदेशी सरकार पूर्ण रूप से स्वेच्छाचारी एंव निरंकुश रही। भारत की प्रजा को कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। परिणामस्वरूप उस पर कोई भी राजनीकि उत्तरदायित्व नहीं था। सम्पूर्ण देश इंग्लैण्ड के सम्राट के अधीन एक वृहद् राज्य था जिसका शासन ब्रिटिश साम्राज्य के हित में किया जाता था। इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों का विचार था कि एशिया की जातियॉ निरंकुश शासन का ही ज्ञान रखती है और वहीं उनको लाभप्रद है। लॉर्ड ऐलिसबरी के शब्दों में,''सम्राट के अधीन काली प्रजा किसी प्रकार भी गोरी जाति के साथ नहीं बैठाई जा सकती उनके साथ शक्ति का प्रयोग करने में किसी प्रकार की कोमलता नहीं होनी चाहिए।''[11]

ब्रिटिश सरकार की मूल नीति ही भारतीयों को सब प्रकार के राजनीतिक अधिकारों से दूर रखने की थी और यह नीति भारत के प्रति सर्वथा अविश्वासी थी। भारत में ब्रिटिश सरकार के कार्यों की रूपरेखा लॉर्ड मेयो के इस मत से स्पष्ट होती है कि,'' भारत की सरकार केवल सरकार ही नहीं है वरन् वह एक प्रमुख जमींदार है। इंग्लैण्ड में एक उदार जमींदार के जो कर्तव्य होते हैं वह समान रूप से भारत सरकार पर लागू होते हैं।''[12] इस प्रकार हम देखते है कि ब्रिटिश शासक भारत को अपनी सम्पत्ति मानते थे जिसे वे अपनी इच्छानुसार उपयोग एवं उपभोग करना चाहते थे तथा कर भी रहे थे। लॉर्ड डफरिन का भी यहीं विचार था कि, ''प्रजातन्त्र का जो स्वरूप पश्चिम में प्रचारित है वह पूर्वीय वातावरण में जनता को लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकता।'' लार्ड कर्जन ने भी बिना किसी शब्दाडम्बर के साफ–साफ घोषित किया था कि, ''भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार देना मैं कोई बुद्धिमानी अथवा राजनीतिज्ञता नहीं मानता।''[13]

भारत में अंग्रेजों की सत्ता से आधुनिक भारतीय इतिहास का पथ प्रशस्त होता है। जिस समय भारत में ब्रिटिश सत्ता का उदय होता है। उसी समय इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी। इंग्लैण्ड का औद्योगिक वर्ग भारतीय प्रदेश के विस्तार एवं वैभव की गाथाऍ सुन–सुन कर भारत के साथ व्यापार को अधिकाधिक बढ़ाना चाहते थे। इनमें केवल इंग्लैण्ड ही नहीं अपितु अन्य यूरोपियन देश एवं जातियॉ भी भारत के सम्पदा–वैभव से आकर्षित होकर भारत से सम्बन्ध बनाने को लालायित थीं। इस प्रकार भारतवर्ष का विश्व के विस्तृत मण्डल से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किया। जिसके परिणामस्वरूप, अन्य देशों की उन्नति से प्रभावित होकर हम, अपने संकीर्ण विचारों और रीतियों का बहिष्कार करने के साथ–साथ लकीर के फकीर बने रहने का ही विरोध करने लगे। इस प्रकार विदेशी शासन की नीति ने सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में बॉधने के लिए बाध्य किया। उनमें राजनीतिक एकता के भाव को बढ़ाया और राष्ट्रीय आन्दोलन के पथ पर अग्रसारित किया। डॉ. रघुवंशी के अनुसार,''पश्चिमी सभ्यता और संस्थाओं तथा राजनीतिक विचारधाराओं ने भारतीय जीवन में एक नई चेतना का संचार किया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी काल में राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म मिला।''[14]

सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भारत का धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एंव राजनीतिक परिदृश्य सहस्त्रों शताब्दियों पूर्व, जब विश्व के अन्य देशों में चिन्तन का कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हो पाया था, तब भारतीय चिन्तन मानव–सभ्यता के सर्वोच्च शिखर को स्पर्श कर रहा था। भारतीय चिन्तन की यह गौरवशाली परम्परा वैदिक काल से लेकर आज तक बनी हुई है। हमारे चिन्तकों ने अपने

मौलिक चिन्तन एवं अनुभवों द्वारा जिस समाज एवं उसके संचालन के लिए जिन ग्रन्थों का सृजन किया वे हमारी ही नहीं विश्व मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर भी हैं। किन्तु बीच–बीच में हमारी व्यवस्थाओं में कुछ विकृतियॉ भी उसी प्रकार से उत्पन्न हो गई जिस प्रकार प्रायः ठहरे हुए जल में कुछ अशुद्धियॉ हो जाती है। जिन्हें थोड़ें से कृत्यों द्वारा पुनः शुद्ध कर लिया जाता है उसी प्रकार हमारी व्यवस्थाओं में उत्पन्न हुई विकृतियों को भी परिमार्जित किया जाता रहा है। हमारी सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं में विकृतियॉ होने का ही फल था कि विदेशी अनेकानेक असभ्य एवं असंस्कृत जातियों ने हम पर आक्रमण किये और लूटते रहे। अनेक विदेशी आक्रमणकर्ता जातियॉ यहॉ बस गयीं और यहीं की संस्कृति में घुल–मिल गई। कुछ ऐसी भी जातियॉ रही जो बिना आक्रमण किये अपनी कुटिल चालों एवं अशु(भावनाओं के अपर शुद्ध–सात्विकता का जामा पहिन कर यहॉ आधीं और यहॉ की सादगी का लाभ उठा कर भारत के शासक बन बैंठी। जिन्होंने भारत को अपना गुलाम बना लिया और यहॉ की सम्पत्ति–धन–वैभव सम्पदा एवं जनता एक को अपनी मिल्कियत मानकर मनमाना लूटने–खसोटने लगे। इसी प्रकार की जातियों में भारत में शासन करने वाली अंग्रेज जाति एवं उसके कुटिल नुमाइन्दों के कारनामें यत्र–तत्र भारत के इतिहास में भरे पड़े हैं।

अक्टूबर सन् 1605 में अकबर की मृत्यु हुई। अकबर के समय में धार्मिक सहिष्णुता का बोलवाला था जो उसके पुत्र जहॉगीर के राज्य में भी जारी रहा । लेकिन फिर धीरे–धीरे धार्मिक कट्टरवाद पनपने लगा। हिन्दुओं और इसाईयों पर कुछ अत्याचार होने लगे।[15] बाद में औरंगजेब के राज्य का श्रीगणेश अपने पिता को कैद में डालकर किया। औरंगजेब कठोर सादगी का पालन करने वाला साधु और कट्टर मुसलमान था। वह अपने धर्म के अतिरिक्त और किसी धर्म को सहन नहीं करता था। उसने इरादतन हिन्दुओं को सताने की नीति चलाई। अकबर द्वारा प्रचलित सबको मित्र बनाने और एकीकरण की नीति को उसने उलट दिया। फलस्वरूप जिस नींव पर अभी तक मुगल साम्राज्य टिका हुआ था वह हिलने लगा। उसने हिन्दुओं पर जजिया टैक्स फिर लगा दिया। राजपूतों के सभी पद वापिस ले लिये। उसने हजारों हिन्दू मन्दिरों को तुड़वा डाला। इस प्रकार विशाल मुगल–साम्राज्य की नींव दिन–पर–दिन कमजोर होती जा रही थी और उसके चारों तरफ दुश्मन पैदा हो रहे थे।

ओरंगजेब की मृत्यु 1707 में हुई। उसने जिस धार्मिक कट्टरता की बुनियाद रखी थी यद्यपि व उसके बाद के शासकों में उससे कमी तो हुई लेकिन आम जनता के दिल में अपने धर्म की रक्षा के प्रति जो उन्माद उत्पन्न हुआ वह शनैः शनैः विद्रोहात्मक रूप लेकर एक–दूसरे की धार्मिकता से दूर होता गया। धार्मिक वैमनस्य के कारण ही हमारी सामाजिकता एवं राजनीतिकता भी पूरी तरह प्रभावित हुई। यद्यपि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्ररम्भ में दोनों ही सम्प्रदाय; हिन्दू–मुस्लिम एक होकर अंग्रजों के विरूद्ध लड़े किन्तु अन्ततोगत्वा यह एकता टिकाऊ न रह सकी, जिसके परिणाम मं आजादी प्राप्ति की बहुत विडम्बित स्थिति विभाजन अर्थात् भारत–पाकिस्तान के निर्माण के बाद हिन्दू–मुस्लिम समस्या समाप्त हो जायेगी, किन्तु यह विचार मिथ्या साबित हुआ। आजादी के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच के युद्ध एवं झगड़े उसी वृक्ष के फल है जो धार्मिक कट्टरवाद के रूप में बो दिये गये थे। यहॉ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि आज भारत में बढ़ता आतंकवाद, जिनमें फरवरी 2002 'गोधरा रेलवे काण्ड' तथा उसके बाद के गुजरात एवं अन्य स्थानों पर भड़के हिन्दू–मुस्लिम दंगे एवं तनाव भी उसी वृक्ष का सबसे ताजा एवं बहुत कड़वा फल है। 17वीं से 19वीं शताब्दी का भारतीय परिवेश रूढ़िवादी–मतान्धता की अंधी बुनियाद पर खड़ा हुआ एक विशाल भुतहा महल था।

मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भारत में आने वाले संभ्रान्त आक्रमणकारी यथा–शक, कुषाण, हूण आदि भारतीय संस्कृति में घुल–मिल गये। वैदिक धर्म दुनिया में प्राचीनतम है। प्राचीन भारत में वैदिक धर्म के अतिरिक्त जैन एवं बौद्ध धर्म भी फैले। इन सभी धर्मो में कुछ मतमतान्तर होते हुए भी मुख्य सिद्धान्तों के बारे मे मौलिक एकता सदैव ही विद्यमान रही। कालान्तर में विभिन्न आक्रमणों के बाद भारत की धार्मिक एकता समाप्त होती गई, क्योंकि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई तथा पारसी सभी के अपने–अपने भिन्न सिद्धान्त टकराने लगे। फिर भी यह बात विशेष रूप से उभरती है कि सभी मत–सम्प्रदाय एक ईश्वर मे विश्वास रखते हैं तथा एक–दूसरे के प्रति सहिष्णुता रखते है। गुरूनानक, कबीर, रहीम, जायसी, रसखान, महात्मा गॉधी आदि अनेक महापुरूषों ने एक–दूसरे के धर्मो को आदर एंव श्र(ा प्रदान की। धार्मिक विभिन्नताओं के होते हुए भी हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाईयों एवें पारसियों में कुछ ऐसे आर्थिक तथा राजनीतिक बन्धन थे जिन्होंने एक–दूसरे को समीप लाने में सहायता की। स्मिथ के अनुसार, ''अनेक कारणों से विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में मौलिक एकता के कुछ बन्धन है। यह अनिवार्य मौलिक एकता इस तथ्य पर आधारित है कि भारत के विभिन्न लोगों ने विशेष प्रकार की सभ्यता एवं संस्कृति को उन्नत किया है जो कि संसार में अबन्य संस्कृतियों से बिल्कुल भिन्न है उस सभ्यता को हिन्दुत्व कहते हैं।''

इस प्रकार भारत की धार्मिकता सम्पूर्ण एकता की प्रबल समर्थक रही है। उसने मानव ही नहीं, वरन् प्राणी मात्र के कल्याण की कामना की है। भारत की इन्हीं विभिन्नताओं में एकता देखते हुए हैवल कहता है कि, ''भारत में धार्मिक विभिन्नताओं के होते हुए भी मौलिक एकता है।''

इस काल के बाद में धार्मिक जीवन का केन्द्र बिन्दू अनुष्ठान एंव कर्मकाण्ड था। इसी प्रकार के बाह्य–आडम्बरों को धर्म का पर्याय मान लिया गया था। इन अनुष्ठानों और धार्मिक कर्मकाण्डों में इतनी फिजूलखर्ची होती थी कि अंदाजा लगाना भी मुश्किल है। जन्म से मृत्यु तक के सारे अनुष्ठानों में, मन्दिर–निर्माण,

ब्राह्मण और साधु–सन्तों की सेवा, तीर्थ–यात्रा आदि असंख्य कार्यकलापों में धन खर्च करना, धर्म का ही अंग समझा जाने लगा था। धर्म का रूप ही विकृत हो गया था। मथुरा, वृन्दावन, पुरी, वाराणसी, हरिद्वार आदि सरीखे सारे भारत में असंख्य तीर्थ स्थानों पर हिन्दू यात्री काफी धन खर्च करते। अंधविश्वासों का बोलवाला था। अंधविश्वासों तथा बाह्य–आडम्बरों को बनाये रखने के लिए पुरोहित, ब्राह्मण मुल्ला और मौलवियों आदि ने अपनी–अपनी भूमिका पूर्ण रूप से निभाई। यही विकृतियॉ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अश्पृश्यता, जाति भेद, वर्गभेद, ऊॅच–नीच और धर्मिक कट्टरता के तूल देते रहते थे। श्री कार्तिक चन्द्र दत्त के अनुसार, ''धार्मिक कट्टरता और पाखण्ड हिन्दू और मुसलमानों में समान रूप से विद्यमान थे। इस काल मे जाति–भेद और छुआछूत के अलावा खान–पान के मामले में भी भारी नियम कानून प्रचलित थे। छोटी–छोटी धार्मिक भूलों के लिए प्रायश्चित करना पड़ता था।'' हिन्दू धर्म के धार्मिक ठेकेदार प्रायः वेदों एवं अन्य शास्त्रों का हवाला देते लेकिन उनमें लिखे उपदेशों, तत्वों या विचारों की ओर ध्यान तक नहीं देते थे। धर्म की आड़ में सारे पाप–प्रमाद किये जाते थे। धार्मिक मठ और साम्प्रदायवाद का पूरी तरह बोलवाला था। धार्मिक अन्धविश्वासों पर आधारित 'सती प्रथा' बाल–विवाह, बहु–विवाह सारे हिन्दू समाज में व्याप्त थे, जिससे पूरा समाज खोखला हो गया था।

यद्यपि प्राचीन काल में भारत में नारी का स्थान सम्मानपूर्ण रहा है, लेकिन सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में भारतीय नारी की स्थिति अति दयनीय हो गई। बहु–विवाह, कुलीन प्रथा, बाल विवाह आदि आम कुरीतियॉ प्रचलित थी। इस काल की महा–विडम्बना विधवाओं की कारूणिक कहानी थी। पति की मृत्यु के बाद न तो समाज में और न ही परिवार में विधवाओं को कोई स्थान एंव महत्व था। शायद यही अपेक्षापूर्ण स्थिति बाद में सती प्रथा के रूप में उभरी होगी। धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक कुरीतियों के अलावा पद्दलित वर्गो के शोषण और अत्याचार के विरूद्ध अनेक महापुरूषों ने आन्दोलन प्रारम्भ किये और बहुत स्तर तक वे सफल भी हुए। सती प्रथा सरीखी अति अमानवीय प्रथा के उन्मूलन के लिए राजा राममोहन राय एवं अपृश्यता के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रयास अति उल्लेखनीय है। श्री. वी.एन. दास गुप्ता के शब्दों में –

''राममोहन ने इस निर्मम सती प्रथा को अवश्य ही अपनी ऑखों से देखा होगा क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक 'सहमरण विषये प्रवर्तकओ निवर्सकरे द्वितीय संवाद' में लिखा था कि विश्व के सारे लोक अंधे नहीं है कि औरत को चिता पर जिन्दा जला देने का उद्देश्य न समझ सके।''

इस प्रकार हम देखते है कि जिस भारत की पताका प्राचीन काल में धर्म के क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व में लहराती थी, जिस भारत ने प्राचीन काल मे सम्पूर्ण विश्व को धर्म का पाठ पढ़ाया, जो भारत धर्म के क्षेत्र में विश्व का मुख कहलाया, वहीं भारत सत्रहवीं और अठारहवीं ही नहीं अपितु उन्नीसवीं शताब्दी में भी धर्म के ऐसे विकृत रूप को अपना बैठा जो न केवल धर्म के नाम पर अपितु मानवता के नाम भी एक दाग था।

जहॉ तक हम 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के भारत के धार्मिक परिदृश्य पर दृष्टिपात करते है तो पाते है कि इतिहास के इस काल खण्ड में देश, समाज, धर्म, सम्प्रदाय और जाति के आधार पर पूर्ण रूप से विखण्डित था। हिन्दू–मुस्लिम दो प्रमुख धर्मों के अतिरिक्त सारा देश छोटे–छोटे धार्मिक सम्प्रदायों, मत–मतान्तरों और पंथों में बंटा हुआ था। हिन्दू और मुसलमान सभी अपनी–अपनी धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकाण्डों का कट्टरता से पालन करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। इनमें एक प्रकार की होड़ सी लगी रहती थी। अपनी इसी हठ–धर्मिता के कारण लोग जान की बाजी लगाने से भी नहीं चूकते थे। इस काल के धार्मिक जीवन की प्रमुख विशेषता संकीर्णता से भर उठी। हिन्दुओं में वैष्णव और शैवों के अतिरिक्त न जाने कितने छोटे–छोटे सम्प्रदाय बने हुए थे। मुसलमानों में भी शिया–सुन्नी सम्प्रदाय में अलगाव और टकराव बना रहता था।

हिन्दू धर्म के धार्मिक ठेकेदार प्रायः वेदों एवं अन्य शास्त्रों का हवाला देते लेकिन उनमें लिखे उपदेशों, तत्वों या विचारों की ओर ध्यान तक नहीं देते थे। धर्म की आड़ में सारे पाप–प्रमाद किये जाते थे। धार्मिक मठ और साम्प्रदायवाद का पूरी तरह बोलवाला था। धार्मिक अन्धविश्वासों पर आधारित 'सती प्रथा' बाल–विवाह सारे हिन्दू समाज में व्याप्त थे, जिससे पूरा समाज खोखला हो गया था। यद्यपि प्राचीन काल में नारी का स्थान सम्मानपूर्ण रहा है, लेकिन सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में भारतीय नारी की स्थिति अति दयनीय हो गई। बहु–विवाह, कुलीन प्रथा, बाल विवाह आदि आम कुरीतियॉ प्रचलित थीं। इस काल की महा–विडम्बना विधवाओं की कारूणिक कहानी थी। पति की मृत्यु के बाद न तो समाज में और न ही परिवार में विधवाओं का कोई स्थान एवं महत्व था। शायद यही अपेक्षापूर्ण स्थिति बाद में सती प्रथा के रूप में उभरी होगी। धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक कुरीतियों के अलावा पद्दलित वर्गो के शोषण और अत्याचार के विरूद्ध अनेक महापुरूषों के आन्दोलन प्रारम्भ किये और बहुत स्तर तक वे सफल भी हुए।[21] सती प्रथा सरीखी अति अमानवीय प्रथा के उन्मूलन के लिए राजा राममोहन राय एवं अपृश्यता के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रयास अति उल्लेखनीय है। श्री वी. एन. दासगुप्ता के शब्दों मे–राममोहन ने इस निर्मम सती प्रथा को अवश्य ही अपनी ऑखों से देखा होगा क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक 'सहसमरण विषय प्रवर्तकओ निवर्स करे द्वितीय संवाद' में लिखा था कि विश्व के सारे लोग अंधे नहीं है कि औरत को चिता पर जिन्दा जला देने का उद्देश्य न समझ सके।

इस प्रकार हम देखते है कि जिस भारत की पताका प्राचीन काल में धर्म के क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व में लहराती थीं, जिस भारत ने प्राचीन काल में सम्पूर्ण विश्व को धर्म का पाठ पढाया, जो भारत धर्म के क्षेत्र में विश्व का मुख कहलाया, वहीं भारत सत्रहवीं और अठारहवीं ही नहीं अपितु उन्नीसवीं शताब्दी में भी धर्म के ऐसे विकृत

रूप को अपना बैठा जो न केवल धर्म के नाम पर अपितु मानवता के नाम भी एक दाग था।

मुसलमानों के भारत में आने के पूर्व भारत में अनेक जातियों का आवागमन हुआ। कुशाण, शक, ग्रीक, पार्शियन आदि। परन्तु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति इतनी उन्नत थी कि कालान्तर में ये सभी जातियॉ हिन्दू जाति में ही विलीन हो गई। लेकिन मुसलमानों के आवागमन के समय भारतीय समाज की रचना में बड़ा अन्तर हो गया था। इसके ठीक विपरीत की अपनी निजी सभ्यता एंव निजी धर्म था। वे भारत की केवल राजनीतिक विजय ही नहीं अपितु सांस्कृतिक एंव धार्मिक विजय भी करने का मन्सूबा लेकर भारत आये थे। उनकी अपनी दृढ़ संस्कृति धर्म व सभ्यता थी जिन पर संकीर्ण हिन्दू धर्म का प्रभाव नहीं पड़ सकता था। इसलिए पूर्व की भॉति वे हिन्दू धर्म एवं हिन्दू समाज में नहीं घुल मिल सके। किन्तु फिरी भी अधिक समय तक हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के सम्पर्क में रहने के कारण वे उसके प्रभाव से कतई मुक्त भी नहीं रह सकें। हिन्दुओं की वर्गीयता का प्रभाव उन पर भी पड़ा। उनके दो वर्ग शिया और सुन्नी तो पहले से ही थे तथा इनका परस्पर वैमनस्य भी बना रहता था जो आज भी बरकरार है। कालान्तर में मुसलमानों में भी शेख, सैयद, मुगल, पठान, खान, मलिक आदि वर्ग भी बन गये थे। इसके अतिरिक्त उमेला, सूफी, सैयद भी थे जिनका समाज में विशेष आदर होता था। अतः दोनों ही सम्प्रदाय अर्थात् सम्पूर्ण भारतीय समाज बाहर से एक होते हुए भी अन्दर से टूटा–बिखरा था। ऊॅच–नीच का भेद–भाव पूरे समाज में व्याप्त था।

भारत में विदेशी राज्य विशेषतया मुसलमानों की सल्तनतों से पूर्व भारतीय समाज आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त सुदृढ़ था। परन्तु मुसलमानों ने उन पर भॉति–भॉति के अत्याचार किये। हिन्दू समाज में राजनीतिक एवं सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में अतीव हानि सहनी पड़ी। अलाउद्दीन खिलजी के समय हिन्दू समाज की दशा इतनी शोचनीय कर दी गई थी, जितनी कि बाद में ब्रिटिश काल में भी नहीं हुई। मुसलमानों के हाथों पराधीन होकर हिन्दू समाज लगातार पतित ही होता गया। बाल विवाह, सती–प्रथा, पर्दा प्रथा, जौहर आदि कुरीतियॉ हिन्दू समाज में मुसलमानों की आतंकी प्रवृत्ति के ही फल थे। कहना न होगा, प्राचीन काल में हमारी सामाजिकता संसार की सर्वप्रथम एंव सर्वश्रेष्ठ सामाजिकता है। भारत ने ही संसार को सामाजिकता का अध्याय पढ़ाया, ऐसा कहना भी, कदापि अनुचित नहीं हो सकता। किन्तु कालान्तर में भारत की परिस्थितियॉ इतनी बिगड़ चुकी थीं और विदेशी शासन के अन्तर्गत भारतीय जीवन इतना पदाक्रन्त हो चुका था कि भारत की प्राचीन, गौरवमयी इतिहास पर भी कभी–कभी सन्देह होने लगता है। अंग्रेजों के आगमन काल के आस–पास अर्थात् सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में भारतीय समाज के घोर पतन के लक्षण प्रकट हो गये और जनता अपने प्राचीन गौरव को भूल बैठी। धार्मिक पाखण्ड और विविध सामाजिक बुराईयों ने अपना घर जमा लिया। इसी पतनोन्मुख स्थिति ने धर्म एवं समाज सुधार की पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

निष्कर्ष:

इन विषम परिस्थितियों में नव–जागरण के महान पुरोधाओं ने ही भारतीय जन–मानस को एक नयी चेतना प्रदान की और राष्ट्रीयता का गौरवमयी संदेश जन–जन तक पहुॅचाकर उनमें अपूर्व स्वाभिमान का संचार किया। यूरोपीय एवं भारतीय विद्वानों द्वारा भारत के गौरवशाली अतीत की चर्चा ने भारतीयों मे आत्मविश्वास एवं राष्ट्रीय गौरव की भावना को जागृत किया। दूसरे शब्दों में पुनरूत्थान ने भारतीयों में अतीत के प्रति सम्मान जागृत किया तथा देशभक्ति के भाव उनके हृदय में हिलोंरें लेने लगे।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ0सुभाष कश्यप, भारत का संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष, पृ.9
2. सुकुमार भट्टाचार्य, द ईस्ट इण्डिया कम्पनी एण्ड इकोनोमी आफ बंगाल, पृ.10
3. कार्ल मार्क्स, मेरेक्स एण्ड ईगलस आन इण्डिया, पृ. 50
4. डा0 सुभाष कश्यप, भारत का संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष, पृ.13
5. वही, पृ. 15
6. Chirol, Sir Valentine India (London 1926) P. 76
7. Dunbar, Sir George, Bt. India and the Passing of Empire, P. 103
8. Majumdar, R.C.: The Sepoy Muting and the Revolt of 1957, P.19
9. Lady Cecil, Life of Lord Salisbury, Vol. II
10. Hunter: Life of Lord Mayo.
11. डॉ0 वी.पी.एस. रघुवंशी, राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय शासन और राजनीति, पृ.3
12. जवाहर लाल नेहरू, विश्व इतिहास की झलक, पृ. 191
13. डॉ0 एस.के.मित्त्ल, भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 11
14. कार्तिक चन्द्र दत्त, राजा राम मोहन रायः जीवन और दर्शन, पृ 26

डॉ0 एम.एस. त्यागी
रीडर एवं अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त)
इतिहास विभाग
के0जी0के0 कॉलेज, मुरादाबाद

इन्द्रजीत सिंह
इतिहास विभाग
के0जी0के0 कॉलेज, मुरादाबाद

22

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में चित्रित पारिवारिक समस्या

सुमित्रा

सारांश –

परिवार व्यक्ति और समाज के बीच की मर्यादित इकाई है। समाज के निर्माण मे परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है। जहां व्यक्ति समाज की प्राथमिक ईकाई है वही परिवार व्यक्तियों का समूह है। परिवार के संरक्षण में रहकर ही व्यक्ति अपने शारिरीक एवं बौद्धिक विकास की ओर बढ़ता है। अतः जहाँ समाज व्यक्तियों के परस्पर सहयोग, संवेदना और सहानुभूति के आधार पर बनते है, वही परिवार में व्यक्तियों का यह संबंध रक्त के आधार पर निर्धारित होता है। जहां व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार बिना किसी स्वार्थ के करता है।

मानव समाज में परिवार को सार्वभौमिक संस्था माना जाता है। 'वैसुधैव कुटुम्बकम' की संकल्पना भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य है। इसलिए भारतीय जीवन शैली में 'परिवार' को सर्वोच्य स्थान प्राप्त है। सामाजिक जीवन में परिवार को प्रथम पाठशाला माना गया है। क्योंकि एक बच्चा अपने सीखने की शुरुआत अपने घर–परिवार से ही करता है। परिवार के निर्माण में स्त्री और पुरुश दोनों का बराबर का योगदान होता है। व्यक्ति अपना सम्पूर्ण जीवन अपने परिवार के साथ बिताना चाहता है। परिवार में सभी सदस्यों के कुछ अधिकार तो कुछ कर्तव्य भी होते है। सभी सदस्यो का एक दूसरे के प्रति प्यार और सहयोग ही उन्हे जोड़े रखता है। मनुश्य को सभ्य बनाने व जीवन को सुचारु रुप से संचालित करने में परिवार की अह्म भूमिका रही है। दुनिया के लगभग सभी समाजों में बच्चे का जन्म और पालन–पोशण एक परिवार में ही होता हैं। बच्चों को संस्कार देने और समाज के बारे में दीक्षित करने को मुख्य कार्य परिवार का ही होता है। परिवार के द्वारा ही समाज की सांस्कृतिक विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती है।

अंग्रेजी में परिवार का पर्यायवाची शब्द 'फैमिली' है जिसकी उत्पति यूनानी भाशा के 'आइकोनोमिया' शब्द से हुई है जिससे हमें 'इकोनोमिक्स' या अर्थशास्त्र मिलता है। तात्पर्य यह है कि परिवार प्रारम्भ में एक आर्थिक संगठन था। 'आइकोनोमिया' का शाब्दिक अर्थ 'एक बडा कुनबा या कुटुम्ब है। यहा परिवार शब्द से केवल पति–पत्नी और उसकी संतान का अर्थ ग्रहण किया जाता है। लेकिन भारतीय आचार्यों के अनुसार परिवार में निकटतम रक्त संबंधियों को भी शामिल किया जाता है।

- कुछ विद्वानो ने 'परिवार' की परिभाशा कुछ इस प्रकार दी है– समाजशास्त्री मैकाइवर के अनुसार 'परिवार बच्चों की उत्पति एवं पालन – पोशण की व्याख्या करने हेतू पर्याप्त रुप में निश्चित और स्थायी यौन सम्बन्धों से परिभाशित एक दल है।'(1)
- डॉ0 जयदेव विघालंकार के अनुसार – ''उत्तम समाज के लिए उत्तम परिवार का होना आवश्यक है और उत्तम परिवार के निर्माण के लिए उत्तम विवाह पद्वति का होना अनिवार्य है। विवाह संस्कार के द्वारा वर–वधु को सुसंस्कृत किया जाता है। यह प्राचीन समाज की एक मुलभूत विशेशता है।''(2)
- इलियट और मैरिल के अनुसार '' परिवार को पति–पत्नी और बच्चों की जैवकीय सामाजिक इकाई के रुप में परिभाशित किया जा सकता है।''(3)
- क्लेयर के मतानुसार – ''परिवार से हम सम्बन्धों की व्यवस्था को समझते है, जो माता पिता और उनकी संतानो के बीच पाई जाती है।''(4)

इस प्रकार परिवार मानव–जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। परिवार के बिना समाज और समाज के बिना देश की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था होने के कारण उसमें एकरुपता है सम्भव नहीं है। समय परिवर्तन के साथ–साथ उसके स्वरुप में भी परिवर्तन आता रहता है। आज भारतीय समाज में दो तरह के परिवार ही देखने में आ रहे है।

i) एकल परिवार

ii) संयुक्त परिवार

एकल परिवार :–

एकल परिवार को अंग्रेजी में 'न्यूक्लियर' फैमिली कहा जाता है। एकल परिवार का ढ़ाचा छोटा होता है जिसमे पति–पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे शामिल होते है। ऐसे परिवारों में किसी अन्य व्यक्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। ऐसे परिवारों में बच्चों के विकास की ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता है। इन परिवारों में अपनी–अपनी भावनाओं और विचारों को अधिक महत्व दिया जाता

है। एकल परिवारों के बच्चे प्राय अधिक कश्ट उठातें है। एकल परिवार तभी सुचारु रुप से चल सकते है जब पति पत्नी एक दूसरे की भावनाओं को समझे। यदि दोनों में से एक भी दबंग हो जाता है तो वही सम्बन्धों में बिखराव शुरु हो जाता है जिसका बुरा असर उनके बच्चों पर पड़ता है। एकल परिवारो में पति–पत्नी अपनी कमाई स्वयं रखते है। एकल परिवारों को आणविक परिवार भी कहा जाता गया है। वर्तमान समय में औधोगिक विकास के कारण गांवो से व्यक्ति नगरों में नौकरी करने लगे और अपना परिवार को साथ रखने लगे। आधुनिक शिक्षा ने भी एकल परिवारों को बढ़ाने में सहयोग दिया है क्योंकि शिक्षा की सभी सुविधाएं गांवो में ना होने की वजह से मां बाप अपने बच्चों समेत शहरों मे बस जाते है। औरतों के आपसी झगड़ो की वजह से भी एकल परिवारों की संख्या बढ़ी है। बेरोजगारी भी एकल परिवार को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई है।

सयुक्त परिवार :–

वर्तमान समय के व्यस्तता भरे जीवन में सयुक्त परिवार का प्रचलन कम होता जा रहा है। पहल सयुक्त परिवारों में माता–पिता, दादा–दादी, चाचा–चाची, आदि सब इक्कठे रहते ये घर का बुर्जुग व्यक्ति परिवार का मुखिया होता था। अर्थ से जुड़े सारे काम मुखिया स्वयं संभालता था। मुखिया द्वारा किया गया कोई भी फैसला अंतिम फैसला माना जाता था। आज उन्ही सयुक्त परिवारों का स्वरुप मिटता जा रहा है। आज सयुक्त परिवार का स्थान मूल या एकल परिवार लेते जा रहे है। वर्तमान समय में व्यक्ति अपना जीवन बिना किसी दबाव या बन्धन के बिताना चाहता है जिसके फलस्वरुप सयुक्त परिवार एकल परिवार में बदलते जा रहे है। संयुक्त परिवारों के विघटन के मुख्य कारण – विचारों में एकरुपता का अभाव, उत्तरदायित्व की भावना से बचना, प्रेम–विवाह, आर्थिक कठिनाई, पाश्चात्य प्रभाव, यातायात और संचार के साधनों का विकाश आदि है।

आज का व्यक्ति अधिक से अधिक पैसा कमाने की होड़ में लगा है। भौतिकता और पाश्चात्य प्रभाव व्यक्ति को पूराने मूल्यों से विद्रोह करने पर मजबूर कर देते है। आज का मनुश्य एकांतता व स्वार्थ की परछाई से भरा हुआ है। आज की युवा पीढी इतनी व्यस्त हो गई है कि वह अपने मां–बाप के लिए भी समय नही निकाल पाती। मां–बाप के लिए केवल इतना फर्ज समझते है कि गुजारे लायक पैसे भेज दें। ये उन्हे अपने पास रखना तक नहीं चाहते। उनके ऐसे व्यवहार से मां–बाप मानसिक बिमारियों का शिकार होते जा रहे है लेकिन उनके बच्चों को इससे कोई मतलब नहीं। परिवार में रहते हुए व्यक्ति को अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिन्हें पारिवारिक समस्याएं कहते है। मधु जी ने अपने कथा साहित्य में अनेकों पारिवारिक समस्याओं का जिक्र किया है जो इस प्रकार हैः–

टूटते बिखरते दाम्पत्य जीवन की समस्याः–

यहां दाम्पत्य का अर्थ है विवाहित पति–पत्नी । गृहस्थी रुपी गा़ड़ी को चलाने के लिए पति और पत्नी दोनों पहियों का बराबर का सहयोग होता है। यदि दोनों में से एक भी लड़खड़ा जाए तो इस गृहस्थी रुपी गाड़ी का चलना मुश्किल हो जाता है। पति–पत्नी में छोटे–मोटे झगड़े तो अकसर चलते ही रहते है लेकिन यदि उनका झगड़ा बढ़ जाता है तो घर एक जेल बन जाता है जहां रहना व सांस लेना मुश्किल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन में आनेवाली समस्याओ के निम्न कारण हो सकते है जैसे – संतानहीनता, धोखा, पति–पत्नी के विचारों में आपसी तालमेल न होना, यौन सम्बन्ध, शक या संदेह, आर्थिक कमजोरी आदि।

उदाहरण के रुप में मधु जी के 'सलाम आखिरी' उपन्यास को ले सकतें है जहां उपन्यास की नायिका सुकीर्ति को विवाह में धोखे का शिकार होना पड़ता है। एक बार धोखा खाई सुकीर्ति दोबारा किसी पुरुश पर विश्वास नही कर पाती। उसका एक दोस्त मेधेन जो सुकीर्ति से बहुत प्यार करता था, जिसके प्रेम को सुकीर्ति ने ठूकरा दिया था। उसका एक अन्य दोस्त विजय भी उसे भाव पुर्णता तक नही पहुँचा पाता।

'पत्ताखोर' उपन्यास का नायक या मुख्य पात्र आदित्य के माता–पिता के बीच भी विचारों का तालमेल सही न होने से घर में आए दिन महाभारत छिड़ी रहती है। बनश्री और हेमन्त बाबू दोनेा के नौकरपेशा होने की वजह से दोनेा घर से बाहर रहते है ऐसे में बारह –तेरह वर्शीय आदित्य को सुना फलैट खाने को दौड़ता है। पिता जितने शांत स्वभाव के, मां उतनी ही प्रंचड गुस्से वाली। उनका ध्यान आदित्य की ओर न होने से वह गलत लत का शिकार हो जाता है। घर का बिगड़ता वातावरण एक बच्चे को नरक में धकेल देता है।

'सेज पर संस्कृत' उपन्यास के दाम्पत्य जीवन से दुखी एक संघमित्रा का मां को भी लिया जा सकता है। जो घर में किसी पुरुश पात्र के न होने के डर से साध्वी बन जीवन यापन करना चाहती है, साथ में अपनी दोनों बेटियों को भी दीक्षा दिलाना चाहता है। उसके दुख का अंदाजा निम्न पंक्तियो के माध्यम से लगाया जा सकता है– ''कितनी वाहियात चीज है यह शादी मैं नहीं चाहती कि तुम इसमें फंसों, मेरी तरह विधवा हो और तिल–तिलकर अपने बच्चों

को मरते हुए देखों। संसार में रहने का मतलब है दुखों के दलदल में फंसना।''(5) यहां गरीबी के कारण मां शादी शुदा जिंदगी से तंग दिखाई पड़ती है।

'हम यहां थे' उपन्यास की नायिका दीपशिखा ने भी अपने पति का घर छोड़ दिया है। तीस वर्शीय दीपशिखा और पौने तीन साल का उसका बेटा दोनों अब उसके मायके में ही रहते है। बेरोजगार पति के रोज के झगड़े से तंग आकर दीपशिखा ने यह फैसला लिया। केवल आर्थिक तंगी ही नहीं बल्कि दोने के विचार भी मेल नहीं खाते थे। दीपशिखा जहां खुले विचारों वाली महिला थी, वहीं राजीव दबे विचारों वाला व्यक्ति था।

दीपशिखा की सहेली चंद्रा जिसे उसके पति ने शादी के दूसरे दिन ही बदचलन कहकर छोड़ दिया था। क्योंकि उसने सुहागराज के दिन बिना हू–हुज्जत के, बिना अतिरिक्त शर्म के जमकर देह का उत्सव मनाया था। यहां देखते है कि कोई शक–संदेह भी दाम्पत्य जीवन में किस प्रकार समस्या बन सकता है। किसी भी प्रकार शक या संदेह पति–पत्नी के वैवाहिक जीवन को खोखला बना सकता है।

दीपशिखा का एक ओर सहेली 'तवलीन' को भी संतान न होने की वजह से दाम्पत्य समस्या का सामना करना पड़ता है। तवलीन की मेडिकल रिपोर्टे कही भी कुछ भी खराबी नहीं थी। उसका पति ही वीर्यहीन था।

अतः ऐसे बहुत से उदाहरण है जिनकी वजह से दाम्पत्य जीन में समस्या उत्पन्न होती है। पति और पत्नी दोनो को एक–दूसरे की भावनाओं को समझना चाहिए तभी उनके जीवन में मधुरता आ सकती है।

कुंवारेपन की समस्या :–

हमारे हिन्दू समाज में विवाह को सामाजिक सस्कार के रुप में मानते है। स्त्री हो या पुरुश दोनों का विवाह होना जरुरी समझा जाता है। बैगर विवाह के जीवन को अधूरा समझा जाता है। मधु जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से बताया है कि समाज मे कुंवारे लड़के व लड़कियों का विवाह न होने से उनको व उनके परिवार को कितनी चिंता बनी रहती है। उदाहरण के रुप में 'खुले गगन के लाल सितारे' की नायिका के मां–बाप दोनों को अपने बच्चों की शादी की चिंता होना स्वाभाविक है। बेटे से ज्यादा बेटी की शादी को और भी जरुरी समझा गया है। एक कुंवारी लड़की मां–बाप के लिए नहीं, बल्कि समाज के लिए बोझ बन जाती है। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने की वजह से अमरनाथ बाबू और गंगाबाई अपनी बड़ी बेटी मुन्नी की शादी एक मंदबुद्धि अड़तीस वर्शीय चॉदमल से कर देते है, दूसरी बेटी पारसी के लिए भी उन्हे बहुत दौड़–धूप की लेकिन ठीक शादी के तीन दिन पहले हादसे का शिकार हुई पारसी का रिश्ता टूट जाता है और साध्वी बनने को मजबूर हो जाती है। उम्र से पहले बूढ़ा दिखने वाला पारस भी उस समस्या से बच नहीं पाता। जैसे तैसे पारस का भी विवाह हो जाता है। अब पूरे परिवार के सामने मणिदीपा की शादी की समस्या आती है लेकिन पूरे परिवार की लाख कोशिशों के बावजूद मणिदीपा शादी नहीं करती क्योंकि उसकी चाहत तो 'इन्द्र' था।

कुंवारेपन की समस्या 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में भी दिखाई पड़ती है। जहां पति और बेटे की मृत्यु के बाद सारी जिम्मेदारी एक मां पर आ जाती है। दो–दो कुंवारी बेटियों के विवाह व उनके भविश्य की चिंता एक मां को दिन–रात सताने लगती है और अंत में अपनी जिम्मेदारी से मुक्ति पाने के लिए वह अपनी दोनों बेटियो समेत दीक्षा लेने का निर्णय लेती है। विवाह उसे एक समस्या लगती है।

'पत्ताखोर' उपन्यास में यह समस्या स्पश्ट दिखाई पड़ती है। जहां अपनी दोनों बेटियों राशि व श्यामली के विवाह की चिंता हेमवती और दीपकर बाबू को चैन से सोने भी देती। हर मां–बाप की तरह वे भी बेटियों की शादी कर अपनी जिम्मेवारी से मुक्त होना चाहते है। इनके विवाह की चिंता उस समय बढ़ जाती है जब हेमवती को कैंसर हो जाता है। ''कर्तव्य की देवी बनी हेमवती की जिंदगी में अब सिर्फ तीन चीजें ही थी– ईश्वर, प्रार्थना और बेटियों के विवाह की चिंता।''(6) जैसे–तैसे छोटी बेटी श्यामली का जुगाड़ बन जाता है। जब श्यामली की शादी का निमंत्रण कार्ड आदित्य को दिया जाता है तो दींपकर बाबू का नाम देखते ही वह कार्ड को पूरा पढ़े बिना ही फाड़ देता है और फिर से नशे की दुनिया में चला जाता है। उपन्यास के अंत में आदित्य के माता–पिता राशि और आदित्य की शादी करना चाहते है लेकिन तब तक आदित्य के लिए शादी से ज्यादा जरुरी काम जन कल्याण बन जाता है। और उपन्यास के अंत तक आदित्य और राशि दोनों अविवाहित ही रह जाते है।

इस प्रकार मधु जी ने कुवांरेपन की समस्या को पारिवारिक समस्याओं में महत्वपुर्ण स्थान दिया हैं। उन्हे इस समस्या को यथार्थ रुप में हमारे सामने प्रस्तुत किया हैं।

स्त्री की बेबसी एवं कष्ठा :–

मधु जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से अनेक जगह

स्त्री को बेबस और लाचार दिखाया है। जब भी स्त्री अपने लिए कछ कर गुजरने की सोचती है तो कोई न कोई मजबूरी उसे अपने रास्ते से अवरुद्ध कर देती है। ऐसा ही उदाहरण हमें 'पत्तोखोर' उपन्यास की नारी पात्र बन श्री के माध्यम से देखने को मिलता है। जहां वह अपने बेटे आदित्य के अपनी बैंक की नौकरी को छोड़ देती है। यह फैसला वह मजबूरी में लेती है ताकि वह अपने बेटे का अच्छे से ध्यान रख सके। उसे नशे की लत से छुटकारा दिला सके। नौकरी छोड़ क रवह कहीं भी खुश दिखाई नहीं देती। क्योंकि उसे पता है अकेले हेमन्त बाबू की तनख्वाह से घर का गुजारा हो पाना मुश्किल है लेकिन अपनी ममता के आगे बह बेबस और लाचार दिखाई पड़ती है। ऐसा ही एक उदाहरण 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में भी दिखाई पड़ता है। जहां पूर्णिमा देवी बेबस होकर अपनी दोनों बेटियों को दीक्षा दिलाना चाहती है। उसकी आर्थिक हालत भी इतनी अच्छी नहीं थी कि वह अपना और अपनी बच्चियों का भरण–पोशण आसानी से कर सकें। उसे लगता है कि यह पुरुश प्रधान समाज रोटी तो देगा पर बोटी नोंच लेगा। इधर पूर्णिमा देवी की बड़ी बेटी संघमित्रा तो दीक्षा लेने से मना कर देती और चाहती है कि उसकी छोटी बहन भी दीक्षा ना लें। लाख कोशिशों के बावजूद वह अपनी बहन को दीक्षा लेने से रोक नहीं पाती। उस स्थिति में संघमित्रा अपने आप को बेबस और लाचार महसूस करती हैं।

दीक्षा लेने के पांच वर्शो बाद संघमित्रा की छोटी बहन (दिव्यप्रभा) का सांसारिक जीवन में लौटना चाहती है। वह विजेन्द्र मुनि के साथ इस संयासी जीवन से पलायन को तैयार हो जाती है लेकिन उनसे मिलने से पहले ही विजेन्द्रमुनि के गुरु भाई अभयमुनि की वासना का शिकार हो जाती है। गर्भ में बढ़ता भ्रूण और आत्मा में बढ़ता अंधकार दिव्यप्रभा को सबसे पापी स्त्री घोशित करता है। उसे संघ से निकाल दिया जाता है। जहां से वह वेश्याओं तक पहुंच जाती है। उस स्थिति में वह अत्यन्त बेबस व कुश्ठित महसूस करती है।

इस प्रकार देखते है कि हमें अनेक पारिवारिक समस्याएं देखने को मिलती है जो हमारे समाज में व्याप्त है। ये समस्याऐं केवल एक परिवार या एक समाज की नहीं बल्कि पूरे राश्ट्र की होती है। वो समस्या चाहे दहेज प्रथा हो, अनमेल विवाह, स्त्री की बेबसी हो, कुंवारेपन की हो, टूटते दाम्पत्य जीवन की जो या फिर लिंगभेदी मानसिकता हो। इन सभी समस्याओं का समाधान बहुत जरुरी है, तभी हम सही रुप में उन्नति कर सकेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मैकाइवर, समाजषास्त्र, पृ0–230
2. डॉ0 जयदेव विधालंकार, वैदिक समाज में परिवार व्यवस्था (वेद और समाज पृ0–20)
3. बालकृश्ण षर्मा, समाजषास्त्र के मूल तत्व, कमल प्रकाषन, न इ ं सड़क, दिल्ली, सं–1981, पृ–156
4. वही, पृ0 – 156
5. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, पृ0 – 46
6. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, पृ0– 115

सुमित्रा
पीएच. डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

23

महिलाओं की समस्याएँ तथा महिला सशक्तिकरण का एक मूल्यांकन–

डॉ0 नीरज कुमार, सुमन कुमारी

सारांश –

सशक्तिकरण एक व्यापक शब्द है, जिसमे अधिकारों और शक्तिओं का स्वाभाविक रूप से समावेश है। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है, जो कुछ विशेश आंतरिक कुशलताओं और शैक्षिक,सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक आदि परिस्थितियों पर निर्भर करती है। जिसके लिए समाज में आवश्यक कानूनों, सुरक्षात्मक प्रावधानों और उनके भली–भाँति क्रियान्वयन हेतु सक्ष्म प्रशासनिक व्यवस्था का होना आवश्यक है। संक्षेप में महिला सशक्तिकरण मुंख्य रूप से नीति निर्माण एंव निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना है। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया से है, जिसमे महिलाओं के लिए सर्ववम्पन्न और विकसित होने हेतु संम्भावनाओं के लिए सर्वसम्पन और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वारा खुले, नए विकल्प तैयार हों। भोजन, पानी, घर, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधायें शिशुपालन प्राकृतिक संसाधन, बैकिंग, सुविधाएँ कानूनी हक और प्रतिभाओं के विकास हेतु पर्याप्त रचनात्मक अवसर प्राप्त हो। महिला सशक्तिकरण की माप करने हेतु इसके अन्तर्गत सामान्य तौर पर निम्नांकित चार तत्वों को सम्मिलित किया जाता है–1 सांसद एंव विधान मंडलों मे महिलाओं की भागीदारी का अंश 2–प्रशासन एंव प्रबन्धन में उनकी भागीदारी का प्रतिशत,3 प्रोफेशनल एंव तकनीकी सेवाओं में उनका अनुपात, 4– महिलाओं के प्रति व्यक्ति आमदनी और उनकी तुलनात्मक आर्थिक स्थिति। महिला सशक्तिकरण की माप के लिए यद्यपि उपर्युक्त चार तत्वों के अतिरिक्त अन्य मुददों को भी शामिल किया जा सकता है, जैसे शैक्षिक स्थिति,स्वास्थ सम्बन्धि स्थति देशाटन की सुविधा, निर्णय का अधिकार सत्ता के साथ–साथ सम्पत्ति मे पुरूशों के बराबर हक इत्यादि। किसी भी देश एंव विकसित समाज के निर्माण में स्त्री एंव पुरूश दोनों की सहभागिता आवश्यक है। परन्तु यह एक विडम्बना ही है कि समाज में उन्हें बराबरी का दर्जा शायद ही कभी प्राप्त हुआ हो। स्वतंन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा महिलाओं की स्थति को बेहतर बनाने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गई। स्कूल कॉलिजों मे पढ़ाई के साथ उनके लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। तभी आज देश में सामाजिक आर्थिक और व्यवसायिक क्षेत्रों में महिलाएँ अपने गुण और शिक्षा के दम पर बड़ी संख्या में डाक्टर,प्रोफेसर, प्रशासनिक अधिकारी, वकील और इंजीनियर तक नजर आती है। कला,साहित्य एंव राजनीतिक क्षेत्र में भी बडी तादात में महिलाओं ने अपनी पहुँच बनाई है। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि आर्थिक सामाजिक क्षेत्रों के साथ राजनीतिक क्षेत्र मे जिस अनुपात मे उन्हे अपनी उपस्थिति दर्ज करानी चाहिए थी उतनी संभव नही हो पाई है।

यद्यपि सामाजिक शिक्षा के कारण सामाजिक कानूनों का निर्माण तो हुआ, किन्तु सामाजिक कुरीतियाँ काफी समय से विधमान रही है। आंदोलन के नेताओं ने अपनी गति विधियाँ सरकार पर दबाव डालने तक ही सीमित रखी है। जिनका व्यवहारिक प्रभाव नही पड़ पाया। हाँलाकि दहेज विरोधी कानून पारित करवाने मे सफल रहें, किन्तु दहेज प्रथा आज भी विधमान है। आंदोलन का प्रभाव मध्यवर्गीय व उच्च वर्गीय महिलाओं तक सीमित रहा। आमजन महिलाएँ इससे अछूती ही रही। शहरी महिला वर्ग ग्रामीण महिलाओं की समस्या नही समझ पाया और विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रहा, हालांकि स्त्री शिक्षा पर अधिक बल दिया गया पर अन्य समस्याओं को पूर्णतः उपेक्षित किया गया। शिक्षा मे भी ग्रामीणी की उपेक्षा हुई जिसके पश्चात शिक्षित महिलाओं और अशिक्षित, अनिभज्ञ महिलाओं मे गहरी खाई बनी रही। इस तरह यह जन आन्दोलन नही बन पाया। साथ ही स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़ जाने से इसका ध्यान उस तरफ अधिक और अपने उददेश्य पर कम रहा और स्वतंन्त्रता के बाद यह एम मृत प्रायः आंदोलन बनकर रह गया। ऊँचे पद पर जाने के करण महिला नेताओं ने अपने उद्देस्यों की परवाह नहीं की। जहाँ एक और, पश्चिम की नारियों को अपने आंदोलन के लिए कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था, वहां के पुरूष उन्हें समान दर्जा देने के लिए तैयार नही थे, वही दूसरी और महिलाओं से जुडे मुददे, भारत मे पुरूषों न ही उठाए। महिलाओं को उनके अधिकार कोई विशेश संधर्श से नही, अपितु उपहार से मिले। महिला संगठन केवल कागजी संस्था बनकर रह गया, जिसका काम प्रस्ताव पारित करने भर रह गया। वे समाजिक और वैज्ञानिक तौर पर महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए लड़ने वाली संस्था नही रह गयी थी। ये संगठन एक सामाजिक क्लव की भाँति बन गया जहाँ उच्च वर्गीय महिलाओं का मनोरंजन होता है। इस तरह इनका विषय क्षेत्र अत्यंन्त संकीर्ण हो गया।

यद्यपि भारत मे महिलाओं को अन्य देशो की महिलाओं की

अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त है, किन्तु क्या हमारे देश की महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति चेतना हैं, इस लेखक ने कुछ वर्श पूर्व राजस्थान के एक जिले के एक गॉव की 18 से 50 वर्ष की आयु की 753 स्त्रियों का एक अध्ययन किया था अध्ययन का मुख्य उददेश्य स्त्रियों में अधिकारो के लिये चेतना का मूल्यांकन तथा संविधान तथा विविध विधानों द्वारा प्रदत्त अधिकारों कें प्रति संतुष्टी के स्तर को नापना था इस अनुसंधान का सैध्दांतिक मॉडल यह था कि किसी विशेष क्षेत्र में (जैसे सामाजिक राजनैतिक अर्थिक व धार्मिक) पृष्टपूर्ण महिलाओं की अधिकार चेतना का स्तर चार बातों पर निर्भर करता है स्त्री की व्यक्ति गत़ पृष्टभूमि (शैक्षिक स्तर आंकाक्षाओं का स्तर और व्यक्तिगत ं आवश्यकता) उसकी सामाजिक परिस्थितियॉ रिश्तेदारों की अपेक्षाऍं (पति के आदर्श तथा परिवार के सदस्यों के दृष्टिकोण उसका अपना दृष्टिकोण) अपने स्तर तथा भूमिका के प्रति तथा उसका आर्थिक आधार (वर्ग सदस्यता का स्तर)।

अपने समाज मे महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार को रोकने के लिए और उनके और उनके विरूद्ध हिंसा को कम करने के लिए हमें क्या उपाय करने चाहिए। भारत मे हाल ही मे अपराधी कानून के लिए और अधिक दंडात्मक संशोधन पारित किया है, जो महिलाओं के खिलाफ अपराध के मामलों के साथ सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए दिल्ली मे एक 22 वर्षीय कॉलिज जाने वाली क्षात्रा के सामूहिक बलात्कार ने न केवल जनता का आक्रोश बढ़ाया बल्कि इसने विभिन्न मंचो पर एक राष्ट्रीय बहस शुरू कर दी जिससे देश में बलात्कार के बढ़ते मामलों से निबटने और महिलाओं के लिए सुरक्षित माहौल बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इस धटना के बाद कानून में सुधार पर सार्वजनिक बहस ने अप्रैल 2013 में आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम 2013 के पारित होने का नेतृत्व किया। यही नही न्याय पालिका ने भी उन महिलाओं के लिए जो किसी भी तरह के यौन अपराध की शिकार रही है, त्वरित सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए, फास्ट ट्रक अदालतों की स्थापना करके एक कदम आगे बढ़ाया है। लेकिन मामलों की संख्या मे लगातार वृद्धि देखते हुए यह रेखांकित होता है, कि मात्र एक कानून से समाज खुद को नही बदल सकता। महिलाओं के खिलाफ हिंसा बड़े सामाजिक और संस्थागत पूर्वा गृहों को दर्शाती है। महिलाओं के लिए भारत को सुरक्षित बनाने मे इस संस्कृति को बदलने की लड़ाई भी शामिल है।

राजनीति के गलियारों मे महिलाओं के बढ़ते कदम– ऐसा कहना तो गलत होगा कि स्वतंन्त्रता के पूर्व महिलाओं ने देश की राजनीति में भाग नही लिया था। ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध अनगिनत बार जनजातिय महिलाओं ने पुरूषों के साथ सामन्तो, जमीदारों और अंग्रेजो शासकों के विरूद्ध डटकर मोर्चा लिया था, लेकिन इतिहास के पन्नों मे इनका नाम नही है। देश की राजनीति का इतिहास इस राष्ट्र से आधा–अधूरा है। सामान्यतः हम उन महिलाओं का नाम राजनीति मे दर्ज करते आये है,जो उच्च वर्ग की थी। अंग्रेजी भाषा में सीक्षित थी। विदेशों मे पढ़ी लिखी थी। वे स्त्रीयॉं भी राजनीति मे आई, जिनमे स्वदेश की भावना थी। देश को स्वतत्र कराने की ललक थी। इस वर्ग की संधर्षशील महिलाएँ देश की स्वतन्त्रता के आंदोलन मे ब्राहिय भाग लिया था। अंग्रेजों के डंडे खाये थे, जेल भी गई थी, और भूमिगत होकर स्वतंन्त्रता संग्राम की मशाल को थामे हुए थी। उनमें भारत रत्न अरूणा आसफ अली, सरोजनी नायडू, सुभद्रा कुमारी चौहान, ऊषा मेहता,निर्मला देश पांडे, बेगम हजरत महल, रानी लक्ष्मी बाई,रामगढ की रानी और रानी देश बाई, आवदी बानों बेगम, विजय लक्ष्मी पंडित सुचेता कृपलानी आदि का नाम गिनाया जा सकता हैं।

रमाबाई पहली नारी वादीचिंतक थी, जिन्होंने समाज में उच्च हिंदू जाति की बाल विधाओं पर हो रहे अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध आवाज उठाई। ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए रमाबाई ने तब रानाडे तथा भंडार कर , जैसे नेताओं की सहायता से मई 1882 में पूना में '' आर्य महिला समाज'' स्थापित किया जो कि पहला भारतीय महिला संगठन था। इसका ध्येय ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा का विकास करना तथा बाल विवाह को रोकना था। उन्होने बंबई प्रेसी– डेसी के हर शहर में जाकर इस समाज की शाखाएँ खोली तथा लोागो का जाग रूक किया। सितम्बर 1882 में जब ब्रिटिश शिक्षा आयोग पूना में शैक्षिक संस्थाओं की जॉंच के लिए आया तो उनके संस्थान में उच्च जाति की महिलाओं अपने बच्चों के साथ शिक्षा पा रही थी, जो हंटर शिक्षा आयोग के स्वागत के लिए टाउन हॉल में खड़ी थी, जबकि नगर निगम इन महिलाओं की शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं कर करा था। यह देखकर शिक्षा आयोग को अपार खुशी हुई। उन्होने महिलाओं की मेडिकल तथा पेरामिडिकल ट्रेनिग पर ज्यादा बल दिया। हंटर रमाबाई की यर्थावादी सोच से काफी प्रभावित हुए। महिला शिक्षा के क्षेत्र अग्रणी समाज सुधारक और नारीवादी पंडिता रमाबाई ने अपने प्रयासों से महिला शिक्षा का प्रचार–प्रसार तक किया और आर्य महिला समाज की नीव डाली। यह कहा जा सकता है कि वे अपने समय से काफी आगे की सोच रखती थी। उन्होने रुढियों की चिंता किये बिना काम किया'चाहे वह इसाई धर्म में परिवर्तन हो या दूसरी जाति में विवाह। रमाबाई ने सिद्ध कर दिखाया की ठीक ही उन्हें पंडिता और केसर–ए–हिद की उपाधि दी गयी।

लैंगिक संबन्धो को पुर्नपरिभाषित करने वाली विचार धारा

के उभरने का मुख्य कारण नये विदेशी विचार, स्वदेशी अवधारणा और भारतीय पुरूषों और स्त्रीयों के मस्तिष्क में ब्रिटिश शासकों की उपस्थिति का प्रभाव–के प्रत्युत्तर का समिक्षण की समिक्षा की थी। यद्यपि सभी भारतीय इस बात से सहमत नही थे। कि लैंगिक संबंधो को परिवर्तित करने की आवश्यकता है। इस विचार के विपरित कई भारतीय बुद्धि जीवियों ने भारत में महिलओं के साथ किए जा रहें सांस्कृति व्यवहार की प्रशांसा करते हुए भारतीय महिलओं की स्थिति की तुलना यूरोपिय महिलाओं से करते हुए कहा है कि दोनो ही जगहों पर महिलओं को व्यापक संघर्श और तकलीफो का सामना करना पड रहा है। समाज की कमियों को महिलाओं की शोशित स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराने वालों ने महिला शिक्षा और स्वतंत्रता को महिला प्रगति की दिशा में पहला कदम बढाया। इस प्रकार महिलाओं की स्थिति में सुधार उपनिवेशी राज सत्ता और शिक्षित भारत वासियों के सुधार कार्यो का मुख्य मुद्दा बन गया। परन्तु वास्तविकता यह थी कि इन सुधारों ने केवल कुछ ऊँची जाति और वर्गो तथा क्षेत्र विशेश की महिलाओं को ही प्रभावित किया यद्यपि एक प्रभावशाली विचार तैयार करने मे सुधार को पुनरूत्थान वादियों और राश्ट्रवादियों सबने अपनी हिस्सेदारी दी, फिर भी उनमें आपस में एक दूसरे से मतभेद भी थें। समाज सुधार आन्दोंलन भी सभी स्थानों पर एक जैसा नही था, इसके अन्तर्गत विभिन्न अभियानों में भिन्न–भिन्न मुददे उठाए गए।

उनके अपने लक्ष्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता समुदाय के समान या वर्ग संघर्श के लक्ष्यों के अधीन रहें। जुझारू कार्यवाहीयों के दौरान यदि सीमाएँ टूटी तो, बाद में तेजी से बिना किसी अपवाद के दोबारा कायम हो गई। वही पाकिस्तान के आंदोलन ने भी कुछ मुस्लिम स्त्रियों को सार्वजनिक कार्यवाही में अवश्य खींचा पर विभाजन के अनुभव ने एक बार फिर मुस्लिम स्त्रीत्व के परंपरागत आदर्श को बल पहुँचाया। कि इस स्त्रीत्व की रक्षा घरेलू क्षेत्र में ही सभव है। इस प्रकार उपनिवेशी भारत में स्त्री प्रश्नों को वह प्राथमिकता नही मिल पाई जो मिलनी चाहिए थी। हांलाकि कुछ समझदार स्त्रियों ने राजनीति संघर्शो में सक्रिय रूप से भाग लिया और अपने आप को उभरतें राश्ट्र के साथ जोड़ा भी, पर मुक्ति की प्रचलित विचारधाराओं में अभी भी नारीवाद का समावेश नही हुआ था। समुदाय और राष्ट्र के सम्मान को अभी भी स्त्री हितों और अधिकारो से अधिक महत्व दिया जाता था। लेकिन इसका अर्थ यह भी नही है कि एक बनी बनाई प्रभुत्व शाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरूद्ध जाकर किसी स्त्री ने अलग दुनिया के बारे में सोचा ही नही।

सुरक्षा के संदर्भ में नारीवादी लेखक इस बात पर विशेष ध्यान केन्द्रित करते है कि युद्ध अथवा सशस्त्र विवादों के दौरान नारी को सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है। वे तथ्यों के माध्यम से समकालीन सशास्त्र विवादों का नागरिकों पर होने वाले नकारात्मक प्रभावों की तरफ ध्यान दिलाते है। संयुक्त राष्ट्र की मानविय विकास रिपोर्ट के अनुसार युद्ध में मारे जाने वाले आम नागरिकों की संख्या मे बड़ी तेजी से बढोतरी हुई जो 10% से बढकर 90% पहुँच गई है, इस रिपोर्ट के अनुसार इस नागरिक जनसंख्या में स्त्री सबसे बड़ी शिकार होती है, हाँलाकि विश्व की नियमित सेना में इसका हिस्सा 2% भी नही है। माँ के रूप में अपने परिवार को देख भाल करने वाली इन स्त्रियों पर युद्धो के दौरान लगाये गये प्रतिबंधो का भी प्रतिकुल असर पड़ा हैं,जैसे गलत युद्ध मे लगाये गयें प्रतिबंध। युद्ध के कारण जनसंख्या के अस्त व्यस्त होने के संदर्भ में इस रिपोर्ट के अनुसार स्त्रायां तथा बच्चे शारणयों जनसंख्या का 80% हिस्सा होते है। विश्व स्तर पर होने वाले सशस्त्र विवादों के परिणाम स्वरूप यह शरणार्थी जनसंख्या 1970 में 30 लाख से बढकर 1994 में 2.7 करोड़ पहुँच गई। बोसनियां का उदा0 देते हुए ये युद्ध के दौरान होने वाले बलात्कारों की तरफ भी ध्यान दिलाते हैं। इसके अनुसार युद्ध के दौरान बलात्कार मात्र एक दुर्घटना नही होती –बल्कि क्रमद्ध तरिके से युद्ध राजनीति का हिस्सा होता है। सिन्थिया इन्लों के अनुसार सौनिक अड्डों के आसपास कई ऐसे सामाजिक ढाँचे बन जाते हैं, जहाँ स्त्रियों को अगवा कर उन्हें वेश्याओं के रूप में बेचा जाता है। नारीवादी लेखकों के अनुसार असमान लैंगिक सम्बन्ध राज्य की सैनिक गातिविधियों के बनाये रखने मे काफी महत्वपूर्ण होते हैं। ये इस धारणा को भी चुनौती देते हैं, कि सेना में युवा पुरूशों की नियुक्ति उन स्त्रियों तथा बच्चों की सुरक्षा के लिए की जाती है, जो अपनी सुरक्षा नही कर सकते। वे इस संरक्षक–सुरक्षा संबंध को इस आधार पर चुनोती देते है, कि सशस्त्र विवादों में आम नागरिकों के हताहत होने अथवा मरने की संख्या में हो रही निरन्तर वृद्धि दर सिद्ध करती है कि यदि स्त्री को सुरक्षा की आवश्यकता है तों इसके संरक्षक ही इनके लिये सबसे बड़ा खतरा है।

संदर्भ सूची

1. जी0 एल0 शर्मा, सामाजिक मुद्दे, (2020) रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृं0सं0 420,421
2. बासुकी नाथ चौधरी व युवराज कुमार, आज का भारत राजनीति और समाज, (2013) ओरियंट ब्लैक स्वान, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली–110002 पृं0सं0 59,60
3. राम आहूजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, (2019), रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्रं0सं0 99,100.
4. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएँ, तृतीय संस्रण, (2020) रावत

पब्लिकेषन्स, जयपुर पृं0सं0 240,241
5. वी0एन0सिंह व जनमें जय सिंह, नारीवाद , (2018) रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृं0 सं0 400,401
6. विजय कुमार वर्मा व अखिलेष पाल, आधुनिक भारतीय राजनीति चिंतन (2019) ओरियंट ब्लैक स्वान, हैदराबाद–500029, तेलंगाना (भारत) पृं0सं0 38,47.
7. अभय प्रसाद सिंह, भारत में उपनिवेशवाद, (प्रथम संस्करण–2014), ओरियंट ब्लैक स्वान, आसफ अली रोड़ नई दिल्ली–110002 पृं0 सं0 114, 115
8. अभय प्रसाद सिंह, भारत में राष्ट्रवाद (प्रथम संस्करण–2014) ओरयिंट ब्लैक स्वान, हैदराबाद, 500029, तेलंगाना, पृं0सं0 140
9. आर0सी0वरयानी समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (प्रथम संस्करण–2007–8), गीताजंली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली–110049, पृंसं0 290,291 ।

डॉ0 नीरज कुमार
डिपार्टमैन्ट ऑफ राजनीति शास्त्र
S.S.V.P.G.
कॉलिज हापुड़, (यूपी)

सुमन कुमारी
शोधार्थीनी
Dep. of Sociology मोनाड
विश्वविद्यालय हापुड़ (यूपी)

24

हरियाणवी लोकगीतों में स्त्री–स्वर

पूजा

सारांश –

'लोकगीत' लोकसाहित्य की लोकप्रिय विधा रही है। लोकसाहित्य में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान अपेक्षाकृत अधिक रहा है। युगों–युगों से चले आ रहे रीति–रिवाजों, संस्कारों, त्योहारों, विवाहों, व्रत एवं पूजा आदि में गाए जाने वाले गीतों और कथाओं को अपने कंठों में सुरक्षित रखने का श्रेय स्त्री समाज को ही दिया है। बहुत–सी ऐसी लोरियाँ, विरह तन्हाई तथ हर्षोन्माद के लोकगीत हैं जो संभवतः मानसिक स्तर से परिष्कृत एवं संवेदनशील दैंनदिन कामों में व्यस्त महिलाओं द्वारा जोड़ी गई लड़ियाँ प्रतीत होती हैं जिनमें साहित्यिक गुणों की कमी होते हुए भी भावाभिव्यक्ति की मार्मिकता अवश्य मिलती है क्योंकि लोकगीत ही एक ऐसी प्रभावी अभिव्यक्ति है, जो सामान्य जन की दिल की गहराइयों से पहाड़ी झरने के समान अनायास ही फूट निकलती है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने झेवरचंद्र मेधाणी के कथन को उद्धृत करते हुए लिखा है, "जिस प्रकार कोई नदी घोर अंधकारमयी गुफा से बहकर आती हो, उसके उद्गम का पता न हो, ठीक यही दशा लोकगीतों की है।"[1]

लोकगीत : उद्भव एवं विकास

लेकगीतों की परम्परा अत्यंत प्राचीनकाल से चली आ रही है संभवतः यह परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितना की आदिमानव। लोकगीतों की असीम प्रवाहमयी परम्परा के विषय में पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है – "जब से पृथ्वी पर मनुष्य है तब से गीत भी है। जब तक मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन–मरण चलता रहता है। कितने ही गीत तो सदा के लिए मुक्त हो गए। कितने ही गीतों ने देशकाल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने असली रूप को कायम रखा। बहुत से गीतों की आयु हजारों वर्ष की होगी, वे थोड़े फेर–फार के साथ समाज मे अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।"[2] मनुष्य की आदिम अवस्था से ही लोकगीतों की शुरूआत मानी जा सकती है। वेद हमारा प्राचीनतम लिखित साहित्य है। जिससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में भी विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकगान होता था। ऋग्वेद में कई मंत्रों में 'गाथा' शब्द का प्रयोग 'पद्य' या 'गीत' के अर्थ में मिलता है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी गाथाओं का वर्णन मिलता है। इन गाथाओं का स्वरूप लोकगीतों जैसा ही था। श्रीमद् भागवत् के दशम् स्कन्ध में भी कृष्ण के जन्मोत्सव पर मंगलगान का वर्णन मिलता है। पुराणों के अलावा कुछ भारतीय महाकाव्यों में भी लोकगीतों के स्त्रोत मिलते हैं। एक पाश्चात्य विद्वान का मानना है कि "बाल्मीकि ने युवकों के मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं और मौजियों ने चुटकले छोड़े हैं।"[3] अतः लोकगीतों की सत्ता परम्परा से बंधी होने पर भी चिर् नवीन शाश्वत और चिरंतन है। इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि लोकगीतों का जन्म कब हुआ क्योंकि उनके रचयिता साधारण व्यक्ति थे और उन्होंने अपनी मौखिक रचनाओं का प्रणयन लिखित रूप में न करके मौखिक रूप में किया है।"[4] इस प्रकार कह सकते हैं कि मनुष्य की भावनाएँ जब शब्दबद्ध होकर लय एवं सुर में बँधकर व्यक्त होती हैं, तो वे गीत कहलाती हैं।

लोकगीत : अर्थ एवं परिभाषा

भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक–संस्कृति में निवास करती है। लोक–संस्कृति में लोकगीतों का बड़ा महत्व है। 'लोकगीत' अंग्रेजी के 'फोक सांग' का पर्याय माना जाता है यह 'फोक सांग' जर्मन भाषा के 'बाल्क' शब्द का रूपांतर है। सामान्यतः फोक का अर्थसभ्यता से दूर रहने वाली जाति से लिया जाता है। किंतु हिंदी में 'लोक' शब्द का प्रयोग साधारण लोगों के लिए किया जाता है जो कृत्रिमता से दूर हो। इसलिए लोकगीत उस रचना को कहा जाता है जो ग्रामीण लोगों के सामान्य भावों को गेय रूप से अभिव्यक्त करे। लोकगीतों की परिभाषा के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मत भेद है लोकगीतों के संबंध में अब तक सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी सकी है कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ इस प्रकार है –

रामनरेश त्रिपाठी के लोकगीत की परिभाषा देते हुए कहा है कि "ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधर्यु है।"[5]

देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार, "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"[6]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "लोकगीत की एक–एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ–सौ मुग्धायें, खण्डितायें और धीरायें निछावर की जा सकी हैं क्योंकि ये निरलंकार होकर भी प्राणमयी है और वे अलंकारों से लदी हुई होकर भी निष्प्राण हैं। वे अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं है और

अपने आप में परिपूर्ण है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि लोकगीतों के माध्यम से लोकमानस की प्रत्येक अनुभूति एवं प्रतीति सरलता से अभिव्यक्त होती है और ग्रामीण जीवन की यथार्थ झाँकी हमारे सामने प्रस्तुत होती है। जिनसे ग्रामीण संस्कृति, रीति–रिवाज, दिनचर्या आदि का पता चलता है।

लोकसाहित्य में स्त्री–स्वर

लोकगीत मानव–मन की सहज, सरल और अकृत्रिम अभिव्यक्ति है। भारतीय लोक साहित्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान अपेक्षाकृत अधिक रहा है। डॉ0 श्याम परमार ने लोकगीतों के सृजन में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अत्याधिक योगदान माना है उनका कहना है कि "लोकगीतों का सृजन अधिक नारी ने किया है, पुरुष से नहीं। जीवन के अनेकानेक अवसरों पर स्त्रियों के कोमल कण्ठों ने अपने अभावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति गीतों को गाकर ही की है। नारी का जीवन वेदना, हास्य, उमंग, श्रृंगार, अभिसरण, चांचल्य, राग–द्वेष, कुढ़न, घृणा आदि सभी गीतों की पंक्तियों में एक–एक कर प्रकट हुए हैं। जितना अधिक नारी का गीतों से संपर्क आया उतना ही अधिक उसके जीवन का यथार्थ चित्र गीतों ने प्रस्तुत किया है। भारतीय लोकगीतों ने तो जैसे नारी के जीवन का चित्र प्रस्तुत करके सब कुछ कह डाला है।"[7]

लोगीतों में मानव–मन के सुख–दुख का इतिहास स्नेह और करूणा के विविध रंग तथा आँसू और मुस्कान के चित्र अपने प्रकृत रूप में प्रकट हुए हैं। कहीं पुत्र के जन्म पर हर्ष और उल्लास से भरे हुए स्वरों में ये लोकगीत झलकते हुए नजर आते हैं तो कहीं कन्या–बिदाई के समय अथवा किसी प्रिय–प्रवास की बेला में आत्मदाही पीड़ा के सिसकते स्वरों में ये गीत ध्वनित होते नजर आते हैं, स्त्री जाति बड़ी ही सरल, सीधी एवं भाव–प्रबल होती है। "वे खुशी में भी गाती है और दुःख में भी। जब कभी कोई भाई–बहन के यहाँ जाता है या वह मायके आती है तो भेंट करते समय अपनी सारी जीवन–गाथा सुना जाती है। उस रोने में भी संगीतात्मकता होती है। एक लय होती है और एक उतार–चढ़ाव। यदि ध्यान से देखें तो नारी जीवन ज्योतिष के ग्रहों की भाँति बालिका, युवती, वधु वेदना, सारी वेदना, सारी खुशी एवं राग–द्वेष आदि लोक–गीतों में अंकित है। वास्तव में नारी जीवन ही संगीतमय है।"[8] लोकगीतों में स्त्री के जीवन की, उसके प्रभावों की सूक्ष्म व मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना हुई है, स्त्री ने अपने कोमल कण्ठ द्वारा जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है, जैसे– हरियाणा में पुत्री के जन्म पर ठेंकरा फोड़कर शोक व्यक्त किया जाता है–"म्हारी जन्म में री बाजे री ठीकरे,
भाई के जन्म में बाजे थाली
बुड्ढे की रोवै बुढ़ली
अर रोवें हाली–पाली।"[9]

वास्तव में हमारा समाज पुरूष प्रधान समाज है। यहाँ पग–2 पर पुरुष ही अपना वर्चस्व बनाए रखता है और एक स्त्री को पग–पग पर तिरस्कृत, अपमानित किया जाता है। इसी कारण समाज में पुत्र–जन्म को शुभ व पुत्री–जन्म को अशुभ माना जाता है। पुत्र जन्म पर सारे परिवार में आनंद और उमंग की लहर दौड़ जाती है। खूब गाना–बजाना होता है और जच्चा की सेवा–सुश्रूषा में भी कोई–कसर नहीं छोड़ी जाती। इस तत्य का उद्घाटन एक हरियाणवी लोकगीत में इस प्रकार हुआ है –

"गोरी जो थम जन्मोगी धीअड़ी
थारे काट ल्यांगे नाक अर कान
एक भली ए करी राम ने
मेरे बचगे नाक अर कान।"[9]

इस लोकगीत में विवश स्त्री की स्थिति का चित्रण करते हुए पुरुष की संकुचित मानसिकता दृष्टिगत होती है। इस लोकगीत में पति अपनी पत्नी की पुत्री पैदा करने पर उसे नाक–कान काट लेने की बात कहता है और जब उसे पुत्र पैदा हो जाता है तो वह स्त्री भगवान का धन्यवाद करती है कि पुत्र पैदा होने के कारण उसका मान–सम्मान बच गया। समाज में पुत्र जन्म पर स्त्री (जच्चा) का खाने–पीने का विशेष ध्यान रखा जाता है। उसके स्वास्थ्य लाभ के लिए दूध–घी, छिवाणी आदि पौष्टिक पदार्थ दिए जाते हैं और इस अवसर पर गूँद–गिरी, सोंठ, अजवायण संबंधी गीत भी गाए जाते हैं, जैसे –

लाड्डा चरचरी सूंठ का
मेरा पुरस बठन्ता सुसरा न्यूं कहै
बहू एक लाड्डा हमने दयो
लाड्डा चरचरी सूंठ का
सुसरे फोडुं तो दुःखिए मेरी आंगली,
अर साबत दिया यो ना जाय, लाड्डा चरचरी सूंठ का।

लेकिन जब उसका पति माँगता है तो वह कहती है कि –
पिया कोठी ऊपर झाकरा तेरा मन मांग
जब खाय, लाड्डा चरचरी सूँठ का।

इस पर पति अपनी पत्नी को धिक्कारते हुए कहता है कि–
गौरी बगड़ बखेरू तेरा झाकरा
मेरे बाबल का मारा सै मान
लाड्डा चरचरी सूंठ का।

उपर्युक्त लोकगीतों के माध्यम से कहा जा सकता है कि एक स्त्री का समाज में अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है वह पूर्णतः पुरुष पर आश्रित है उसे समाज में भार–स्वरूप समझा जाता है। इन गीतों में स्त्री की दयनीय स्थिति का एक कारण यह है कि हरियाणा

एक कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती–बाड़ी करना है और खेती का कार्य पुरुष ही संभालते हैं। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि स्त्रियों को शिक्षित किया जाए ताकि वह स्वावलंबी बन सके और माता–पिता उनके जन्म को बोझ न समझे। पुत्र को शिक्षित करने से एक ही कुल का उद्धार होता है जबकि पुत्री दो कुलों का उद्वार करती है।

विवाह संबंधी लोकगीतों में स्त्री

अपने जीवन को उदात्त एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए हमारे धर्म–ग्रंथों में 16 संस्कारों का उल्लेख किया गया है लेकिन हरियाणा के लोक जीवन में 3 संस्कारों को ही महत्व दिया जाता है। ये तीनों संस्कार क्रमशः जन्म, विवाह एवं मृत्यु से संबंधित हैं। इन तीनों संस्कारों में विवाह संस्कार को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। "विवाह एक सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठान है जिसका पहला उद्देश्य स्त्री–पुरुष की अनियमित यौन प्रवृत्तियों को नियमित करके दोनों की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना है। विवाह का दूसरा उद्देश्य संतानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से उऋण होकर अपनी वंश–बेल को बढ़ाना होता है तथा सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवनधारा को स्वस्थ एवं सुखद बनाना है।"

संसार को भले ही कोई देश हो, सभी जगह विवाह के अवसर पर गीत गाने का रिवाज है। हरियाणा में तो विवाह से महीना भर पहले ही गीत गाने शुरू हो जाते हैं।

विवाहोत्सव संबंधी गीत

कचनार बैठी लाडो पान चाबैं
करै दादा जी से बिनती
दादा देस जाइयो परदेस जाइयो
म्हारी जोड़ी कर वर ढूंढियो
एक रैन रहियो उनका गोत पूछियो
तब मेरा वरन मिलाइयों
उनका वंस देखो रीति देखो
उनके संस्कार का पता लगाइयो
दादा बोल्या सुन लाडली
मत कर मन तू अनमना
हंस खेल री मेरी सर्व–सुंदरी
ढूँढा सै फूल गुलाब का।

इस लोकगीत के माध्यम से चित्रित होता है कि हरियाणवी समाज में लड़की की पसंद – नापसंद का पूरा ध्यान रखा जाता है। उसे अपनी पसंद के लड़के से शादी करने की आंशिक छूट दी जाती है। हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही स्वयंवर की प्रथा चली आ रही है जैसे – रामायण में सीता – स्वयंवर, महाभारत में द्रौपदी–स्वयंवर।

भात संबंधी लोकगीत

आज सीमा में रै बीरा जगमगो
आया री मेरी माँ का जाया बीर ही हीराबंद ल्याया चूंदड़ी जी
जैरे औढूं तौ हीरा झड़ पड़ै, डिब्बे धरूं तौ ललचै जी।
सादी क्यूँ ना ल्याया चूंदड़ी जी।

इस लोकगीत के माध्यम से स्त्री की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। वस्तुतः भात भरने की परम्परा के पीछे कारण यह है कि पहले लड़की का पिता की जायदाद में कोई हक नहीं होता था, उसे अब तक पराया धन समझा जाता है। इसी कारण समय–2 पर माता–पिता तथा भाई विभिन्न अवसरों पर उसे उपहार देकर अपने कर्त्तव्य को पूरा करते थे लेकिन धीरे–2 यह रूढ़ि बन गई और आज माँ–बाप की संपत्ति में लड़की का अधिकार होने पर भी यह प्रथा ज्यों की त्यों बनी हुई है।

कन्या–विदाई संबंधी लोकगीत

"ले रे बाबुल अपना मैं चली हूँ सजन के देस रे,
भाइयाँ नै दिये महल दुमहले हमें दिया परदेस रे
काहे की ब्याही विदेस रे लक्खी बाबुल मोरे
हम हैं रे बाबुल मुन्डेरे की चिड़िया
कंकारी मारे उड़ जा रह लक्खी बाबुल मेरे
हम हैं रे बाबुल चोणे की गउएँ
जिधर हांको हक जाये रे लक्खी बाबुल मेरे।"

कन्या की विदाई का गीत करूण रस की फुहारों से सभी के मन को भिगो देता है। इस संबंध में डॉ0 विद्या चौहान ने कहा है– "लोकगीतों में कन्या की विदा के जो भावमय चित्र प्रापत होत हैं, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इन चित्रों में परिस्थितियों की यथार्थता अपने सहज स्वाभाविक रूप में अंकित हुई है कन्या के विलाप और असहाय माता–पिता के संतापयुक्त आँसुओं की सरिता, पीड़ा के पुलिदों को डुबोती हुई इन गीतों के शब्द–2 से फूट पड़ी है।"[11]

इस प्रकार उपर्युक्त लोकगीतों के अध्ययन के आधार पर डॉ0 विद्या चौहान के शब्दों में कहा जा सकता है कि, समस्त लोकगीत स्त्री जीवन की सफलताओं और विफलताओं के मुखरित चित्र हैं। स्त्री की सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवृत्तियाँ, संवेदनाओं और कामनाओं के विवधि रंगों से इन चित्रों का स्वरूप उकेरा गया है। अनुभूतियाँ जितनी तीव्र होगी, भावुक कलाकार का कौशल उतना ही सफल चित्रण कर सकेगा।

मृत्यु संबंधी लोकगीतों में स्त्री–स्वर

मृत्यु मानव–जीवन का अंतिम संस्कार माना जाता है। इससे आगे मनुष्य के लिए कोई संस्कार नहीं है। हरियाणवी समाज में प्रत्येक संस्कार में गीत गाने की प्रथा है फिर मृत्यु संस्कार इससे कैसे अछूता रह सकता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में शोक का भाव निहित रहता है वस्तुतः प्रिय व्यक्ति के बिछोह से बढ़कर कोइ व्यथा नहीं होती लेकिन मृत्यु के सामने किसी का वश नहीं चलता। अतः प्रिय की मृत्यु से जो दुःख होता है, उसके रेचन के लिए इन लोकगीतों का बड़ा महत्व है। इन लोकगीतों में मृत व्यक्ति के गुणों को लेकर दिवंगत के अभार में उत्पन्न दुखों का वर्णन किया जाता है। जैसे–

'हाय हाय मेरा खिवैया
क्या होनी क्या होइयां हाय हाय मेरा सिरताज हा
सब सब पूतां वालियां रांडी मोल न तोल
रांड गली का टोरड़ा मन माने ठुकराय
आज पड़े हो धूल में कीन्हीं क्या करतार
वहाँ का गया ना बाहड़े उन राहों ना जाइयो।"

इस लोकगीत के माध्यम से स्त्री की दयनीय स्थिति को चित्रित किया गया है। समाज में एक स्त्री का महत्त्व तब तक रहता है जब तक उसका पति जीवित हो। पति की मृत्यु के साथ ही उसके मन की कोमल भावनाओं को भी मार दिया जाता है। उस स्त्री का साज–शृंगार आदि सब कुछ उसके पति के साथ ही चला जाता है। जैसे–

"अरे मेरे करम के खारे जल गए अरू मोमी दूदाभ।
अरे मेरे करम के सुनरा मर गए, रूठ गए मनिहार।
माँ अरी धौले–धौले पहरा कापड़े रांडा भेष भरावै।
अरे देही जले जै काँच की भट्टी पकावे।
अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यूं ना आवै।
अरे याणी थी जब रही बाप के मुझे सोच कुछ ना था।
इब क्यूं कटै दिन रात मुझे को एक दिना की नाहै।।"

यह लोकगीत आदि से अंत तक विधवा स्त्री के विलाप को व्यक्त करता है। पति के बिना समाज में पत्नी का कोई महत्व नहीं होता। समाज द्वारा उसे अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती है उसे जीवन–भर दर–दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। उसके जीवन से हर्ष, उल्लास आदि सब कूच कर जाते हैं, उसका जीवन नीरस हो जाता हैं। स्त्री की दयनीय स्थिति का कारण उसका आर्थिक रूप से कमजोर होना है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि लड़कियों को शिक्षित किया जाए ताकि वे जीवन की विषम परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखे और स्वावलंबी बन सके।

अतः लोकगीत ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्त्रियों ने स्वयं को सार्थक, स्वायत्त और ज्यादा पुरजोर ढंग से पहचानने और अपने स्वर की अभिव्यक्ति करने का साहस किया है। स्त्रियों के द्वारा गाए जाने वाले इन लोकगीतों को देखकर डॉ0 बद्रीनारायण लिखते हैं कि 'ये लोकगीत मात्र गीत नहीं है। भारतीय समाज में दमित नारी के प्रतिरोध का शोकमय आख्यान है। अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में वह अपने ऊपर हुए दमन की हरेक कील को हिलाती हुई दिखती है। दुखद यह है कि उसकी प्रतिरोध की अभिव्यक्ति को मात्र हम उसके गीत कहानी एवं मुहावरे मानकर देखते हैं। फलतः प्रतिरोध के उसके मौखिक दस्तावेजों को न तो हम समझ पाते हैं न देख पाते हैं।'

निष्कर्षः

अतः लोकगीतों की रचयिता प्रायः स्त्रियाँ रही हैं। लोकगीतों में उनके हृदयगत भाव, तमाम वेदनाएँ, असीम मन की कल्पनातीत उड़ाने सभी कुछ कंठ के राग बनकर निकल पड़े। इसीलिए लोकगीत और स्त्री स्वर का घनिष्ठ संबंध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मीनाक्षी शर्मा, लोकगीतों में कृष्णकाव्य का स्वरूप, पृ0 33
2. डॉ0 विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ0 94
3. डॉ0 श्याम परमार, भारतीय लोकसाहित्य, पृ0 53
4. मीनाक्षी शर्मा, लोकगीतों में कृष्णकाव्य का स्वरूप, पृ0 38
5. रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, भाग–5, पृ0 12
6. देवेंद्र सत्यार्थी, धरती गाती है, पृ0 20
7. डॉ0 श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, पृ0 125
8. प्रो0 श्रीधर मिश्र, भोजपुरी लोकगीतों के विविध रूप, पृ0 74
9. डॉ0 साधुराम शारदा, हरियाणा के लोकगीत, पृ0 47
10. डॉ0 पूर्णचंद शर्मा, लोक संस्कृति के क्षितिज, पृ0 67
11. विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ0 367

पूजा
शोधार्थी, एम.फिल् (हिन्दी)
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक

25

C-CONFORMAL TRANSFORMATION OF FINSLER SUBSPACE

Mahesh Chandra

1. Introduction:

In this topic we shall study some conformal curvature tensor which are invariant under the C-Conformal change. The conformal theory of Finsler spaces was started by M.S. Knebelman [7] in 1929 and this theory has been investigated in detail by M. Hashiguchi [3].

In the theory of conformal changes of Riemannian metrics, WeyL's invariant tensors play important roles. Section 2 is devoted for the theory of C-Conformal change. The study of C-Conformal invariant tensor in the Finsler subspace has been studied in Section3.

2. C-conformal Change:

Let M^n be an n-dimensional differentiable manifold, and let Fn = (M^n, L) be a Finsler space with a fundamental function L(x, y). We shall express a finsler connection F by its coefficients (F^i_{JK}, N^i_j, C^i_{JK}).

Definition 2.1:

We shall consider a conformal change of a finsler metric L $\longrightarrow$ then α is called the conformal factor and depends on point x only. By this change, we have another Finsler space on the same

UnderlyingmanifoldM ^{n}.

$$suppose(F^i_{JK}N^i_JC^i_{JK}) = B\Gamma, \qquad (2.1)$$

and $(G^i_{JK}N^i_JO)=C\Gamma$,

are the Berwald connection and the cartan connection respectively. [1] introduced the special named C-conformal which is by definition, non-homothetic confromal change satisfying

$$C^K{}_{Jm\alpha}{}^m = 0 \qquad (2.2)$$

$$C^i{}_{JK} = \frac{1}{2}g^{im}(\dot\partial_K g_{Jm}), \qquad \alpha^m = g^{im}\alpha_i, \qquad \alpha_i = \frac{\partial\alpha}{\partial x^i}$$

by the conformal Finsler subspace, we have

$$C_{iJK} := \frac{1}{2}\left(\dot\partial_K g_{iJ}\right), \qquad (2.3)$$

$$h_{iJ} := \frac{1}{L^2}(g_{iJ} - y_i y_J),$$

$$\dot\partial_K = \frac{\partial}{\partial y^K},$$

$$G_h{}^i{}_{JK} := \dot\partial_K G^i{}_{hJ},$$
$$P^i{}_{JK} := G^i{}_{JK} - F^i{}_{JK},$$
$$S^i{}_{hJK} := u_{(JK)}\{C^m{}_{Jh}C^i{}_{mK}\}.$$

Remark 2.1:

*i*is noteworthy that the notation $u_{(JK)}$ means the alternative summation with regard to j and k follow*i*ng relation for C-conformal change holds good [1]:

$$\delta_J{}^i y^J = y^i \qquad (2.4)$$

$$L^2 = yy^J{}_J$$
$$\bar g^{iJ}\bar L^2 = L^2 g^{iJ}$$

$$\frac{g_{iJ}}{L^2} = \frac{\bar g_{iJ}}{\bar L^2},$$

$$\frac{\bar y}{\bar L} = \frac{y}{L},$$

$$\overline{N^i_J} = N^i_J - y_J\alpha^i + \alpha_o\delta^i_J + \alpha_J y^i,$$
$$\bar G = G^i_{JK} - g_{JK}\alpha^i + \alpha_K\delta^i_J + \alpha_J\delta^i_K,$$
$$\bar F^i_{JK} = F^i_{JK} - g_{JK}\alpha^i + \delta^i{}_J\alpha_k + \delta^i{}_K\alpha_J + \alpha_o C^i_{JK},$$
$$\bar C_{iJK} = C_{iJK}$$
$$\bar G^i_{hJK} = G^i_{hJK} - 2C_{hJK}\alpha^i,$$
$$\bar P_{JK} = P^i_{JK} + \alpha_o C^i_{JK},$$
$$\bar S^i_{hJK} = S^i_{hJK},$$

$$K^i{}_J y^J = K^i_o$$
$$K_{iJ}y^J = K_{io}$$
$$\alpha_{iJ}y_J = \alpha_{io}$$

3. C-CONFORMAL INVARIANT TENSOR IN A FINSLER SUBSPACE :

We shall find the tensors whic h are invariant under the C-conformal change.

Now, the torsion tensor R^i_{JK} of Berwald connection is defined as

$$\delta_K = \partial_K - N_K{}^r\dot\partial r,$$
$$R^i_{JK} \underline{def}\ \delta_K N^i_J - \delta_J N^i_K$$

and the h curvature tensor K^i_{hJK} of Berwald connection is defined as

$$K^i_{hJK} \underline{def}\ u_{(JK)}\{\partial_K G^i_{hJ} + G^i_{mK}G^m_{hJ}\} \qquad (3.1)$$

under the C-conformal change (2.2), for the h-curvature tensor $\bar K^i_{hJK}$ of $B\bar\Gamma$. *We* have the following relation

$$\bar K^i_{hJK} = K^i_{hJK} + u_{(JK)}\begin{Bmatrix} g_{hK}\alpha^i_{;J} - \delta^i_K\alpha_{h;J} - y_K G^i_{hJ}\alpha^r - g_{hJ;K}\alpha^i + \alpha_K\alpha_J\delta^i_h - \\ \delta^i_K(\alpha^2_{ghj} - \alpha_J\alpha_h) + \alpha^i\alpha_K g_{hJ} \end{Bmatrix} \qquad (3.2)$$

Remark 3.1 :

It is to be noted that the "' " denotes covariant differentiation with

regard to the Berwald connection.

Since $g_{hJK} - g_{hKJ} = 0$, by the inseting the relation

$$\alpha_{hk} = \alpha_{h;K} + \frac{1}{2}\alpha^2 g_{hK} - \alpha_h \alpha_K \alpha^i_K = g^{im}\alpha_{mK}, \quad (3.3)$$

the h curvature tensor $\overline{K}^i_{hJK}$ in (3.2) can be written as

$$\overline{K}^i_{hJK} = K^i_{hJK} + u_{(JK)}\left\{g_{hK}\alpha^i_J + \delta^i_J\alpha_{hK} - y_K G^i{}_{hJr}\alpha^r\right\} \quad (3.4)$$

By transvecting (3.4) with y^K, from $G^i_{hor} = 0$, we obtain

$$L^2 G^i_{hJm}\alpha^m = K^i_{hjO} - \overline{K}^i_{hJO} - g_{hJ}\alpha^i_O + y_h\alpha^i_J + \delta^i_J\alpha_{hO} - y^i\alpha_{hJ} \quad (3.5)$$

Inserting equation (3.5) into equation (3.4) and subsituting

$$E^i_{hJK} = K^i_{hJK} - \frac{1}{L^2}\left(y_K K^i_{hJO} - y_J K^i_{hKO}\right) \quad (3.6)$$

we obtain

$$\overline{E}^i_{hJK} = E^i_{hJK} + u_{(JK)}\left\{\alpha^i{}_J h_{hK} + \alpha_{hK} h^i_J + \frac{1}{L^2}\alpha^i{}_O g_{hJ} y_K / L^2 + \frac{1}{L^2}\alpha_{hO}\delta^i_K y_J\right\} \quad (3.7)$$

where, we put $h^i_J = g^{im}h_{mJ}$. Let us put $E_{hJ} = E^m{}_{hJm}$ and $E = E_{hJ}g^{hJ}$, then from

equation (3.6), we obtain

$$E_{hJ} = K_{hJ} - \frac{1}{L^2}(K_{hOJO} + y_J K_{hO}), \quad E = K - \frac{1}{L^2}(K_{OO} + K_{hOJO}\, g^{hJ}) \quad (3.8)$$

if we take $K_{hJ} = K^m_{hJm}$, $K = K_{hJ}g^{hJ}$ then the equation (3.7) becomes

$$\overline{E} = E - \alpha h - \frac{1}{L}(\alpha y - g\alpha) - (n-3)\frac{1}{L}(\alpha - \alpha y) \quad (3.9)$$

$$\overline{L}^2\overline{E} = L^2 E - 2(n-2)(\alpha L^2 - \alpha_{OO})$$

Transvecting (3.4) with y^h yields

$$\overline{K}^i_{OJK} = K^i_{OJK} - y_J\alpha^i_K + y_K\alpha^i_J + \delta^i_J\alpha_{KO} - \delta^i{}_K\alpha_{JO} \quad (3.10)$$

Further, from this we have

$$\overline{K}^i_{OOK} = K^i_{OOK} - L^2\alpha^i_K + y_K\alpha^i_O + y^i\alpha_{KO} - \delta^i_K\alpha_{OO} \quad (3.11)$$

$$\overline{K}_{OO} := \overline{K}^m_{OOm} = K_{OO} - L^2\alpha - (n-2)\alpha_{OO}$$

As a consequence of equation (3.9) and equation (3.11), we have

$$L^2\alpha = \frac{1}{(n-1)}\left\{K_{OO} + \frac{L^2 E}{2} - \left(\overline{K}_{OO} + \frac{\overline{L}^2\overline{E}}{2}\right)\right\} \quad (3.12)$$

Transvecting (3.11) with $\frac{g_{hi}}{L^2}\left(=\frac{\overline{g}_{hi}}{\overline{L}}\right)$, yields

$$\frac{1}{\overline{L}^2}K_{OhOK} = \frac{1}{L^2}K_{OhOK} - \alpha_{hK} + \frac{(y_k\alpha_{hO} + y_h\alpha_{KO} - g_{hK}\alpha_{OO})}{L^2} \quad (3.13)$$

By virtue of equations (3.8) and (3.9), we obtain

$$\overline{K}_{hK} - \frac{1}{\overline{L}^2}(\overline{K_{hOKO}} + \overline{y}_K\overline{K}_{hO}) = K_{hK} - \frac{1}{L^2}(K_{hOKO} + y_K K_{hO}) + \frac{1}{L^2}\{g_{hK}\alpha_{OO} + (n-3)\alpha_{hO}y_K\} - \alpha h_{hK} - (n-3)\alpha_{hK} - \frac{1}{L^2}\alpha_{OK}y_h, \quad (3.14)$$

where we put $\overline{K}^m_{hKm} = \overline{K}_{hK}$, thus from equations (3.13) and (3.14), we obtain

$$\overline{K}_{hK} = \frac{\overline{y}_K\overline{K}_{hO}}{\overline{L}^2} = K_{hK} - \frac{1}{L^2}y_K K_{hO} - \alpha h_{hK} - (n-2)\alpha_{hK} + \frac{1}{L^2}(n-2)\alpha_{hO}y_K \quad (3.15)$$

from equation (3.10), we get

$\overline{K}_{OJ} = K_{OJ} - \alpha y_J - (n-2)\alpha_{OJ}$

and from equation (3.12), we obtain

$$(n-2)\alpha_{JO} = K_{OJ} - \overline{K}_{OJ} - \{K_{OO} + \frac{1}{2}L^2 E - (\overline{K}_{OO} + \frac{1}{2}\overline{L}^2\overline{E})\}y_J / (n-1)L^2 \quad (3.16)$$

Inserting equations (3.12) and (3.16) in to equation (3.15) and using the relatio ns

$$L_{hK} = \{K_{hK} - (K_{OO} + \frac{1}{2}L^2 E)g_{hK} / (n-1)L^2\} / (n-2), \quad (3.17)$$

and

$M_{hK} = -y_K(K_{hO} - K_{Oh})/(n-2)L^2$,

we get

$$\alpha_{hK} = L_{hK} + M_{hK} - (\overline{L}_{hK} + \overline{M}_{hK}) \quad (3.18)$$

Inserting equation (3.18) into equation(3.10), we get relation

$$\phi^i_{JK} = K^i_{JK} - u_{(JK)}\left\{y_J L^i_K - y_K M^i_J - \delta^i_J(L_{KO} + M_{KO})\right\} \quad (3.19)$$

This manifest that ϕ^i_{JK} is invariant under the C-conformal change.

By virture of equation (3.18) and equation (3.6), we obtain

$$\overline{\phi}^i_{hJK} = \phi^i_{hJK} \quad (3.20)$$

where we put, $\phi^i_{hJK} := K^i_{hJK} + u_{(JK)}\{L^i_J g_{hK} + L_{hK}\delta^i_J\} + \Psi^i_{hJK}$,

$\Psi^i_{hJK} := u_{(JK)}\{-y_K K^i_{hJO} - \overline{L}^i_O g_{hK}y_J - \overline{L}_{hO}\delta^i_J y_K - \overline{L}^i{}_J y_h y_K + \overline{L}_{hJ}y_K/L^2 + M^i_J g_{hK} - M_{hJ}\delta^i_K\}\overline{L}_{iJ} := L_{iJ} + M_{iJ.}$ (3.21)

This manifest that the tensor field ϕ^i_{hJK} is also invariant under the conformal change.

Under the C-conformal chage for G^i_{hJK} we obtain

$$\bar{G}^i_{hJK} = G^i_{hJK} - C_{hJK}\ \alpha^i \qquad (3.22)$$

transvecting equation (3.22) with $\bar{L}^2\bar{C}^J\bar{g}^{hK}$ $(=L^2C^j_{\ hK})$, we obtain

$$\bar{L}^2\bar{g}^{mr}\bar{G}^i_{Jmr}C^J = L^2 g^{mr}G^i_{Jmr}C^J - L^2C^2\alpha^i \qquad (3.23)$$

Here we assume that $C^2 = C_m C^m \neq 0$ where $C_i = C^m_{im}$
Then, on account of equation (3.22) and equation (3.23), we get

$$\bar{G}^i_{hJK} = G^i_{hJK} - g^{rs}G^i_{rms}C^m C_{hJK}/C^2 + \bar{g}^{rs}\bar{G}^i_{rms}\ \bar{C}^m\bar{C}_{hJK}/\bar{C}^2 \qquad (3.24)$$

So we get the invariant tensor

$$M^i_{hJK} = G^i_{hJK} - g^{sr}G^i_{msr}C^m C_{hJK}/C^2 \qquad (3.25)$$

We treat the h-curvature tensor H^i_{hJK} of a Hashiguchi connection. Its given by $H^i_{hJK} = K^i_{hJK} + C^i_{hm}R^m_{JK}$
From equations (3.2) and (3.10), we obtain

$$\bar{H}^i_{hJK} = \bar{K}^i_{hJK} - u_{(JK)}\{y_J C^i_{hm}\alpha^m_K + C^i_{hK}\alpha_{JO}\} \qquad (3.26)$$

As a consequence of equations (3.2), (3.5), (3.18) and (3.23), we obtain

$$\bar{H}^i_{hJK} := H^i_{hJK} + u_{(JK)}\{L^i_{\ J}g_{hK} + L_{hK}\delta^i_J + C^i_{hm}L^m_J y_K + C^i_{hJ}L_{KO}\} + \Psi^i_{hJK} + M^i_{hJK} \qquad (3.27)$$

which is invariant under the C-conformal changes.

Theorem 3.1 :

In the Finsler subspace, if the tensors $\phi^i_{JK}, \phi^i_{hJK}, M^i_{hJK}, \bar{H}^i_{hJK}$ are all invariant, then all the tensors are C-conformally invariant.
Contraction of equation (3.25) with α^K, we obtain

$$\boxed{M^i_{hJK}\alpha^K = G^i_{hJK}\alpha^K - \frac{1}{L^2}g^{sr}G^i_{msr}C^m\alpha^K C_{hJK}} \qquad (3.28)$$

References

[1] H. Lzumi : Conformal transformations of Finsler spaces I.Tensor.

[2] H. Lzumi : Conformal transformations of Finsler spaces II.Tensor.

[3] M. Hashiguchi : On conformal transformations of Finsler metrices, J.Math. Kyoto Univ. 16(1976), 25-50.

[4] M. Hashiguchi : On conformal transformations of Wanger Spaces.Rep. Facsci Kagoshima Univ. (Math, Phys, Chem.) 10(1977), 19-25.

[5] M. Matsumoto : Foundation of Finsler geometry and special Finsler spaces. Kaiscisha Press, Otsu, Japan, 1986

[6] M. Matsumoto : Homothetic transformations of Randers spaces, Tensor, N.S. 44(1987), 240-249

[7] M.S. Knebelman: Conformal geometry of generalized metric spaces, Proc. Nat. Acad. Scei. U.S.A. 15 (1929), 376-379.

[8] Y.Ichijyo : On the conditions for a {V,H}- manifold to be locally Minkowskian or conformally flat, J.Math Tokushima Univ 13(1979), 13-21

[9] Y.Ichijo : Conformal curvature tensors of a generalized Finsler metric, Tensor N.S.479(1988), 171-177.

Mahesh Chandra
Deptt. of Mathematics
Bareilly College,
Bareilly

26

भारतेनदु युग में हिन्दी उपन्यास का विकास

रश्मि सिंह

सारांश –

इस युग में अंग्रेजी से हिन्दी में और बांग्ला से हिन्दी में बहुत सारे उपन्यासों का अनुवाद किया गया। भारतेन्दु युग में अनुदित उपन्यास श्रृंखला का एक बहुत बड़ा योगदान माना जाता है। बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद बंक्किम चंद्र चट्टोपाध्याय, रमेशचंद्र दत्त, तारकनाथ गांगूली, दामोदर मुर्खजी के अनेक उपन्यासों का किया गया। बंक्किमचंद्र की 'दुर्गेश नन्दनी' रमेशचंद्र दत्त के 'बंगविजेता' नामक उपन्यास का अनुवाद हिन्दी के प्रसिद्वउपन्यासकार गद्दाधर सिंह ने 1882 ई० में किये। बंक्किम चंद्र के 'राजा सिंह, इन्द्रा' तथा 'राधारानी' आदि उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद प्रतापनारायण मिश्र ने किया। हिन्दी के लेखकों में उपन्यास सृजन का संस्कार वस्तुतः बांग्ला भाषा से आया। राश्ट्रीय जागरण का तथा आजादी के गुण–गाण का गौरव गाथाओं का बखान का जो दौर था वह उस समय बांग्ला रचनाओं में था और वह परम्परा, वह परिपाटी हिन्दी में भी अवतरित हुई और निश्चित रूप से बांग्ला रचनाओं और रचनाकारों का योगदान है। मराठी और उर्दू से भी अनुवाद बड़ी संख्या में हमारे सामने आये है। भारतेन्दु ने स्वयं मराठी भाशा में लिखे उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में किए तथा अन्य लेखकों ने बांग्ला रचनाओं का अनुवाद किए। इस प्रकार हर दृश्टि से भारतेन्दु युग उपन्यासिक और कथात्मक प्रस्तुतियों के संदर्भ क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उपन्यास का शब्दिक अर्थः–

उप+न्यास = उपन्यास

उपन्यास शब्द 'उप' उपसर्ग और 'न्यास' पद के योग से बना है जिसका अर्थ है उप = समीन, न्यास रखना स्थापित रखना (निकट रखी हुई वस्तु)। अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर पाठक को ऐसा लगे कि यह उसी के जीवन की कथा उसी की भाशा में कही गई है।

प्रेमचंद्र – ''मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमान समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''

आधुनिक हिन्दी के उपन्यास को संस्कृत के बीज से उत्पन्न मान सकते हैं। बाणभट्ट की 'कादंबरी' संस्कृत की एक महत्वपूर्ण रचना है जिसमें इस कथा तत्व का रूप देखने को मिलता है तथा आचार्य दण्डी की रचना 'दशकुमार चरित्र' में भी इस प्रकार के कथा वृति का आभाशा मिलता है।

आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी में उपन्यास को जिस स्वरूप का चर्चा करते है वह रूप और विन्यास विकास की दृश्टि से यूरोपिय संस्कृति से आया है। 17 वीं, 18 वीं शताब्दी में बहुत से महत्वपूर्ण उपन्यास यूरोप में लिखे गये। हिन्दी में उपन्यास लेखन का शुभ आरंभ 19वीं शदाब्दी से हमें दिखाई पड़ती है। अंग्रजी उपन्यास साहित्य ने भारतीय उपन्यास भी देख सकते है। परिणामतः सबसे पहले अंग्रती उपन्यास की रचनाओं का प्रभाव बांग्ला के उपन्यासिक रचनाओं पर दिखाई पड़ता है। बंकिम चंद्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख बांग्ला भाशा के प्रसिद्व उपन्यासकार है एवं कथाकार है जिनका अनुकरण बाद में हिन्दी के कथाकारों ने किया।

19वीं शताब्दी में हिन्दी में सर्वप्रथम इंशा अल्ला खाँ के 'रानी केतकी की कहानी' में उपन्यास के बीज का दर्शन होता है। फिर लल्लू लाल जी ने 'सिंहासनबत्तीसी' 'बैतालपचीसी' 'प्रेमसागर' जैसे गद्यों की रचना किये। शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द' की रचना 'राजाभोज का सपना' और अनेक रचनाओं में उपन्यास के कथाओं की नीवं पड़ चुकी थी।

फारसी कथा साहित्य का प्रभाव भी कुछ–कुछ हिन्दी साहित्य के उपन्यास में देखने को मिलता है जैसे –'किस्सा तोता मैना', 'चादरवेश, 'जागोबहार', 'किस्सा हातिमताई' बहुत सी रचनाएँ है। इसी समय आधुनिक हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने सर्वप्रथम मराठी भाशा से हिन्दी में 'पूर्ण प्रकाश' और 'चंद्रप्रभा' नाम के दो कथात्मक प्रस्तुतियाँ हमारे सामने रखी। इस प्रकार से भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अनुवाद के माध्यम से मराठी कथा को हिन्दी में सर्वप्रथम लाये। ये दोनो सामाजिक उपन्यास थे इसलिए समाज में इनका स्वागत भी

हुआ। परन्तु अगर हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास किसको कहें या माने तो सन् 1882 ई० में लाला श्री निवासदास के द्वारा लिखा गया उपन्यास 'परीक्षा गुरू' के नाम से जानते है। भारतेनदु युग के प्रमुख उपन्यासकार पं० श्रद्वाराम फुल्लौरी, लाला श्री निवासदास, श्री बाल कृश्णभट्ट ठाकुर जगमोहन सिंह, श्री राधा कृश्णदास, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री आदि प्रमुख थे। भारतेन्दु युग में सामाजिक उपन्यास, तिलस्मी, ऐतिहासिक, ऐयारी, जासूसी और रोमानी उपन्यास की सुदृढ़ परम्परा मिलती है जो महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में और अधिक पल्लवित एवं विकसित हुई भारतेन्दु युग में बालकृश्ण भट्ट के द्वारा लिखे गये तीन उपन्यास अति महत्वपूर्ण है– 'रहस्य कथा' जो 1880 ई० के आस–पास प्रकाशित हुआ, 'नूतन ब्रहमचारी' 1886 ई० में तथा 'सौ अजान एक सुजान' 1892 ई० में प्रकाशित हुआ। राधाकृश्ण दास जी ने 'निसहाय हिन्दु' नाम से एक उपन्यास लिखा 1890 ई० में। लज्जाराम मेहता ने धूर्त रसिक लाल 1889 ई० में तथा 'स्वतंत्र रभा और परतंत्र लक्ष्मी नाम से 1899 ई० में दूसरा उपन्यास लिखा। किशोरी लाल गोस्वामी ने 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' 1889 ई० में लिखे। इन्होंने कुल 65 उपन्यासों की रचना किये और सभी उपन्यास सामाजिक कुरूतियों को उधेड़ने का काम किया और जन सामान्य को ये शिक्षा देने का भी काम किया। इन उपन्यासों ने आदर्श परिवार, आदर्श समाज की रचना की और उनकी स्थापना भी किये। किशोरी लाल गोस्वामी के बारे में रामचन्द्र तिवारी का मामना है– ''नव्य समाज के प्रति आप न्याय नहीं कर सके है।। फिर भी तत्कालीन समाज की एक प्रतिनिधि मनोवृत्ति को समझने के लिए आपके उपन्यासों का अध्ययन आवश्यक है। प्रेमचंद्र पूर्व उपन्यासकारों मे निर्विवाद रूप से आपका स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।''

इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास तुलना में कुछ कम लिखे गये। इसी युग में किशोरी लाल गोस्वामी का एक प्रमुख उपन्यास 'लवंगलाता वा आदर्श बाला' शीर्शक से 1890 ई० में प्रकाशित हुआ और इसे काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसी युग में बंकिम चंन्द्र जो बांग्ला के एक बहुत बड़े उपन्यासकार थे जो ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी में अनुदित होकर पाठको के सामने आया जिसे लोगों ने खूब पसंद किया। इस प्रकार से हिन्दी में जो ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी थी उसे बांग्ला के अनुदित उपन्यासों से पूर्ति हुई। 'तिलस्मी' और 'ऐयारी' उपन्यासकारों में बाबू देवकीननदन खत्री का एक महत्वपूर्ण नाम है जिन्होने 'चन्द्रकांता' नाम से 1888 ई० में रचना किये। इसी प्रकार 'चंन्द्रकांता सन्तति' 1846 ई० में वृहद उपन्यास हमारे सामने आया जसे विगत कुछ वर्शो पहले दूरदर्शन पर 'चंन्द्रकांता' धारावाहिक के नाम से प्रसारित हुआ था जिसकी काफी लोकप्रियता प्राप्त हुआ था। इस उपन्यास की लोकप्रियता इस बात से भी झलकता है कि बहुत से लोगों ने इस उपन्यास को पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। इस प्रकार हम देखते है कि खत्री जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी उपन्यासों को बहुत बड़ा योगदान दिया है। खत्री जी के उपन्यासों से प्रभावित होकर और भी बहुत सारे उपन्यास लेखको ने भी अपनी रचनाओं में इस प्रकार के वृत्ति को शामिल कर रहे थे। जिनमें रोमांच भी था, रोमानियत भी थी तथा उसमें ऐयारी एवं जासूसी के भी भाव थे। गोपालराम गहमरी ने 'अद्भूत लाश' 1896 ई० में और 'गुप्तचर' नाम से 1899 ई० में दो महत्वपूर्ण उपन्यास हिन्दी पाठक वर्ग को दिये जो पाठक वर्ग में काफी लोकप्रिय हुआ। वैसे तो गहमरी जी ने लगभग 200 उपन्यासों की रचना की जो सभी के सभी जासूसी थे तिलस्मा को लेकर लिखे गये थे। ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामा स्वप्न' नाम से 1888 ई० में एक रोमानी उपन्यास लिखे।

भारतेन्दु युग के उपन्यासों में सबसे सशक्त सृजनधारा सामाजिक उपन्यासों की रही है। सामान्य जनता में लोकप्रियता की दृश्टि से देखने पर पता चलता है कि पाठक वर्ग ने इन्हीं उपन्यासों को पढ़ा भी अधिक है। किशोरी लाल गोस्वामी ने मानवीय प्रेम के बहुत सारे पक्षों को उद्घाटित किया है। जीवन की एक यर्थात परक उपन्यास लेखन की परम्परा में भारतेन्दु युग में प्रारंभ हुई थी लेकिन उसका विधिवत् विकास हमें द्विवेदी युग में देखने को मिलता है।

निश्कर्शः' हिन्दी उपन्यास साहित्य आधुनिक काल की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आधुनिक काल में ही शुरू होकर उपन्यास साहित्य ने जितनी लोकप्रियता प्राप्त किया, साहित्य की अन्य गद्य विधाओं ने नही प्राप्त कर सका। इसका बहुत ही आसान कारण है कि उपन्यास में लेखन को अपनी बात कहने का क्षेत्र विस्तृत होता है। भारतेन्दु युग के उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार रहा है। इस युग के उपन्यास ने आगे के उपन्यासों को एक दिशा प्रदान किया सबसे बड़ी बात यह रही कि विशय, शिल्प एवं भाशा का जो विकास इस युग में हुआ उसी का संशोधित रूप हमें आगे के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। आज के आधुनिक युग में नए–नए

रूपों में उपन्यास हमारे सामने आ रहे है। आज के आधुनिक समय में स्त्री, वंचित, शोशित, दलित सभी की समस्याओं ने उपन्यासकारों का ध्यान अपनी ओर खिंचा है तथा इन पर उपन्यास लिखे जा रहे है।

संदर्भ ग्रंथः–

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. E-P.G पाठशाला

रश्मि सिंह
शोधार्थी
घर संख्या – 39
रैन बसेरा कॉलोनी
मांझी टोला, आदित्यपुर
जमशेदपुर– 831013 (झारखंड)।
मो० नं०– 8434600606

27

ममता कालिया के उपन्यासों में पुरुष के संघर्षों का चित्रण

रजन बाई

सारांश –

ममता कालिया एक सुप्रसिद्ध भारतीय लेखिका है जो कि देश में ही नहीं विदेशों में भी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। इनका नाम समकालीन साहित्यकारों में सम्मिलित किया जाता है। वैसे तो इस काल में बहुत महिला कथाकार हुई हैं जैसे– कृष्णा सोबती, मृणाल पाण्डेय, शिवानी सूर्यबाला, इंदूबाला, राजी सेठ, मृदृगला गर्ग, मेहरुनिसा परवेज, निरूपमा सोबती आदि साहित्यकारों का योगदान रहा। लेकिन उनमें से ममता कालिया ने अपने साहित्य में स्त्री और पुरुष के संघर्ष का चित्रण बड़ी ही बोल्ड और बेबाकी से किया है।

इन्होंने अपने साहित्य में– "संघर्ष में युद्धरत स्त्री के व्यक्तित्व को उभारा है और अपनी रचनाओं में रेखांकित किया है कि स्त्री और पुरुष का संघर्ष अलग नहीं कमत्तर भी नही वरन् समाजशास्त्रीय अर्थों में ज्यादा विकट और महत्तरहै।"

किसी भी देश यासमाज की जीवनगत यथार्थ राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों, परिवर्तनों तथा लोगों की संघर्षशीलता को वहाँ के सृजनात्मक साहित्य के कारण पहचाना जाता है क्योंकि साहित्य ही समाज का दर्पण होता है। समाज के व्यापक आशयों का उद्घाटन उपन्यास, साहित्य में होता है। तथा वह उपन्यासों में सभी गुण–अवगुणों की सर्जना करता है जो समाज में घटित होता है। उसी को कलमबद्ध करता है और सच्चा युग दृष्टा होता है। वह समाज में घटित सभी संघर्षों से अवगत करवाता है और उनका समाधान प्रस्तुत करने काप्रयास भी करता है। ममता कालिया जी भी उन बुद्धिजीवियों में से है, जिन्होंने समाज सुधार के लिए कार्य किया है। वह समस्या को देखकर मूकदर्शक नहीं रह सकती बल्कि समस्याओं का निदान करने के लिए प्रयासरत रहती है। इनके उपन्यासों में समस्याओं का केन्द्र बिन्दू समाज रहा है।

सामाजिक संघर्षों में जैसे– भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, यौन शोषण, नारी उत्पीड़न, दहेज प्रथा, लिंग–भेद, जातिवाद– धर्म, शिक्षा व पारिवारिक विघटन आदि का चित्रण अपने उपन्यासों– साहित्य में किया है। बेघर उपन्यास में रूढ़िगत, पारम्परिक 'कौमार्य मिथ' को उस समय में उजागर कर उसका समाधान प्रस्तुत किया है कि शारीरिक से अधिक मानसिकता का पवित्र होना अधिक महत्त्व रखता है। नरक–दर–नरक उपन्यास के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या पर पर्दापण किया है। भ्रष्टाचार की समस्या, धर्मजाति के आधार पर कार्य में विभिन्नता आदि का चित्रण ममता जी ने किया है। उपन्यास 'प्रेम–कहानी' में डॉक्टरों का संघर्ष मजदूरों, बच्चों का सभी के संघर्ष का चित्रण ममताजी ने किया है।

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में ममता जी ने प्रेम विवाह के बाद भी असंतोष व शक्की प्रवृत्ति के कारण विकृति मनोवृति को दृष्टिगत करते हुए ममता जीन ने एक सुशिक्षित दम्पति के संघर्ष का वर्णन किया है। 'दौड़' उपन्यास में ममता जी ने इक्कीसवीं सदी के आने वाले समय के संकट का आख्यान किया है।

आधुनिकता की दौड़ में सभी भाग रहे हैं और संघर्ष भी उनसे अधिक होते जा रहे हैं। इस युग में मनुष्य यन्त्र बनाता, यन्त्र के सथ खेलता स्वयं यन्त्र बनता जा रहा है। उसके इस भौतिकवादी युग में सभी सपने यन्त्रों में सीमित हो गए है। वह नैतिक मूल्यों को भूलता जा रहा है वहीं स्वयं भी मूल्यहीन बनता जा रहा है। पहले संयुक्त परिवार होते थे लेकिन खुशियाँ अधिक थी। उसके बाद एकाकी परिवार आए उसमें भी खुशियां थी लेकिन अब एकाकी जीवन आ गया है। तो खुशियां भी एकाकी ही होती जा रही है। अकेले ही खुश होना और अकेले ही एकान्तवास में रहना उसके लिए जीवन कठिन बनता जा रहा है। पहले अभाव में खुशिया थी अब खुशियों का अभाव है। क्योंकि आधुनिक युग में क्षण में खुशी पाना और क्षण तक ही खुश रहना सीमित हो गया है। इस यान्त्रिक युग में दौड़ सभी रहे हैं लेकिन जीवन कोई नहीं जी रहा है। अपने माता–पिता सेदूर बच्चे संघर्ष कर रहे हैं और अपने बच्चों से दूर वृद्ध माता–पिता अकेले में अंतिम सांस ले रहे हैं।

एक स्वस्थ समाज के लिए पति–पत्नी जहाँ गाड़ी के दो पहियों समान होते हैं यदि एक भी खराब हो जाए तो गाड़ी नहीं चलती। इसी प्रकार पति–पत्नी का एक साथ प्रेम से रहना भी आवश्यक है लेकिन दौड़ उपन्यास में पति पत्नी दोनों अलग–अलग शहरों में रह रहे हैं। अधिक उच्छृंखलता अपराध को जन्म देती है। लेकिन अपने अस्तित्व की उन्नति में सभी अपने अपने क्षेत्रों में व्यस्त हैं। परिवारों में विघटन हो रहा है यानी की दिमाग तो बढ़ता जा रहा है। और ह्रदय घटता जा रहा है जब कि एक स्वस्थ शरीर के लिए दोनों की समान अनुपात में आवश्यकता है।

दौड़ उपन्यास एक सटीक उपन्यास सिद्ध होता है आधुनिक युग का यह लघु उपन्यास बहुत कुछ प्रश्न करता दृष्टिगत होता है।

इसमें सभी अपने–अपने संघर्ष भरे जीवन को जी रहे हैं। तथा सामंजस्य और संवेदन की भी आवश्यकता है। उन्नति के कारण माता–पिता के अन्तिम संस्कार में भी शामिल न होना एक भयावह दृष्ट का सृजन करता दृष्टिगत होता है। इससे सबक लेने

की आवश्यकता है। यह बात नहीं की उन्नति न करो पर अपने कर्त्तव्य भी न भूलों यह हमेंसबक देता चलता है।

ममता कालिया ने समाज के प्रत्येक पुरुष के संघर्ष का चित्रण अपने उपन्यास–साहित्य में किया है। इसमें चाहे उस पुरुष को बेराजगारी का संघर्ष करना पड़े, भ्रष्टाचार या जाति–धर्म के कारण, प्रेम विवाह के कारण, रूढ़िगत परम्पराओं या आधुनिकता के कारण सभी संघर्षों का चित्रण ममता जी ने अपने उपन्यासों में स्पष्टता से व्यक्त किया है। 'बेघर' उपन्यास में ममता जी महानगरों में रहते हुए परमजीत पुरुष का संघर्ष व्यक्त किया है। कैसे वह अपने घर से नौकरी के लिए बम्बई में जाकर रहता है। वहाँ पर अनकेलेपन व आधुनिकता के प्रभाव के कारण या निजी आवाश्यकता के कारण 'संजीवनी' नामक लड़की से आकर्षित होता है और उससे विवाह करना चाहता है। बहुत संघर्षों के बाद जब वह उस लड़की से मिलता है तो वह रूढ़िग्रस्ता के कारण उसे छोड़ देता है लेकिन आजीवन उसका पच्छतावा रहता है लेकिन उपन्यास वर्तमान समय का दस्तावेज बन जाता है। "एक दिन उन दोनों के जिस्मघुल–मिल जाते हैं पर इस इस मिलन से ही नये सवाल जन्म लेते हैं। प्रेमी परमजीत को लगता है कि प्रेमिका संजीवनी असूर्यपश्या नहीं है, उसके जीवन में पहला पुरुष परमजीत नहीं है– "परमजीत बैठा रह गया– परास्त आसपास घूरता हुआ–सा उसके पावों तले फर्श ठण्डा और सक्त था और उपर पंखे की गर्म हवा उसका दम घोटे रही थी, उसने कहा तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया।"

परमजीत इस रूढ़िवादी घटना से पस्त हो नैशश्य में चला जाता है तथा उसकी जिंदगी का सारा नक्सा ही मुचड़ा जाता है। इसके बाद उसका आधुनिक लड़कियों से विश्वास उठ जाता है और फिर घर की परिस्थितियों बहन बिम्मा की शादी की जिम्मेदारी– दहेज प्रथा के कारण वह बिना सोचे समझे एक ऐसे लड़की से शादी का निर्णय ले लेता है जो दहेज तो काफी लाती है। साथ में "इस बार उसे तकनीकी तौर पर 'विशुद्ध कुँवारी' पत्नी मिलती है। सुन्दर, सुशील, गृहकार्य में दक्ष वर्ग में शुमार होता है परवह अपनी मानसिकता और जीवन शैली में इतनी जड़ और जकड़बन्द है कि उसे बदलना परमजीत के लिए सम्भव नहीं, बल्कि वह स्वयं भावनात्मक, दैहिक और मानसिक धरातल पर एकाकी होता चला जाता है। यह अकेलापन अंततः एक क्राइसिस पर समाप्त होता है।"

परमजीत सोचता था कि उसकी बीवी सीधी–सादी लड़की होगी, वह जैसा चाहेगा वैसे ढाल देगा पर "रमा कंजूस, जिद्दी, बेलिहाज और करख्त होने के साथ–साथ गैर संवेदनशील भी थी उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी बातें परमजीत की आँखों में कैसे जख्म छोड़ जाती है।" कई बार परमजीत रमा के स्वभाव को लेकर सोचता कि ऐसी करख्त औरत के साथ वह कैसे सो जाता है– "वह लेटे–लेटे उदास हो जाता है तो रमा कहती है, सब कुछ तो करा लिया अब मुँह क्यों बनाए हो?उस पर उसका मन होता रमा को तीसरी मंजिल से नीचे फेंक दे पर कुछ नहीं कर पाता सिर्फ दीवार की तरफ मुँह करके सो जाता।"

इस प्रकार परमजीत पुरुष एक ऐसी लड़की को जीवन संगिनी के रूप में पाकर आजीवन संघर्षरत रहता है और एक दिन असामायिक मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

'बेघर' में एक और पुरुष है प्रेमआर्य जिसकी बीवी उसे छोड़कर किसी के साथ भाग जाती है। इसमें शिंदे कहता है कि प्रेम आर्य की बीवी उसके घोड़े प्रेम के कारण भाग गई। –"वह घोड़े स्टडी करता रह गया और उसकी खूबसूरत बीवी स्वामी परमेश्वरानंद के साथ भाग गई। अफवाहों के अनुसार स्वामी परमेश्वरानंद ने अब दिल्ली में मुर्गीपालन केंद्र खोल लिया है और प्रेम आर्य की बीवी हनुमान रोड पर सौन्दर्य निकेतन चलाती है। इस तरह से प्रेम आर्य को अकेले में जीवन जीना पड़ा।

'नरक–दर–नरक' उपन्यास में ममता जी ने जगन के माध्यम से आधुनिक शिक्षित युवकों का वैवाहिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विडम्बनाओं का यथार्थता से चित्रण किया है। जगन और उसके दोस्त आतिश और बैजनाथ तीनों बेरोजगारी के कारण मुम्बई महानगर के अपने–अपने शहरों से दूर जा कर संघर्ष करने पर विवश है।

जोगिन्द्र 'जगन' को केड़िया कॉलेज के नौकरी मिल जाती है, वह वहाँ पर एक प्रोफेसर के पद पर प्रतिष्ठित है। इसी दौरान उसकी उषा से मुलाकात होती है। लेकिन बम्बई शहर में उसकी आय से अधिक व्यय होता है। तबवह कहता है कि "कड़की में लड़की ज्यादा दिन नहीं टिकती।"

जगन का उषा से प्रेम विवाह हो जाता है, उषा भी सुशिक्षित लड़की है उसके पापा ने उसे कभी रसोई में नहीं जाने दिया इसलिए अब उसे खाना बनाना नहीं आता या खाना बनाना संस्कृत पढ़ने से भी मुश्किल काम था। उषा डालडा पाक पुस्तक पढ़ पढ़ कर खाना बनाती लेकिन जगन दाल कच्ची रहने पर प्याज और सॉस के साथ रोटी खा लेता खाना देखते ही छींकने लगा।

अब जगन के लिए खाना खान बहुत मुस्किल होता जा रहा था। वहीं पैसों की कमी में मकान की समस्या के कारण–"शीतलादेवी मन्दिर रोड की कालकोठरी में कदम रखते जोगिन्द्र का दिल बेहद उदास हो गया था। 10×10 की जगह मेंवे कहाँ सोएँगे, कहाँ पढेंगे... फर्श पर धूल और गुसलखाने में तिलचट्टे। इसे अपना बनाने में बेशुमार श्रम लगेगा जोगिन्द्र ने सोचा।... किराने की दुकान पर... झाड़ू दो रूपये की भी और झाड़न सवा रुपये का। उसने मुट्ठी खोल कर पैसे गिने सिर्फ साढ़े दस आने थे।" प्रेम विवाह के बाद वास्तविकता सपनों का ढ़ेर कर देती है। आर्थिक विपन्नता के कारण द्वंद्वउत्पन्न होता है।

डॉ. शाम सानप के कथानुसार–"प्रेम विवाह के बाद जब दोनों के जब दोनों के लिए जहाँ असंख्य सपनों का ढ़ेर सामने उपस्थित होता है। वहाँ समस्याओं का ढेर भी उसी अनुपात में उपस्थित होता है। उषा ने वैसे भी बचपन से रसोई में कोई ध्यान

नहीं दिया था।

ढ़ेर सारी सद्भावना और प्यार के बावजूद जगन खाना नहीं खा पाया।"

ऐसी ही हिन्दू और मुसलमानों के नाम से समाज में काम का बंटवारा होता है। अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटीखोल देने से तीन करोड़ मुसलमानों को धंध नहीं मिल जाता जो यतीमों की तरह आज भी आजाद हिन्दुस्तान में छूट गए है गए हैं, क्रोकरी और कबाव बेचने के लिए।" इस तरह से तर्क वितर्क के बीच जोगिन्द्र और आतिश दोनों– "एक–एक और चाय पी, पर भूख नहीं दबी तो डबलरोटी और बिस्कूटों पर टूट पड़े।"

बेरोजगारी में एकबार दो रुपये देकर एक कांस्टेबल से पिंड छुड़ाते हुए उसने कहा, "भाई जान, आप कैसे कह सकते हो मैं बैटलैगर हूँ।"

कांस्टेबल ने जवाब दिया, "शक्ल से मुसलमान लगते हो कहने की क्या जरूरत है!काफरि कहीं के।"

इस तरह से आतिश ने हिन्दुओं की तरह रहना शुरू किया तब जाकर कुछ काम मिला।

जगन के प्रेम विवाह के कारण मानकर कॉलेज में राजनीति होती है और जगनको कॉलेज से इस्तीफा देना पड़ता है क्योंकि कॉलेज में एक छात्रा और छात्र ने भाग कर प्रेम विवाह कर लिया था। इस प्रकार जगन को शहर छोड़ इलाहाबाद में प्रेस खोलनी पड़ती है। लेकिन दोनों का जीवन नरक जैसा ही गुजरता है विपन्नता के कारण। कहीं उषा के पापा को रिश्वत देते है। पर वह एक आदर्श अध्यापक है नहीं लेते तो उन पर लाठियों से वार किया जाता है।

'प्रेमकहानी' उपन्यास में ममता जी ने पुरुष का प्रेम विवाह करने के बाद भी कार्याधिकता की व्यस्तता के कारण वह गिनेस अपनी पत्नी जया से प्रेम नहीं कर पाता है। वहीं यशा का पति भी कार्याधिकता में व्यस्तता के कारण यशा के प्रेम से वंचित रहता है। जया के पिता भी अपने तबादलों के कारण बहुत संघर्ष करते हैं।

डाक्टर गुप्ता के अस्पताल के सामने एक छोटे से क्वाटर में गिनेस और जया रहते हैं। डॉ. गुप्ता का मरीजों के प्रति दुर्व्यवहार, गुप्त राजनीति, पैसा का लालच आदि गिनेस के अन्दर आक्रोश बढ़ा देता है। अपने आदर्शों एवं कर्त्तव्यों के प्रति समर्पित गिनेस मरिजों के सही इलाज और समाधान में विश्वास रखता है। अस्पताल की जिम्मेदारी एवं अपने कर्त्तव्य के प्रति एकनिष्ठ गिनेस की व्यस्तता बढ़ जाती है। इधर जया घर पर अकेली कुंठित हो जाती है। दोनों के संबंध में दरार उत्पन्न होती है। प्रेम विवाह के उपरान्त गिनेस का संघर्ष जारी है– "गिनेस कहता है– प्रेम और प्रेमी इतने पिटे हुए शब्द हैं कि इनका कोई अर्थ नहीं बचा। हम एक दूसरे के लिए जरूरी है क्या यह काफी नहीं?तुम मेरी जिंदगी में वैसे ही जरूरी हो जैसे सुबह का अखबार।"

प्रेम का विवाह में बदलते ही यथार्थ सामने आते हैं वहीं से संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। यदि पति या पत्नी कोई भी संघर्ष करता है तो संघर्ष अकेले नहीं आता वह सभी को करना पड़ता है और वह सबक भी देता है।

गिनेस के दाद। बिशेशर सिंह का संघर्ष– वह अंग्रेजों के द्वारा पटना से मॉरिशस ले जाए गए और वहाँ उनसे मजदूरी करवाते और मारते–पीटते भी थे इनके दादा ने उस समय इस अत्याचार के दौरान ही जान दे दी थी। इस पर मजदूर भाइयों ने मिलकर इनके नाम का स्मृति स्थल बनाया है।

गरीब आदमी मार्तंड का संघर्ष– "आदमी ने माथा रगड़ा डॉ. गुप्ता टस से मस न हुए।' उस आदमी में घायल बच्चा बरामदे में लिटा दिया और चिल्लाया, "मैं जानता हूँ, डॉक्टर साहब, आप बाहर क्यों नहीं निकल रहे। मैं एक निहायत मामूली दुकानदार हूँ मेरे पास इस वक्त चांदी की जूती होती तो आपके सिर में मारता और आप खुशी से खोपड़ी सहलाते हुए मेरा बच्चा बचा लेते। आप डॉक्टर नहीं जानवर हैं पैसे के गुलाम। आपसे निपट लूँगा डॉक्टर साहब मेरा भी मौका लगेगा।"अपने बच्चे की मौत के बाद वह बदले की आग में झुलसता रहता है।

इस तरह से एक आदमी का संघर्ष ममता जी ने अपने उपन्यास में दर्शाया है और फिर वह आदमी समय पाकर डॉ. गुप्ता के दोनों बेटों की निमर्म हत्या कर देता है। डॉक्टर गुप्ता जो पैसों के लिए अपने बच्चों को खुश रखने के लिए दिन–रात मेहनत करता था वह मर जाते हैं और डॉक्टर गुप्ता जीवन में परास्त हो जाते हैं।

डॉ. गुप्ता के बच्चे भी पापा के बिना अनकेलेपन का संघर्ष करते हैं– आकार कहता है– "फिर भी अंकल आप इतने बड़े डॉक्टर कभी न बनना कि डैडी ही न बन पाएँ।"

इस प्रकार प्रेम–कहानी में सभी पुरुष अपने–अपने स्तर पर संघर्षरत ही है। यदि पत्नी दुखी तो पति दुखी और जिसका पति दुखी तो उसकी पत्नी भी दुखी रहती है।

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में संदीप अपनी पत्नी कविता से बहुत प्रेम करता था उन दोनों का प्रेम विवाह था वह भी संदीप के आग्रह पर लेकिन वह एक शक्की–शराबी इन्सान था और अपने मूड के अनुसार वह कविता को प्यार या प्रताड़ित कर सकता था वह एक विकृत बुद्धि इन्सान था लेकिन इस सब के साथ यह करते–करते उसे पहले तो कविता के प्रेम करने में संघर्ष बाद में जब वह घर छोड़कर जाती है तो, कहता है– "आय एम सॉरी कवि, आय लव यु!... संदीप ने कहा, तुम मुझ पर यकीन नहीं करती, आज मैं तुम्हें जन्म भर के लिए यकीन दिलाता हूँ। तुम्हारे बिना मैं लौटूँगा नहीं। यहीं से छलांग लगा दूँगा यों..." इससे पहले कविता उसे रोके, संदीप चलती ट्रेन से कूद गया।... ऐसे पागल प्रेमी को सचमुच छोड़कर जिंदा रहा जा सकता है?

खंरोचें संदीप को भी बहुत आई थी परवह लंगड़ाते हुए सोच रहा था क्या कविता से बेहतर जीवनसाथी वह इस जन्म में दूसरा पा सकेगा।" इसी तरह कविता की माँ की मृत्यु के बाद इसके

पिता का भी संघर्ष और अधिक बढ़ जाता है। कविता ने अपने पिता से कहा, "बाबा मैं वापस जाऊँ? आप बिल्कुल फिक्र न कीजिए। कॉलेज से लौटते हुए मैं बराबर आती रहूँगी। पिता ने लाचारी में सिर हिला दिया।"

'दौड़' उपन्यास में "आज के उस मनुष्य की कहानी है जो बाजार के दबाव समूह में उसके परोक्ष–अपरोक्ष मारक, तनाव आक्रमण और निर्ममता तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते मनुष्य के आसन्न खतरे में पड़े मनुष्यत्व को उजागर करती है। यह रचना मनुष्यों की पारम्परिक सम्बन्धों की परम्परा और वर्तमान की जटिलताओं के मध्य विकराल होते अंतराल की सूक्ष्म पड़ताल करती है।"

इस उपन्यास में पवन, राकेश और रेखा का बड़ा बेटा पहले तो बच्चे का एम.बी.ए. करवाना और बाद में उसका घर से बाहर अलग शहर अहमदाबाद चैन्नई आदि। स्थानों पर रहना इससे बच्चे को माता–पिता और भाई के बिना इसके विपरीत घर वालों को पवन व बाद में सघन के बिना जो ताइवान में नौकरी करता है उसके बिना रहने का संघर्ष करना पड़ता है। बच्चे घर में खाना अच्छे से खाते थे नौकरी के बाद कभी ढंग से खाना नहीं खाते थे।

पवन घर में आता तो– दुखी होकर पापा से कहता है मैं नाहक इतनी दूर आया सघन सारे दिन कम्प्यूटर सैंटरों की खाक छानता है। आप अखबरों में लगे रहते हैं माँ सुबह की गई शाम को लौटती है। इस पर पापा कहते हैं इसने हमें देख लिया काफी नहीं।"

पवन की शादी के बाद पापा कहते हैं बेटा तुम्हारा फर्ज है तुम स्टैला के साथ रहे। इस पर पवन कहता है– "मैं अपना कैरियर और आजादी कभी नहीं छोडूंगा स्टैला चाहे अपना बिजनेस चैन्ने वे चले... वही तो माँ मंजिल के लिए संघर्ष तो करना ही पड़ता है। इनको तुम्हारे ऐथिक्स और मौर्लिटी से कोई मतलब नहीं है।" "मैं क्या करू आपके सपने मेरा संघर्ष बन गए हैं। यह मत सोचिए की संघर्ष अकेले आता है वह सबक भी सिखाता चलता है।"

बच्चों के साथ पापा का भी संघर्ष– पर पापा उसके लिए तीस–चालीस लाख रुपये की जरूरत होगी।... राकेश गड़बड़ा गए "तुम्हें तो घर का हाल। जितना कमाते थे उतना खर्च कर देते हैं सारा पोछ–पाँछ का निकले तो भी एक डेढ़ से ज्यादा नहीं होगा।"... पर वह काफी नहीं है... घूमने आप जाते नहीं, पिक्चर आप देखते नहीं, दारू आप पीते नहीं, फिर आपने पैसों का क्या किया। राकेश आगे बोल नहीं पाए बच्चा उनसे रुपये आने पाई में हिसाब माँग रहा है।"

युवा समीक्षक कृष्ण मोहन लिखते हैं : बीसवीं सदी के अंत में भारतीय समाज के सबसे गहरे सांस्कृतिक संकट का आख्यान है।"

इस प्रकार सभी पुरुषों को संघर्ष करना पड़ता है। यह समाज है यहाँ पर सभी को संघर्ष करना पड़ता है।

निष्कर्ष–

समाज में स्त्री या पुरुष सभी को संघर्ष करना पड़ता है इसमें सभी के अलग–अलग संघर्ष है किसी को बेरोजगारी का, किसी को महानगर में रहने का, किसी को उपयुक्त जीवन संगनी न मिलने पर, प्रेम विवाह करने पर असफलता या प्रेम विवाह न होने पर पारम्परिक विवाह या कार्याधिकता के कारण समयाभाव में प्रेम न कर पाने से संघर्ष, उन्नति के मार्ग में बाधा उत्पन्न न हो जाए इसके लिए संघर्ष हर पुरुष को करना पड़ता है। संघर्ष कभी अकेला नहीं आता यह सभी को करना पड़ता है और यह सबक भी देता है।

संदर्भ सूची–

1. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृ 10
2. बेघर, ममता कालिया, पृ. 66
3. वही, अंतिम फ्लैप, ममता कालिया
4. वही, पृ. 117
5. वही, पृ. 128
6. नरक–दर–नरक, ममता कालिया, पृ. 33
7. वही, पृ. 37–38
8. ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना, शाम सानप, पृ. 132
9. नरक–दर–नरक, ममता कालिया, पृ. 40
10. वही, पृ. 41
11. प्रेम कहानी ममता कालिया, पृ. 86
12. वही, पृ. 190
13. वही, पृ. 168
14. एक पत्नी के नोट्स, पृ. 69
15. दौड़, पृ. 65
16. वही, अंतिम फ्लैप
17. वही, पृ. 71
18. वही, पृ. 95
19. वही, पृ. 07

रजन बाई
पीएच.डी. शोथार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक, (हरियाणा)
मो. 9466794205
sahlawat.2012@gmai.com

28

CURVATURE TENSORS IN FINSLER SUBPACE

Mahesh Chandra

1. Introduction :

Purpose of this chapter is to study the curvature tensor in Finsler subpace. In section 2, we shell study the subspaces and its few properties. Section 3 delineates the theory of curvature tensor in Finsler Subspace.

E. T. Davies [2] has been studied recently the theory of the subspace of the Finsler space.

2. Definition of The Subpace :

Definition 2.1 : An m-dimensional subspace F_m of F_n may be represented parametrically by the equation

$$x^i = x^i(u^\alpha),\ i=1,.....n\ \&\ \alpha = 1,.....m \qquad (m<n) \qquad (2.1)$$

where the m parameters u^α from a coordinate system of the subspace F_m.

Remark 2.1 : it is to be noted that throughout this chapter we shell use the notation

$$X^i_\alpha = \frac{\partial x^i}{\partial u^\alpha} \qquad (2.2)$$

Remark 2.2 : it is to be noted that the matrix of these projection factors is of rank m.

The projection factors X^i_α behave like contravariant vectors in F_n.

Along a coordinate curve of the parameter u^α in F_m, the vector X^i_α (αfixed, i=1,2,……n) is tangential to the curve. Thus corresponding to the m independent variables u^α there are m such linearly independent vector fields tangent to F_m in term of which any vector tangent to F_m is vector linearly expressible. Thus if dx^i is displacement vector tangent to F_m.

Remark 2.3 : it is noteworthy that through out this chapter latin indices range from 1 to n and Greek indices

$$dx^i = X^i_\alpha du^\alpha \qquad (2.3)$$

wherein du^α denotes the same dis-placement in terms of the coordinates u^α. More generally, if A^i is a vector tangential of F_m and its components in u^αsystem are A^α. We have

$$B^i = X^i_\alpha B^\alpha \qquad (2.4)$$

using similar equation for the tangent vector

$$X^i_\alpha = \frac{\partial \dot{x}^i}{\partial \dot{u}^\alpha} \qquad (2.4a)$$

At a point P in F_m the m-vectors span an m-dimensional linear subspace, $T_m(P)$ of the tangent space $T_n(P)$ of F_n at P.

Which should be regarded as the tangent space to F_m at P. if $F(x,\dot{x})$ represents the metric function of F_n, corresponding to a direction $\dot{x}^i$ tangent to F_m at P.

Then in view of equation (2.4) the corresponding metric function of F_m is given by

$$g_{\alpha\beta}(u,\dot{u}) = \frac{1}{2}\frac{\partial^2 \overline{F}^2(u,\dot{u})}{\partial \dot{u}^\alpha \partial \dot{u}^\beta} \qquad (2.6)$$

it is easy to verify that

$$g_{\alpha\beta}(u,\dot{u}) = g_{ij}(x,\dot{x})X^{iJ}_{\alpha\beta} \qquad (2.7)$$

if v_α are the components of the vector whose contravariant components are we have from equations (2.4) and (2.7)

3.DETERMINATION OF INDUCED CURVATURE TENSOR OF A SUBSPACE F_m IN A FINSLERSPACE F_n :

The absolute differentials of can be decomposed explicitly into tangential and normal components in the form

$$DX^i_\alpha = \overline{w}^\delta_\alpha(d)\, X^i_\delta + \overline{\theta}^\mu_\alpha(d)\, N^i_\mu, \qquad (3.1a)$$

$$DN^i_\mu = \overline{\overline{\theta}}^\delta_\mu(d)\, X^i_\delta + \overline{\lambda}^\nu_\mu(d)\, N^i_\nu \quad (\nu \neq \mu,\ \overline{\lambda}^\nu_\nu = 0) \qquad (3.1b)$$

Because of $Dg_{ij} = 0$, *we* have

$$g_{ij} N^i_\mu DX^j_\alpha = - g_{ij} X^j_\alpha DN^i_\mu \qquad (3.2)$$

Inserting equation (3.1) into equation (3.2), we obtain

$$g_{ij} N^i_\mu N^j_\nu \overline{\theta}^\nu_\alpha = - g_{ij} X^{ji}_{\alpha\delta} \overline{\overline{\theta}}^\delta_\mu$$

As a consequence it follows that

$$\overline{\theta}^\mu_\alpha = - \overline{\overline{\theta}}_{\alpha\mu} \qquad (3.3)$$

writing $\overline{w}_\alpha{}^\delta$ and $\overline{\theta}^\mu_\alpha$ as Pfaff's forms with respect to du^β andDI^β, we have

$$\overline{w}_\alpha{}^\delta(d) = \overline{\Gamma}_{\alpha\beta}{}^{*\delta} du^\beta\ {}_{\alpha\beta}\overline{D}I^\beta \qquad (3.4a)$$

$$\bar{\theta}_{\alpha}{}^{\mu}(d) = \bar{\theta}\alpha\beta\ {}^{*\mu}du^{\beta} + B\mu_{\ \alpha\beta}\,\bar{D}I^{\beta} \tag{3.4b}$$

In view of equations (3.4a) and (3.4b), we obtain

$$DI^{K} = D(X^{K}{}_{\alpha}I^{\alpha}) = (dI^{\delta} + \bar{\omega}_{\alpha}{}^{\delta}I^{\alpha})X^{K}{}_{\delta} + \bar{\theta}_{\alpha}{}^{\mu}I^{\alpha}N^{k}_{\mu} = \bar{D}I^{\delta}X^{k}_{\delta} + \bar{\theta}_{\alpha}{}^{\mu}I^{\alpha}N^{k}_{\mu} \tag{3.5}$$

Equation (3.1a) consequently, assumes the form

$$X^{i}_{\alpha\beta}du^{\beta} + \Gamma_{jk}{}^{*i}X_{\alpha\beta}{}^{JK}du^{\beta} + B^{i}{}_{jk}X_{\alpha}{}^{J}\left[x_{\delta}{}^{K}\bar{D}I^{\delta} + \left(\bar{\theta}_{1\epsilon}{}^{*\mu}{}_{\beta}du^{\beta} + B_{\epsilon}{}^{\mu}{}_{\beta}\bar{D}I^{\beta}\right)I^{\epsilon}\right]N_{\mu}^{KJ} =$$

$$(\bar{\Gamma}_{\alpha}{}^{*}\delta_{\beta}du^{\beta} + B_{\alpha}{}^{\delta}{}_{\beta}\bar{D}I^{\beta})X^{i}_{\delta} + \left(\bar{\theta}_{1\alpha\beta}{}^{*\mu}du^{\beta} + B_{\alpha}{}^{\mu}{}_{\beta}\bar{D}I\beta\right)^{\beta}N_{\mu}{}^{i}$$

As du^{β} and $\bar{D}I^{\beta}$ may be taken arbitrarity, from the above equation, we get the relation

$$X^{i}_{\alpha\beta}\Gamma^{*i}{}_{JK}X^{JK}_{\alpha\beta} + B^{i}{}_{JK}X^{j}\alpha\,\bar{\theta}_{1\epsilon}{}^{*\mu}{}_{\beta}I^{\epsilon}N_{\mu}^{K} = \bar{\Gamma}_{\alpha\beta}{}^{*\delta}X^{i}_{\delta} + \bar{\theta}_{1\alpha\beta}{}^{*\mu}N_{\mu}{}^{i}, \tag{3.6}$$

$$B^{i}{}_{JK}X^{JK}{}_{\alpha\beta} + B^{i}{}_{JK}X^{J}{}_{\alpha}B^{\mu}{}_{\epsilon\beta}I^{\epsilon}N_{\mu}{}^{K} = B^{\delta}{}_{\alpha\beta}X^{i}_{\delta} + B^{\mu}{}_{\alpha\beta}N_{\mu}{}^{i} \tag{3.7}$$

Multiplying equation (3.6) by 1, we obtain

$$\bar{\theta}^{*}_{1\alpha}{}^{\mu}{}_{\beta}I^{\alpha}N_{\mu}{}^{i} = (X^{i}_{\alpha\beta} - X^{i}_{\delta}\bar{\Gamma}^{*}_{\alpha}{}^{\delta}{}_{\beta})I^{\alpha} + \Gamma^{*}_{JK}{}^{i}X^{K}{}_{\beta}I^{J}$$

In what follows, we shell use the following substitution

$$H_{\beta}{}^{i} = \bar{\theta}^{*}_{1\alpha}{}^{\mu}{}_{\beta}I^{\alpha}N_{\mu}{}^{i}, \tag{3.8}$$

Multiplication of (3.6) by $g_{ir}X^{r}{}_{\gamma}$ and $g_{ir}N^{r}_{v}$ respectively yields

$$\bar{\Gamma}^{*}_{\alpha\beta\gamma} = g_{ir}X^{r}{}_{\gamma}(X^{i}_{\alpha\beta} + \Gamma^{*i}_{JK}X^{JK}_{\alpha\beta} + B^{i}_{JK}X^{J}{}_{\alpha}H^{k}{}_{\beta} \tag{3.9}$$

$$\vec{\theta}^{\ v}_{1\ \alpha\ \beta} = g_{ir}N^{r}_{v}(X^{i}_{\alpha\beta} + \Gamma^{*i}_{JK}X^{JK}_{\alpha\beta} + B^{i}_{JK}X^{J}{}_{\alpha}H^{k}{}_{\beta} \tag{3.10}$$

Multiplying equation(3.7)by I^{α}, we obtain $B^{\delta}_{\alpha\beta}I^{\alpha}X^{i}_{\delta} = -B^{\mu}_{\alpha\beta}I^{\alpha}N_{\mu}{}^{i}$,
it is easy to verify that

$$B^{\delta}_{\alpha\beta}I^{\alpha} = 0,\ B^{\mu}_{\alpha\beta}I^{\alpha} = 0 \tag{3.11}$$

Multiplying equation (3.7) by $g_{i\gamma}X^{r}{}_{\gamma}$ and $g_{ir}N_{v}{}^{\gamma}$ and making use of equation (3.11), we obtain

$$B_{\alpha\beta} = B_{JrK}X^{JrK}_{\alpha\beta},\ B^{\gamma}_{\alpha\beta} = B_{JrK}X^{JK}_{\alpha\beta}N^{r}_{v} \tag{3.12}$$

Using equation (3.8) into equation (3.6), we obtain

$$\bar{\theta}^{*}_{i}{}_{\alpha}{}^{\mu}{}_{\beta}N^{r}_{\mu} = X^{i}_{\alpha\beta} + X_{\alpha}{}^{J}(\Gamma^{*i}{}_{JK}X^{K}{}_{\beta} + B^{i}{}_{JK}H^{k}{}_{\beta}) - \bar{\Gamma}_{\alpha\beta}{}^{*\delta}X_{\delta}{}^{i} \tag{3.13}$$

after clculation, we get

$$\bar{\theta}^{*}_{I\ \alpha\ \beta}{}^{\mu}N_{\mu}{}^{i} = \overset{o}{D}_{\beta}X^{i}_{\alpha} = \overset{o\ i}{H}{}_{\beta\alpha} \tag{3.14}$$

Further, we observe that

$$B^{\mu}{}_{\alpha\beta\gamma}N^{i} = \overset{I}{D}_{\beta}x_{\alpha}{}^{i} = \overset{I\ i}{H}{}_{\beta\ \alpha} \tag{3.15}$$

By virtue of equations (3.14), (3.15) and (3.4a), we canclude from equation (3.1) that

$$DX^{i}_{\alpha} = \bar{\Gamma}_{\alpha\beta}{}^{*\delta}du^{\beta} + B^{\delta}_{\alpha\beta}\,\bar{D}I^{\beta})X^{i}_{\beta\alpha}du^{\beta} + {}^{o}H^{i}_{\beta\alpha}du^{\beta} + H^{i}_{\beta\alpha}\,\bar{D}I^{\beta}$$

Similarly, writing $\bar{\bar{\theta}}^{\delta}_{\mu}(d)$ *and* $\bar{\bar{\lambda}}_{\mu}{}^{\nu}(d)$ in(3.1b) as Pfaff's froms in du^{β} and $\bar{D}I^{\beta}$ *we* have by virtue of equation (3.3)

$$\bar{\bar{\theta}}^{\delta}_{\mu}(d) = -\bar{\bar{\theta}}^{*\delta}_{I\ \mu\beta}du^{\beta} - B^{\delta}_{\mu\beta}DI^{\beta} = \bar{\bar{\theta}}^{*\delta}_{I\ \mu\beta}du^{\beta} + \bar{\bar{B}}^{\delta}{}_{\mu\beta}\bar{D}I^{\beta}$$

$$\bar{\lambda}_{\mu}{}^{\nu}(d) = \bar{\lambda}^{*\nu}{}_{\mu\beta}du^{\beta} + \bar{B}^{\nu}{}_{\mu\beta}\bar{D}I^{\beta} \tag{3.16}$$

By Virtue of equations (3.5), (3.8), (3.16) and the relations

$$du^{\gamma} = L\bar{D}I^{\gamma} + u^{\gamma}L^{I}dL - \bar{\Gamma}^{*\gamma}{}_{\beta}du^{\beta},\ (\bar{\Gamma}^{*\gamma}{}_{\beta} = \bar{\Gamma}^{*\gamma}{}_{\alpha\beta}u^{\alpha}) \tag{3.17}$$

$$DI^{K} = X^{K}{}_{\gamma}\bar{D}I^{\gamma} + H^{K}{}_{\gamma}du^{\gamma}$$

the relation (3.1b) assumes the form

$$\partial_{\gamma}N^{i}_{\mu}du^{\gamma} + \partial_{\gamma}N^{i}_{\mu}(L\bar{D}I^{\gamma} + u^{\gamma}L^{I}dL - \bar{\Gamma}^{*\gamma}{}_{\beta}du^{\beta}) + \Gamma^{*i}{}_{JK}{}_{\mu}N^{J}X^{K}{}_{\gamma}du^{\gamma} + B^{i}{}_{JK}N^{J}_{\mu}(\bar{D}I^{\gamma}X^{K}{}_{\gamma} +$$

$$H^{K}{}_{\gamma}du^{\gamma}) = (\bar{\lambda}_{\mu}{}^{*\nu}{}_{\gamma}du^{\gamma} + \bar{B}_{\mu}{}^{\nu}{}_{\gamma}\bar{D}I^{\gamma})N^{i}_{\nu} - (\bar{\theta}^{*\delta}_{I\ \mu\gamma}du^{\gamma} + B^{\delta}{}_{\mu\gamma}\bar{D}I^{\gamma})X^{i}_{\delta} \tag{3.18}$$

Comparing the coefficients of $d\dot{u}$ and $\bar{D}I^{\gamma}$ in (3.18), we have

$$\partial_{\gamma}N^{i}_{\mu} - \partial_{\delta}N^{i}_{\mu}\bar{\Gamma}^{*\delta}{}_{\gamma} + \Gamma^{*i}_{JK}N^{J}_{\mu}X^{K}{}_{\gamma} + B^{i}_{JK}N^{J}_{\mu}H^{K}{}_{\gamma} = \bar{\lambda}_{\mu}{}^{*\nu}{}_{\gamma}N^{i}_{\nu} - \bar{\theta}^{*\delta}_{I\ \mu\gamma}X^{i}_{\delta} \tag{3.19}$$

$$L_{\gamma}\,\partial N^{i}_{\mu} + B^{i}_{JK}N^{J}_{\mu}X^{K}_{\gamma} = \bar{B}_{\mu}{}^{\nu}{}_{\gamma}N_{\nu} - B^{*\delta}{}_{\mu\gamma}X^{i}_{\delta} \tag{3.20}$$

Multiplying equation (3.19) by $g_{ir}N^{r}_{o}$ we get

$\bar{\lambda}^{*}_{\mu}{}^{\phi}{}_{\gamma}$ and $\bar{B}_{\mu}{}^{\phi}{}_{\gamma}$ in the form

$$\bar{\lambda}^{*}_{\mu}{}^{\phi}{}_{\gamma} = g_{ir}N^{r}_{\phi}(\partial_{\gamma}N^{i}_{\mu}\bar{\Gamma}^{*\delta}{}_{\gamma} + \bar{\Gamma}^{*i}_{JK}N^{J}_{\mu}X^{K}{}_{\gamma} + B^{i}{}_{JK\mu}N^{J}H^{K}_{\gamma},$$

$$\bar{B}_{\mu}{}^{\phi}{}_{\gamma} = B_{JrK}N^{J}_{\mu}N^{r}_{\phi}x^{K}_{\gamma} + g_{ir}N^{r}_{\phi}L\,\partial\,yN^{i}_{\mu} = -Lg_{ir}N^{i}_{\mu}\,\partial\,yN^{r}_{\phi}$$

After calulation, we have

$$-\bar{\theta}^{*\delta}_{I\ \mu\gamma}x^{i}_{\delta} = \overset{o}{D}_{\gamma}N^{i}_{\mu} = \overset{o\ i}{L}{}_{\gamma\ \mu} \tag{3.21}$$

in view of equation (3.20), we observe that

$$-B^{\delta}{}_{\mu\gamma}X^{i}_{\delta} = \overset{I}{D}_{\gamma}N^{i}_{\mu} = \overset{I\ i}{L}{}_{\gamma\ \mu} \tag{3.22}$$

In view of the relations (3.16) and (3.21), equation (3.2) takes the form

$$DN^{i}_{\mu} = \overset{o\ i}{L}{}_{\gamma\ \mu}du^{\gamma} + \overset{I\ i}{L}{}_{\gamma\ \mu}\bar{D}I^{\gamma} + (\bar{\lambda}^{*}_{\mu\beta}du^{\beta} + \bar{B}^{\nu}_{\mu\beta}\bar{D}I^{\beta})N^{i}_{\nu}$$

we shall now establish the following relation which shall be used later

$$\bar{\lambda}^{*\nu}_{\mu\beta} = -\bar{\lambda}_{\nu}{}^{*\mu}{}_{\beta},\ \bar{B}_{\mu}{}^{\nu}{}_{\beta} = -\bar{B}_{\nu}{}^{\mu}{}_{\beta} \tag{3.23}$$

From $g_{iJ}N^{i}_{\mu}N^{J}_{\nu} = \delta^{\mu}_{\nu}$ it is easily verified that

$g_{ij}\ N^j_{\nu}\ D\ N^i_{\mu} = -\ g_{iJ} N^i_{\mu} DN^J_{\nu}$

Making use of equations (3.1b) and (3.16), weobtain the following relation

$$\boxed{g_{iJ}\ N^j_{\nu}(\overline{\lambda}^{*\phi}_{\mu\ \beta} du^{\beta} + \overline{B}DI^{\beta})N^i_{\phi} = -g_{iJ}\ N^i_{\mu}(\overline{\lambda}^{*\phi}_{\nu\ \beta} du^{\beta} + \overline{B}^{\phi}_{\nu\beta}\ \overline{D}I^{\beta})\ N^J_{\phi}} \qquad (3.24)$$

References

[1] B.Y. Chen : Geometry of sub manifolds Marcel Dekher. New York 1973

[2] E.T. Devis : Subspaces of Finsler space, proc. London Math Soc, 49 (1945) 13-39

[3] S. Dragonuir : Sub manifolds of Finsler spaces Conf. sem, Math, Uni. Bari 271 (1986) 1-15

[4] S.Dragoniur : Sub manifolds of Finsler spaces, of scaler curvature, Ricerehedi Math Napoli 1987

[5] R.S. Mishra : Union Curve and Hyperasymptotic Bull Cal. Math. Soc. 42(1950) 213-216

[6] K. Nirmala : Curve and invariant associated with a vector field of a Riemannian Vm in relation to a curve in a subspace Vm Proc. Nat. Inst. Sci. India, 29a(1963), 396-406

[7] C.E. Springer : Union curve of hyper Surface, Canad. J. Math 2 (1950), 457-460

Mahesh Chandra
Deptt. of Mathematics
Bareilly College,
Bareilly

29

SOCIAL CONFLICT IN THE PLAYS OF EUGENE O'NEILL 'THE HAIRY APE'

Dr. J. K. Sharma, RAJA

Abstract

Eugene O'Neill is a great writer who has produced a large number of one-act play as well as full length dramas in his account. Most of his plays highlight the tragedy of the dreamers. He is the first American playwright to win a Noble prize in literature. His plays focus on the problems of social conflicts in the society. Most of his plays are full of social conflicts and destruction and hence he is considered a tragic artist. Eugene O'Neill is an American playwright. He wrote materialistic dramas that are associated with elements of symbolism, confusion and melody and scenes of despair and frustration. It is as a result of the impossibility and inaction of the characters that eventually, becomes the tragedy of modern social life. 'The Hairy Ape' is one of the greatest plays in American drama. 'The Hairy Ape' was published in 1922. O'Neill' second creative dramatic phase i.e., during 1920-32. He wrote tragedies but they are different from traditional. The basic theme of his story is man's social conflicts in society and unusually disturbing. His characters are terrified from within and without. This is due to the social conflicts of the society, lack of confidence in self-esteem and power, which ultimately results in a feeling of insecurity. Thus the characters suffer from anguish and fear. For them, life is nothing but a social or impersonal social conflict. They did not consider themselves to be part of the social conflict in the society and hence their emptiness and sense of belonging are deeply mourned in the society of the conflicts. This emotion monitored their natural existence and they were trapped in a violent web of tragic of tragic stress. To get relief from this tragic stress, they start dreaming and try to escape from the reality of life.

Keywords: Social conflict, Yank, Identity, Sense of survival, Society and Environment.

1. Introduction

1.1 Discussion Analysis

The American playwright O'Neill discussed the issue of a person's social conflict and feeling of being involved in the drama 'The Hairy Ape'. This feeling destroys him as well as destroys him. The playwright has also raised the issue of social conflict. Social conflict requires the support of the modern person to his partner and society. Human beings live in society with their peer. All associates have equal rights to live in society. There is always a social conflict going on among being to get respect. Social conflict leads human beings in society for a livelihood. Man does not just win bread but he also has to face social conflict in the society. They need many things for social conflict. These means do not have everything he needs, but he thinks they are helpful. The modern man needs the support of his partner and society. Social conflict occurs when he finds people like him. The term 'Like' refers to their class community.

The American playwright O'Neill discussed the issue in the play “The Hairy Ape” which is the subject of a person's social conflict and identity. This feeling destroys him as well as destroys him. In this case Yank Nayak is a parable. The playwright has also raised the issue of social conflict. The play 'The Hairy Ape' was published in 1922 in O'Neill's second creative playwright stage. The play has two social classes. First class which is rich? They have everything to eat in this life. That is why they are known as Haves and second class which is poor. They do not have enough food to eat. Thus always a social conflict going on among poor people and rich people. The play describes the state of poor people. They are unlike rich people. Miss Douglass is of the rich class and Yank represents the poor people. We find marked contrast between them.

Social conflict is a central theme in the play. If we look at his life, it is not out of the blue, but the American playwright has experienced it himself when his parents moved from one place to another, he himself felt that he was disappointed. As a child this thing affected his mind. When he grew up he saw the failure of American life in terms of economic meaning and religious thing. American was running after a materialistic life that eventually brought frustration because only property or money could not give peace and happiness. On the other hand, religious people also did not believe. In such a situation, man will console around him and the society where he lives. This is all reflected in this play. Social conflict gives a kind of protection; a person tries to achieve social conflict which gives him a feeling of satisfaction. He feels encouraged by his faith. If he fails, he is discouraged and finds his existence fragile. He has to struggle in the absence of it. The main character of the play is “The Hairy Ape “Robert Smith, called Yank. There are many Yankee

people in America. Our hero is working as Yank stoker. He works on a transatlantic liner. He works hard and his condition has not improved. But he is proud of his poor class. He thinks that he belongs to the working class and the class is the basis of the rich class. They think that they are important and without them. The rich will have nothing and they will get nothing.

Yank believes that it is steer or fire. That is why the ship moves. Steel, which stands for Ting all over, and I am steel-steel-steel. He is half naked, and his look is like a Hairy Ape. To this, he remarks, we are better than that. Other workers are also in the same class. So they all feel equality and are happy. But there was a sudden change. A rich woman on the ship is Miss Douglass. She wished to see stoker. She wanted to show sympathy to him, but could not believe her eyes when she saw Yank. He found his "gorilla face and he called her a dirty animal" (O'Neill's Play).

Later on paddy's comment, of course, it was as if he saw a great Hairy Ape running away from the zoo. This is a general attitude for labourers, but Yank takes it personal. He wishes to join the I.W.W. It is the industrial labourer of the world but the voice in the play refers to it as the industrial wreck of the world. The members of this group have different views on the matters which Yank is unable to accept. He wishes to blow up the factory. When the secretary learns about this, he refers to Yank as a 'brainless Ape 'and orders his boys to throw him out of the office. Yank realizes that he does not even belong to that class, as he was thrown into the street. Even the policeman tells him to go away. Everyone pushes him from his position. He eventually goes to a zoo. He makes his works in the zoo. He tells the monkey that they are both form the same club- "Hairy Apes." He considers the monkey to be an animal and that is why he is kept in a cage. However, the monkeys also do not accept their faith. He attacks him. O'Neill describes – with a string, while making fun of the animal, he wraps his giant arms around Yank in a huge hug. Yank's body slips to the floor and he is a deep pain.

Yank realizes that he too does not belong to the monkey class. Even he did not feel like belonged. He asks the important question, Christ, where do I get off, where do I fit. He is a playwright in last states. "The Hairy Ape" at the end but in fact he belongs to the class of death. In this way Yank meets death in search of his identity and social conflict in life. He "represents to them a self-expression, the lost world in which they are the most development person" (The Hairy Ape 173). Another case is also related to the plight of poor people. There are two classes. The first is the 'Haves' class which is rich. They have everything to eat and spent their life. That is why they are known as the rich. The Have-Not's is another one which is poor. They have nothing to eat and spend in their life. That is why they are called Have –Not's.

The play describes the situation of poor people in this case. They are in stark contrast to the rich class. Miss Douglass belongs to rich people and Yank represents poor people. We find the contrast between them marked. The reality of hard work is shown in stoke hall. Their work is difficult and condition is pathetic. His life is short. They are poor and die and are in miserable condition. The rich people and steel hearted. They have no sympathy with the poor, have no understanding. They are more religious, but luck the approach to help the poor, so the poor class is backward. Even someone who tries to come out of a bad situation has to social conflict of interest and like a lonely Yank and in doing so many die but hardly get up. Etta Worthington Opinions: "During the play, Yank moves from the arrogant leader of powerful firemen to the heap of humans, who are physically and morally crushed." There is hardly any change. There is complete contrast between rich and poor. The American playwright also aims to describe social conflict. The class distinction was clearly visible during the different between the two world wars. The idea of Karl Marx changed not only Europe but also America by social conflict. The labour people started a social conflict and raised their voice. They wanted to bring change in their position. Karl Marx argued: "The worker becomes all the poor the more wealth his produces, the more his production increases in power and range. The worker becomes an ever cheaper commodity the more commodities he creates and with the increasing value of the world of things proceeds in direct proportion to the devaluation of the world of man's conflict. Labour produces not only commodities, it produces itself and the worker as a commodity- and does so in the proportion in which it produces commodities generally."Yank is the voice of such people. The first scene of the play has their reflection. Yank criticizes the upper capital class.

He says that they are better than those rich people. His face reflects the anger of the crushed people. The rich people made them like a machine. They have created depressive conditions, but will grow stronger and continue social conflict. Building rich people stood on the working people. The second scene shows the difference between the two classes. Mildred comes from upper class. There is whiteness, cleanliness, comfort and everything is good. Other hand Yank and company face terrible life. His difficult life is described vividly in three scenes. The scene on fifty Avenues again relates to social conflict. Tension in society is

more than social conflict. Everything is impossible for poor people in the society. The poor people think about their livelihood. Yank is the only person who represents the poor people by social conflict. It is a reflection of these activities of social conflict. There is an organization and we discuss about it as well as their work, but Yank is not happy that the way we want to change the other. Yank is the only person who wants to change the society through social conflict but all the people of the poor want to also participate in such social conflict and become a sad figure in search of his respective vehicle. At first he was he in hell i.e. working as a stoke hole where fire and darkness pervaded. His life is a wonder. But there was pride in it. But the fall comes with Mildred's comment. However this meant that general Yank considered it a personal insult. The search for identity begins from there. He tries to see his situation. He goes to Fifth Avenue but finds that he is not there. Even jail does not keep him. The industrial workers of the world do not help him. The last thing in the Hairy Ape cage but that too is not for him. He is thrown from everywhere. His wrath makes it clear that he is angry and deeply disappointed. They considered themselves steel but ironically, steel does not melt and stand.

Yank's search makes them a good great man. He is the hero in this play. He has many problems but he wanted to success his mission by social conflict. A social conflict his faced many difficulties in civilized society. Every society has a lot of social conflict. A social conflict brings pleasure among the poor people. The poor people lead their livelihood by hard work in their life. Yank is such a great person that helps his poor companion's in miserable life by social conflict. But we should not forget Yank's social conflict that ultimately he is the winner of this mission. The poor people have no idea of their class or social conflict. The poor in this mission most distinguish between Yank and Miss Douglass. One of them is in favors of rich society. The rich person lives in society with happiness compared to poor people. They lead luxurious lives with their families. On the other hand poor people live their miserable lives in social life. He did not stop after this but struggle to rise in society. He said that you have to rise in favours of social conflict. You should rise against the rich people and help the poor people of the society. Even his fall increases. He has raised above all the common people as he tried to come out of the prescribed social conflict.

Yank is representation of modern man. Yank describes is not only the American society but also social conflict among the American people. If poor people of American society to social conflict with rich to get their rights in society, they would success in their mission. The contemporary world has become the root cause of snatching away man's social conflict in society. In a social environment, a man is uprooted and alienated. He is an island himself. He wants to be who he is social conflict and confrontation broke out him. His life is apparently still really full of storms, in which he is trapped. The Hairy Ape tackles a very important issue related to capitalism and industrialism that affected the united states of American at the beginning of the twentieth century. In this play we find an alienated protagonist of the lower class who is perceived as a modern tragic hero of the century, and the last feeling of belonging when poverty flourishes is what O'Neill portrays vividly in the drama.

In the last scene of the play, the symbol is visually presented, in the shape of the gorilla in its cage. Eugene O'Neill has made the use of symbolism in the setting of the play, the characters, dialogue, techniques, language etc. The language of the play is also symbolic. It refers to primitive civilization. The phrases and the words as – “filthy beast “and “Hairy Ape” belong to social conflict, etc. are symbolically used in the language.

In The Hairy Ape the playwright has adopted not realistic method, that is though he has used realistic scenes, he has used them for non-realistic purposes. The setting of the opening scenes, for example is realistically presented, but the playwright warns the readers that 'the treatment of this scene, or of any other scene in the play, should by no means be naturalistic. The effect sought after is cramped space in the bowels of a ship, imprisoned by white steel'. The realistic setting has been to create an impression of overcrowding in the way of an expressionist.

2. Conclusion

O'Neill has described social conflict in society. He has used realistic scenes of social conflict in this research paper. We can conclude that he wants to know very well about connection between the capitalist world and social conflict of the poor people. He wants to tell the capitalist people in O'Neill's play how poor people live their lives in this society. Yank attempts to make connection with another to be accepted into society, but never prevails. In the end, he dies alone, still somewhat saturating. Sympathy to him in the audience transports him into a symbolic figure that has chosen to sacrifice his pathetic presence to become a modern tragic hero. “There is a sense of destruction, perhaps more interest than creation, is no longer to show itself impenetrable to the destroyed object” (Sartre). O'Neill does not control the form of the play. O'Neill neither

communicated with the formless nor more extreme expressionist. O'Neill's expressionist art was quite successful in Hairy Ape tackles a very important issue related to capitalism and industrialism affecting the United States in the early twentieth century. In this play we find a main character of the lower class, which is considered the modern tragic hero of the century. What happens to an ordinary man when everything around him, associated with classicism and isolation, and the feeling lost in social conflict are clearly depicted in the clamp of hair when it comes to poverty.

In this way, O'Neill was successful in presenting his subjects very effectively due to the use of social conflict as a technique.

3. References

- Etta, Worthington, 2006, "The Hairy Ape (Criticism)." Answer.Com.
- Eugene O'Neill, 1967, Selected Plays of Eugene O'Neill. New York: Random House.
- O'Neill's Play, 1965, "The Hairy Ape" American literature: An Anthology.
- Karl Marx, 1818, German: Hobs awn, Eric, "Marx Karl Hen rich" Oxford Dictionary of National Biography.
- Jean- Paul, Sartre, 1956, being and Nothingness: a Phenomenological Essay on ontology, Hazel E. Barnes, Trans. New York: Washington Square Press.

Dr. J.K. Sharma
Pre and Head
(English Department)
Baba Mastram Univirsity
Rohtak (Haryana)
121004

Raja
Kinala Tehsil Barwala,
Distt. Hisar (Haryana)
Pin Code: 125112
Mb. 98171-06053

30

डॉ0 धर्मवीर भारती के कथा साहित्य का भाषायी अध्ययन

सुधा गंगवार, डॉ0 आर0एस0 मिश्रा

सारांश –

बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार डॉ0 धर्मवीर भारती का रचना संसार अत्यन्त समृद्व है। साहित्य की विभिन्न विधाओं पर उन्होंने अपनी वेबाक लेखनी चलाई है। उनकी कथाकृतियों में उनके पात्रों की भाशाशैली उनके वातावरण, शैक्षिक स्तर तथा उनके मनोभावों के अनुरूप ही रही है। उनकी कथा–कहानियों में आंचलिकता की छटा भी विद्यमान है जो उनके कथाशिल्प को गहन भावबोध प्रदान करने में सक्षम है।

भारती के कथाशिल्प में संवेदना, मानवता, यथार्थ–अवलोकन, रूमानियत, मूल्य संकट इत्यादि तत्व बिखरे पड़े हैं जो उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व के परिचायक हैं। अत्यन्त सहजता, स्वाभाविकता और सीधे–साधे ढंग से अपनी बात कह देना भारती जी की प्रवृत्ति रही है। यथार्थ को समेटने में उनके शब्द सदैव ही समृद्वरहे हैं यही भावबोध उनकी कथाकृतियों में भी दिखाई देता है। उनके पात्रों की भाशाशैली उनके हृदय के भावों के अर्थवहन में पूर्णतः समर्थ है। अज्ञेय के निम्न उद्गार उनकी भाशा के सम्बन्ध में बहुत कुछ स्पश्ट करते हैं–''भारती ने जो कुछ लिखा–स्वाभाविक, सरस और तन्मयता के साथ लिखा। भारती आज की बेहद पिसती हुई संघर्शपूर्ण, कटु और कीचड़ में बिलबिलाती हुई जिन्दगी में भी अर्थ खोज पाने में समर्थ रहे हैं।''[1]

अज्ञेय का उपरोक्त वक्तव्य उनके कथाशिल्प के विशय में बहुत–कुछ स्पश्ट करता है। भावानुकूल भाशाशैली में भावों को गुम्फित करने में निपुण भारती जी के कथा पात्र अत्यन्त ही सजीव जान पड़ते है। यथार्थ का आग्रह जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ने का उनका सार्थक प्रयास था।

भाशा भावों की जननी है और भाव हमारे हृदय के उद्गार हैं जिनको भारती जी ने अपने कथा साहित्य में अत्यन्त ही सहज ढंग से उतारा है। उनके पात्रों की भाशा भावों को व्यंजित करने की असीमित क्षमता रखती है।

भारती जी अपने पात्रों से अन्तर्मन की गहराइयों से जुड़ने वाले साहित्यकार रहे हैं, परिणामतः उनके समस्त पात्र बोलते हुए से लगते हैं। चाहें उनके पात्र नगरीय क्षेत्र से सम्बद्वहों अथवा ठेठ ग्रामीण अंचल से सम्बन्ध रखते हो। उनके कथा पात्रों का कहने का ढंग अनूठा है जो भारती जी की प्रतिभा को व्यक्त करता है। उनका शब्द भंडार समृद्वहै इसीलिए उनके पात्र मनोभावों को उनका व्यक्त करने की अद्भुत सामर्थ्य रखते हैं।

भारती जी की कथाकृतियों की भाशा के सन्दर्भ में मेरा ध्यान कैलाश जोशी के इस वक्तव्य की ओर जाता है कि–''भारती जी की भाशा में भाव इस प्रकार झलकते हैं जिस प्रकार अंगूर के दानों में रस साफ झलकता हुआ दिखाई देता है। सायास कठिन शब्दों का प्रयोग भारती ने नहीं किया है, वाणी उसकी जिह्वा पर नर्तित है, वाणी को वह जो भंगिमा देना चाहता है, बड़ी सहजता से दे देता है।''[1]

चाहें बिम्ब हो, अलंकारिक शब्दाबली हो अथवा यथार्थ का चित्रण करना हो इनकी भाशाशैली सदैव समृद्वशाली भावों से ओतप्रोत रही है। भाशा तत्सम, तदभव, फारसी, ऊर्दू, अंग्रेजी तथा आँचलिक शब्दों को अपनाकर कथा साहित्य में सम्पन्नता को व्यंजित करती है। भारती जी में नये भावबोध को आत्मसात् करने की सामर्थ्य है तथा भाशा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण उनका कथा साहित्य भावुकूल गति में बहता हुआ देश–काल, वातावरण एवं पात्रानुकूल भाशायी रूप को धारण करता चलता है। पात्रों की मानसिकता के अनुरूप इनकी भाशा बहुरंगी छटा बिखेरती हुई दिखाई पड़ती है। भारती जी ने सूक्ति तथा वर्णनात्मक भाशा शैली का प्रयोग इस प्रकार से किया है कि वे पाठकों के सम्मुख एक सजीव दृश्य सा उपस्थित कर देते है। सूक्तिपरक सशक्त भाशाशैली में वे लिखते हैं कि–''अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाड़ता है विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है।'' भाशाशैली में पात्रानुकूल विभिन्नता की छटा डा0 भारती के कथा साहित्य की समृद्विका आधारभूत प्राण तत्व रहा है। शहरी हों अथवा ग्रामीण उनके समस्त पात्र पूर्णरूपेण अपनी बात को मजबूत ढंग से रखते हुए जान पड़ते हैं। इलाहाबादी ग्रामीण भाशा में भारती जी की भाशा शैली को पुश्ट करता हुआ यह वाक्य–''बुआ जी सुलग उठीं–न गहना न गुरिया, बियाह पक्का कर गये ई कागज के टुकड़े से।''[1]

चाहे भाषा का व्यंग्यात्मक रूप हो अथवा भाषा में यथार्थवाद भारती जी ने ''सूरज का सातवाँ घोड़ा'' में इसे अत्यधिक स्पश्ट रूप में व्यक्त किया है। कहानियों के कलात्मक संयोजन से उन्होंने वक्ताश्रोता–शैली में इस उपन्यास को विकसित किया है। जीवन की वास्तविकता को इस उपन्यास में स्पश्ट रूप से उन्होने व्यंजित किया है।

व्यंग्यात्मक शाशाशैली में भी वे अपनी बात कहने में सफल रहे हैं। भारती जी स्वभावतः कवि रहे हैं इसका प्रभाव भी उनके कथा साहित्य में हमें दिखाई देता है उनके कथा साहित्य में भावना एवं कल्पना की छटा भी विद्यमान है जो उनके स्वभाव के अनुकूल ही है। काव्यात्मक भाशाशैली की छटा भी उनके कथा साहित्य में मिलती है। यथार्थ का वीभत्स वर्णन हो, चाहें भूख एवं अर्थाभाव के कारण जर्जर हुए मनुश्यों की दीनहीन स्थिति भारती जी की भाशा–शैली अधिकाधिक भावबोध को उद्घाटित करने में समर्थ रही है। 'मुर्दों का

गाँव, एक बच्ची की कीमत, आदमी का गोश्त' जैसी कहानियों में भारती जी ने भूख से पीड़ित मानव की विवशताओं का अत्यन्त ही हृदय विदारक वर्णन संवेदनशील भाशाशैली के माध्यम से किया है। भारती जी की कहानियों में जीवन की सच्चाई का चित्रण अत्यन्त ही भावपूर्ण भाशा एवं भावों में व्यंजित हुआ है। जीवन में भूख, गरीबी, बीमारी से संघर्श करता हुआ मनुश्य स्वयं को कितना असहाय समझकर पल–पल उस कश्ट से टूटकर बिखरता जाता है भारती जी ने अपनी तीक्ष्ण दृश्टि से उसे परखने का सफल प्रयास किया है। उनकी भाशाशैली प्रत्येक भाव को व्यंजित करने में पूर्णतः समर्थ रही है। भूख, वात्सल्य तथा मातृत्व के संघर्श को व्यंजित करती कहानी एक बच्ची की कीमत में उनकी भाशा शैली का एक भावुकतापूर्ण वाक्यांश–''उसकी बेटी कमजोरी के कारण बेजान सी पड़ी थी। टोंटी घुमाने की शक्ति उसमें नहीं थी।''[1]

डॉ0 भारती जी ने सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन भी अत्यन्त ही सहज भाव से अपनी कथा कहानियों में किया है। आम जन के दुःखों से सदैव ही उनका हृदय द्रवित रहा है जिसकी व्यंजना उनका कथा साहित्य सदैव ही करता रहा है। जीवन की सच्चाई को उनकी भाशाशैली सहज रूप से उजागर करती हुई जान पड़ती है। वास्तविकता यही है कि उनके पात्र बोलते हुए प्रतीत होते हैं। निम्न वर्ग में रहने वाले जल्लाद की भाशाशैली को व्यक्त करते हुए यह शब्द–''देख औरत जात होकर जवान मत लड़ाया कर। अक्लिल न सऊर चली है सास्तारथ करने।''[2]

भारती जी के अन्दर गजब का आत्म विश्वास रहा है, जिसकी झलक हमें उनकी रचनात्मक में भी मिलती है। उनका लेखन सच्चाई और वास्तविकता को उसके सही रूप में चित्रित कर देता है। 'अगला अवतार' कहानी में ढोंगी साधू की नकली भाशा को उन्होंने किस तरह व्यंजित किया है–''साधक हैं, संसार के उद्वारकर्ता हैं। उन्होंने विश्वास दिलाया कि भगवान का इस संसार में अवतार हो गया है। उन्होंने यह बताते हुए कि वे स्वयं भगवान का रूप हैं, उन दो मित्रों के हिस्से का दूध अपनी प्याली में उड़ेला। मित्र श्रद्वावनत हो गये।''[1] यहाँ पर भारती जी ने आम जन की चेतना को जाग्रत करते हुए छद्म विचारधारा वाले लोगों को बेनकाब किया है। आम जनता को किस प्रकार मूर्ख बनाकर स्वार्थी लोग अपना उल्लू सीधा करते हैं इस उदाहरण में अत्यन्त ही सीधी सपाट भाशाशैली के माध्यम से उन्होने दर्शाया है। भारती जी वास्तविक रूप में शब्द–शिल्पी थे। उनका शब्द भंडार अनुपम है। समाज में घटित प्रत्येक घटनाक्रम को उन्होंने अपने कथासाहित्य का विशय बनाया। भारती जी का शब्द–चयन,समय पात्र तथा परिस्थिति के अनुरूप सदैव विविध मुखी रहा है। वे पाठक के समक्ष एक चित्र–सा उपस्थित कर देते हैं।

भारती जी की भाशा में पर्याप्त सहजता, मधुरता तथा चित्रात्मकता की छटा प्राप्त होती है। दायित्व तथा आस्था की स्थापना तथा सपाटबयानी के सम्पूर्ण कथा साहित्य में दर्शन होते हैं। 'गुलकी बन्नो' कहानी में सत्ती के विरोध को भारती जी ने इन शब्दो में व्यक्त किया है–''अन्दर सत्ती गरज रही थी, बुलाया है तो बुलाने दो। क्यों जाये गुलकी ?अब बड़ा ख्याल आया है।'' [2] एक साधारण वर्ग के जीवन को उन्होंने अत्यन्त ही निकट से देखा है जिसने उन्हें हृदय की गहराइयों से प्रभावित किया है। परिणामतः उनका कथा साहित्य भी उन सब घटनाओं से प्रभावित हुआ। 'सावित्री नम्बर दो' कहानी में सावित्री के मन की स्थिति को मनोविश्लेशणात्मक भाशा शैली के द्वारा व्यक्त किया है–'' तुम्हारे लिए तो कोई तब लड़ा था जब कम–से–कम मौत ने तुम्हें पूरी तरह स्वीकार लिया था सत्यवान, पर मेरे लिए कोई लड़े तो किससे। मेरे लिए तो न जिन्दगी है न मौत।''[1]

'मन की वेदना को व्यक्त करता हुआ उपरोक्त उदाहरण मन के हारे हार है मन के जीते जीत' के भावबोध को चरितार्थ करता हुआ भारती जी के गहन चिन्तन को स्वर प्रदान करता है। पौराणिक कथासूत्र को लेकर उन्होने मन की विरह–बिथा को अत्यन्त ही कारूणिक शब्दावली में वाणी प्रदान की है। शब्द सदैव सामर्थ्यवान रहे हैं और डॉ0 भारती की लेखनी प्रत्येक विधा में अनूठी छाप छोड़ती हुई हमें यह संदेश देती है कि शब्द कभी मरते नहीं हैं, वे अमर हैं।

डॉ0 भारती की भाशा एक प्रवाहमान नदी के समान है जो कि अत्यन्त ही व्यापक स्वरूप में हमें उनके कथा साहित्य में मिलती है। भाषा सहजता और बोधगम्यता लिए हुए है। भाषा में कहीं भी अनावश्यक दुरूहता नहीं मिलती है। उनकी भाशा सहज स्वाभाविक व्यापारों को लेकर चलती है। जहाँ पर आवश्यकता होती है वहाँ पर उनकी भाषा सर्वकालव्यापी, समग्र प्रवाह युक्त शब्दावली का चयन करती हुई उन्हें हिन्दी साहित्य जगत् में अद्वितीय साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

संदर्भ सूची

1. दूसरा सप्तक सम्पादक अज्ञेय पृष्ठ सं0 164
2. कैलाश जोशी धर्मवीर भारती,उपन्यास साहित्य पृष्ठ सं0 46
3. गुनाहो का देवता धर्मवीर भारती पष्ठ सं0 145
4. गुनाहो का देवता धर्मवीर भारती पृष्ठ सं0 71
5. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार एक बच्ची की कीमत कहानी डॉ0 पुश्पा वास्कर पृष्ठ सं0 157
6. चाँद और टूटे हुए लोग डॉ0 धर्मवीर भारती पृ0 सं0 14
7. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार डॉ0 पुष्पा वास्कर पृष्ठ सं0 167
8. बन्द गली का आखिरी मकान डॉ0 धर्मवीर भारती पृष्ठ सं0 22
9. बन्द गली का आखिरी मकान डॉ0 धर्मवीर भारती पृष्ठ सं0 31

शोध निर्देशक
डॉ0 आर. एस. मिश्रा
प्रोफेसर

सुधा गंगवार
मं0 नं0 66ए
ग्रीनपार्क एक्टेशन
बरेली।
मो0–9457608238, 9452214883

31

Cultural Materialism in O' Neill's plays 'The Emperor Jones'

Dr. J. K. Sharma, RAJA

Abstract

This paper identifies Eugene O' Neill's play The Emperor Jones in cultural materialism. O'Neill was known as influence and inspiration of his contemporary events are reflection in his works. He prefers to deal with authentic American culture and background in his cultural materialism. Under the tyranny of the dominant power the main characters of their plays turn into materialism and resist against the authority or control of the dominant system. They struggle for dominant systems, and they develop absolute power in cultural materialism. O'Neill represents the conflict between the dominant power and the main intentions in his selected plays, and his intention to support materialism in cultural and political activities. The Emperor Jones O'Neill describes the situation of Afro-American and challenges the concept of power and authority in white American ideology. The play is particularly prominent in O'Neill's interrelationship of cultural materialism and socio-cultural systems and the main function of cultural materialism to develop the society. The materialist has to isolate such conflict through reading that text. Materialists believe that through communication effective system of society are applied, but always within a social system under tyranny discrimination of dominant power. Some sections of society such as lower class, colour skin, women and rural people are transformed into border circles. The struggle between the dominant power and marginal group of the society is depicted in literary works.

Keywords: Society and Environment, Cultural Materialism, Power, Social and cultural life,

1. Introduction

2. Discussion Analysis

Eugene O'Neill is a great writer who has produced a large number of one-act as well as full length dramas in his account. Most of his plays highlight the tragedy of the dreamers. He is the first American playwright to win a noble prize in American literature. His plays focus on the problems of common people. Most of his plays are full of socio-economical and cultural materialistic and hence he is considered a tragic artist. Eugene O'Neill is an American playwright. He wrote cultural materialistic dramas that are associated with elements of symbolism, confusion and melody and scenes of despair and frustration. It is as a result of the impossibility and inaction of the characters that eventually becomes the tragedy of modern and materialistic life. The Emperor Jones is one of the greatest plays in American dramas. The play "The Emperor Jones" was published in 1920. He wrote materialistic plays but they are different from traditional. His characters are belonging to lower class and capitalist sections. This is due to a complete lack of faith in the cultural materialism, spirituality and power of religion, which eventually resulted in a feeling of insecurity.

Thus the characters suffer from anguish and fear. For them, life is nothing but a mechanical and impersonal process. They did not considered themselves to be part of universe and hence their sense of emptiness and belonging is deeply rooted in their minds. This emotion monitored their natural existence and they were trapped in a violent web of tragic stress. To get relief from the tragic stress, they start dreaming and try to escape from the life of materialism. Eugene O' Neill's play, The Emperor Jones, is based on cultural materialism. According to his view, the text should be considered in its socio-economic context. The playwright of this critical view argues that each literary work is not only concerned with its socio- economic and political contexts, but also highly under their influence. Thus for a better understanding of literary texts, the critic must pay adequate attention to his cultural materialism background. Cultural materialistic believe that the dominions system of society imposes its idea by self-infliction on its member.

The governance system captures only common sense and transforms the minds and ideologies of the people into the objective of the chief and leaves no room for resistance. But there is always atrocity within the social system, discrimination of the dominant power. Some sections of society such as lower class, colour-skinned, women and rural people turn into marginal circles. Gradually the marginal group of the society forms the lower class which seeks to transform the dominant force of the society and marginal group is represented in literary works.

The main function of a cultural materialism is to isolate such conflict through reading the text. O' Neill in his play represents a protest between a group of socio-political

and dominant power. The main characters in these three plays are those who stand against the dominant order of society and reject being social and political groups. O'Neill argues that the dominant system of the society, i.e. capitalism levitates all tyrannical processes within its realm of authority and dominant system reacts against the militant resistance by severe punishment.

O' Neill explores the effect of the social system of oppressors and the exploited through the form, language and content of his plays. He represents the expression of entire people in modern times, In O'Neill's view, cultural materialism can occur in different areas of man. Cultural materialism can be social, political, moral and psychological. The Emperor Jones also depicts the story of an Afro-American through expressionist instruments, who become dictators under the teaching of sycophancy The Emperor Jones's them leads us to United States foreign policy and the history of American racial discrimination in the Caribbean.

Contextual approaches were constructed following traditional approaches and new criticism. The background then goes back to the nineteenth and early twentieth century's when the scholar asked to what extent literary texts were under the influence of the historical, political, economical, philosophical, religious and psychological contexts of their production. An example of the contextualize approach was Marxist criticism which considers the production of literary texts as "the interface of material and socio-economic conditions" (Selden). Classes and economic structures were the special focus of Marxist critics. Marxist views literature in terms of its relationship to society. He has made a major comeback in the last two decades in approaches such as new historicism, cultural materialism and cultural studies. Thus cultural materialism is somehow a modification of Marxism.

Some critics demonstrate that cultural materialism has its purpose in the study of literary works and historical contexts related to historicity, cultural materialism towards the concept of history. Brannigan declares "cultural materialism declares that not only does literature shape history, it also shapes it." There is a biological and inseparable relationship between history and literature. The most famous concept of "the historicity of text and the textually of history" Brannigan in Cultural Materialistic theories reinforces this ides. A cultural study emphasize that any cultural phenomenon is valuable for critical analysis, examining literature as a means of advancing cultural studies but literature is not culturally more important than other practices. There is no difference between literary works and other cultural products. A cultural study uses theories and methods of literary criticism to examine culture in depth through the study of literary studies and other texts.

The last important point about cultural materialism is the idea of how the state of a text affects its reading. Cultural materialism seeks to understand the text as materiality in its process of creation and reception. The expression of cultural materialism as a literary critical method actually refers to 1985 with the cultural studies of Raymond Williams, a good British Marxist critic. He was a member of Wales who reminisced about his life and committed to his defending roots. His discussion is central to the formation of the emerging field of cultural studies in both England and the United States.

Culture is the general state of things, "Latent understanding within historical and material production of works that have historically applied to link but changing categories. I call this situation cultural materialism." (Higgins). Cultural materialism literature consists of two major words: Culture and content. The goal of all cultural critics is to define two terms in cultural materialism according to their cultural and content as two fundamental concepts. He points out that the cultural aspects of the theory involve two meaning: the term analytic refers to the social system studied in the social sciences, and the term assessment refers to art and literature as forms of culture. Jonathon Doll more and Alan Sin field in their book Political Shakespeare (1985) applied Raymond William's theory to a study of Shakespearian drama and defined its parameters in their own terms.

3. Cultural Materialism in the Emperor Jones

The main themes of the Emperor Jones are racism in the American society and the concept of Empire in O'Neill's ideology. O'Neill challenges the White authority and brings the concept of the Empire under questions. Manheim Michael in his book says: "The play calls attention to the social oppression that actually existed in America in 1920." In O'Neill's contemporary society the white people were dominant and the colour skinned persons who received discrimination from the dominant structure were subordinates. O'Neill in this play challenges the concept of Empire. He regards that being powerful had been one of the great dreams of all human being throughout history.

"The Emperor Jones (1920) centres around the character of Brutes Jones, an ex-Pullman porter who has become absolute dictator of a small Caribbean island. He rules ruthlessly and becomes constantly more obsessed with

his own power. Jones suddenly terrified seeks to escape on foot from his castle. But the entire island seems to conspire to bring him to destruction: Bushes seem to become animate, forms appear in the shadows, and the circle of drums closes in. Little by little Jones loses the rationality of the civilized man; he feels himself helplessly slipping back toward his primitive beginnings. At last movement his head, he runs firstly in a circle and wastes his ammunition firing at wraths; at the end of the play even the silver bullet he has saved for himself has been fired. The Emperor Jones demonstrates the narrow line which separates the rational and civilized from the primitive and superstitious, even in civilized man" (Heaney Donald).

Cultural materialism is one of the important movements created in relation to the critical situation of the marginal section of the society. Cultural Materialism tries to observe the interaction between state power and cultural forms. The process of résistance in Cultural Materialism is the result of conflict between nationality and power. His plays were highly influenced by the social, political, cultural and economic aspects of O'Neill's contemporary society and some critics classify all of his plays as having at least two aspects: First, the peculiar features that are limited to American life and thought, and the second which are not limited to time or space, and are rooted in Universal experience of humanity. Selected plays studied in this research paper illustrate all those characteristics, but in their critical investigation cultural materialists are more concerned with characterization of the first type.

O'Neill stated in the Emperor Jones that he advocates cultural materialism in social and political activities in society. O'Neill as an attentive playwright for his socio-political context portrays the ugly picture of the dominant American governance system. The conflict of their central characters represents the debilitating effect of the crashing forces of the capitalists' economic system on human character. The Emperor Jones founded the Caribbean Island which is somehow an unknown and mysterious place for Americans. Its deep forests and the surrounding ocean add to its strangeness. He also proposed his justification for introducing Blackman as his central character. It is impossible for his citizenry to have a black Emperor and blacks are always subordinate to them. O'Neill indirectly shows that this case may be possible at a remote location. This is not important in Emperor Jones because racism has no beginning or end in the United States. To indicate time, he only mentions night; fall, down etc. and indicating the intensity of racism in American history.

One of the objectives of cultural materialism is to separate the influence of the contemporary situation of the playwright time on his works. "There is evidence that reflects contemporary socio-economic conditions of O' Neill's time that influenced his play. "African, Latin America, and Caribbean migrated to North America in the 1900s due to war, political persecution, and economic difficulties." (Shipley). This historical case inspired O'Neill and set in his mind a backdrop for the making of the play. But we see O'Neill as a creative artist looking at the main concern of his time from an innovative point of view. He is in The Emperor Jones rather than reflecting the current theme of his time. The context of migration to the United States refers to the framing of a new and conservative view of the United Nation into a border case for the migration of Afro-American to a Caribbean Island. Although O'Neill is highly influenced by his contemporary events, he never neglects his artistic creation to convey social reality.

Thus, The Emperor Jones with a realistic foundation is decorated with artistic imagination like expressionist devices and stands as O'Neill's more complex work. O'Neill uses the colour white in this play, while the royal palace is everywhere as the inner stage makes the direction clear. The audience room in the Emperor's palace- a spacious, high-ceilinged room with bare, whitewashed walls. The floor is of white tiles. In the rear, to the left of the centre, there is a wide archway on a portico with white pillar. David Krasner states that colour represents, "Jones's belief in the superiority of the white man, black himself tries to intimidate his black subjects with a white colour that is genuinely intimidating, though for the black- skinned. He is completely white in his way." Conversely, the forest in which he walks is described in the fire state direction of scene two as, "the wall of darkness that divides the world." There he discovers a white stone that makes the place where the food is buried: Where are the white stones, the white stones?

But he is surprised to see not one but many such stones: "But how does all this white stone come, what else is there to grab the tin box hide all wrapped in oil-cloth?" Krasner explains; so while the whiteness he had wanted earlier now fails him and reveals his authentic nature as both political and racial profiling the blackness of the forest engulfs him in a mortal embrace. Jones's journey is through the whitewash that wraps him in his palace in the darkness of his inner personality. The contrast between their white cultured exterior and black savoury interior never reaches a stable harmony.

Some realistic aspects are revealed along with the aesthetic aspect of Emperor Jones O' Neill who captured his ideas one of these points is the effect on the minds of all members of society, even those of marginal colour-a person with skin, clearly announcing his idea of power by Jones, O' Neill said, the chief did under education and learned a strategy to rule from him. Gesner argues; "When the Brutes came to power, they actually followed the pattern of tyrannical rule head on." If Jones was blamed for the tyranny of his natives, he would have to whip up of the ideology again.

4. Conclusion

Cultural materialism tries to observe the interaction between social power and cultural forms, and how the theatre has been used as a prime location for the representation of social power. In cultural materialism the process of resistance is the outcome of the struggle between marginality and power. The social, political, cultural and economical aspects of O'Neill's contemporary society had affected highly his plays. Some critics categorized his entire plays that all of them at least contain dual aspects first those peculiar features which are limited to American life and thought, and second those feature that are not limited by either time or place and are rooted in the universal experiences of mankind, In the selected plays studied in the thesis all of those features are illustrated, but cultural materialists in their critical investigations are more concerned with the first type features.

The social struggle of his central characters represents the debilitating effects of the crashing forces of the capitalistic economic system upon the human character. The setting of The Emperor Jones is the Caribbean Island which somehow is unknown place for Americans. Its deep forest and surrounding ocean increase its strangeness. O'Neill based on his intended meaning, which is the improbable condition that an Afro-American can become an Emperor, prefers to set a Caribbean Island, or in his term a far-away land, as his play's setting. O'Neill by his setting satisfies the audiences of 1910s who legitimated the racial discrimination. He also proposes his justification for his presumptuousness to put a Blackman as his central character. For his citizens it is impossible that a black could be an Emperor. For them the blacks are always subordinate. O'Neill indirectly shows that this matter just could be possible in the remote place. This is not important in The Emperor Jones because there is no beginning or end for racism in the United States. Through night voyage the various locations appear in front of Brutes Jones that each of them refers to one epoch of the history that the harsh oppression and discrimination exist in it significantly. Jones is an embodiment of that original violation of America's communal spirit, the introduction of slavery to a fresh and vital land.

In this way, O'Neill succeeded in presenting his subjects very effectively due to the use of social materialism as a technique.

5. References

- Brannigan, Johan, 1998, New Historicism and Cultural Materialism. New York: ST. Martin Press.
- Davis Krasner, 2005, A Companion to Twentieth Century American Drama, New York: Crown Publication.
- Dolimore, J. and Sin field, 1994, A Political Shakespeare: Essay in Cultural Materialism, London: Manchester University press.
- Heaney Donald, 1958, an American Literature, Barron's Educational Series.
- John, Ed. Gesner, 1946, Eugene O'Neill: a Collection of Critical Essays, New York: Englewood Cliffs.
- Johan, Higgins, 1999, Raymond William Literature, and Cultural Materialism, New York: Rutledge Press.
- Joseph, Shipley, 1956, Guide to Great Plays, Washington D.C.: Public Affairs Press. Manheim Michael, 1998, the Cambridge Companion to Eugene O'Neill, New York: Cambridge University Press.
- Roman, Selden, 1993, Contemporary Literary Theory, London: Harvester Wheatheaf.

Dr. J.K. Sharma
Pre and Head
(English Department)
Baba Mastram Univirsity
Rohtak (Haryana)
121004

Raja
Kinala Tehsil Barwala,
Distt. Hisar (Haryana)
Pin Code: 125112
Mb. 98171-06053

32

हिंदी सिनेमा में चित्रित कृषक–व्यथा

डॉ0 राजेश कुमार

सारांश –

एक अत्यंत प्रभावशाली कला विधा होने के साथ–साथ सिनेमा आम जनता तक सरलता से पहुँचने वाला एक माध्यम भी है। अपने विकास के साथ–साथ सिनेमा भारतीय समाज का आईना बनता चला गया द्य समाज के अन्य पक्षों के चित्रण के साथ–साथ हिंदी फिल्मकारों ने कृषक–जीवन व उसकी व्यथा को केंद्र में रखकर अनेक उत्तम फिल्मों का निर्माण किया द्य अनेक हिंदी फिल्मों ने कृषक–व्यथा के मार्मिक किंतु यथार्थ चित्रण द्वारा जनसामान्य का ध्यान एवं संवेदना कृषक वर्ग के प्रति आकर्षित की है द्य इसके साथ ही हिंदी सिनेमा ने कृषक वर्ग में नव निर्माण का उत्साह व सुखद भविष्य की आशा का संचार भी किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में किसान–व्यथा को उद्घाटित करने वाली हिंदी फिल्मों का विवेचन किया गया है

शोध–पत्र :–

सिनेमा अभिव्यक्ति का एक ऐसा साधन है जिसने अपने उद्भव काल से ही जनमानस को अपने सम्मोहन–पाश में बाँध लिया था। सिनेमा दृश्य–काव्य का ऐसा विकसित रूप है जिसने विज्ञान की मदद से चतुर्दिक विस्तार पा लिया है। दृश्य–काव्य का मूल आधार लोकधर्मी रहा है। इसी कारण सिनेमा भी अपने प्रारंभिक काल से ही लोक–सरोकारों से जुड़ा रहा है। हॉलीवुड स्टार जोकिंग फिनिक्स के अनुसार, षसिनेमा का मनोरंजन से अधिक बड़ा एक उद्देश्य है। मूक लोगों को आवाज देना है द्य इस माध्यम का सबसे बड़ा तोहफा इसकी दुनिया बदलने की ताकत है ।[1] सिनेमा के आलोचक इसकी हजार बुराइयों, हजार ख़ामियों का उल्लेख करते हुए भी इस तथ्य को नकार नहीं पाते कि हिंदी सिनेमा ने हमारे जीवन–मूल्यों, हमारी सनातन संस्कृति एवं मानवता के कल्याणकारी पहलुओं को देश–विदेश में प्रचारित–प्रसारित किया है। इस संदर्भ में जवरीमल्ल पारख लिखते हैं, फिल्मों का निर्माण भौतिक उत्पाद ही नहीं, एक सांस्कृतिक उत्पाद भी है। इसके द्वारा लोगों तक आनंद ही संप्रेषित नहीं होता, विचार भी संप्रेषित होते हैं।[2] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिंदी सिनेमा ने समाज के प्रत्येक वर्ग की आशा–आकांक्षा, सुख–दुख, हर्ष–उल्लास आदि को पर्दे पर उतारा है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी अर्थव्यवस्था की मेरुरज्जु कृषि ही हैय और यह कृषि व्यवस्था आधारित है कृषक पर द्य देश की जनसंख्या का लगभग तीन चौथाई प्रत्यक्ष रूप से किसान है अथवा किसानी से जुड़े हुए लोग हैं द्य हिंदी सिनेमा ने भारतीय कृषक–जीवन को इसकी समस्त व्यथाओं एवं विडंबनाओं के साथ दर्शाया है द्य हिंदी सिनेमा के आरंभिक काल में ही ऐसी फिल्में बनने लगी थीं जिनमें किसानों के आर्थिक शोषण को दर्शाया गया द्य सन् 1925 में महाराष्ट्र फिल्म कंपनी, कोल्हापुर के बैनर तले बाबूराव पेंटर के निर्देशन में बनी मूक फिल्म श्सावकारी पाशश में लालची साहूकार किसानों का आर्थिक शोषण करता है ताकि वे खेती–बाड़ी छोड़कर मील में मजदूर बन जाएँ द्यङ इस फिल्म को 1936 में पुनरू सवाक् बनाया गया द्य कृषक जीवन पर आधारित पहली बोलती फिल्म श्किसान कन्याश (1937) मानी जाती है द्य मोती बी.गिडवानी द्वारा निर्देशित इस फिल्म के लेखक थे प्रसिद्ध कथाकार सहादत हसन मंटो । फिल्म एक सीधे–सादे किसान रामू की कहानी है जिस पर एक शोषक जमीदार गनी की हत्या का आरोप लगता है द्य यह भारत में निर्मित पहली रंगीन फिल्म थी द्य सन् 1938 की फिल्म श्धरती माताश में क्रांति एवं सामूहिक कृषि को आधार बनाया गया ।

निर्देशक ख़्वाजा अहमद अब्बास ने कृषक जीवन पर फिल्म श्धरती के लालश (1946) का निर्माण किया द्य यह फिल्म विजय भट्टाचार्य के नाटक श्नवान्नश और कृष्ण चंदर की कहानी श्अन्नदाताश पर आधारित थी । फिल्म में बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि में कृषकों की दुर्दशा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया द्य किसान साहूकार, जमींदार और शासनऋसभी के शोषण से त्रस्त हैं द्य जमींदार की नजर किसानों की जमीन पर है, साहूकार की उनके अनाज पर तथा शासन की अपने लगान पर किसानों के इस शोषण का चित्रण उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद भी करते हैं, "जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया जब लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो ।"4 फिल्म श्धरती के लालश में साहूकार बीस रुपये प्रति मण के भाव से अनाज खरीद कर चालीस रुपये प्रति मण बेचता है, अर्थात् दोगुना मुनाफा कमाता है जबकि किसान को फसल की लागत तक नहीं नहीं मिल पाती। कोढ़ में खाज की भाँति बार–बार पड़ने वाले अकाल किसान के जीवन को और भी नारकीय बना देते हैं द्य भूख और गरीबी से तंग आकर किसान अंततः गाँव छोडने पर मजबूर होते हैं, गिरते–पड़ते शहर पहुँचते हैं और वहाँ भिक्षावृत्ति करते हैं। भूख और बीमारी इनकी आत्मा को इस प्रकार कुचल देती है कि वे इंसान से जानवर बन जाते हैं द्य वे लोगों द्वारा फेंके गए रोटी के टुकड़ों की तरफ लपकते हैं परंतु उन्हें भी कुत्ते झपट लेते हैं। इस स्थिति पर फिल्म के एक पात्र मास्टर दयाल

व्यंग्य करते हैं, सुनते हैं इंसान पहले बंदर था, अब तरक्की करते–करते कुत्ता हो गया है, कुत्ता ।5 कृषकों के प्रति लोगों की संवेदनहीनता को देखकर लगता है कि सारी दुनिया अंधी हो गई है, बहरी हो गई है य न कोई उनकी विपदा देखता है, न कोई उनकी फरियाद सुनता है। ऐसे समय में बाजार में दो ही चीजें बिकती हैं, श्चावल और औरत'___

भूखा है बंगाल, भूखा है बंगाल,
जिन हाथों ने मोती रोले, आज वही कंगाल
कोठियों में दबाए बैठे बणिए सारा नाज,
सुंदर नारी, भूख की मारी बेचे घर–घर लाज ।6

ऐसे गीतों के माध्यम से किसानों की अकथ–व्यथा को वाणी दी गई है। कामरेड ख़्वाजा अहमद अब्बास अपनी समाजवादी विचारधारा को सशक्त ढंग से चित्रित करते हैं___

तुमको क्या तुम रंग महल में ऐश करो, आराम करो,
भूख के मारे मरते हैं, मर जाने दो
जिनके हाथों से खेत की मिट्टी, सोना बन के फलती थी,
आज उन्हें आवारा फिर कर, जी के टुकड़े खाने दो ।7

फिल्म के क्लाइमेक्स में किसानों में कुछ जागृति आती है ।वे गाँव लौटते हैं और आपदाओं से मुक्ति हेतु सामूहिक कृषि का विकल्प तलाशते हैं। तेरा–मेरा खेत के स्थान पर सब का खेतश की बात करते हैं। वस्तुतः यह एक ऐसी फिल्म थी जिसने आगे आने वाले फिल्मकारों को सामाजिक यथार्थ को पहचानने की एक नई दृष्टि प्रदान की द्य इसी दृष्टि से संपृक्त होकर विमल राय ने श्दो बीघा जमीनश जैसी यथार्थवादी फिल्म का निर्माण किया द्य ख़्वाजा अहमद अब्बास द्वारा ही निर्देशित फिल्म श्राहीश (1952) में आसाम के चाय–बागानों में काम करने वाले कृषकों–श्रमिकों के शोषण को दर्शाया गया है । यह फिल्म अंग्रेजी उपन्यासकार मुल्कराज आनंद की रचना श्टू लीव्स एंड बड पर आधारित है । कहानी का नायक रमेश अपने अंग्रेज नियोक्ताओं के इशारे पर चाय बागान में काम करने वाले कृषकों–श्रमिकों का शोषण करता है। परंतु अंत में उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है तथा वह अंग्रेज नियोक्ताओं के विरुद्ध विद्रोह कर उठता है ।

सन् 1946 में ही चेतन आनंद ने मैक्सिम गोर्की की कथा श्द लोवर डैप्थ्सश पर आधारित श्नीचा नगरश का निर्देशन किया द्य इस फिल्म में पहाड़ पर रहने वाले धनी जमीदार द्वारा नीचे बस्ती में रहने वाले गरीब किसान–मजदूरों के शोषण को चित्रित किया गया था द्य धनी एवं निर्धन वर्ग की जीवन शैली के चित्रण द्वारा फिल्मकार ने वर्ग–वैषम्य को अत्यन्त कुशलतापूर्वक दर्शाया है द्य फिल्म के अंत में किसान–मजदूरों के नैतिक साहस के आगे धनी जमींदार की पराजय आशा एवं आदर्श की द्योतक है।

बिमल राय द्वारा निर्देशित श्दो बीघा जमीनश (1953) पूंजीवादी अर्थतंत्र के शोषक–चक्र में घिरे हुए एक ऐसे किसान की त्रासद कथा है जो अपनी जमीन को बचाने के लिए संघर्ष करता है द्य यह एक ऐसी यथार्थवादी फिल्म है जिसे हिंदी सिनेमा में मील का पत्थर माना जाता है। हिंदी में प्रेमचंद के अमर उपन्यास रंगभूमि के बाद भूमि अधिग्रहण को लेकर यदि कोई महान् रचना है तो वह दो बीघा जमीनश ही है।ं यह फिल्म दो बीघा जमीन के एक टुकड़े पर खेती करने वाले छोटे–से किसान शंभू महतो के संघर्ष एवं व्यथा का जीवंत चित्रण करती है । शंभू महतो की जमीन का यह टुकड़ा उस जमीन के मध्य में पड़ता है जहाँ एक पूंजीपति एक मील स्थापित करना चाहता है । यह पूंजीपति जमींदार के माध्यम से इस जमीन को हथियाना चाहता है द्य शंभू महतो ने जमींदार से जमीन पर कर्ज लिया हुआ है, इसलिए जमींदार शंभू से स्पष्ट कह देता है कि या तो वह तीन महीने में उसका सारा कर्ज उतार दे नहीं तो वह उसकी जमीन पर अपना अधिकार कर लेगा ।

शंभू महतो के अनुसार जमींदार का ब्याज सहित कुल कर्ज पैंसठ रुपये बनता है। जब वह यह कर्ज चुकाने जमींदार के पास जाता है तो जमींदार का मुंशी शंभू महतो पर दो सौ पैंतीस रुपये आठ आने का कर्ज बता देता है द्य कुल साठ रुपये का कर्ज दो साल में दो सौ पैतीस रुपये आठ आने हो जाता है द्य शंभू महतो हतप्रभ रह जाता है। वह जमीदार के अन्याय के विरुद्ध अदालत में अपील करता है, परंतु हार जाता है। अदालत उसे तीन महीने में जमींदार का कर्ज चुकाने का आदेश देती है। कर्ज ना चुकाने पर उसकी जमीन नीलाम कर दिये जाने का फरमान सुना दिया जाता है द्य स्पष्ट है कि अपनी जमीन को बचाने के लिए उसे हर हाल में जमींदार का कर्ज चुकाना पड़ेगा । दो बीघा जमीन पर खेती करने वाले किसान की काश्त अत्यंत छोटी होती है एवं उसके साधन अत्यन्त सीमित, किन्तु किसान की एक मर्यादा होती है एक पत होती है । डॉ0 पुष्पपाल सिंह के अनुसार, "यह किसान मजदूर से किसी प्रकार भी बेहतर जीवन नहीं जीता किन्तु एक ठसक होती है कि वह मजदूर न होकर श्महतोश है।9 इसी मर्यादा की रक्षा के लिए शंभू महतो को पैसे चाहिए द्य पैसे कमाने के लिए वह कलकत्ता चला जाता है और वहाँ हाथ–रिक्शा चलाता है। परंतु अथक परिश्रम करने के बाद भी वह अपनी जमीन नहीं बचा पाता और अंततः उस जमीन पर मील खड़ी हो जाती है। गोदान के होरी की भांति दो बीघा जमीन का शंभू महतो भी अपनी मरजाद को, अपनी जमीन को नहीं बचा पाता ।

फिल्म के अंत में शंभू महतो उस किसान का प्रतीक बनकर उभरता है जिसके भाग्य में उसके खेत की एक मुट्ठी मिट्टी भी नहीं, जिसे वह अपने माथे से लगा सके। फिल्म में उस यथार्थवादी स्थिति को दर्शाया गया है जिसमें पूंजीवादी व्यवस्था किसानों की जमीन के साथ–साथ उनकी आत्मिक शक्ति को भी चकनाचूर कर देना चाहती है। किसान की आत्मिक शक्ति बड़ी से बड़ी विपत्ति में

भी उसे मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित रखती है द्य वह शंभू महतो जो अपनी जमीन को बचाने की खातिर दुनिया–जहान की ख़ाक छान रहा है, चोरी या बेईमानी का एक रुपया भी नहीं ले सकता द्य जब उसका बचवा किसी की पॉकेट मारकर पचास रुपये लाता है तो वह उसे पीटता है और रोते हुए कहता है, तूने किसान का बेटा होकर चोरी की।10 शंभू महतो की इस बेबसी का उल्लेख करते हुए राजकुमार केसवानी लिखते हैं, बेटे को मारता हुआ शंभू असल में उन हालात पर वार करता हुआ महसूस होता है जो एक मेहनतकश और ईमानदार इंसान को दुनिया की तमाम बदकारियों में शामिल होने के लिए मजबूर करते हैं।11 किसान की यह चिर–स्थायी जीर्णावस्था उसके आत्मसम्मान को भी समाप्त कर देती है द्य फिल्म के नायक बलराज साहनी ने पूरी सच्चाई के साथ एक गरीब, शोषित, कर्जदार किसान की त्रासदी को अपने अभिनय द्वारा दर्शकों के सामने रख दिया है द्य ष्बलराज साहनी को गरीब किसान की भूमिका में देखना यह ऐसा ह्रदयस्पर्शी अनुभव है जिसकी छाप आप आजन्म नहीं मिटा सकते । कलकत्ता की निर्मम सड़कों पर रिक्शा खींचता हुआ झुलसा चेहरा अपनी संपूर्ण छटपटाहट के साथ पचासों साल बाद भी हमारी आँखों के सामने आकर खड़ा हो जाता है ।[12]

दो बीघा जमीनश के बाद कृषक जीवन की विडंबना एवं शोषण का यथातथ्य मार्मिक चित्रण करने वाली फिल्म है श्मदर इंडिया। यह महबूब ख़ान द्वारा निर्मित औरत (1940) का ही रीमेक है ।महबूब ख़ान ने औरत की कहानी नोबेल पुरस्कार विजेता लेखिका पर्ल एस. बक की दो कहानियों द गुड अर्थएवं द मदर के मेल से तैयार की थी। फिल्म मदर इंडिया को कृषक जीवन का दृश्य महाकाव्यश कहा जाता है द्य फिल्म में कृषक–शोषण का आधार एक कृषक–विधवा सुंदर चाची द्वारा अपने बेटे की शादी हेतु लाला सुखीलाल से ऋण के रूप में लिए गए चंद रुपये हैं द्य रुपयों की गारंटी के रूप में लाला चाची की जमीन गिरवी रख लेता है द्य विधवा चाची नहीं जानती कि वह बही पर केवल अँगूठा नहीं लगा रही वरन् पीढ़ी–दर–पीढ़ी शोषण करने का पट्टा लाला को दे रही है द्य उसे क्या पता कि इस अंगूठे के आधार पर लाला हर वर्ष उसकी फसल का तीन चौथाई हड़पता रहेगा द्य उस अनपढ़ को क्या पता कि लाला उसका अँगूठा ही काटकर रख लेगा और फिर, श्जिसके पास अँगूठा, जमीन भी उसकीश के आधार पर निरंतर उसका शोषण करता रहेगा तथा अंत में जमीन भी हड़प लेना चाहेगा। अँगूठा लगानेवाले की पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं परंतु ऋण चुकता नहीं हो पाता ।

सुंदर चाची का बेटा रामू कर्ज और गरीबी की दोहरी मार सहता है और अन्तत अपाहिज और लाचार होकर घर से निकल जाता है य शायद आत्महत्या करने के लिए द्य उसके बाद उसकी पत्नी और बेटे भी इसी कर्ज और गरीबी में पीसते हैं । महबूब ख़ान ने औरत और मदर इंडिया में किसानों के साथ हो रहे इस अन्याय और शोषण के बरक्स एक विद्रोह की भावना को जन्म दिया है। बिरजू इसी विद्रोह का प्रतीक है जो अन्याय और शोषण की आग में तपकर एक डाकू बन जाता है तथा लाला सुखीलाल जैसे महाजनों को समूल नष्ट कर देना चाहता है।

मदर इंडिया देश की आजादी के दस वर्ष बाद के ग्रामीण जीवन एवं समाज का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है द्य यह फिल्म जितनी उस समय प्रासंगिक थी उतनी ही आज भी है द्य अशिक्षा, गरीबी, लाचारी, कर्ज एवं कुदरत के कहर के बीच मिट्टी में खुद को मिट्टी करता हुआ किसान और उसका परिवार जैसा उस समय था, कमोबेश वैसा ही आज भी है। ऋण के चंगुल में फंसकर आज भी हजारों किसान आत्महत्या करते हैं।[1]ङ छह दशक बाद भी आप श्मदर इंडियाश की कहानी में आज का किसान ढूँढ सकते हैं। पीड़ित–शोषित किसान के जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ–साथ श्मदर इंडियाश में राधा के चरित्र के माध्यम से एक कृषक–स्त्री के अड़िग साहस एवं संघर्ष को भी पर्दे पर रूपाकार दिया गया है द्य

सन् 1959 में कृष्ण चोपड़ा ने प्रेमचंद की कहानी दो बैलों की कथा के आधार पर श्हीरा मोती नाम से फिल्म बनाई। इस फिल्म में दर्शाया गया है कि यदि कोई किसान जमीदार को अपना बैल बेचने से मना कर देता है तो जमीदार किस प्रकार उस किसान को प्रताड़ित करता है। अभिनेता–निर्माता दिलीप कुमार ने श्मदर इंडिया के बरक्स फिल्म गंगा जमुना (1960) बनायी। इसमें भी श्मदर इंडिया की भाँति शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले किसान की दुखांत गाथा गायी गई है। प्रेमचन्द के कालजयी उपन्यास गोदान पर इसी नाम से सन् 1963 में फिल्म बनी। कृषक–शोषण पर केन्द्रित होते हुए भी यह फिल्म कृषक कके प्रति दर्शक की संवेदना नहीं जगा पायी। इसके पश्चात् मनोज कुमार निर्मित उपकारश (1967) में कृषक जीवन एवं उसकी विडंबनाओं का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत किया गया । दिन–रात ख़ून–पसीना एक करने के बाद भी जब किसान कुछ नहीं कमा पाता तो वह खेती–बाड़ी से विमुख हो जाता तथा शहर जाकर छोटी–मोटी नौकरी अथवा व्यवसाय करने की सोचता है। महाजन एवं जमींदार किस प्रकार भोले–भाले किसानों से सस्ते दामों पर अनाज खरीद कर उसकी जमाखोरी एवं कालाबाजारी करते हैं, इसका यथार्थ चित्रण इस फिल्म में किया गया है।

फिल्म धरती कहे पुकार के (1969) भी कृषक जीवन पर आधारित है । इसमें महाजनों द्वारा दिए गए ऋण के कुचक्र में फँसे लाखों किसान अपनी जमीन छुड़ाने के लिए शहर में काम करने आते हैं परंतु उनमें से अधिकतर नाकाम ही रहते हैं और उनकी जमीनें महाजनों द्वारा हड़प ली जाती हैं अथवा नीलाम कर दी जाती हैं। कृषक के स्वाभिमान का उल्लेख करते हुए फिल्मकार कहता है कि "जो किसान दुनिया का पेट पालने के लिए दिन रात मेहनत करता है अगर उसे दो वक्त की रोटी का ताना दिया जाए तो वह कैसे सहन

करेगा ।"14 श्उपकारश् तथा श्धरती कहे पुकारश् के जैसी फिल्मों में किसान की गरीबी पारिवारिक–विघटन एवं अलग्योझे का कारण भी बनती है ।

सत्तर के दशक में बननेवाली फिल्मों में भी किसानों के शोषण एवं अत्याचार को दर्शाया गया। श्याम बेनेगल ने अपनी पहली ही फिल्म अंकुर (1973) में जमींदार द्वारा एक गरीब किसान पर किए जानेवाले अत्याचारों का मार्मिक चित्रण किया। फिल्म के अंत में एक छोटा बच्चा जमींदार के घर पर पत्थर फेंकता है, जिससे उसके घर की खिड़की का काँच चटक जाता है द्य इस दृश्य द्वारा निर्देशक ने प्रतीकात्मक रूप में दर्शाया है कि नई पीढ़ी के मन में शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह का अंकुर स्थापित हो गया है और वह हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध खड़ी होने लगी है। श्याम बेनेगल की दूसरी फिल्म शनिशांतश् (1975) में असंतोष का यह अंकुर एक संगठित विद्रोह का रूप ले लेता है। इन दोनों ही फिल्मों का मूल भाव यह है कि कृषक वर्ग अपने उत्पीड़न का विरोध किए बिना उससे मुक्ति नहीं पा सकता द्य श्वेत क्रांति के जनक और गुजरात में नेशनल डेयरी डेवलपमेंट कॉरपोरेशन के अध्यक्ष पी.कुरियन पर बनी मंथन (1976) में निर्देशक श्याम बेनेगल ने सहकारिता की शक्ति को प्रदर्शित किया द्य इसमें उन्होंने शोषक वर्ग के अत्याचारों के चित्रण के साथ–साथ सहकारिता के रास्ते में आने वाली अन्य बाधाओं जैसे जातिवाद, अस्पृश्यता और अंधविश्वास को भी दर्शाया है ।

जे.पी. दत्ता ने फिल्म गुलामी (1985) के माध्यम से जमींदारी शोषण, अस्पृश्यता एवं जातिवाद पर करारा वार किया गया है । नायक रणजीत सिंह चौधरी जमींदारी के विरुद्ध खड़े होने हेतु किसानों को जागृत करता है, गाँव छोड़कर जा रहे किसानों को रोकता है तथा कर्ज न चुकाए जाने पर जमींदार के नौकर को किसानों के हल–बैल खोल ले जाने से रोकता है । फिल्म के अंत में वह जाबर गैंग के साथ मिलकर गाँव पर हमला बोलता है तथा अपने ऊपर हुए अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए महाजनों को चुन–चुनकर लूटता और मारता–पीटता है। परंतु शोषण से मुक्ति का सपना अपनी आँखों में संजोए हुए ही रणजीत सिंह शहीद हो जाता है द्य अंतिम दृश्य में डूबते सूरज की पृष्ठभूमि में रणजीत सिंह की पत्नी मीरा अपने नवजात शिशु के साथ दिखाई देती है तो रणजीत सिंह के सपने के पूरा होने की आशा का एक बिंब उभारता है द्य षशिक्षक से बागी बने राजस्थान के एक दलित किसान के वास्तविक जीवन संघर्ष का आधार लेकर बनी फिल्म श्गुलामीश् को जाति–ग्रस्त भारत में वर्ग संघर्ष की गतिशीलता समझने में पाठ्यपुस्तक की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है।15

आशुतोष गोवारिकर द्वारा निर्देशित एवं अमीर खान द्वारा अभिनीत–निर्मित लगान (2001) देश के एक ऐसे गाँव के किसानों की कहानी है जिनके गुजर–बसर का एकमात्र साधन खेतीबाड़ी ही है । लगान 19वीं सदी के अंतिम वर्षों की कहानी है, जब देश पर अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेज किसानों से उनकी उपज का एक भाग लगान के रूप में लेते थे । किसानों से यह लगान स्थानीय राजा वसूलता था तथा इसमें से एक भाग अपने पास रख कर बाकी अंग्रेजों को दे देता था द्य चंपानेर गांव के किसान भी जी तोड़ मेहनत करके, अपना पेट काटकर किसी प्रकार लगान अदा करते थे

भारत में कृषि मुख्यतरू वर्षा पर निर्भर रही है द्य वर्षा न होने पर किसान यह लगान अदा नहीं कर पाते थे द्य चंपानेर के इलाके में पिछले साल भी कम बारिश हुई थी और इस साल भी अब तक बारिश नहीं हुई । ऐसे में जब अंग्रेज वहाँ के राजा पूर्ण सिंह के माध्यम से दुगना लगान वसूलने का आदेश जारी कर देते हैं तो किसानों पर मुश्किलों का पहाड़ टूट पड़ता है।लगान माफ करवाने के लिए किसान अंग्रेजों की उस शर्त को भी मानने के लिए बाध्य हैं जिसके अनुसार उन्हें अंग्रेजों से क्रिकेट मैच जीतना हैय यह जानते हुए भी कि उन्हें क्रिकेट का क ख ग भी नहीं आता । पराधीन भारत में किसानों के जीवन की यह कितनी बड़ी विडंबना रही है कि वे धरती का सीना चीर कर बीज बोते, सिंचाई करते, कटाई करते, अनाज निकालते और उसे अंग्रेजों की हथेली पर धर देते द्य भारी–भरकम लगान की इस विभीषिका से त्रस्त कृषक की व्यथा का चित्रण मनोज कुमार ने अपनी फिल्म शहीद (1965) में भी किया है

देकर अपना ख़ून–पसीना तूने फसल उगाई
आँधी देखी तूफां झेले, बिपदा सभी उठाई
फसल कटी तो ले गए जालिम, तेरी नेक कमाई
लूट गया माल तेरा, लुट गया माल ओए
पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए

सन् 2009 में प्रदर्शित फिल्म किसान में पंजाब के किसानों की व्यथा को प्रकट किया है । यह फिल्म दर्शाती है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों, गांवों के सरपंचों, पूँजीपतियों एवं भूमाफियाओं के चक्रव्यूह में फँसा किसान किस प्रकार अपनी जमीन बेच रहा है। फिल्म श्दयालश् नामक एक किसान पर केंद्रित है जो अपने एक पुत्र को किसान तो दूसरे को वकील बनाना चाहता है, ताकि वह कानून की सहायता से अपनी उस जमीन को बचा सके जिसने उसके बुज़ुर्गों को रोजी–रोटी दी है। "यहाँ फिल्मकार ने कृषि व्यवस्था को अन्य की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है।...यह फिल्म पराजित और हताश किसानी जीवन में एक नया स्वर भरती है ।"17 दिलीप कुमार, मनोज कुमार टाइप फिल्मों की भाँति यहाँ भी एक आदर्शवादी सामाजिक मैलोड्रामा रचा गया है।

अनुषा रिजवी और महमूद फारूकी द्वारा निर्देशित फिल्म पीपली लाइव (2010) में मध्य प्रदेश के किसानों की व्यथा चित्रित है। यह दो किसान भाइयों नत्था और बुधिया की कहानी है, जिन्हें खेती से कुछ नहीं मिल पाता। उन्होंने सुन रखा है कि सरकार आत्महत्या करनेवाले किसान के परिवार को एक लाख रुपये मुआवजा देती है। उन्होंने जमीन गिरवी रखकर बैंक से कर्ज लिया

हुआ है । कर्ज न चुकाने पर उनकी जमीन नीलाम हो सकती है । इस स्थिति पर बुधिया कहता है, कैसी मुश्किल से बाबा–बाप की जमीन बचा के रखी थी, वह ससुरी हाथ से जाय रही है।... हमारा बस चलता तो अपनी जान देकर जमीन बचा लेते।18 अब उनके सामने एक ही रास्ता बचा है आत्महत्या । दोनों भाई आत्महत्या के लिए एक–दूसरे को उकसाते हैं द्य अंततः नत्था द्वारा आत्महत्या करना तय किया जाता है द्य इसके पश्चात् शुरू होता है मीडिया एवं प्रशासन का हुल्लड़ तथा राजनीतिक छल– छद्म का खेल द्य इस हुल्लड़ से तंग आकर बेचारा नत्था मीडिया व प्रशासन की नजर से छिपकर मजदूरी करने शहर चला जाता है। अंततः यहाँ भी एक किसान मजदूर बन जाता है । संस्कृति–मंत्री से जब पूछा जाता है कि किसानों की आत्महत्या किस प्रकार रुक सकती है, तो वह कहता है, "इंडस्ट्रलाइजेशन से किसानों की आत्महत्या रुक सकती है।19 अर्थात् आत्महत्या से बचने के लिए किसान का मजदूर बन जाना नितांत आवश्यक हो गया है। किसान की इस लाचारी और व्यथा पर अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंकनेवाले मीडिया, प्रशासन और राजनेताओं के छद्म चरित्र का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण फिल्मकार ने किया है। प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक अजय ब्रहात्मज के अनुसार, "फिल्म शानदार है जो रोंगटे खड़े कर देती है।20 यह फिल्म उस व्यवस्था के मुँह पर करारा तमाचा है जिस व्यवस्था में मर चुके किसान के लिए तो मुआवजा है परन्तु जीवित के लिए नहीं ।

फिल्म कड़वी हवा (2017) कर्ज के चंगुल में फँसे किसानों की करुण–कथा है। यह फिल्म तथाकथित आधुनिक एवं विकासशील भारत में कृषक की दशा का यथार्थ चित्रण करती है द्य यह दर्शाती है कि प्रकृति एवं जलवायु की विभीषिका झेल रहे किसान किस प्रकार बैंकों द्वारा कर्ज के चक्रव्यूह में फंसा लिए जाते हैं तथा फिर कर्ज की अदायगी के लिए उन पर अनेकशरू दबाव डाला जाता है द्य अंततः अनेक किसान मजबूर होकर आत्महत्या कर लेते हैं द्य अपने कर्जदार बेटे को आत्महत्या जैसा भयानक कदम उठाने से रोकने के लिए एक अंधा–वृद्ध पिता बैंक लोन रिकवरी एजेंट से सांठगांठ करता है और उसे बताता है कि किस कर्जदार किसान ने अपना ट्रैक्टर या पशु बेचा है तथा किसके पास पैसा आया है। रिकवरी एजेंट उस किसान को धर दबोचता है तथा बलात् लोन की रिकवरी करवाता है। भूख और गरीबी किस प्रकार एक कृषक से उसकी अंतरात्मा का गला घुँटवाकर उसके ही गाँववालों का अहित करवाती है, इसका अत्यंत मार्मिक चित्रण फिल्म में किया गया है। इस पूंजीमूलक व्यवस्था में एक भुक्तभोगी कृषक करे भी तो क्याऋ

"खेतों का पानी पी गई, संसद डकार कर,
कंधे पे ले के कुदाल, बता हम जाएँ कहाँ । 21

यह फिल्म जलवायु परिवर्तन और उसके विनाशकारी प्रभाव को भी रेखांकित करती है, जिससे राजस्थान के महुआ क्षेत्र के सूखाग्रस्त किसान भी दुखी हैं और उड़ीसा के बाढ़–ग्रस्त क्षेत्र का बैंक लोन रिकवरी एजेंट भी द्य वस्तुतः किसान के साथ–साथ बैंक लोन रिकवरी एजेंट भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है द्य बाढ़ ने उसका घर–बार उजाड़ दिया है द्य किसान द्वारा कर्ज चुका देने पर उसे कुछ रुपये कमीशन के रूप में मिल जाते हैं।

उपर्युक्त फिल्मों के अतिरिक्त गाँधी (1982), पार (1984), टारगेट(1994), स्वदेश (2004), चक्रव्यूह (2012) आदि फिल्मों में भी कृषक–जीवन की पीड़ा एवं व्यथा का अंकन किया गया है ।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि हिंदी सिनेमा ने कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए उसकी संपूर्ण व्यथा दुख कठिनाइयों एवं विषम परिस्थितियों के साथ–साथ उसके उत्साह, जोश एवं स्वाभिमान के साथ–साथ परिश्रम करने की प्रवृत्ति को समाज के सामने एक आदर्श के रूप में रखा है। श्जय जवान,जय किसानश के नारे को बुलंद करते हुए हिंदी सिनेमा ने किसान की आवाज में आवाज मिलाई है

ये नारा है मेहनतकश का और सबसे बड़ी सच्चाई है
जिसे खाकर तन–मन उजला हो मेहनत की वही कमाई है
अब संकट की कोई बात नहीं काले बादल छँट जाएँगे
अस्सी करोड़ बाजू मिलकर भारत के भाग जगाएँगे 22

निष्कर्षतः

हम कह सकते हैं कि हिंदी सिनेमा ने कृषक–शोषण एवं तज्जन्य कुंठाओं, संतापों, बेचौनियों, अतृप्ताओं, निर्लक्ष्य कामनाओं एवं अनिश्चित भविष्य का यथार्थपरक एवं मार्मिक चित्रण किया है।

संदर्भ संकेत : –

1. प्रीतीश नंदी, दैनिक भास्कर (अभिव्यक्ति), रोहतक संस्करण, 20 फरवरी 2020, पृ. सं. 4.
2. जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ. सं. 48, उद्धृत – साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंध, ले. नीरा जलक्षत्रि, प्र. शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, सं. 2015, पृ. सं. 159.
3. Ashok Raj] 1st Nov- 2009, Hay House Inc- PP 196] ISBN:978&93&813 98&02&9 Retrieved 13 June] 2015- (Translated by me)
4. मुंशी प्रेमचंद, गोदान, प्र. सरस्वती प्रेस दिल्ली, पेपरबैक संस्करण, पृ. सं. 100.
5. फिल्म श्धरती के लाल (1946), संवाद लेखक – ख़्वाजा अहमद अब्बास।
6. फिल्म धरती के लाल (1946), गीतकार – अली सरदार जाफरी, प्रेम धवन, नेमीचन्द जैन द्य
7. उपर्युक्त।
8. जितेंद्र बिसारिया, शहिंदी सिनेमा में प्रतिरोध की संस्कृति : दलित

और हाशिए का समाजश, संक. हिंदी सिनेमा रू बिंब–प्रतिबिंब, संपा. महेंद्र प्रजापति, प्र. शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, सं. 2015, पृ. सं. 55.
9. गोदान : कृषक से मजदूर बनने की त्रासद महागाथा, ले. पुष्पपाल सिंह, संक. गोदान का महत्व, संपा. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र, प्र. सुमित प्रकाशन इलाहाबाद, पंचम संस्करण 2014, पृ.सं. 104.
10. फिल्म श्दो बीघा जमीनश (1953), संवाद लेखक – पॉल महेंद्रा
11. राजकुमार केसवानी, दैनिक भास्कर (आपस की बात), रोहतक संस्करण, 7 जुलाई 2018 , पृ. सं. 3.
12. प्रहलाद अग्रवाल, शहिंदी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, प्र. साहित्य भंडार इलाहाबाद, द्वि. सं. 2013, पृ. सं. 578.
13. एन.सी.आर.बी. की श्एक्सीडेंटल डेथ एंड सुसाइड रिपोर्ट के अनुसार खेती पर निर्भर 28 लोग प्रतिदिन आत्महत्या कर लेते हैं सन् 2019 में 10281 किसानों ने आत्महत्या की
14. फिल्म श्धरती कहे पुकार के , संवाद लेखक – बी.आर. इशारा
15. फिल्म गुलामी (1985), विकीपीडिया : द फ्री इनसाइक्लोपीडिया
16. फिल्म शहीद (1965), गीतकार – प्रेम धवन
17. अनिल कुमार, श्21वीं सदी के प्रथम दशक की हिंदी फिल्मों में किसान जीवन, संक. अपनी माटी ई–पत्रिका, वर्ष–4, अंक–25, अप्रैल– सितंबर 2017.
18. फिल्म श्पीपली लाइवश (2010), संवाद लेखिका – अनुषा रिजवी
19. उपर्युक्त
20. om hindi-krishijagran-com
21. उद्धृत – 21वीं सदी के प्रथम दशक की हिंदी फिल्मों में किसान जीवन ले. अनिल कुमार, संक. श्अपनी माटी ई–पत्रिका, वर्ष–4, अंक–25, अप्रैल–सितंबर 2017.
22. फिल्म उपकार (1967), गीतकार – गुलशन बावरा

डॉ0 राजेश कुमार
सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
रोहतक
Email : drrajeshgautam2020@gmail-com
चलभाष : 9896321474

33

C-CONFORMAL TRANSFORMATION OF FINSLER SUBSPACE

Priya Sethi, Gargi Sharma

Abstract:

In this project, We study Generalized Frame or g-frame in Hilbert Spaces. The basic definition of g-frames and different types of g-frames have been given. Synthesis operator, Analysis operator and Frame operator have also been defined. The necessary and sufficient condition for a sequence to be a g-Bessel sequence has been given. The characterization of g-frame with respect to its g-frame operator has also been given. Further, We study the stability of g-frames in Hilbert Spaces. Finally, We give the result regarding the Stability of g-Bessel sequence in Hilbert Spaces.

Notations

$\mathbb{N}$: The set of Natural Numbers.

$\mathcal{B}(\mathcal{H},\mathcal{H}_n)$:Space of bounded linear operator fron $\mathcal{H}$ to $\mathcal{H}_n$.

$\mathcal{H}$: Hilbert Space

T : Linear operator on $\mathcal{H}$

T*: Adjoint operator of T

$\|x\|$: Norm of $x \in \mathcal{H}$

$< \cdot , \cdot >$: Inner Product

$l_2(\mathbb{N})$: The space of square summable sequence on $\mathbb{N}$

$\sigma(S)$: Spectrum of S

In the last ten decades, Fourier transform has been major tool in analysis. But in signal analysis it has a drawback as it hides in its phase information concerning the moment of emission and duration of a signal. This gap was filled by Dennis Gabor[23] in 1946. He formulated a fundamental approach to signal decomposition in terms of elementary signal. In 1952, Duffin and Schaeffer[19] introduced frames for Hilbert spaces on the basis of theory developed by Gabor. The fundamental notion of Gabor for signal processing was abstracted by them. They defined the following definition of frame:

Definition 1.1[14] A sequence $\{h_n\}$ in a Hilbert space $\mathcal{H}$ with inner product $< \cdot , \cdot >$ is said to be frame for $\mathcal{H}$ if $\exists$ two constants A and B with $0 \leq A \leq B \leq \infty$ such that

$$A\|h\|^2 \leq \sum \|<h, h_k>\|^2 \leq B\|h\|^2 \quad \text{for all } x \in \mathcal{H}$$

'A' is said to be the lower frame bound and 'B' is said to be the frame bound for the frame $\{h_k\}$. These bounds are not unique. The optimal lower frame bound is supremum over all lower frame bounds and the optimal upper frame bound is infimum over all upper frame bounds for the frame $\{h_k\}$.

But this idea of Duffin and Schaeffer did not generate much general interest for the researcher, It took more than three decades to realize importance and potential of frames. In 1986, a paper was published by Daubechies, Grossman and Meyer[16], the theory of frames were reintroduced. They found that frames can be used to find series expansion of functions in $L^2(\mathbb{R})$ which are similar to the expansion using orthonormal basis and yet preserve the main features of the signal such as its energy and allows stable reconstruction. On this development , frames began to be more widely studied.

Theory of frame is new mathematical discipline which has developed more interest in applied mathematics as well as in theoretical way over the last decades. Frames are similar to basis but lacks uniqueness. So every basis is a frame but every frame need not to be a basis and yet embers of frames serve as building blocks and are able to fully recover a vector of the space. The main property of frames which makes the useful in their redundancy, that is, vector in the space can have infinitely many representation with respect to the frame, but each vector have one natural representation given by the frame coefficient. Impractical application, representation of signal using frame is better than basis expansion, as representation of signal using frame depends among the coefficients of over completevectors which has better stability in the presence of noise, quantization as well as great freedom of design. Also one important role of frame is its robustness. That is, by spreading our information over wide range of vectors we are better able to sustain loses and still have an accurate reconstruction.

Frames are main tool for use in Signal and Image processing, Signal detection, Optics, Sampling Theory, Time frequency analysis, study of Besov Spaces as well as filter banks. Besides these traditional applications several new applications have been developed such as frame are now used to mitigate the effect of loses in small packet based communication system and hence improved the robustness

and to design high rate constellation with full diversity in multiple antenna code design. Frame are also used in geophone and geophysics, wireless sensor network and in the physiological structure of visual and hearing system. So, theory of frames has broad spectrum of researchers who are doing research in field of biology, engineering, physics with background in harmonic analysis. For nice and comprehensive introduction of frames for Hilbert spaces one may refer [2,4,9,13,15,16,19,29].

In the present project we shall study Generalized frame for Hilbert spaces. Also we shall study various results which shows characterization of g- frames in terms of an operator and many properties.

Preliminaries:

The following Lemmas will be used in subsequent sections:

Lemma 2.1 The following statement regarding a formal series $\sum_n x_n$ in a Banach space are equivalent

1. $\sum_n x_n$ is weakly unconditionally Cauchy.
2. There is a $C > 0$ s.t. for any $(t_n) \in l_\infty \text{Sup}_n$ $\text{Sup}_n \| \sum_{k=1}^{n} t_k x_k \| \leq C \sup_n |t_n|$
3. For any $(t_n) \in C_0$; $\sum_n t_n x_n$ converges.

$\mathbb{N}$

Lemma 2.2 Let X be a Banach space. Then in order that each series $\sum_n \in \mathbb{N}$ in X with $\sum |x^* x_n| < \infty$ for each $x^* \in X^*$ be unconditionally convergent, it is both necessary and sufficient that X contains no copy of C_0.

Lemma 2.3 If $U : X \to X$ is bounded and $\| 1 - U \| < 1$, then U is invertible and $U^{-1} = \sum_n \in \mathbb{N} (1-U)^k$. Furthermore $\frac{\|U\|^{-1}}{1-\|I-U\|} \leq 1$

Lemma2.4 The spectrum of the symmetric operation A lies in the closed interval [m(A) , M(A)] of the real axis, the bounds m(A) and M(A) belong to σ(A). If λ is nor real for the Resolvent operator $R_\lambda = (\lambda I - A)^{-1}$ the estimate $\| R_\lambda \| \leq \frac{1}{|\text{Im } \lambda|}$ is valid.

Generalized Frame Or G-frame

Throughout this project, $\mathcal{H}$ and K are Hilbert Spaces and $\{\mathcal{H}_n : n \in \mathbb{N}\}$ is a sequence of Hilbert spaces. $B(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n)$ is a collection of all bounded linear operators from $\mathcal{H}$ to $\mathcal{H}n$.

Definition 3.1 A sequence $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is said to be Generalized frame or simply a g-frame for $\mathcal{H}$ with respect to $\{\mathcal{H}_n : n \in \mathbb{N}\}$ if $\exists$ two constants A and B with $0 \leq A \leq B \leq \infty$ such that $A \|x\|^2 \leq \sum \|\Theta_n x\|^2 \leq B \|x\|^2$ for all $x \in \mathcal{H}$

'A' is said to be the lower g-frame bound and 'B' is said to be the upper g-frame bound. The optimal lower g-frame bound is supremum over all lower g-frame bounds and the optimal upper g-frame bound is infimum over all upper g-frame bounds.

Value Addition

1. g-frame is said to be tight if both the lower bound and upper bound are equal i.e. A=B.
2. A g-frame is said to be Parseval if both the lower bound and upper bound are equal to 1 i.e. A=B=1.
3. A g-frame is said to be exact g-frame if it ceases to be a g-frame whenever any of its g-frame is removed.
4. $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is said to be a g-frame sequence, if it is a g-frame for $\overline{span} \{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n \in \mathbb{N}}$.
5. $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is said to be a g-Bessel sequence with bound B if we have only the upper inequality i.e. $\sum_{n \in \mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 \leq B \|x\|^2$.

Notation For each sequence $\{\mathcal{H}_n\}_{n \in \mathbb{N}}$, The space $(\sum_{\in \mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$ is defined by $\{\{x_n\}_{n \in \mathbb{N}} : x_n \in \mathcal{H}_n, n \in \mathbb{N}$ and $\sum_{n \in \mathbb{N}} \|x\|^2 \leq +\infty\}$ is with inner product $\langle \{x_n\}, \{y_n\} \rangle = \sum_{n \in \mathbb{N}} \langle x_n, y_n \rangle$.

Then, $(\sum_{\in \mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$ is a Hilbert space.

Lemma 3.2 Let $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ be a g-Bessel sequence for $\mathcal{H}$ with the Bound B. Then for each sequence $\{x_n\}_{n \in \mathbb{N}} \in (\sum_{\in \mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$, the series $\sum_{n \in \mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)$ is unconditionally convergent.

Proof: Let J be a subset of $\mathbb{N}$ with finite cardinality, then

$$\begin{aligned} \|\sum_{n \in \mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)\| &= \sup_{\|y\|=1} |\langle \sum_{n \in \mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n), y \rangle| \\ &= \sup_{\|y\|=1} \sum_{n \in \mathbb{N}} |\langle \Theta_n^*(x_n), y \rangle| \\ &= \sup_{\|y\|=1} \sum_{n \in \mathbb{N}} |\langle x_n, \Theta_n y \rangle| \\ &\leq (\sum_{n \in \mathbb{N}} \|x_n\|^2)^{1/2} \sup_{\|y\|=1} (\sum_{n \in \mathbb{N}} \|\Theta_n y\|^2)^{1/2} \\ &\leq (\sum_{n \in \mathbb{N}} \|x_n\|^2)^{1/2} \sqrt{B} \|y\| \\ &= (\sum_{n \in \mathbb{N}} \|x_n\|^2)^{1/2} \sqrt{B} \end{aligned}$$

By Lemma 2.1 and 2.2, $\sum_{n \in \mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)$ is weakly unconditionally Cauchy, therefore, unconditionally convergent in $\mathcal{H}$

Definition 3.3 Consider a g-frame $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ for $\mathcal{H}$. Then the operator $T : (\sum_{\in \mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2 \to \mathcal{H}$ defined by

$$T(\{x_n\}_{n \in \mathbb{N}}) = \sum_{n \in \mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)$$

is said to be synthesis operator for $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$. And the Adjoint T* of synthesis operator T is termed as Analysis operator.

In the next theorem, the formula for T* will be obtained.

Theorem 3.4 Consider a g-frame $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ for $\mathcal{H}$. Then the operator $T^* : \mathcal{H} \to (\sum_{\in \mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$ is analysis operator.

Proof: For all sequence $x \in \mathcal{H}$ and $\{y_n\}_{n \in \mathbb{N}} \in (\sum_{\in \mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$

Consider $\langle T^* x, \{y_n\}_{n \in \mathbb{N}} \rangle = \langle x, T\{y_n\}_{n \in \mathbb{N}} \rangle$

$$\begin{aligned} &= \langle x, \sum_{n \in \mathbb{N}} \Theta_n^*(y_n) \rangle \\ &= \sum_{n \in \mathbb{N}} \langle x, \Theta_n^*(y_n) \rangle \\ &= \sum_{n \in \mathbb{N}} \langle \Theta_n x, y_n \rangle \end{aligned}$$

$= < \{\Theta_n x\}, \{y_n\} >$

So, $T^*x = \{\Theta_n x\}_{n\in\mathbb{N}}$

Theorem 3.5 A sequence $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-Bessel sequence for $\mathcal{H}$ with bound B if and only if the synthesis operator $T : (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2 \to \mathcal{H}$ defined by $T(\{x_n\}_{n\in\mathbb{N}}) = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)$ is well defined bounded operator with bound $\sqrt{B}$.

Proof : Let $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ be a g-Bessel sequence. Then using Lemma 3.1, i.e,

If $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-Bessel sequence for $\mathcal{H}$ with bound B. Then for each sequence $\{x_n\}_{n\in\mathbb{N}} \in (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$, the series is unconditionally convergent.

Therefore T is well defined operator and $\|T\| \le \sqrt{B}$.

Conversely, consider T is well defined bounded operator with $\|T\| \le \sqrt{B}$.

Let $J \subseteq \mathbb{N}$ with finite cardinality, then for each $x \in \mathcal{H}$

$$\begin{aligned}\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 &= \sum_{n\in\mathbb{N}} < \Theta_n x, \Theta_n x > \\ &= \sum_{n\in\mathbb{N}} < \Theta_n^* \Theta_n x, x > \\ &= < \sum_{n\in\mathbb{N}} < \Theta_n^*(\Theta_n x), x > \\ &= < T\{\Theta_n x\}, x > \\ &\le \|T\| \, \|\{\Theta_n x\}\| \, \|x\| \\ &= \|T\| \, (\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2)^{1/2} \|x\|\end{aligned}$$

On squaring both sides, we get

$\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^4 \le \|T\|^2 (\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2) \|x\|^2$

$\Rightarrow \sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 \le \|T\|^2 \|x\|^2$

Therefore, $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-Bessel sequence for $\mathcal{H}$ with bound B.

Definition 3.6 Suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame for $\mathcal{H}$. We define operator $T : (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2 \to \mathcal{H}$ as $T(\{x_n\}_{n\in\mathbb{N}}) = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)$ and $T^* : \mathcal{H} \to (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$ as $T^*(\{x\}) = \{\Theta_n x\}_{n\in\mathbb{N}}$. Now, we define $S = TT^*$ where $S : \mathcal{H} \to \mathcal{H}$ s.t $Sx = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*(\Theta_n x)$. S is called g-frame operator of $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$.

And, $$\begin{aligned}< Sx, x > &= < \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Theta_n x, x> \\ &= \sum_{n\in\mathbb{N}} <\Theta_n^* \Theta_n x, x> \\ &= \sum_{n\in\mathbb{N}} <\Theta_n x, \Theta_n x> \\ &= \sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2\end{aligned}$$

Therefore,

$$A<x, x> \le <Sx, x> \le B<x, x>$$

i.e.

$$AI \le S \le BI$$

Since $S = TT^*$

$$\begin{aligned}\|S\| &= \|TT^*\| \\ &= \|T\| \, \|T^*\| \\ &= \|T\|^2 \\ &\le B\end{aligned}$$

Therefore S is bounded.

Now, Since $AI \le S \le BI$

$\Rightarrow B^{-1}AI \le B^{-1}S \le B^{-1}BI$

$\Rightarrow -B^{-1}AI \ge -B^{-1}S \ge -I$

$\Rightarrow I - B^{-1}AI \ge I - B^{-1}S \ge I - I$

$\Rightarrow 0 \le I - B^{-1}S \le (B - A/B) I$

$$\begin{aligned}\|I - B^{-1}S\| &= \sup_{\|x\|=1} |< (I - B^{-1}S)x, x >| \\ &\le \sup_{\|x\|=1} |< (B - A/B)Ix, x >| \\ &= \sup_{\|x\|=1} |< (B - A/B)x, x >| \\ &= (B - A/B) \sup_{\|x\|=1} |< x, x >| \\ &= (B - A/B) < 1\end{aligned}$$

$\Rightarrow$ S is invertible.(using lemma 2.3)

Therefore, S is posi tive , bounded and invertible operator.

As $Sx = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*(\Theta_n x)$

$x = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Theta_n S^{-1} x$ where $x \in \mathcal{H}$

Theorem 3.7 A sequence $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-frame for H if and only if the mapping $T : (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2 \to \mathcal{H}$ defined by $T(\{x_n\}_{n\in\mathbb{N}}) = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*(x_n)$ is well defined , bounded and onto.

Proof : Firstly let us suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame fo $\mathcal{H}$.Consider $S : \mathcal{H} \to \mathcal{H}$ where $S = TT^*$

From previous theorem S is invertible.

$\Rightarrow TT^*$ is invertible.

$\Rightarrow$ T is onto.

Conversely, Let T is well defined bounded operator and onto also.

By theorem 3.6, $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-Bessel sequence for $\mathcal{H}$

Therefore,

$T^*x = \{\Theta_n x\}_{n\in\mathbb{N}}$ for all $x \in \mathcal{H}$.

As T is onto,

$\exists\, T^{\dagger} : \mathcal{H} \to (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$ s.t. $TT^{\dagger} = I_{\mathcal{H}}$

$\Rightarrow (T^{\dagger})^*(T)^* = I_{\mathcal{H}}$ for all $x \in \mathcal{H}$

$$\begin{aligned}\|x\|^2 &\le \|(T^{\dagger})^*\|^2 \, \|T^*x\|^2 \\ &= \|T^{\dagger}\|^2 \|T^*x\|^2 \\ &= \|T^{\dagger}\|^2 \sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2\end{aligned}$$

$\Rightarrow \{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame for $\mathcal{H}$ having lower g-frame bound $\|T^{\dagger}\|^{-2}$ and upper g-frame bound $\|T\|$

Theorem 3.8 A sequence $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame for $\mathcal{H}$ if and only if $S : \mathcal{H} \to \mathcal{H}$ defined by $Sx = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Theta_n x$ is well defined , bounded and onto.

Proof : Suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame for $\mathcal{H}$.

As S is well defined, bounded and invertible. (proved in 3.7)

$\Rightarrow$ S is onto.

Conversely,

Let us suppose S is well defined, bounded and onto mapping.

As S is positive i.e. $< Sx, x > \ge 0$ for all $x \in \mathcal{H}$.

And $R_{S^{\perp}} = N(S)$

$\Rightarrow$ S is one-one

$\Rightarrow$ S is invertible.

So, $0 \in \sigma(S)$.

Let $C = \inf_{\|x\|=1} < Sx, x >$

By theorem 2.4 , $C \in \sigma(S)$
$\Rightarrow C > 0$
Therefore,
$\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 = \langle Sx, x\rangle \geq C \|x\|^2$ for all $x \in \mathcal{H}$
And
$\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 = \langle Sx, x\rangle \leq \|S\| \|x\|^2$ for all $x \in \mathcal{H}$
$\Rightarrow \{\Theta_n : \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-frame for $\mathcal{H}$.

Value addition

1. Let $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ be a family of operators, then T is well defined, bounded and onto if and only if S is well defined, bounded and onto.

Definition 3.9 A sequence $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is said to be g-complete if $\{x : \Theta_n x = 0, n \in \mathbb{N}\} = \{0\}$.
A sequence $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is said to be g-orthogonal basis for $\mathcal{H}$, if following conditions are satisfied.

a) $\langle \Theta_n^* y_n, \Theta_m^* y_m\rangle = \delta_{n,m}\langle y_n, y_m\rangle$; $n,m \in \mathbb{N}$ and $y_n \in \mathcal{H}_n$, $y_m \in \mathcal{H}_m$

b) $\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 = \|x\|^2$, $x \in H$

Theo rem 3.10 If $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-frame for $\mathcal{H}$ then $\overline{\{\Theta_n^*(H_n)\}_{n\in\mathbb{N}}} = \mathcal{H}$.
Proof : Let $x \in \mathcal{H}$ and $x \perp \text{span}\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}}$
Then for all $n \in \mathbb{N}$
$\langle \Theta_n x, y\rangle = \langle x, \Theta_n^* y\rangle = 0$ where $y \in \mathcal{H}_n$
$\Rightarrow \langle \Theta_n x, y\rangle = 0$
$\Rightarrow \Theta_n x = 0$ for all $n \in \mathbb{N}$
Since, $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-frame for $\mathcal{H}$, then $x = 0$.

Theorem 3.11 $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-complete if and only if $\overline{\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}}} = \mathcal{H}$.
Proof : Firstly suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-complete. As $\overline{\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}}} \subseteq \mathcal{H}$
We will show, if $x \in \mathcal{H}$ and $x \perp \text{span}\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}}$ then $x = 0$.
Let $x \in \mathcal{H}$ and $x \perp \text{span}\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}}$
Since, for any $n \in \mathbb{N}$, $x \perp \Theta_n^*(\mathcal{H}_n)$
Then, $\|\Theta_n x\|^2 = \langle x, \Theta_n^*\Theta_n x\rangle = 0$ for all $n \in \mathbb{N}$
$\Rightarrow x = 0$
As, $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-complete.
Conversely, Let $\overline{\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}}} = \mathcal{H}$.
Let $x \in \mathcal{H}$ and $\Theta_n x = 0$ for all $n \in \mathbb{N}$,
then for each $y \in H_n$, $\langle \Theta_n x, y\rangle = \langle x, \Theta_n^* y\rangle = 0$
Hence $x \perp \text{span}\{\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)\}_{n\in\mathbb{N}} = \mathcal{H}$
$\Rightarrow x = 0$
$\Rightarrow \{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-complete.

Theorem 3.12 Suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame for $\mathcal{H}$ and $\langle \Theta_n^* y_n, \Theta_m^* y_m\rangle = \delta_{n,m}\langle y_n, y_m\rangle$; $n,m \in \mathbb{N}$ and $y_n \in \mathcal{H}_n$, $y_m \in \mathcal{H}_m$. Then $\{\Theta_n : \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-orthonormal basis for $\mathcal{H}$.
Proof : Suppose S is a g-frame oprator of $\{\Theta_n\}$ and Let $K = \{x \in \mathcal{H} : Sx = x\}$. Clearly $K \neq$ as identity operator belongs to the set K.
We will show that $K^{\perp} = \{0\}$
Let $x \in \mathcal{H}$ and $n \in \mathbb{N}$, as $K \subseteq \mathcal{H}$
$\Rightarrow x \in K$
$\Rightarrow Sx \in K$
$\Rightarrow \Theta_n^*\Theta_n x \in K$
Then $Sx = \Theta_n^*\Theta_n\Theta_m^*\Theta_m x$ where $n \neq m$
$\langle Sx, x\rangle = \langle \Theta_n^*\Theta_n\Theta_m^*\Theta_m x, x\rangle$
$= \langle \Theta_n\Theta_m^*\Theta_m x, \Theta_n x\rangle$
$= \langle \Theta_m^*\Theta_m x, \Theta_n^*\Theta_n x\rangle$
$= \langle \Theta_m^* y_m, \Theta_n^* y_n\rangle$ for some $y_m = \Theta_m x$ and $y_n = \Theta_n x$
$= \delta_{m,n}\langle y_m, y_n\rangle$
$= 0$ for all $n \neq m$
$\Rightarrow$ For all $n \neq m$, $\Theta_n^*\Theta_n\Theta_m^*\Theta_m x = 0$.
$\Theta_m^*\Theta_m\Theta_m^*\Theta_m x = \Theta_m^*\Theta_m x$
Then $\sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*\Theta_n\Theta_m^*\Theta_m x = \Theta_m^*\Theta_m x$
Let $y \in K$ and $x \in K^{\perp}$
$\Rightarrow Sy \in K$
$\Rightarrow \Theta_m^*\Theta_m y \in K$, $m \in \mathbb{N}$
$\Rightarrow \langle x, \Theta_m^*\Theta_m y\rangle = 0$, $m \in \mathbb{N}$
$\Rightarrow \langle \Theta_m^*\Theta_m x, y\rangle = 0$, $m \in \mathbb{N}$
$\Rightarrow \Theta_m^*\Theta_m x = 0$ for all n.
Now, $\|\Theta_n x\|^2 = \langle \Theta_n x, \Theta_n x\rangle$
$= \langle \Theta_n^*\Theta_n x, x\rangle$
$= 0$
$\Rightarrow \|\Theta_n x\| = 0$ for all n
$\Rightarrow x = 0$
$\Rightarrow \mathcal{H} = K$
Therefore, S is an identity operator i.e. S = I.
For each $x \in \mathcal{H}$, $\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 = \langle Sx, x\rangle$
$= \langle x, x\rangle$
$= \|x\|^2$

Value Addition

1. We can remove the condition $\sum_{n\in\mathbb{N}} \|\Theta_n x\|^2 = \|x\|^2$, $x \in \mathcal{H}$ for g-orthonormal basis.
2. $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-orthonormal basis for $\mathcal{H}$ iff $\{\Theta_n\}$ is a g-frame and for all $m,n \in \mathbb{N}$, $y_m \in \mathcal{H}_m, y_n \in \mathcal{H}_n \langle \Theta_n^* y_n, \Theta_m^* y_m\rangle = \delta_{n,m}\langle y_n, y_m\rangle$

Theorem 3.13 $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-orthonormal basis for $\mathcal{H}$ if and only if , for all $n \in \mathbb{N}$
i) Θ_n^* is isometric.
ii) $\oplus_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^*(\mathcal{H}_n) = \mathcal{H}$

Proof : Firstly suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-orthonormal basis for $\mathcal{H}$,
$\Rightarrow \langle \Theta_n^* y_n, \Theta_m^* y_m\rangle = \delta_{n,m}\langle y_n, y_m\rangle$

For $n = m$,

$$\langle \Theta_n^* y_n, \Theta_n^* y_n \rangle = \delta_{n,m} \langle y_n, y_n \rangle$$
$$= \langle y_n, y_n \rangle$$

Therefore, Θ_n^* is isometric.

Hence, for all $n \in \mathbb{N}$, $\Theta_n^*(\mathcal{H}_n)$ is closed subspace of $\mathcal{H}$

From the second condition of orthonormal basis ,

$$\langle x , x \rangle = \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n x , \Theta_n x \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n^* \Theta_n x , x \rangle$$
$$= \langle \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Theta_n x , x \rangle$$

Hence $x = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Theta_n x$.

Let $\Theta_n x = y_n$ then, $x = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n$ and

$$\sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n^* y_n \|^2 = \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n^* y_n , \Theta_n^* y_n \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n^* \Theta_n x , \Theta_n^* \Theta_n x \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n x , \Theta_n x \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n x \|^2$$
$$= \| x \|^2$$

Conversely , Let (i) and (ii) holds, then

$$\langle \Theta_n^* y_n, \Theta_m^* y_m \rangle = \delta_{n,m} \langle y_n, y_m \rangle$$

Since for all $n,m \in \mathbb{N}$; $n \neq m$,

$\Theta_n^* \mathcal{H}_n \perp \Theta_m^* \mathcal{H}_m$ and we know that Θ_n^* is isometric for all $n \in \mathbb{N}$.

Let $x \in \mathcal{H}$ then $x = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n$ where $y_n \in \mathcal{H}_n$, $n \in \mathbb{N}$

And $\| x \|^2 = \langle x , x \rangle = \langle \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n , \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n \rangle$

$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n^* y_n , \Theta_n^* y_n \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle y_n , y_n \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \| y_n \|^2$$

Let $p \in \mathbb{N}$, then for each $q \in \mathcal{H}$

$$\langle \Theta_p x, q \rangle = \langle \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_p \Theta_n^* y_n , q \rangle$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \langle \Theta_n^* y_n , \Theta_p^* q \rangle$$
$$= \langle \Theta_p^* y_p , \Theta_p^* q \rangle$$
$$= \langle y_p, q \rangle$$

$\Rightarrow$ $y_p = \Theta_p x$ for all $p \in \mathbb{N}$

i.e. $x = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Theta_n x$ for all $x \in \mathcal{H}$

$\Rightarrow$ $\| x \|^2 = \sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n x \|^2$, $x \in \mathcal{H}$

Stability Of Generalized Frames

Theorem 4.1 Let $\{\Psi_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ be a g -orthonormal basis for $\mathcal{H}$ and $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ be a g -frame for $\mathcal{H}$ with respect to $\{\mathcal{H}_n : n \in \mathbb{N}\}$ Then $\exists$ U : $\mathcal{H} \to \mathcal{H}$ s. t U is bounded and onto and, $\Theta_n = \Psi_n U^* \quad \forall\ n \in \mathbb{N}$ }.

Proof : Here U : $\mathcal{H} \to \mathcal{H}$ s. t.

$Ux = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Psi_n x$, U is well defined.

For $J \subseteq \mathbb{N}$ where $|J| \leq +\infty$ and $x \in \mathcal{H}$

Consider $\| \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Psi_n x \| = \sup_{\|y\|=1} | \langle \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Psi_n x , y \rangle |$

$$= \sup_{\|y\|=1} \lim_{J} \sum_{n\in\mathbb{N}} | \langle \Theta_n^* \Psi_n x , y \rangle |$$
$$= \sup_{\|y\|=1} \lim_{J} \sum_{n\in\mathbb{N}} | \langle \Psi_n x , \Theta_n y \rangle |$$
$$\leq (\sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Psi_n x \|^2)^{1/2} \sup_{\|y\|=1} (\sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n y \|^2)$$
$$\leq (\sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Psi_n x \|^2)^{1/2} \sqrt{B}\, \| y \|$$
$$= (\sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Psi_n x \|^2)^{1/2} \sqrt{B} \qquad 1/2$$

Where B is upper g -frame bound for $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$.

As $\{\Psi_n \in B(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g -orthonormal basis for $\mathcal{H}$,

$\Rightarrow$ for all $x \in \mathcal{H}$, $\sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Psi_n x \|^2 = \| x \|^2$

$\Rightarrow$ $\sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Psi_n x$ is weak unconditionally Cauchy (using theorem 2.1 and 2.2) and U is bounded

$\Rightarrow$ $\| U \| \leq \sqrt{B}$.

For $y \in \mathcal{H}_m$, $m \in \mathbb{N}$,

$$\langle \Psi_n \Psi_m^* y , y \rangle = \langle \Psi_n^* y , \Psi_m^* y \rangle$$
$$= \delta_{n,m} \langle y , y \rangle$$
$$= \langle \delta_{n,m} y , y \rangle$$

$\Rightarrow$ $\Psi_n \Psi_m^* y = \delta_{n,m} y$

And,

$$U \Psi_m^* y = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* \Psi_n \Psi_m^* y$$
$$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* (\Psi_n \Psi_m^* y)$$
$$= \Theta_m^* y$$

$\Rightarrow$ $U \Psi_m^* y = \Theta_m^* y$

$\Rightarrow$ $\langle y, U \Psi_m^* y \rangle = \langle y, \Theta_m^* y \rangle$

$\Rightarrow$ $\langle U^* y, \Psi_m^* y \rangle = \langle \Theta_m y, y \rangle$

$\Rightarrow$ $\langle \Psi_m U^* y, y \rangle = \langle \Theta_m y, y \rangle$

$\Rightarrow$ $\Psi_m U^* = \Theta_m \quad \forall m \in \mathbb{N}$

Now we will show that U is onto.

Let $T_\Theta : (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2 \to \mathcal{H}$ s.t. $T_\Theta(\{y_n\}) = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n$

And,

$T_\Psi : (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2 \to \mathcal{H}$ s.t. $T_\Psi(\{y_n\}) = \sum_{n\in\mathbb{N}} \Psi_n^* y_n$

And, T_Θ is onto

for $x \in \mathcal{H}$, $\exists$ $\{y_n\}_{n\in\mathbb{N}} \in (\sum_{n\in\mathbb{N}} \oplus \mathcal{H})_2$ s.t.

$T_\Theta(\{y_n\}) = x$

$\Rightarrow$ $\sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n = x$

Let $T_\Psi(\{y_n\}) = y$

$\Rightarrow$ $\sum_{n\in\mathbb{N}} \Psi_n^* y_n = y$

$\Rightarrow$ $U(\sum_{n\in\mathbb{N}} \Psi_n^* y_n) = U(y)$

$\Rightarrow$ $\sum_{n\in\mathbb{N}} U \Psi_n^* y_n = Uy$

$\Rightarrow$ $\sum_{n\in\mathbb{N}} \Theta_n^* y_n = Uy$

$\Rightarrow$ $x = Uy$

$\Rightarrow$ U is onto.

Value Addition

1. If $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is Parseval g-frame for $\mathcal{H}$, then U is co-isometric.
2. If $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is g-orthonormal basis for $\mathcal{H}$, the U is unitary i.e. $UU^* = U^*U = I_{\mathcal{H}}$.

Theorem 4.2 Suppose $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ and $\{\Psi_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ are two g-Bessel sequences with bounds A and B respectively and T_Θ and T_Ψ be their analysis operator $T_\Psi T_\Theta^* = I_{\mathcal{H}}$. Then both $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ and $\{\Psi_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ are g-frames.

Proof : For any $x \in \mathcal{H}$,

$\| x \|^4 = (< x, x >)^2$

$= < T_\Theta^* x , T_\Psi^* x >$

$= (\| T_\Theta^* x \| \| T_\Psi^* x \|)$

$= \| T_\Theta^* x \|^2 \| T_\Psi^* x \|^2$

$= \| \{\Theta_n x\}_{n\in\mathbb{N}} \|^2 \| \{\Psi_n x\}_{n\in\mathbb{N}} \|^2$

$= < \{\Theta_n x\}, \{\Theta_n x\} > < \{\Psi_n x\}, \{\Psi_n x\} >$

$= \sum_{n\in\mathbb{N}} < \Theta_n x, \Theta_n x > \sum_{n\in\mathbb{N}} < \Psi_n x, \Psi_n x >$

$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n x \|^2 \sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Psi_n x \|^2$

$= \sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n x \|^2 \; B \; \| x \|^2$

$\Rightarrow (1/B) \| x \|^4 \leq \sum_{n\in\mathbb{N}} \| \Theta_n x \|^2$

Therefore $\{\Theta_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame.

Similarly $\{\Psi_n \in \mathcal{B}(\mathcal{H}, \mathcal{H}_n) : n \in \mathbb{N}\}$ is a g-frame.

Conclusion

G- frames are Generalized frames which include ordinary frames, bounded invertible linear operator as well as many recent generalization of frames for example, Quasi Projectors and frame of subspaces, oblique frames, and outer frames. G-frames are natural generalization of frames and which provide more choices on analyzing function from frame expansion coefficient

References

[1] A. Aldroubi, Portraits of frames, Proc. Amer. Math. Soc., 123 (1995), 1661-1668.

[2] A. Aldroubi, Q. Sun and W. Tang, p-frames and shift invariant subspaces L^p, J. Fourier Anal. Appl., 7 (1) (2001), 1-22.

[3] S. K. Berberian, Introduction to Hilbert Spaces, Oxford University Press, New York, 1961.

[4] P. G. Casazza, Characterizing Hilbert space frames with subframe property, Illinois J. Math., 43 (1997) , 648-666.

[5] P. G. Casazza, Local theory of frames and schauder bases for Hilbert space, Illinois J. Math., 43 (1999), 291-306.

[6] P. G. Casazza, The art of frame theory, Taiwanese J. Math., 4 (2) (2000), 129-201.

[7] P. G. Casazza, and O. Christensen, Approximation of the frame coefficients using finite dimensional methods, J. Electron Imaging, 6 (4) (1997), 479-483.

[8] P. G. Casazza, and O. Christensen, Frames containing a Riesz basis and preservation of this property under perturbations, SIAM J.Math. Anal., 29 (1) (1998), 266-278.

[9] P. G. Casazza, and O. Christensen, Riesz frames and Approximation of the frame coefficients, Approx. Theory Appl. (NS), 14 (2) (1998), 1-11

[10] P. G. Casazza, and O. Christensen, Perturbation of operators and applications to frame theory, J. Fourier Anal. Appl., 3 (5) (1997), 543-557.

[11]P. G. Casazza, and J. Kava?evi?, Uniform tight frames for signal processing, Adv. Comp. Math. SPIE Proc., (2001).

[12]O. Christensen, Frame perturbation, proc. Amer. Math. Soc., 123 (1995), 1217-1220.

[13] O. Christensen, A Paley-Wiener theorem for frames, Proc. Amer. Math Soc., 123 (1995), 2199-2202.

[14] O. Christensen, An introduction to Frames and Riesz Bases, Birkhäuser, Boston, Inc., Boston MA, 2003.

[15] O. Christensen, Frames and the projection method, Appl. Comp. Harmon. Anal., (1) (1993), 50-53.

[16] I. Daubechies, A. Grossmann and Y.Meyer, Painless nonorthogonal expansions, J. Math. Phy., 27 (1986) 1271-1283.

[17] M. M. Day, Normed Linear Spaces, 3rd edition, Springer-Verlag, Berlin-Heidelberg, New York, 1973.

[18] J. Diestel, Sequences and series in banach spaces, springer-Verlag, New York, 1984.

[19] R. J. Duffin and A. C. Schaffer, A class of nonharmonic Fourier series, Trans. Amer. Math. Soc., 72 (1952), 341-366.

[20] N. Dunford and J. T. Schwartz, Linear Operators, Part I: General Theory, Interscience Publishers Inc., New York, 1958.

[21] M. Fabian, P. Habala, P. Hájek, V. M. Santalueia, J. Pelant and V. Zizler, Functional Analysis and Infinite-Dimensional Geometry, Springer-Verlag, New York, 2001.

[22] S. J. Favier and R. A. Zalik, On the stability of frames and Riesz Bases, Appl. Comp. Harmon. Anal., 2 (2) (1995), 160-173.

[23] D. Gabor, Theory of communications, J. Inst. Elec. Eng. (London), 93 (3) (1946) 429-457.

[24] I. Gohberg and S. Goldberg, Basic operator theory, Birkhäuser, Boston, 1981.

[25] D.Han, K. Kornelson, D. Larson and E. Weber, Frames for undergraduates, Student Mathematical Library, AMS 2007.

Priya Sethi
Assistant Professor
D.A.V Centenary College,
Faridabad

Gargi Sharma
Assistant Professor
D.A.V Centenary College,
Faridabad

34

भक्ति आंदोलन का उदय और विकास

श्रीमती सुमन लता

सारांश –

ईश्वर के प्रति जो परम प्रेम है उसे भक्ति कहते हैं। 'नारद भक्ति – सूत्र' में कहा गया है कि 'परमात्मा' के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते है। भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'सेवा करना' या 'भजना' है, व्यास ने पूजा में अनुराग को भक्ति कहा है। भारतीय धार्मिक साहित्य में भक्ति का उदय वैदिक काल से ही दिखाई पड़ता है। हिंदी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1375 वि0 से संवत् 1700 वि0 तक के कालखंड को भक्तिकाल की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार इस कालखंड में उपलब्ध रचनाओं में 'भक्ति' भाव की प्रधानता है, अतः इसे भक्तिकाल कहना उचित है। हिंदी साहित्य इतिहास के विकासात्मक वर्गीकरण में द्वितीय चरण को 'मध्यकाल' की संज्ञा दी गई है तथा इसे पूनः दो भागों में विभाजित कर – पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल नाम दिए गए हैं। पूर्व मध्यकाल को ही भक्तिकाल कहा जाता है। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन की शुरुआत सर्वप्रथम दक्षिण के आलवार तथा नयनार संतो द्वारा की गई। बारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में रामानंद द्वारा यह आंदोलन दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाया गया। इस आंदोलन को चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकराम, जयदेव ने और अधिक मुखरता प्रदान की।

मुख्य शब्द – आंदोलन, मुखरता, श्रद्धामूलक, गोचर, रागात्मक।

भक्तिकाल अपना एक अहम और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इस युग में प्राप्त होती हैं। भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के मध्य काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता को भक्ति आंदोलन के रूप में पहचान जा सकता है। देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराये जाते थे, देव मूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वह कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी – सी छायी रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?राजनीतिक दृष्टि से यह काल अव्यवस्था एवं संघर्ष का काल था। राजनीतिक दृष्टि से भले ही हिंदुओं का पराभव हो गया था, किंतु वे अपने को छोटा मानने को तैयार नहीं थे। वर्ण व्यवस्था में आस्था रखने वाले हिंदू छुआछूत में विश्वास रखते थे। उनमें ऊंच–नीच की भावना विद्यमान थी। हिंदू और मूसलमानों में परस्पर आत्मीयता नहीं थी। वर्ण व्यवस्था में आस्था न रखने वालों में भी किसी – न – किसी प्रकार का आपसी भेदभाव बना हुआ था। इब्नबतूता के अनुसार, इन दिनों दास प्रथा भी प्रचलित थी। हिंदू – कन्याओं को संपन्न मूसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। स्त्रियों को अधिकार प्राप्त नहीं थे। उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता था। बौद्ध धर्म विकृत होकर हीनयान एवं महायान शाखाओं में बहुत पहले बंट चुका था। वज्रयानियों को सिद्ध कहा गया। महायान संप्रदाय ने जनता के निम्न वर्ग को जादू – टोना, अभिचार, तंत्र – मंत्र, चमत्कार दिखाकर प्रभावित कर लिया और धर्म के नाम पर वाममार्ग को अपनाकर मद्य, मांस, मैथन, मुद्रा को ग्रहण कर लिया। नाथों एवं सिद्धों में कर्मकांड के स्थान पर गुरु को महत्व दिया गया। भक्तिकाल में प्रवर्तित संत की धार्मिक भूमि सिद्धों एवं नाथों ने ही तैयार की थी। भक्ति का जो स्त्रोत दक्षिण भारत में प्रकट हुआ, उसके प्रचार–प्रसार के लिए इस समय उत्तर भारत में अनुकूल वातावरण था। बौद्ध धर्म की विकृतियों को विरोध करते हुए शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया। विष्णु के अवतारों – राम, कृष्ण के प्रति आस्था, विश्वास में वृद्धि हुई और रामानंद ने भक्ति का द्वार सब के लिए खोल दिया। मन और कर्म की शुद्धता भक्तिभाव से ही होती है, तुलसी के इस सिद्धांत को रामानंद ने ही आधार भूमि दी थी। सूफी धर्म का प्रचार भी एक बहुत बड़े क्षेत्र में हो रहा था। हिंदू – मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का आधार सूफियों ने ही तैयार किया था। इस्लाम धर्म मे शरा और बेशरा दो कोटिया हैं। इनमें से शरा सनातनी है और बेशरा मस्त मौला फकीर, जो कभी–कभी पीर – पैगंबर के चमत्कारपूर्ण करिश्मों का आश्रय लिया करते हैं। यह अपने क्रियाकलापों में इस्लाम के मूल सिद्धांतों की उपेक्षा तक कर कर दिया करते हैं। इनका एक समुदाय 'मजजूब' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके अनुयायी न तो रोजा – नमाज को मानते हैं और न पैगंबर के प्रति आस्थावान है। बेशरा साधक 'मलामती' कहलाते हैं, जो खुदा के कृपा पात्र समझे जाते हैं। भारतीय सूफी मुख्यतः बेशरा संप्रदाय के हैं, जो इस्लाम के अनुयायी होकर भी सनातन पंथी मूसलमानों से सब समय सर्वत्र मेल नहीं खाते।

भक्ति आंदोलन और दक्षिण – दक्षिण में भक्ति आंदोलन की

शुरुआत आलवार संतो ने की थी। भक्तिकाल की रागानुग भक्ति में दक्षिण के आलवार संतो के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। यहां के संतों ने वेद, उपनिषद, गीता से गर्हित भक्ति भावों को गीतों के माध्यम से जनता तक पहुंचाया। इन्होंने पद शैली में गीत लिखे जो तमिल भाषा में हैं और अत्यंत भावपूर्ण हैं। आलवार संत प्रचार और प्रसिद्धि से बहुत दूर भागते थे। अतः उन्होंने अपनी प्रसिद्धि बढ़ते देख अपनी रचनाओं को कावेरी में बहा दिया। उनके पदों की दो पुस्तकें कावेरी के किनारे पर आ लगी और वहीं से भक्ति की धारा बही। आलवार के भजनों की विशेषता कृष्ण का बाल रूप वर्णन है जो सूरदास को प्रभावित करता है। इनके भजनों में भक्ति भाव की प्रधानता है। दक्षिण भारत में शंकराचार्य के अद्वैतवाद को आधार बनाया गया है और समय गुजरने के साथ – साथ कई मतों की स्थापना हुई। मध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना की। आठ मंदिरों का निर्माण कराने वाले मध्वाचार्य ने वैष्णव भक्ति के प्रचार में विशिष्ट योगदान किया। इन्होंने अद्वैतवाद का घोर विरोध किया है। ये जगत को सत्य मानते हैं तथा ईश्वर और जीव में भेद नहीं मानते। इस संप्रदाय वालों ने श्री राधा को कोई मान्यता नहीं दी। इनके अनुसार मोक्ष की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही होती है। रामानुजाचार्य ने शंकर के मायावाद को अस्वीकार करते हुए विशिष्ट अद्वैतवाद की स्थापना की। इन्होंने सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया। इनका कहना है कि यह संपूर्ण जगत ईश्वर का रूप है और ईश्वर संपूर्ण विश्व में बसा हुआ है। इन्होंने जिस संप्रदाय की स्थापना की उसका नाम श्री वैष्णव संप्रदाय है। तुलसीदास भी इसी मत से प्रभावित हुए। इन्होंने विष्णु के विभिन्न अवतारों को मान्यता दी।

मध्यकालीन उत्तरी भारत और भक्ति आंदोलन – : स्वामी रामानंद भक्ति को उत्तरी भारत में लाए । यदि भक्तिकाल में भक्ति की धारा प्रवाहित करने का श्रेय किसी को जाता है तो वह 'रामानंद' जी हैं । रामानंद जी कबीर के गुरु थे, जो दक्षिण भारत द्रविड़ थे, उनके बारे में कहा जाता है :–

''भक्ति द्रविड़ उपजी लाए रामानंद। '
' प्रकट किया कबीर ने, चहूँ दिशा नवखंड''

रामानंद जी के उदार दृष्टिकोण के फलस्वरुप छोटी जाति के लोग अत्यधिक आकर्षित होने लगे। इनकी शिष्य परंपरा में कबीर पीपा साहिब, और धन्ना जाट हुए। इस आंदोलन में कबीरदास और तुलसीदास का विशेष योगदान है। इन्होंने राम और सीता को मर्यादित एवं ब्रह्म और शक्ति रूप दिया। आचार्य वल्लभ ने भी उत्तरी भारत में भक्ति के आंदोलन को आगे बढ़ाया। इस धारा में सूरदास, नंददास, मीराबाई और रसखान के नाम भी प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार भक्ति आंदोलन जो थोड़ी देर के लिए दब – सा गया था पूनः उभर कर सामने आया और भारत को भक्ति की लहर में डुबो दिया। आचार्य निंबार्क ने निंबार्क संप्रदाय की स्थापना की । यह संप्रदाय द्वैताद्वैतवादी है । इन्होंने ब्रह्म, जीवन और जगत में मूल रूप से अद्वैतता मानी किंतु प्रकाश रूप में द्वैतता का समर्थन किया। इनका विश्वास है कि जीव को चरम मिलन की साधना से भक्ति करनी चाहिए। इन्होंने राधा और श्रीकृष्ण दोनों को माना है। विष्णु स्वामी ने विष्णु संप्रदाय की स्थापना की। इनके सिद्धांत को शुद्धाद्वैत कहते हैं। रामानंद जी ने रामानंदी संप्रदाय की स्थापना की। इन्होंने विशिष्ट द्वैतवाद को माना। विष्णु के स्थान पर श्री राम के अवतार रूप को मान्यता दी। इन्होंने कर्मकांड के स्थान पर भक्ति पर बल दिया। इन्होंने जात – पात की ओर ध्यान नहीं देते हुए सभी जातियों के लोगों को अपनी शिष्य परंपरा में मिला लिया। इन्होंने उपासना का माध्यम लोक प्रचलित भाषा को बनाया। राम – सीता की मर्यादापूर्ण भक्ति को वैष्णव धर्म में स्थान देने का श्रेय इन्हे ही दिया जाता है। कबीर और तुलसी दोनों ही रामानंद के अनुयायी माने जाते हैं । चैतन्य महाप्रभु ने चैतन्य संप्रदाय की स्थापना की। इन्होंने बंगाल में विष्णु भक्ति का प्रचार किया। इनकी भक्ति परकीया भाव की है। इन्होंने अपने संप्रदाय में मृत्यु, गीत को स्थान दिया। चैतन्य महाराज, चंडीदास, जयदेव और विद्यापति के पदों का मृत्युपूर्ण गान करते थे। वल्लभाचार्य ने वल्लभ संप्रदाय की स्थापना की। इन्होंने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया। प्रेम साधना में वल्लभ ने लोकमर्यादा और वेदमर्यादा दोनों का त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेमलक्ष्णा भक्ति की और जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान का अनुग्रह होता है जिसे 'पोषण' या पुष्टि कहते हैं। इसी से वल्लभाचार्य जी ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा है। 'कृष्णाश्रय' नामक 'एक प्रकरण ग्रंथ' में वल्लभाचार्य ने अपने समय की अत्यंत विपरीत दशा का वर्णन किया जिसमें उन्हें वेदमार्ग या मर्यादामार्ग का अनुसरण अत्यंत कठिन दिखाई पड़ा है। देश में मूसलमानी साम्राज्य अच्छी तरह से दृढ़ हो चुका था। हिंदुओं का एक मात्र स्वतंत्र और प्रभावशाली राज्य दक्षिण का विजयनगर राज्य रह गया था। रामानुजाचार्य के समान वल्लभाचार्य ने भी भारत के बहुत – से भागों में पर्यटनों और विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार किया था। वल्लभ संप्रदाय में जो उपासना पद्धति या सेवा पद्धति ग्रहण की गयी। उसमें भोग, राग और विलास की प्रभूत सामग्री के प्रदर्शन की प्रधानता रही। इन आचार्यों ने भिन्न–भिन्न संप्रदायों की स्थापना की और साथ ही अपने सिद्धांत भी प्रतिपादित किए । इन्होंने भक्ति के आंदोलन को संपूर्ण भारत के कोने – कोने तक पहुंचा दिया। इन आचार्यों ने अपने सिद्धांतों की स्थापना के द्वारा भक्तिभाव एवं अवतारवाद को दृढ़तर आयामों पर स्थापित किया।

भक्ति आंदोलन के बारे में विद्वानों के विचार :–

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति आंदोलन के सूत्रपात के लिए तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों को उत्तरदायी माना है। उनके अनुसार ''देश में मूसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था''। हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति आंदोलन का प्रारंभ हिंदुओं की

पराजित मनोवृति को नहीं मानते। वे कहते हैं ''मूसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई दक्षिण में''। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति का सूत्रपात करने का श्रेय आलवार भक्तों को दिया है। डॉक्टर मलिक मोहम्मद के अनुसार, ''जिन परिस्थितियों ने तमिल प्रदेशों में वैष्णव भक्ति आंदोलन को, आलवर भक्तों को जन्म दिया, लगभग वे ही परिस्थितियां 13वीं – 14वीं शताब्दी में हिंदी प्रदेश में वर्तमान थी''। मुसलमान शासकों के धर्मांधता एवं इस्लाम के प्रचार हेतु उनके द्वारा अपनाई गई धार्मिक नीति भी इसके लिए जिम्मेदार थी। डॉक्टर सत्येंद्र के अनुसार, ''भक्ति द्राविडी उपजी लाए रामानंद''। सर जॉर्ज ग्रियर्सन भक्ति आंदोलन का उदय ईसाई धर्म के प्रभाव से मानते हैं। उनका यह तर्क हास्यास्पद है कि रामानुजाचार्य को यह भावावेश तथा प्रमोउल्लास के धर्म का संदेश ईसाइयों से मिला। डॉ रामकुमार वर्मा का मत है कि मूसलमानों के बढ़ते आतंक ने हिंदुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं था।

भक्ति काव्य का वर्गीकरण : – भक्ति साहित्य के क्षणिक भावावेग तथा इंद्रिजन्य भावोन्माद की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, अपितु यह ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है। इसके साधन लौकिक अवश्य है, किंतु इसका साध्य एक ऐसी लोकोत्तर अनुभूति है जिससे भक्त के चित्त को अनुपम शांति और आनंद की उपलब्धि होती है। विद्वानों के भक्ति साहित्य को प्रवृत्त्यनुसार दो वर्गों में विभक्त किया – ज्ञानमार्गी और परम प्रेममार्गी। परंतु ज्ञान अपने आप में एक उपलब्धि है, क्रिया नहीं जिस का आश्रय लेकर मनुष्य मुक्ति लाभ – प्राप्त कर सके। फिर ज्ञान द्वारा सत्य के स्वरूप का साक्षात्कार होने की संभावना में अज्ञानवादी वर्ग के लोग संदेह प्रकट करने लगे थे। ऐसा भक्त वास्तव में, ज्ञानमार्गी न होकर अनुभवाश्रयी होता है, और अनुभव क्रिया की अनुषंगिक प्रक्रिया है। फिर भी अधिकतर लीला – लोभी प्रेम परायण भक्तों को प्रेममार्गी कहते समय हमें किसी वैसी आपत्ति का अवसर नहीं मिलता, क्योंकि प्रेम भावना के अंतर्गत वे सभी रागात्मक विशेषताएं समाहित हो जाती हैं, जो ऐसी भक्ति के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य समझी जा सकती हैं। इसी प्रकार उपासना – भेद का आश्रय लेकर प्रायः भक्तिविषयक सगुण तथा निर्गुण जैसे दो वर्गों की कल्पना कर ली जाती है। जब परमात्मा को निराकार, अगोचर, अज, अनादि, सर्वव्यापी, गुणातीत, सूक्ष्म मानकर उसकी विवेचना की जाती है तब उसे निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है और जब वही ब्रह्म सगुण साकार रूप धारण कर नर शरीर ग्रहण कर नाना प्रकार के कृत्य करता है तब उसे सगुण परमात्मा के रूप में जाना जाता है। राम कृष्ण आदि शरीर धारी परमात्मा के सगुण साकार रूप हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार :– ''सगुणोपासक भगत भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप मानता है, पर भक्ति के लिए सगुण रूप ही स्वीकार करता है, निर्गुण रूप ज्ञानमार्गियों के लिए छोड़ देता है''। सब सगुणमार्गी भगत भगवान के व्यक्त रूप के साथ–साथ उनके अव्यक्त और निर्विशेष रूप का भी निर्देश करते आये हैं जो बोधगम्य नहीं। नामदेव की रचनाओं में यह बात साफ दिखाई पड़ती है कि सगुण भक्ति पदों की भाषा तो ब्रज या परंपरागत काव्य भाषा है, पर 'निर्गुण बानी' की भाषा नाथपंथियों द्वारा गृहीत खड़ी बोली या सधुक्कड़ी भाषा नामदेव की रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'निर्गुण पंथ' के लिए मार्ग निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। तत्कालीन परिस्थितियों में सगुणोपासक भक्त कवियों का सारा प्रयत्न इस और केंद्रित था कि हिंदू समाज को विघटन और उत्पीड़न से बचाया जाए। इसलिए उन्होंने हिंदू समाज के विभिन्न घटकों को संगठित करने का कार्य किया। उनकी समन्यवादी विचारधारा के पीछे मूल मंतव्य यही था। दूसरी ओर निर्गुणोपासक कवियों की दृष्टि हिंदू समाज को ही नहीं अपितु संपूर्ण भारतीय समाज को एकता के सूत्र में पिरोने की और लगी हुई थी। वे हिंदू और मूसलमान का भेद भुलाकर मानवता के उदात्त मूल्यों की स्थापना में लगे हुए थे। उन्होंने एक ऐसे सामान्य भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया जो हिंदू और मूसलमान दोनों को स्वीकार्य हो। अतः भक्ति आंदोलन प्राचीन भारतीय मनीषा, ज्ञान एवं दर्शन की अविच्छिन्न धारा है जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है।

निष्कर्ष :– भक्ति के उद्भव एवं विकास के समय जो कुछ भी भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा इतिहास को प्राप्त हुआ, वह स्वयं में अद्भूत अनुपम एवं दुर्लभ है। भक्ति का उदय राजनैतिक पराज्य का परिणाम तो नहीं, परंतु अप्रत्यक्ष रूप से इसमें उसका थोड़ा – बहुत हाथ अवश्य है, क्योंकि कोई भी आंदोलन सामाजिक परिस्थितियों से निरपेक्ष नहीं होता। परंतु इसके उदय का वास्तविक श्रेय बौद्धों एवं जैनियों के दमन स्वरूप आलवार संतो, विभिन्न दार्शनिकों एवं दक्षिण भारतीय द्रविड़ परिवार को ही है।

संदर्भ :–

1. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 0–53।
2. डॉ0 अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य सीरीज पृष्ठ 0–59–60।
3. डॉ0 नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 0–95।
4. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 0–58।

श्रीमती सुमन लता
सहायक आचार्या
(हिंदी विभाग)
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार
ई – मेल :– sumantakhar60@gmail.com

35

भारतीय संस्कृति में तीर्थ महत्व निरुपण

डॉ0 अनिल कुमार शर्मा

सारांश –

मैं लेखो को राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ मे प्रस्तुत करता हुँ। क्योंकि भारतीय संस्कृति इंसान और इंसानियत में विश्वास रखती हैं, भारतीय संस्कृति यही सन्देश भी देना चाहती है कि बिना इंसानियत के इंसान हैवान हैं , राक्षस हैं । जो समस्त मानव जाति एवं मानवता के लिए खतरा हैं प्राचीन मनीशी अद्भुत मेघा के घनी थे जिन्होंने राश्ट्र एवं समाज के विकास में नैतिक, चारित्रिक, आर्थिक, व्यवहारिक आदि – आदि रूप से सुदृढ समाज की रचना की – वे कमाना (धन) के स्थान पर बनाना (मानवीय गुण)पर वल देते रहे । वे बाहच शुद्धि से आन्तरीक (मानस) शुद्धि पर अधिक बल देते थे। (शारीरिक)समाज में त्याग एवं सहयोग मूलक समता मूलक समाज रचना पर वल देते थे ,जिनकें कार्य विशेश के प्रतीक तीर्थ स्थान प्राचीन काल से लेकर आज तक मानवता को प्रेरण एवं मार्गदर्शन प्रदान कर रहें हैं इसी सन्दर्भ मे स्कन्दपुरण में काशीखण्ड कें माध्यम से तीर्थो की महत्वा पर प्रकाश ड़ालने की कोशिश कर कहा हूँ इसमें कोई त्रुटि हो ता, ।आशा करता हूँ। विद्वत्जन हमें क्षमा करेंगें क्योंकी मैं अल्पवुद्धि युक्त मानव में त्रुटि हो सकती हैं परन्तु हमारी संस्कृति में नहीं :–

मन्दः कविचशः प्रार्थी गमिश्यामि उपहास्यताम।
प्रांशुलभ्यें फलें लोभात् उद्वाहुरिव वामनः ।। 1

लेख – भारतीय संस्कृति विश्व की एक अनोखी औंर अद्वितीय संस्कृति के जिसमें मानव कल्याण कें अनेक उपाय बताए गए हैं जिसमें परम्परा एक अति प्राचीन परम्परा हैं भारत देंश में अनेंक तीर्थ हैं औंर उनका अद्भुत महत्व भी हैं सभी तीर्थों में उत्तम काशी तीर्थं का अपना अलग ही महत्व हैं जहाँ भगवान भोलें नाथ की नगरी माँ अन्नपूर्णी सें रक्षित मां गंगा सें सेवित हैं यहाँ सभी देव भी निवास करते हैं। पुराणों में तीर्थं कें महत्व के साथ ही सदाचार का महत्व विशेश रूप से वतलाया गया। कुछ स्वार्थी पक्षपाती लोग तीर्थ की महत्वा को अनुचित भी प्रदर्शित करते हैं वें कहते हैं तीर्थ सेवन करो फिर सदाचार या अनाचार से ड़रनें की कोई बात नही हैं, पर वस्तुतः ऐसी वात नही हैं इस भ्रम को दुर करने के लिए स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में विस्तार से प्रकाश डाला गया हैं। जैसें

पापमेव हि कर्तव्यं मतिरस्ति यथेदृशी ।
सुखेनान्यत्र कर्तव्यं मही ह्यस्ति महीयसी।। 01
अपि कामातुरो जन्तुरेकां रक्षति मातरम् ।
अपि पापकृता काशी रक्ष्या मोक्षार्थिनैकिका ।। 02
परापवादशीलेन परदाराभिलाशिणा ।
तेन काशी न संसेव्या क्व का़शी निरयः क्व सः।। 03
अभिलश्यन्ति ये नित्यं धनं चात्र प्रतिग्रहैः।
परस्वं कपटैर्वापि काशी सेव्या न तैर्नरैः।। 04
परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत्।
तदेव चेत् किमत्र स्यात् काशीवासो दुरात्मनाम्।। 05

(अर्थ) मैं तो पाप करूँगा ही –ऐसी जिसकी बुद्धि है ,उसके लिये पृथ्वी बहुत बडी पडी है। वह काशी से बाहर कहीं भी जाकर सुख से पाप कर सकता है। कामातुर होने पर भी मनुश्य एक अपनी माता को तो बचाता ही हैं। ऐसे ही पापी मनुश्य को भी मोक्षार्थी होने एक काशीको तो बचाना ही चहिये। दुसरों की निन्दा करना जिनका स्वभाव है और जो परस्त्री की इच्छा करते हैं उनके लिए काशी में रहना उचित नहीं। कहॉ मोक्ष देने वाली काशी और कहॉ ऐसे नारकी मनुश्य जो प्रतिग्रह के द्वारा धनकी इच्छा करते हैं और जो कपट जाल फैलाकर दुसरो का धन हरण करना चाहते है उन मनुश्यों को काशी में नहीं रहना चाहिये । काशी में रहकर ऐसा कोई काम कभी नहीं करना चाहिये जिससे दुसरो को पीडा हो । जिनको यही करना हो उन दुरात्माओं को काशीवाससे क्या प्रयोजन है।

(शलोक)– अर्थार्थिनस्तु ये विप्र ये तैः सेव्यं मोक्षक्षेमदं नराः।
अविमुत्कं न तैः सेव्यं मोक्षक्षेमदं यतः।।06
शिवनिन्दापरा ये च वेदनिन्दापराश्च ये।
वेदाचारप्रतीपा ये च सेव्या वाराणसी न तैः।। 07
परद्रोहधियो ये च परेर्श्याकारिणश्च ये।
परोपतापिनो ये वैं तैशां काशी न सिद्वये।। 08

(अर्थ) विप्रवर। जो अर्थार्थी या कामार्थी हैं उनको इस और मुत्किदायी काशीक्षेत्र में नही रहना चाहिये। जो शिवनिन्दा में लगे रहते हैं तथा वेदाचारके विपरीत आचरण करते हैं

उनको वाराणसी में नहीं रखना चाहिये। जो दुसरो से द्वोह करते हैं दूसरों सें डाह करते हैं और दूसरों को कष्ट पहुचातें हैं काशी में उनको सिद्वि नहीं मिलती। पापात्मा तीर्थफलसें वंचित रहता है–यह स्पष्ट कहा गया है–

(श्लोक)– अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोडछिन्नसंशयः ।
हेतुनिश्ठश्र पच्चैते न तीर्थफलभागिनः ।। 09

(अर्थ) श्रद्वाहीन पापात्मा(तीर्थ में पापीकी–पाप करने वाले की–शुद्विहोती हैं पर जिसका स्वभाव ही पापमय है उस पापात्माकी नही होती)नास्तिक संदेहशील और हेतुवादी –इन पॉचोंको तीर्थफल की प्राप्ति नहीं होती।' वस्तुतः तीर्थफल किसको मिलता है–

(श्लोक) प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुश्टो येन केनचित्।
अहडाक्रविमुक्तश्र्च स तीर्थफलमश्नुतें।। 10
अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुत्कः सर्वसघ्डगैर्यः स तीर्थफलमश्नुते।। 11
अकोपनोड़मलमतिः सत्यवादी द्रढव्रतः
आत्मोपमच्श्र भूतेशु स तीर्थफलमश्नुते।। 12

(अर्थ) जो प्रतिग्रह से निव्त्त है जिस–किसी स्थिति में ही संतुष्ट हैं और अहंकार से भली भॅाति छुटा हुआ है वह तीर्थफल का भोग करता है। जो दम्भ नहीं करता सकाम कर्म का आरम्भ नही करता स्वल्पाहार करता है इन्द्रियों को जीत चुका है और समस्त आसत्किसयों भली भॉती मुक्त है वह तीर्थफल का भोग करता है। जो क्रोधरहित है जिसकी बुद्विनिर्मल है जो सत्य–भाशण करता है द्ढनिश्चयी है और समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के समान ही जानता है वह तीर्थ फल का भोग करता है।' क्योकिं–

(श्लोक) ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः।
परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः ।। 13
मनचैलाव्ताशान्ताशुचयस्त्यत्कसत्क्रियाः।
तेशां मलिनचित्तानां फलमत्र जायतें।। 14

(अर्थ) (भगवान् शंकर स्कन्द जी से कहते है)जिनकी चलबुद्धि है लोभी है और तथ्यकी बात नही कहते जिनके मनमें परिहास पर–धन और पर–स्त्रीकी इच्छा हैं तथा जिनका कपटपूर्ण आग्रह है जो दूशित वस्त्र पहनते हैं जो अशान्त अपवित्र और सत्कर्मोके त्यागी हैं उन मलिनचित मनुष्यों को इस तीर्थ में कोई फल नहीं मिलता।' तीर्थों किस प्रकार रहना चाहिये इस पर कहा गया हैं –

(श्लोक) निर्ममा निरहडकांरा निःसडगां निश्परिग्रहाः।
बन्धुवर्गेण निःस्नेहाः समलोष्टाष्मकाच्चनाः।। 15
भूतानां कर्मभिर्त्यं त्रिविर्धेभयप्रदाः।
सांख्ययोगविधिज्ञाश्र्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः।।16

(अर्थ) (इस क्षेत्र में वास करने वाले) ममतारहित अहंकार –रहित आसत्किरहित परिग्रह से शुन्य बन्धु–बान्धवोंमें स्नेह न रखने वाले मिट्टी पत्थर और सोने में समान बुद्वि रखने वाले मन –वाणी और शरीर के द्वारा किये जाने वाले त्रिविध कर्मों से सदा सब प्राणियों को अभयदेने वाले सांख्य और योग की विधिको जानने वाले धर्म के स्वरूप को समझने वाले
संशय–संदेहों से रहित हों।' मानस तीर्थों का वर्णन करते हुए यहॉ तक कह दिया गयाहैं कि–

(श्लोंक) श्रणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममाघे।
येशु स्मयड्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।। 17
सत्य ंतीर्थ क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभुतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ।।18
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोशस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता।। 19
ज्ञानं तीर्थं व्रतं तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्विर्मनसः परा।। 20
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातःशुचिः शुद्वमनोमलः।। 21
यो लुब्धः पिशुनः क्रो दाम्भिको विशयात्मकः।
सर्वतीर्थेश्वपि स्नातः पापो मलित एव सः।। 22
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यत्क भवत्यन्तःसुनिर्मलः।। 23
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेश्वेव जलौकसः।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्वमनोमलाः।। 24
विशयेश्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते।
तेश्वेव हि विरागोडस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्।। 25
चित्तमन्तर्गतं दुश्टं तीर्थस्नानान्न शुध्यति ।
शतशोडपि जलैंर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि।। 26
दानमिज्जा तपःशौचं तीर्थं सेवा श्रुतं यथा।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः।।27
निग्हीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिशं पुश्कराणि चः।
ध्यानपुते ज्ञानजले रागद्वेशमलाहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थं स याति परमां गतिम्।। 28

(अर्थ) अगस्त्यजीने लोपामुद्रा से कहा –निश्पापे ! मै मानस –तीर्थों का वर्णन करता हूँ सुनो। इन तीर्थों में स्नान करके मनुश्य परम गतिको प्राप्त होता। सत्य क्षमा इन्द्रियसंयम सब प्राणियों के प्रति दया सरलता दान मनका दमन सन्तोश ब्रह्मचर्य प्रियभाशण ज्ञान ध्रति और तपस्या –ये प्रत्येक एक एक तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य परम तीर्थ हैं। मनकी परम विशुद्वितीर्थों का भी तीर्थं हैं। जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं हैं और जिसने इद्रिय – संयमरूप स्नान किया हैं वही स्नान हैं और जिनका चितत शुद्वहो गया है वही पवित्र है। जो लोभी है चुगलखोर है निर्दय है दम्भी है और विशयों में फॅसा हुआ है वह सारे तीर्थों में भली भॉति स्नान कर लेनेपर भी हैं पापी औंर मलिन ही है। शरीर हा मैल उतारने से ही मनुष्य निर्मल नहीं होता मनके मलको निकाल देने पर भी भीतर से सुनिर्मल होता हैं। जनजन्तु जलमें हीं पैंदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं परन्तु वे स्वर्ग में नहीं जाते क्योंकी उनके मनका मैल है और विशयों से वैराग्यको ही निर्मलता कहते हैं। चित्त अन्तर की वस्तु है । उसके दूषित रहने पर केवल तीर्थं– स्नान से शुद्वि नहीं होती शराब के भाण्डको चाहे सौ बार जल से धेया जाय वह अपवित्र ही रहता है वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्व नहीं तबतक उसके लिये दान यज्ञ तप शौच तीर्थं सेवा और स्वाधाय – सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्वियॉ संयममें हैं वह मनुश्य जहॉ रहता है वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र नैमिशारण्य और पुश्करादि तीर्थ विघमान हैं ध्यान से विशुद्वहुए रागद्वेशरूपी मलका नाश करने वाले ज्ञान –जलमें जो स्नान करता है वही परम गतियों प्राप्त करता हैं।'

निष्कर्ष –

मानव जीवन को समुज्ज्वल एवं सुसंस्कृत करानें वाले तीर्थों की उपयोगिता मानव को केवल उल्लास प्रदान करने तक ही सीमित नही हैं यह तन के साथ मन को भी निश्कलुश बनातें हैं आचरण की श्रेश्ठता को प्रतिश्ठापित कर मानव को सुखी एवं सदाचारी बनाने की प्रेरणा देते हैं जीवन की श्रेश्ठता भौतिकता कें साथ एवं संस्कारो की श्रेश्ठता से सुशोभित होती हैं आइए अपने महान पूर्वजों की अमूल्य निति से अपने कों भी लाभाबिन्वत करें औंर भारतीय आदर्शों को पावन यश प्रदान कर गौरव की अनुभूति करें तथा दूसरो का भी मार्गदर्शन करने का प्रयास करें इति शम्।। 29

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 01.01.05 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 22/95/.99 गीता प्रेस गोरखपुर
2. 02.06.08 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 122/101/103 गीता प्रेस गोरखपुर
3. 03.09 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 22/100 गीता प्रेस गोरखपुर
4. 04.10.12 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 06/49.51 गीता प्रेस गोरखपुर
5. 5.13.14 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 06/69.70 गीता प्रेस गोरखपुर
6. 6.15.16 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 07/32.33 गीता प्रेस गोरखपुर
7. 7.17.29 स्कन्द पुराण काशीखण्ड 06/29.41 गीता प्रेस गोरखपुर

डॉ0 अनिल कुमार शर्मा

ग्राम. कन्धरापुर

डाकघर–मझिला–खुदागंज

जनपद–शाहजहापुर

उत्तरप्रदेश

पिन कोड. 242305

मो0नं0 9793724809

36

ममता कालिया के उपन्यासों में नारी की समस्याओं का चित्रण

रजन बाई

सारांश –

ममता कालिया का नाम साहित्य में विशेष उल्लेखनीय है। साठोत्तरी काल में ममता कालिया का नाम यथार्थवादी साहित्यकारों में सम्मिलित किया गया है। वैसे तो इस काल में अन्य महिला साहित्यकारों का भी योगदान रहा है– उषा प्रियंवदा, मृणाल पाण्डेय, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, मन्नू भण्डारी, शिवानी निरूपमा सोबती, इंदूबाला, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, मेहरूनिसा परवेज आदि साहित्यकार हुए हैं। लेकिन ममता कालिया इनमें से वो साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में अधिकतर नारी समस्याओं को चित्रित किया है। नारी का स्थान आज समाज में कैसा है यह दिखाते हुए उन्होंने यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। समाज में जो भी विकृतियां–भ्रांतियाँ है उनका बेबाकी से वर्णन किया है। वह चाहे नारी विषयक हो या पुरुष। उन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक संघर्ष का वर्णन किया है।

इन्होंने अपने साहित्य में नारी से सम्बन्धित सभी समस्याओं को उद्घाटित कर उसका समाधान करने का प्रयास भी किया है। इनके साहित्य में कहानियों में या उपन्यासों में नारीवादी न होते हुए भी नारी की समस्याओं को उजागर किया है जैसे कुछ छूटा है। नारी तक उसका केन्द्र बिन्दु रहा है। जैसे ही समाज में लड़की जन्म लेती है तभी उसके प्रति हेय का व्यवहार दिखाया गया है तथा उसके विवाह में दहेज के कारण उसको उपेक्षित महसूस करवाना या विवाह के बाद उसको जलाकर मार देना या फिर सास के साथ घर में आत्मीयता का व्यवहार न होना ये सभी इनके उपन्यासों में उद्घाटित किया गया है या फिर विवाह के लिए अनमेल विवाह, प्रेम–विवाह, असफल प्रेम विवाह,या फिर उपयुक्त लड़का न मिलने पर विवाह का निर्णय ही स्थगति कर एकाकी जीवन जीना। सम्पन्नता व विपन्नता में घुटन भरी जिंदगी जीना आदि लेखिका ने अपने उपन्यासों में अतिशयता से स्थान दिया है।

आधुनिक काल को महिला उत्थान युग के रूप में माना जाता है। पुराने रीति–रिवाज–रूढ़ियों परम्पराओं का खण्डन करती ममता जी नारी को उपयुक्त स्थान दिलाने में भरसक प्रयास करती दिख रही है। आज की नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलने में विश्वास रखती है और राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रों में सर्वोच्च पदों पर कार्यरत है। आज नारी की मनस्थिति, पारिवारिक जीवन में पति–पत्नी के संबंधों को लेकर अनुभवों के सीमित दायरे के अंतर्गत साहित्य रचना जिन महिला साहित्यकारों ने की वे समादृत हुई। नारी की मन की अनुभूति की सुन्दर व्याख्या करने में वे बहुत बड़ी हस्ताक्षर रखती है।

ममता कालिया का जीवन जिप्सी जीवन रहा (इलाहाबाद, बम्बई, पूणे, इन्दौर, भोपाल, दिल्ली, आदि स्थानों पर रहना पड़ा)। पिता के तबादलों के कारण इनको अपनी शिक्षा के दौरान विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करना पड़ा। वहीं से इनमें बहू–प्रतिभा का विकास हुआ तथा घर में पिता विद्याभूषण अग्रवाल, चाचा भारतभूषण अग्रवाल और पति रवीन्द्र कालिया भी सुप्रसिद्ध साहित्यकार रहे हैं और घर में भी संगोष्टियों का आयोजन भी होता रहता था इसलिए ममता जी भी अपनी प्रतिभा के बल पर एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार बन गई। ममता जी हिन्दी और अंग्रेजी पर बराबर का आधिपत्य रखती हैं। इन्होंने अपने जीवन में हिन्दी और अंग्रेजी का गहन अनुशीलन–परिशीलन कर अपना साहित्य लेखन कविता से प्रारम्भ कर सभी विधाओं में हस्तक्षेप किया है।

ममता जी ने नारी की प्रत्येक समस्या का बारीकी से अध्ययन किया और अनुभूति कर उसको जो यह मुँह से नहीं कह सकी, कहानियों या उपन्यासों के माध्यम से पाठक के पास परोस दिया। यह किसी भी घटना को देखकर मूक दर्शक नहीं रह सकती तभी उसको कलमबद्ध कर देती हैं। यही एक साहित्यकार की श्रेष्ठता का पैमाना है। जो समाज में देखा उसे हू–ब–हू लिखा और उसका समाधान भी प्रस्तुत किया।

ममता कालिया जी ने अपने साहित्य का प्रारम्भ बोल्ड कविताओं से कर कहानियों में विशिष्टता हासिल कर उपन्यासों में भी उपलब्धि हासिल की। इन्होंने अपने अधिकतर उपन्यास मध्यमवर्गीय शिक्षित नारी और उनकी समस्याओं को लेकर लिखे हैं। नौकरी पेशा नारी की स्थिति, पति–पत्नी के प्रेमहीन सम्बन्ध, अकेलेपन की स्थिति, अर्थाभाव में जीवन जीती एक सुशिक्षित नारी, रूढ़ियों–दकियानुसी विचारों से मानसिक संकीर्णता का प्रभाव, पुरुष प्रधान समाज में नारी की दयनीय स्थित, सफल प्रेम विवाह या असफल प्रेम–विवाह के बाद भी असन्तुष्ट नारी है। भूमण्डलीकरण या आधुनिकरण के कारण एकाकी जीवन, जीने के लिए विवश नारी। दहेज के कारण चिंतित नारी, पति–पत्नी के सुशिक्षित होने पर भी प्रताड़ित नारी का चित्रण ममता जी ने अपने उपन्यासों में उल्लेख किया है।

"बेघर उपन्यास समाज प्राचीन काल से लेकर आजतक

पुरुष प्रधान समाज ने अपनी सुविधानुसार समाज का गठन किया है। वहां पर स्त्री और पुरुष का काफी अन्तर दर्शाया गया है। परमजीत पुरुष स्त्री संजीवनी के साथ शारीरिक संबंध बनाता है और उसको दकियानूसी विचारों और 'कौमार्य के मिथ' को लेकर छोड़ देता है।

बेघर उपन्यास में 'संजीवनी' नायिका परमजीत व विपिन के धोखे का शिकार होती है। विपिन उसके कॉलेज का सहपाठी था जिससे वह कहती है कि– "उसने उसके उपर आकस्मिक आक्रमण किया था। वह विपिन के साथ एकांत कमरे में भी नहीं थी। उसने रेस्टोरेंट के कैबिन में ही उसे जबरन दबोज लिया था और खड़े–खड़े दुर्व्यवहार किया था। वह लड़खड़ाकर कुर्सी पर गिर गई थी। आँखों ही आँखों में उसने विपिन का अनगिनत गालियां सुना दी थी। विपिन ने जिस भर्त्सना और क्रोध से उसे देखा उसे आश्चर्य हुआ था। उसने तय किया था यह सब परमजीत को कल कहेगी उसे यह समझना ही होगा यह संजीवनी के लिए पहला ही अनुभव था।"

कितना एक लड़की को पुरुष समाज में बेबसी महसूस होती है वह शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक सभी प्रकार से पुरुष द्वारा ठगी जाती है। और आजीवन निरपराध होते हुए भी अपराधियों की तरह जीती है।

परमजीत की भी सभी पुरुषों की तरह यही इच्छा थी वह संजीवनी को कहता है कि– "अकेले में तुम्हारे तलवे सहलाकर तुम्हारे बाल खोल कर तुम्हारा ब्लाउज मसलकर तुम्हें एक ही पल में लड़की से औरत बना दूँगा संजी।"

परमजीत विवाहपूर्व कैसे–कैसे दिवास्वप्न देखता है। उसकी मानसिक स्थिति भी विपिन जैसी ही है। वह संजीवनी को अपनी सम्पत्ति मानता है। और हाँ एक दिन डरा कर धमका कर प्यार का वास्ता देकर वह अकेले में यह कुकृत्य कर ही देता है, जबकि संजीवनी ऐसा कोई कृत्य करना नहीं चाहती थी। एक संदर्भ में संजीवनी नारी की विवशता प्रदर्शित की गई– "पर जीत ने आग्रह किया, गुस्सा किया और कभी न बोलने का डर दिया था। संजीवनी ने बहुत मना किया, कई डर दिखाए थे, कितने ही बहाने बनाए, फिर वह नर्व होकर काँप गई।.... ऐसे ही उस क्षण में परमजीत को लगा, जैसे उसने गरम मोम में अपने को डाल दिया, वह उसमें फंसता गया। और अन्त में निढाल और परास्त होकर बैठ गया। तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया।"

पुरुष प्रेम नहीं करता परीक्षा लेता है। वह दकियानूसी विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। वह यदि संजीवनी से विवाह करता और यह तथ्य बाद में पता चलता तो क्या वह संजीवनी का परित्याग कर देता। विवाह–विच्छेद के लिए 'कौमार्य मिथ' जैसा तथ्य नाकाफी होता। और उसने भी वही किया जो विपिन ने किया था। विवाहपूर्व संबंध क्यों बनाए? वह तो दूसरी थी उसके लिए। वह कहाँ रमा के लिए प्रथम पुरुष बचा। यह नियम केवल नारी पर ही निर्धारित होता है पुरुष पर नहीं। यदि वह संजीवनी को प्रेम करता तो उससे पूछता और सहानुभूति दे सकता था।

इस प्रकार दो–दो पुरुषों द्वारा ठगी गई महिला का चित्रण ममता जी ने बड़े सरल ढंग से किया है। यहाँ गोपाल का 'बेघर' के संबंध में कथन उल्लेखनीय है– "1971 में बेघर प्रकाशित हुआ जिसमें नारी संहिता के एक बड़े क्रूर विरोधाभास को प्रस्तुत किया गया है। यौनशुचिता, कौमार्य और केवल पतिसे यौन सम्बन्ध नारी संहिता के उल्लंघन नियम है और जो भी स्त्री जाने–अनजाने में इसका उल्लंघन करती है, उसे पुरुष समाज का कोपभाजन होना पड़ता है। स्त्री को अपने भोग की वस्तु समझने वाला पुरुष इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाता कि विवाह से पूर्व कोई दूसरा उसे जुठा कर चुका है।

परमजीत मध्यमवर्गीय संस्कारों, रूढ़िगस्त मानसिकता युक्त एक लड़की रमा मिल जाती है जो 'असूर्यपश्या' विशुद्ध कुंवारी है। बहुत बड़ी जीत का अनुभव करता है। पर क्या परमजीत रमा के लिए प्रथम पुरुष है?अब रमा को परमजीत को छोड़ देना चाहिए?रमा जैसे पहले ही कहा जा चुका है वह सुशील, सुन्द गृहकार्य में दक्ष में शुमार है।और तकनीकीतौर पर 'विशुद्ध कुँवारी' भी है।

उपन्यास में दूसरी औरत रमा है जो कि परमजीत की पत्नी है, वह विवाह से ही उसके घर को (भरने में) बनाने में लगी हुई है। उसे न तो कपड़ों का शौक है न लिपिस्टिक का न ही घूमने या न गोलगप्पे खाने का, वह पता नहीं कब से उसकी माँ में भी पैसा बचाने की आदत थी जो कब रमा ने अपनी माँ से सीखी है, वह कहती है, "अगर परमजीत को सिगरेट शराब का शौक नहीं होता तो आधी तन्खा बचा कर दिखा देती।"

घर की आर्थिक स्थिति अच्छी रहे यह पुरुष का कर्त्तव्य है जहाँ पर स्त्री गृहणी ही है, कामकाजी नहीं है। जबकि आर्थिक स्थित पुरुष की अच्छी नहीं होने पर भी पुरुष शराब पी सकता है लेकिन स्त्री को घर बसाने की चिंता रहती है। समाज में अधिकतर महिलाओं की यही स्थिति है। वह परमजीत पर अपने संस्कारों की छाप छोड़ना चाहती है न माहौल से अपनी रूढ़िग्रस्त सोच को बदलने की।

'बेघर' उपन्यास में अन्य पंक्तियां– पीटर ने कहा, "दिन में बुम्बई में पटरियों पर जापानी, अमेरिकी, और जर्मन चीजें बिकने के लिए पड़ी रहती है, रात में औरतें। यहाँ भूख के लिए शादी नहीं करनी पड़ती, चार आने में उसलपाव और चार रूपये में औरत मिल जाती है। नारी की कितनी दुर्दशा का चित्रण ममता जी ने किया है।

ऐसे ही विजया केलकर शादी से पहले किसी वालिया के साथ रहती थी। वह उसका पति नहीं था पर उसे पत्नी की तरह प्यार और प्रताड़ित करता था। और कहता है "दिस वुमैन इज ए डीमन"। आधुनिक वैचारिकता का प्रतिनिधित्व करता

वालिया–विजया को डाँटते समय कहता है– 'दिस वुमैन इज ए डीमन'... ऐसे ही तंग करती रही तो मैं इसे भी छोड़ दूंगा यह समझती क्या है। मैंने दस मिनट में अपने माँ–बाप छोड़ दिए थे। पताहै जीत, मैं अपनी पहली बीवी हनीमून के दौरान छोड़ आया था– 'बाय गौड मेरे पीड़े पड़ गई, रोज ग्रंथ साहब पढ़ा करो केश रखो।"

एक नारी जो विजया है उसके बारे में कहता है– "'मेरे आगे औरत औरत रहेगी।' ...वह कहना चाहता था जो भी आदमी औरत को बिस्तर परसन्तुष्ट कर सकता है वह ही–मैन है।"... परमजीत ने सुझाव दिया कि फौरन उसे ढूंढ़ना चाहिए। 'वह कहीं नहीं गई होगी। यहीं घर के नीचे समुद्र पर खड़ी रो रही होगी। यह उसकी पुरानी आदत है।' परमजीत को विजया पर सहानुभूति हो गई। अकेली लड़की का रोना काफी करूण है।" वालिया एक पुरुष था जिसने अपने मां–बाप, संस्कारी धार्मिक बीवी को छोड़ दिया तो इसको छोड़ना कौन सी बड़ी बात है ऊपर से औरत को कुछ नहीं समझता है। वालिया ने आधिुनिकता के कारण अपनी धार्मिक मान्याताओं का मानने वाली पत्नी को हनीमून पर ही छोड़ दिया था।

एक और पात्र है केकी, जिसको उसके पिता ही मन्हूस कहते थे। वह एकाकी जीवन व्यतीत करती है।

'नरक–दर–नरक' उपन्यास में उषा एक सुशिक्षित नारी है, उसने कभी अपने घर खाना तक नहीं बनया था। एक प्रोफेसर की बेटी होने के बावजूद वह जगन के साथ संघर्ष करने को विवश है। लेकिन जगन से प्रेम विवाह करने के बाद भी नारकीय जीवन व्यतीत करने पर विवश है। जब उषा को लड़का पैदा होता है तो जगन का पूरा ध्यान बच्चे पर आ जाता है और उषा कहती है– "जगन की अपेक्षाएं बदल गई। वह अपनी किसी व्यस्ता, तनाव, परेशानी, शरारत में उसे हिस्सेदार न बनाता... उषा को शिकायत थी की जगन और उसका बेटा उसको पेचकस की तरह इस्तेमाल कर रहे थे।" एक सुशिक्षित नारी से स्वयं प्रेम विवाह कर जगन उसकी आकांक्षाओं पर पूरा नहीं उतरता है वह उससे बहुत दुखी है।

इसी उपन्यास में एक और पात्र है सीता जो कि कॉलेज में लेक्चरर है। उसके बाद उसका पति विनय उस पर शक करता रहता है। इसी कारण सीता का मन दुखी होता है, वह कहती है, "सीता का मन हुआ, वह दौड़ती जाए, न सही नर किसी खंभे, पशु या पत्थर से टकरा–टकराकर अपने को क्षत–विक्षत कर डाले ताकि इस छिछलेदार को बरदाश्त करने की ताकत आ जाए।" कैसे एक नारी जो सुशिक्षित, संस्कारी, सुशील होने के साथ आर्थिक रूप से सुदृढ़ भी है फिर भी वह जीने की नहीं मरने की बात करती है।

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में ममता जी ने एक अलग प्रकार का प्रेम दिखाया है– जोकि एक सुशिक्षित पति–पत्नी का है और पति शक्की–शराबी तथा विकृति बुद्धि का इन्सान दर्शाया है। वैसे तो वह बहुत शिक्षित आई.ए.एस. अफसर है लेकिन अपनी पत्नी को प्रताड़ित करने के बहाने ढूंढ़ता रहता है जो कि कॉलेज में प्रोफेसर पद पर प्रतिष्ठित है। उपन्यास में "कविता उसकी क्रूरता झेलती तिलमिलाती और टूटती। कई बार सोचा वह घर छोड़ कर भाग जाए। उसने अपना इरादा संदीप (पति) को बताया। पर उसके ऐसा कहते ही संदीप भावुक हो गया, उससे माफी मांगने लगा। बच्चों की तरह हिलक–हिलक कर रोया और न जाने कितनी बार उसने अपना हाथ कविता के सिर पर रखकर कभी न पीने की कसमें खाईं। कसमें तोड़ना संदीप के लिए क्रोकरी तोड़ने जैसा था।" जब एक प्रशासनिक अफसर ऐसा अपनी पंसद की पत्नी के साथ कर सकता है तो समाज का चेहरा कितना भयावह होगा। जबकि वह स्वयं कविता की सहेली निर्मल के साथ गाड़ी में छोड़ने के नाम से गलत व्यवहार करता है और कहता है कि मैं थोड़ा और सुन्दर होता हो दुनियां की सभी औरतें मुझसे आकर्षित होती।

"कविता को एक सीढ़ी नीचे देखना उसे पसंद था, जबकि कविता कदम से कदम मिलाकर चलने में यकीन रखती थी। यह शिक्षित समाज की तस्वीर खींची है ममता जी ने।

'प्रेम कहानी' उपन्यास में जया नायिका, गिनेस के आग्रह पर अपने माता–पिता की इकलौती सन्तान होने पर भी उनका विरोध कर गिनेश से प्रेम विवाह करती है और वह एक प्रेमी हृदय है वह गिनेस से सच्चा प्यार करती है वह उससे मँहगे गहने या वस्त्र नहीं चाहती फिर भी गिनेस के प्रेम से वंचित रहकर अनेकेपन की शिकार हो जाती है। गिनेस कितना व्यस्त और सफल था। सफल आदमी कितना सम्पूर्ण होता है। उसे अगल–बगल किसी की जरूरत नहीं होती। बिस्तर पर पड़े मुझे शिद्दत से अपने नाते–रिश्तेदार याअद आने लगे, माँ–बाप, चाचा–चाी, गाँव मुहल्ला।"

एक स्त्री कैसे प्रेम विवाह करने के बाद भी वह भी पुरुष के आग्रह पर अपने माता–पिता अन्य रिश्तेदारों को उसके लिए छोड़ देती है और निस्वार्थ भाव से उसके घर को बसाने लग जाती है और एक लड़की सभी जिम्मेदारियाँ निभाने के बादभी प्रेम से वंचित रहती है। यह कैसा समाज है।

यशा भी अपने प्रेम में असफल होने के बाद समाज कीझूठी शान, जाति, धर्म के कारण बेमेल विवाह से आजीवन कैद–सा अनुभव करती है।

जया की सहेली सहनायिका यशा का बेमेल विवाह होता है। वह प्रेम तो शिकागो के मुहम्मद से करती है लेकिन विवाह रूढ़ियों और परम्पराओं के कारण अन्य पुरुष से होता है। वह कहती है– "बाबू जी ने जल्दी–जल्दी रिश्ता तय कर कर चटपट ब्याह कर दिया कहीं मैं मुसलमान न हो जाँऊ, बनियां जाति का पतन न हो जाए।... हम लाख एम.ए हो जाएँ परम्परा...महत्त्वपूर्ण है।

'लड़कियाँ' उपन्यास में लेखिका ने दो लड़कियों के माध्यम से स्त्री की समस्याओं को उजागर किया है। "दो नंग–धंग

आदमियों ने अफ्शाँ को जबरदस्ती थामा हुआ था उनकी बाहों में बुरी तरह से छटपटा रही थी। अफ्शाँ के मुँह में उसी का दुप्पटा ठूँसा हुआ था।... उस वारदात से शारीरिक क्षति होने से तो हम बच गए लेकिन मानसिक क्षति का अन्दाजा लगाना किसी के लिए असम्भव था। तीन दिन, तीन रात तक अफ्शाँ नर्सिंग होम में रह–रहकर ही चित्कार करती रही। आपा वो आ रहे हैं, मुझे बचाओ।"

किस प्रकार से समाज में लड़कियाँ अपने आप को आत्मनिर्भर करती हैं तो उसका शोषण होता है। कितना भयावह दृश्य रहा होगा जब अकेली लड़कियाँ अपने अस्तित्व को बनाने के लिए दोमुँहें समाज में रहती हैं और पुरुष समाज में ममता जी ने पुरुष की मानसिकता का पर्दाफाश किया गया है। एक तरफ बेटी को पढ़ाने की बात की जाती है दूसरी तरफ उसको घर से बाहर असुरक्षा के कारण डर का साया सताता रहता है।

'लड़कियाँ' उपन्यास में सुरजीत सिंह आलूवालिया अपनी पत्नी को जलाकर मार देता है। – "उसी सुरजीत सिंह की पत्नी ने पिछले महीने अपने कपड़ों में आग लगाकर आत्महत्या कर ली।"

उपन्यास में लेखिका एकाकी जीवन जीने पर विवश है वह कहती है कि "मैं ऐसा इंसान चाहती थी जिसने मुझसे पहले किसी लड़की को न जाना हो। और मुझसे बाद वह किसी को जानने की हसरत न रखे। यह एक मुश्किल तलाश थी। ...मैंने अपने को समझाया आज के जमाने में दूध तो खालिस मिलता नहीं, इंसान कहाँ से मयस्सर हो। न सही इश्क, न सही शादी, रहेंगे हम अकेले बेनाम, बेदाग। मरते समय तक अपना बैंक बैलेंस 'निर्मल ह्रदय' के नाम कर जाएंगे।" कैसे कोई लड़की इतना बड़ा फैसला लेने के लिए मजबूर हो जाती है, जबकि एक श्रेष्ठ समाज के लिए पति–पत्नी काहोना आवश्यक है। यह एक जैविक आवश्यकता भी है और सृष्टि का नियम भी वरना अपराध अधिक बढेंगे।

'दौड़' उपन्यास में आधुनिकता और बाजारबाद के कारण सभी नैतिक मूल्यों का बाजारीकरण होता है। यहाँ पर पवन कहता है कि पापा एथिक्स जैसे भारी भरकम शब्द हमें मत बताओ। इस उपन्यास में रिश्ते–नाते पैसों के सामने धता नजर आते हैं– सास–बहू, पति–पत्नी, माता–पिता या अन्य रिश्तों का कोई सम्बन्ध नहीं है। जीवन में ध्रुवीकरण का आधार बस पैसा ही है। सोनी जी की मृत्यु पर – "सिदार्थ ने माँ को कहा... किसी को बेटा बना कर दाह संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रूकना मुश्किल होगा।" उस माँ की कैसी स्थिति होगी जो वृद्धावस्था में सारा जीवन, जवानी, पैसा बच्चों पर लगा कर अन्तिम समय में बेटे से समाज के अनुसार अंतिम संस्कार की प्रतिक्षा कर रही है। वहीं आहत होकर कर फोन हाथ से गिर जाता है।

निष्कर्ष– एक नारी का चित्रण ममता जी ने अपने उपन्यासों में किया है। समाज मेंनारी के गुण ही त्याग प्रेम, बलिदान, ममता, उसका दुख का कारण होते हैं, ममता जी ने सभी उपन्यासों में नारी को उच्चता का बोध करवाने के लिए प्रोत्साहित किया है तथा समाज में घटित समस्याओं कोभी उजागर किया है जैसे– पति–पत्नी के बीच प्रेमविवाह के बाद प्रेम का अभाव, 'नरक–दर–नरक','एक पत्नी के नोट्स', 'प्रेम कहानी' उपन्यासों में प्रमुखता से दृष्टिगत किया गया है। 'बेघर' में दकियानूसी मानसिकता, 'लड़कियाँ' में भी समाज में दोमुँहे पुरुष का पर्दाफाश किया है तथा 'दौड़' उपन्यास में पूंजीवाद व आधुनिकीकरण में पुरुष यांत्रिक युग में स्वयं यंत्र बनता जा रहा है। तथा इसमें अधिक अकेलापन की समस्या नारी को ही मिलती है। ममता जी की भाषा शैली सरल सीधी व व्यंग्यता लिए हुए है। भारतीय समाज में यह लिंगजन्य भेदभाव शिक्षा द्वारा ही समाप्त करना सम्भव है तथा पुरुष को महिला को बराबरी का स्थान और सम्मान देना होगा। और अपनी परम्पारिक मानसिकता को बदलना होगा।। पति–पत्नी दोनों को मिलकर स्वस्थ समाज का संगठन करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. बेघर उपन्यास, ममता कालिया, पृ. 72
2. वही, पृ. 72
3. वही, पृ. 59
4. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. 342
5. बेघर, ममता कालिया, पृ. 95
6. बेघर– ममता कालिया, पृ. 94–95
7. वही, पृ. 128
8. नरक दर नरक, उपन्यास, पृ. 128
9. वही, पृ. 133
10. एक नत्नी के नोट्स, उपन्यास, 37
11. वही, पृ. 32
12. प्रेम कहानी, उपन्यास, पृ. 194
13. वही, पृ. 171
14. लड़कियाँ, उपन्यास, वही, पृ. 108–109–110
15. वही, पृ. 84
16. दौड़, उपन्यास, पृ. 89

रजन बाई
पीएच.डी. शोथार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक, (हरियाणा)
मो. 9466794205
sahlawat.2012@gmai.com

37

A STUDY OF ANTIWAR VISION IN EARNEST HEMINGWAY'S WORKS

Ashok, Dr. JK Sharma

Abstract

The title of this paper may confuse the pursuer in light of the fact that it contrasts Antiwar Vision in Earnest Hemingway's Works. Since the commencement of the world humankind has seen many war conditions and how the human life endured because of such frightful conditions. Anyway humanity has not taken in its exercises – that no life can be continued because of war. Khaled Hosseini wherein he has overwhelmingly extended the interruption of the family as the individuals from the family move discarded attributable to the issues made by war. Khaled Hosseini in his novels *The Kite Runner*, *A Thousand Splendid Suns, And the Mountains Echoed* show life in its different tints and shadings. Hemingway is a lot of mainstream in the realm of writing principally for his war novels.

Keywords: Antiwar Vision, Earnest Hemingway's Works, human life, Khaled Hosseini

Introduction

The study assembles these to some degree different creators for reasons that will be identified somewhat later. Yet, in the first place, the two of them have won the hearts of millions of pursuers by satisfying their strive after delight perusing while at the same time keeping up a specific measure of scholarliness. To lay it out plainly, the fiction of both these creators are smash hits yet with a distinction; a distinction that makes them deserving of a situation in abstract history.The notice of the word war summons assorted pictures in human brain. The alarming pictures related with war have frequented the previous century more than whatever other age which has firmly encountered the abhorrences of war. All the wars battled on this planet have deserted them a path of devastation. A large portion of the wars have been an aftereffect of selfish ruses. Any avocation for war shows up path short as a pay for the misfortune it causes. Notwithstanding all the authentic support for falling back on a war so as to shield humanity; one can't resist agonizing over the predicament of vagrants, war-widows and the overall population presented to the abhorrences of war. We can't praise war in overlaid edged casings displaying craving, death and enduring of the residents. No defense for delivering war can disregard the loot and loot of human qualities.

- **A Farewell to Arms**

A Farewell to Arms is "universally regarded as the best American novel of World War I" [1] and Clifton Fadiman in his review of the novel comments that it is "not merely a good book but a remarkably beautiful book" (20). Samuel Shaw articulates it as "One of the great love stories in American literature." (62) *A Farewell to Arms* is an accomplished fiction which rises up out of a personal past-encounters in Love and War – that Hemingway refined through a few phases of structure, including short stories as illuminating feeders to the novel itself.[2] The novel is Hemingway's investigation of the twinned subjects of adoration and death and is set against the background of World War I in Italy. [3]

Based on the Indian poetic standard, the prevailing feeling of *A Farewell to Arms* is distress or sorrow, occasioned by the death of Catherine that empowers the peruser to savor karuna rasa (empathetic tenderness). Daniel Schneider rather gullibly proposes that the novel's predominant feeling is a 'state of mind behind the events', which is bitterness, disgust, a desolation of soul, remorse'[4]. Schneider's terms go under one term, gloom, which in reality acts here as one of the few brief feelings of the novel, the other unmistakable ones being lack of interest, anxiety, excruciating reflection, satisfaction, delight and obviously, toward the end, the death. Catherine's death isn't just the last event of the novel, yet chooses its prevailing feeling, i.e., distress at the passing of a friend or family member, and events the portrayal of events by Frederic in the principal individual. The current investigation would uncover how the 'interchange' of the brief feelings, in the given setting of Frederic Catherine sentiment and the war, prompts distress of the storyteller hero and how the peruser savors poignancy both at the obvious and denotative levels. The accompanying perceptions by Hemingway, which are a part of his perspectives on man in a threatening world, is appropriate to the specific situation:

There is no lonelier man in death, except the suicide, than that man who has lived many years with a good wife and then outlived her. If two people love each other there can be no happy end to it.[5]

In any case, Hemingway was making an effort not

to be a sentimentalist. He doesn't fiddle with simple nostalgia, however depicts feeling sincerely. Nostalgia isn't a feeling appropriate, yet may give a simple similarity to a feeling which doesn't and can't achieve the degree of tasteful joy. Hemingway's straightforward depiction of the feeling of the characters acquires its wake an inspiration of a feeling of misfortune and, accordingly, Farewell gives us tenderness. The way that Frederic keeps on living after the death of Catherine avoids the chance of Farewell being an instance of adoration in detachment (vipralambhasrngara) either, which is a needy feeling, 'a state enlivened by hope of reunion, the longing and anxiety for the return of the separated partner being present in it all the time'. But pathos, 'as such produced by diverse causes, including the death of a dear person, is different, as it is an independent or neutral emotion - a state of suffering not having even an undercurrent of hope or expectation that the dead person would come back to life'.

The chief of the emergency clinic, "Miss Van Campen" finds that, in his clinic room, Henry has been concealing alcohol. Therefore, Henry is sent back again to the front. During the nonattendance of Henry, the circumstance in the front has turns out to be more regrettable. This was during the retreat of Italian armed force after the tragic events of Caporetto Battle (1917). Moving back to Milan, Henry starts to look for his adoration "Catherine". He understands that Catherine has been moved to Stresa a spot that is far away of roughly 95 miles. Henry chooses to pass via train to Stresa, where he is joined by Catherine once more. The couple chooses to re-visitation of Italy; at that point they cross the fringe into impartial Switzerland when they moved back.

Upon landing in the Swiss fringes, Henry and Catherine are captured by the specialists. However, later they are approached to offer preparing to understudies looking for winter sports in Switzerland. They go through some glad months remaining close to Montreux in a wooden house. One of the evenings later, Catherine starts giving birth. Henry and She take a taxi to the medical clinic. Subsequent to having a difficult and long work results, Henry contemplates whether Catherine would endure. Sadly, Catherine dies with Henry being other than her. Crushed by the occurrence, he leaves for the lodging in which they used to remain and walk alone in the downpour.

It is expressed by Palaima, that *A Farewell to Arms* by Hemingway is seen to have a regular doubt elusiveness of language and its ability to misshaping. It is additionally felt that the doubt of Hemingway in the renowned affirmation of Frederic Henry that theoretical words including bless, fearlessness, or brilliance supposedly was profane adjacent to the towns' solid names containing the streets' numbers, the streams' names, the dates' and regiments' numbers. Moreover, there is a seen feeling in the effectiveness compatibility of weapons and instruments. In such manner, Vekic, (2017)[7] Hemingway qualified as "obscene" the bountiful utilization of dynamic words in his novel the novel *A Farewell to Arms* where neglected to signifying the genuine war's real factors they discuss. Furthermore, Vekic makes reference to that since the novel *A Farewell to Arms* is a novel identified with war and the creator himself had anticipated in it, the principle focus stayed more on the genuine clash encounters. Suhail (1999)[8] states that Hemingway himself was an observer of the world wars. Thus, Hemingway had the option to portray the monstrosities and miseries of the war, conveying his artistic abilities, utilizing superb just as unparalleled habits.

The primary subject apparently is identified with the "War's Grim Reality". It is plainly found in the novel's title . A Farewell to Arms that there is a fundamental spotlight on war and this is appeared in the cycles when Henry eliminated himself out of this war and abandoning it. The characters e.g., EttoreMoretti and Gino introduced in the novel having really undecided mentalities about the war. Actually, they are angry of the awful demolitions caused, the farfetched of the greatness it as far as anyone knows that will be brought. This novel appears to be to offer mind blowing struggle depictions that were appeared to portray things as rough disarray and silly ruthlessness; the retreat scene of the Italian armed force stayed, in American writing, as one of the most significant war's inspirations. The same number of men started to disintegrate just as the fighters' psyches, nerves, brains, and capacities with respect to discerning good decisions and considerations were likewise disintegrated.

Obviously, the novel censures the war; it is not really a radical's work. The war is definitely the silly, barbarous world result. The creator recommends that the war supposedly is simply the dull itself; it is a deadly expansion of a world declining to secure, save, or recognize, ensure genuine affection. The torment and love relationship is regarded to be this current novels' subject. In view of the war setting, the creator offers a distressed, profound contemplation on adoration's temperament. At the point when Catherine reported to Henry that her life partner was dead; she needed to flee of the torment brought about by her misfortune. Additionally, Henry expected to be far away of discussing of the war as conceivable as possible.

- ***FOR WHOM THE BELL TOLLS***

Following the distribution of For Whom the Bell Tolls, it is viewed as the most acclaimed novel of Hemingway. The New York Times named For Whom the Bell Tolls, "the best book Ernest Hemingway has written and one of the major novels in American Literature" [9](Web). The novel's confirmed quality, particularly contrasted with his previous works, the tension of the primary character's main goal and the moving and emotional romantic tale makes it an extraordinary achievement in writing. *For Whom the Bell Tolls* was a critical accomplishment just as a gigantic hit. It is without a doubt considered Hemingway's best novel. To cite Dorothy Parker "It is a great thing to see a fine writer grow finer before your eyes. *For Whom the Bell Tolls* is, and beyond all comparison, Ernest Hemingway's finest book".[10] The Spanish Civil War spellbound an age of artists, writers and activists, every one of whom perceived that what was being happened in the fields of Andalucía and the roads of Barcelona was a sign for what was coming all around the world. Ernest Hemingway was one such writer - he revealed upon the war for the North American Newspaper Alliance. *For Whom the Bell Tolls* recounts the story of Robert Jordan, an American solider in the International Brigades. The book is a captivating record of penance, chivalry and energy, and potentially Hemingway's highest accomplishment.

The novel *For Whom the Bell Tolls* (1940) manages diverse current issues mostly the topic of war that the writer Ernest Hemingway had just experienced. The storyline, the events, the improvements of the characters, the settings and other emotional impacts are joined in a straightforward and clear manner to pass on Hemingway's thoughts regarding war. For a more profound comprehension of Hemingway's motivation recorded as a hard copy *For Whom the Bell Tolls* and to gauge the degree of how war impacted his portrayal, it is important to follow the social/social, mental and physiological measurements.

For Whom the Bell Tolls, is Hemingway's first full length novel with another way to deal with life set apart by another account strategy and style? Practically all the critics are consistent in recognizing this reality. Robert Sherwood calls it: "a work of art"[11]. Joseph Warren Beach gives a thorough evaluation of the novel: "This novel is the largest in scope, the most accomplished in technique and the strongest in effect of anything he has written" (48). With *For Whom the Bell Tolls* there is an away from of Hemingway's changing reaction to life all in all which affected a comparing change in the story method and style.

The style which put Hemingway on the map with its plain concealment of adornment and figure, its emphasis on the goal and the unreflective, its propensity for modest representation of the truth, the explicitness and the curtness of its linguistic developments, its strength, the sharpness of its staccato and dreary impacts, the immaculateness of its live under the limit of presentation that is, its proceeded with balance under the heaviness of event or feeling-this style is a precise change of Hemingway's ethical disposition toward a curiously rough and clamorous experience. His style, as a result, is the thing that he had rather than God.

Hemingway stays phenomenal among his contemporary exposition writers. His essential subjects have been violence and crudity of war but he has figured out how to portray such upheaval in an entirely created writing. Lawrence R. Broer additionally declares about his concise composing style and fairly discovers his detailing aptitudes as incredible supporters in that. Broer says:

Hemingway's famous understated style in the author's reports to NANA (the North America Newspaper Alliance), paradoxically objective and subjective, shows us how the demands of reporting and Hemingway's fictional gifts work as one: pithy, incongruous juxtaposition that highlight the grotesqueness of battle. Hemingway's stark, unsentimental prose shocks us with horrors in the midst of the commonplace. It challenges us as gruesome photographs do, our repulsion to the obscene violence clashing with our appreciation of its perfected expression.[13]

The hero of For Whom the Bell Tolls, Robert Jordan, is in Spain as a volunteer to battle with the supporters against the fundamentalists in the Spanish Civil War. He has decided to battle with follower guerrilla powers to help uphold the administration and individuals of Spain out of philosophical inspiration. Toward the start, he has been influenced by his political vision and put stock in the conservative reason. At that point it appeared to be that he didn't really put stock in that cause and the explanation of his participation was just in light of the fact that he is against extremism. He got baffled. In spite of the fact that he disagreed with all that the supporters did, and in spite of the fact that he at times scrutinized the shrewdness of his military requests, he was faithful, and did his obligations with duty.

Robert Jordan's character shows that his personality is plainly identified with serving society as a faithful contender. Thus, he decides to battle for a superior world and is focused on helping poor people and the abused.

He decides not to acknowledge social weights to think and act like every other person. He follows up on his solid good convictions and goes to Spain.

As a round character, Robert Jordan shows advancement in three individual measurements. At the social/social level, serving society and battling in a war implies that the individual is faithful and has commitment to the honorable obligation at higher human guidelines. Robert Jordan relinquishes his position as a school teacher in the United States and volunteers in the Spanish Civil War for the conservative side.

Tomorrow night they would be outside the Escorial in the dark along the road; the long lines of trucks loading the infantry in the darkness; the men, heavy loaded, climbing up into the trucks; the machine-gun sections lifting their guns into the trucks; the tanks being run up on the skids onto the long-bodied tank trucks; pulling the Division out to move them in the night for the attack on the pass. He would not think about that. That was not his business. That was Golz's business. He had only one thing to do and that was what he should think about and he must think it out clearly and take everything as it came along, and not to worry. To worry was as bad as to be afraid. It simply made things more difficult. [14]

Jordan feels that playing out his obligation means the world. Other than that, he is a great officer since he doesn't fear death. His experience and capability make him confident paying little mind to what may befall him.

The Spanish Civil War in *For Whom the Bell Tolls* gives the main amusing circumstance where the supporters and the fundamentalists battle against one another and devastate Spain for the sake of sparing it and its qualities. E.M. Halliday calls it "the ironical self destruction which is civilized warfare". [15]

In *For Whom the Bell Tolls* the imagery and Irony consolidate to suggest profound implications and powerful ramifications. The difference between his hopeful considerations toward the start and the later effect of truth of ghastly war events is self-evident. The interior pressure in his reasoning increments when he starts battling for the conservative reason as he understands that he doesn't generally have faith in their motivation Jordan infers that there is no contrast between the fundamentalists and conservatives. He is stunned when he faces the hard reality about the general public's high, ideal ideas and the genuine acknowledgment.

Allen Guttmann thinks about the representative resistance among man and machine to be the focal issue in his paper, *Mechanized Doom*. Guttmann says: "for Hemingway the Spanish Civil War was, among other things, a struggle waged by men close to the earth and to the values of a primitive society against men who had turned away from the earth, men who had turned to the machine and to antithetical values of an aggressive and destructive mechanical order". [16]

One of the most searched after purpose of concern remains the legend of Hemingway's works. To submit to the code-legend standards, to give the creator mystic help and to try and be the creator's anecdotal projection – the saint of Hemingway has consistently been the subject of investigation, conversation and even the focal concern. Philip Young relates Robert Jordan to the writer himself. Youthful contends about "Jordan's age and relates him to the author". [17] Cooperman finds the hero "Jordan's character to be juxtaposed with Anselmo and Pablo" (95).

Jordan fundamentally invests in the battle for singular opportunity. Thusly, freedom is his most noteworthy need without thinking about the conservative political interests. That is the reason he was against despotism in any case.

No. There was nothing to be gained by leaving them alone. Except that all people should be left alone and you should interfere with no one. So he believed that, did he? Yes, he believed that. And what about a planned society and the rest of it? That was for the others to do. He had something else to do after this war. He fought now in this war because it had started in a country that he loved and he believed in the Republic and that if it were destroyed life would be unbearable for all those people who believed in it. He was under Communist discipline for the duration of the war. Here in Spain the Communists offered the best discipline and the soundest and sanest for the prosecution of the war. He accepted their discipline for the duration of the war because, in the conduct of the war, they were the only party whose program and whose discipline he could respect. [18]

The adjustments in Jordan's perspectives and feelings towards the social/social thoughts show how the ruthless events of war influence one's character. Jordan has started his participation in the Spanish clash with sentiments that he was "taking part in a crusade", then things began to get clearer and the "things he had come to know about this war were not so simple" (248). The supposed adversaries are not generally fundamentalists, and the alleged partners are not genuine conservatives.

- **The Sun Also Rises**

The Sun Also Rises was Hemingway's first novel and its

originally recommended titles were Fiesta and Lost Generation. It had been distributed in October 22, 1926 by the distributing house Scribner's in the United State comprising 5,090 duplicates and to be sold for two dollars a duplicate since its underlying appearance. The novel got its second distribution following one year in the London distribution house by Jonathan Cape with the title Fiesta. Hemingway started to compose the novel on his birthday 21 July, 1925 and it took eight and half weeks. The novel is generally viewed as the complete record of the age that followed World War I.

The Sun Also Rises recounts the story of a gathering of exiles buried in postwar frustration and gloom. From the start Hemingway molded the narratives of his characters Brett Ashley, Mike Campbell, and Robert Cohn relying upon the chronicles of Duff Twysden, Pat Guthrie, and Harold Loeb with an aim to make the novel about a woman named woman Ashley and Carlos Baker sees that"His new opening said that this was going to be a novel about a lady. Her name was lady Ashley and she was living in Paris, her story was both romantic and highly moral".[21]

It gives a peep into the life of anxious American ostracizes got comfortable Paris in the mid 20s, and beneath the outside of the primary surfaces runs one more mission, that is, journey for importance to connections. The state of mind of passionate barrenness rules the entire novel. As indicated by David Savola, the novel eventually praises the connection between human kind and normal world. On the side of his view he says, "*The Sun Also Rises* is profoundly concerned with ecological considerations, as the passage of Ecclesiastes echoed in its title. The novel presents the main characters as aimless, displaced persons without a secure sense of meaning or value and suggests that the characters could find that meaning and value in cultivating a more intimate connection with the natural environment. The novel criticizes conventional depiction of nature and calls for a literature that offers a more complex picture of the connection between humanity and the natural world" (226)

While making anecdotal investigation of the novel, Young declares that, "The characters in *The Sun Also Rises* are recognizable people taken from real life and the hero has a peculiar psycho-biographical approach" (57). Critics with true to life tendency towards Hemingway's works saw that there was a nearby proclivity among Hemingway and saint. To cite Young once more "The novel *The Sun Also Rises* is an expression of Hemingway's obsession with the wound he had received during World War I. He views Jake as physically as well as psychologically wrecked who is humorless and passive" (59)

Philip Young terms Jake's injury as an "objective correlative" (86) for a spiritually lost post war world. Thus, the reader might laugh at Jake and his friends. Young contends that "Despite a lot of fun *The Sun Also Rises* is still Hemingway's Wasteland and Jake is Hemingway's Fisherking" (88). He was articulating, what has gotten a recognizable and in certain quarters at any rate a conventional perusing of the novel. It is generally held that *The Sun Also Rises* is a composition variant of The Wasteland, its topic of the sterility of life in the advanced world. Jake Barnes is an agent casualty of this world and his renowned injury, gotten in the Great War, is an image of the overall barrenness of the occasions. Youthful stretches the psycho-historical way to deal with its limit when he sees that "Jake projects qualities of the man who created him, many of his experiences are still either literal or transformed autobiography and his wound is still the crucial fact about him" (54).

Baker additionally centers on the masculinity pervasive in the novel however he likewise follows the images all through the novel. As indicated by Baker, a significant part of the quality of *The Sun Also Rises* might be ascribed to the confounded interaction between two perspectives which it epitomizes. As indicated by one of them the novel is a romantic report in sexual and eventually in profound dissatisfaction. Other than this pretty much conventional view, in any case, must be put with the thought, that it is a subjective investigation of changing level of physical and otherworldly masculinity, extended against a foundation of boredom and passionate fatigue which is wherever certainly denounced (144-145). Baker additionally followed the significance and noteworthiness of images in *The Sun Also Rises*. Downpour is one of the images in the novel and keeping in mind that typically downpour represents life, for ripeness, for vegetation and development it represents annihilation or separation, for lost expectations and for awful climate in *The Sun Also Rises*. Apart from the manly credits and the presence of images, Carlos Baker commends Hemingway's honest portrayal of things in his works. In his own words Hemingway once expressed "I only know that I have seen" (web). In this manner Baker finishes up "It is clear that the strongest conviction in Hemingway the aesthetician—the principle underlying his sense of place and fact and scene, the principle supporting his discipline of double perception is the importance of telling truth" (54-59).

Bhim S. Dahiya's principle concern has likewise been centered on the legend yet he effectively figures out

how to confine the saint from a wide range of personal connections and discover him to be a creating anecdotal character. Dahiya states, "Jake is a developing character, and his self awareness as well as his awareness of Brett, is not a matter of sudden realization at the end: his development is built within the very structure of the novel. If he continues to show concern for Brett until the end, it is not because he has any illusion about her. He is fully aware both of Brett and of his own situation from the very beginning"[22]Dahiya acclaims the Hemingway saint and says, "The important thing to note in case of Hemingway hero is that his consciousness of death does not make him lose interest in life on the contrary, it makes him all the more hungry for life" (92). Dahiya manages every single part of the legend's life. Yet, the prevalently acknowledged idea of the "code hero" is depicted as a misguided judgment in his work.

Conclusion

The scholarly writers have been seen as imitators, creators, expert, pragmatists, expressionists, impressionists yet as Wayne Booth says that a writer can pick his mask yet he can't decide to get away. Every single writer makes a dedication the second he plunks down to compose. Responsibilities are as fluctuated as the assortment of writers and dependent on various political, social, philosophical and moral ways of thinking. Along these lines in writing, a writer who submits a demonstration recorded as a hard copy really invests in the demonstration of composing. He does as such to put over an overall message that is especially identified with the universe of one's occasions. Hemingway composed when the whole West was attempting to recoup from the social blows it got toward the finish of nineteenth century and in the start of the 20th century. It was a momentary time when an age of delicate youthful writers thought that it was hard to find. Hemingway is a writer who saw and encountered the coldblooded real factors, which the initial scarcely any times of twentieth century created on the loose. He offers an exact and a definite portrayal of whatever occurs. He is a cognizant craftsman who is clear in his short stories just as in his novels. He utilizes language fastidiously with each word tried. KhaledHosseini is a man with a mission, a mission to recover his nation of every one of its ills, to make it wonderful, similar to it used to be. He does this by composing delightful novels with stunning canvas, spreading across Afghanistan and the Afghan diaspora everywhere on the world. It recounts the story of the Afghan public, Afghan women, children and men, the individuals who are trapped in the snare of religion, politics and terrorism. He has composed three novels up until this point, including The Kite Runner, *A Thousand Splendid Suns* And the Mountains Echoed. In excess of 45 million duplicates of his books are sold in excess of eighty nations.

References

1. Augustine, Contra Fastum in Political Writings, p.164.
2. H.Levie, Protection of war Victims: Protocol I to the 1949 Geneva Conventions, (Ocean Publications, New York, 1980), p. 287.
3. Richard Shelly Hartigan, Liber's Code and the Laws of War, Chicago,1983, p.77
4. Dennen, J. M. G. V. D. (1995). The origin of war: the evolution of a male-coalitional reproductive strategy. s.n.
5. WRIGHT Q. (1926) Changes in the conception of war. Amer. J. Internat. Law 18, p. 762.
6. HOBBES T. (1651) Leviathan. (Clarendon Press, Oxford, 1943; 1960).
7. VON CLAUSEWITZ K. (1832) VomKriege. Ferdinand Dümmler, Berlin. (English ed. : "On War", London, 1911).
8. BLAINEY G. (1973) The causes of war. Macmillan, London.
9. BRODIE B. (1973) War and politics. Cassell, London.
10. WELLS D. (1967) The war myth. Pegasus, New York.
11. Fisher, Markus (1992) Feudal Europe, 800–1300: Communal Discourse and Conflictual Practices. International Organization 46:427-66.
12. Gutmann, Myron P. (1988): "The Origins of the Thirty Years' War," Journal of Interdisciplinary History, Vol. 18, No. 4, The Origin and Prevention of Major Wars (Spring), pp. 749-770 Published by: The MIT Press
13. Hobbes, T. (1651) Leviathan, or the Matter, Forme, and Power of a Commonwealth, Ecclesiasticall and Civil,
14. Powell, R. (2006) "War as a Commitment Problem," International Organization, 60, 169– 203.
15. Rovit, Earl, and Gary Brenner, *Ernest Hemingway*, revised edition, Twayne Publishers, 1995.
16. E. NageswaraRao. (ed). 'Preface' in Ernest Hemingway: Centennial Essays.
17. SanjuktaDasgupta .The Novels of Huxley and Hemingway: A Study in Two Planes of Reality. p. 31.
18. Kennedy, XJ. (1993). Literature an Introduction to Fiction, Poetry, Drama. Toronto: Little Brown and Company Limited.
19. Hosseini, Khaled. The Kite Runner. London: Bloomsbury, 2003, pg.2
20. Barnet, Berman and Burto. (1961). An introduction to Literature. Boston: Little Brown and Company, pg. 333.

21. Hosseini, Khaled. The Kite Runner. London: Bloomsbury, pg.3.
22. Hosseini, Khaled. **A Thousand Splendid Suns**. Toronto: Penguin Canada, 2011, pg.137.

Dr. J.K. Sharma
Head (English Deptt.)
Baba Mastnath
University
Rohtak (Haryana)
121004

Ashok
Baba Mastnath
University,
Asthal Bohar,
Rohtak

38

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं अन्य प्राचीन धर्म ग्रन्थों में नारी की स्थिति एक विवेचन

डॉ0 शेरपाल

सारांश –

विश्व के राजनीतिज्ञों में सर्वोपरि आचार्य कौटिल्य के विचार बौद्धों की विचारधाराओं से प्रभावित हैं। आचार्य कौटिल्य का समय 321 ईसा पूर्व माना गया है। कौटिल्य का समय भगवान बुद्ध के समकालिक स्वीकार किया गया है। बौद्ध दर्शन वेद तथा ब्राह्मणों का समर्थन नहीं करता है। कौटिल्य ने अपना अर्थशास्त्र बौद्धों के निवृत्ति मार्ग विरूद्ध लिखा है। आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रवृति मार्ग का अनुसरण करता है। इसमें दण्डनीति तथा वार्ता पर विशेश बल दिया गया है। अर्थशास्त्र में त्रयी को भी मान्यता प्रदान की गई है। परन्तु कौटिल्य 'अर्थ' को सबका मूल मानते है। समाज तथा राज व्यवस्था का मूलाधार 'अर्थ' है। भारतीय विचारधारा के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरूशार्थों के बिना जीवन तथा समाज नहीं चल सकता है। आचार्य कौटिल्य ने वर्णाश्रम की मान्यता देते हुए उसे मानवोपयोगी बनाने पर बल दिया है। इन्होंने मनुश्य में कोई भेद नहीं माना है। इनके अनुसार धर्म दर्शन या विचार को निजी प्रवृति मानकर राज्य का एक अंग मानकर एक ईकाई माना है।कौटिल्य ने मनुश्य को सामाजिक प्राणी माना है। इनके विचार आधुनिक धर्म निरपेक्ष अथवा लौकिक विचारधारा से मिलते हुए हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन चारों वर्णों को आचार्य कौटिल्य ने समाज का अविभाज्य अंग माना है। शुद्रो को अनार्य तथा अस्पृश्य नहीं माना है। इन्होंने समाज एवं राजशास्त्र पर अपने अर्थशास्त्र में विस्तृत लेख प्रस्तुत किए हैं। इनके अनुसार मनुश्य समाज तथा राज्य का आधार है। अतऐव मनुश्रू में भेद करने की कल्पना कौटिल्य की विचार सीमा से बाहर था। कौटिल्य के समय में वेदत्रयी की मान्यता थी। किन्तु कौटिल्य ने अथर्ववेद का भी उद्धरण प्रस्तुत किया है। यह उद्धरण मुख्यता उन स्थानों पर प्रस्तुत किए गये हैं। जहां तन्त्र मंत्र तथा अभिचार का वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक दृश्टि से कौटिल्य का योगदान समाज की रचना एवं विकास में विशेश महत्व रखता है। आचार्य कौटिल्य के समय भारत में अराजकता फैली थी। अनेक सघर्शों का सामना चन्द्रगुप्त मौर्य को करना पडा। देश में अनेक प्रकार की उथल–पुथल मच गई थी, जिसके कारण कोटिल्य इस निश्कर्श पर पहुंचे कि बिना संगठित एवं शक्तिशाली राजय के भारत की समृद्धि नहीं हो सकती है। इसके लिए कठोर अनुशासन, जनता का उत्थान एवं विकास आवश्यक है।

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में नारी की स्थिति का वर्णन किस प्रकार किया है। इस विशय पर चर्चा करते हुए अन्य धर्म ग्रन्थों में नारी की स्थिति किस प्रकार रही थी। इस दृश्टिकोण पर कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित नारी की स्थिति तथा अन्य धर्म ग्रन्थों में वर्णित नारी की स्थिति को विभिन्न आयामों से मानस पटल पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नारी समाज के स्त्री पुरूशों को जन्म देकर समाज के अस्तित्व को रखती है। समाज में नारी के कई रूप होते हैं। जैसे पुत्री, बहिन, पत्नी, माता, आचार्या आदि। सामान्यतया भारतीय समाज में नारी के प्रति उदात्त दृश्टिकोण रहा है। मनुस्मृति के अध्याय 03 के 56 वें श्लोक में कहा गया है कि जहां नारियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं और जहां पूजा नहीं होती है, वहां सभी क्रियाओं में विफलता है। (1) जिस कुल में स्त्रियां दुखी रहती हैं। वह कुल शीघ्र ही नश्ट हो जाता है, और जहां स्त्रियां दुखी नहीं रहती हैं। वह कुल शीघ्र ही उन्नति करता है। इसीलिए कल्याण की कामना करने वाले मनुश्य सदैव उत्सवों एवं सतकार्यों में समय–समय पर आभूशण तथा वस्त्र आदि देकर उनका सम्मान करते हैं। मनु ने माना है कि ब्रह्मा ने अपने आधे भाग से नारी को उत्पन्न किया है।

मनु ने स्त्री मर्यादा को ध्यान में रखकर कुछ परिस्थितियों में स्त्री दर्शन का निशेध किया है। स्त्री के साथ भोजन न करें, छिंकती हुई, जमाही लेती हुई तथा सुख पूर्वक बैठी हुई स्त्री को न देखे। आंखों में अंजन लगाती हुई, आवरण रहीत और प्रसव करती हुई स्त्री को उत्तम ब्राह्मण न देखे। मनु ने सभी सम्बन्धियों में गंरू पत्नी को सबसे अधिक पूज्य माना है। मौसी, भाभी, सास और बुआ गुरू पत्नी के समान पूज्यनीय है। (2) मनु को स्त्रीयों के साथ सहानुभूति की इसीलिए उनका विचार है कि राजा को असहाय स्त्रीयों की रक्षा करनी चाहिए। नारी की रक्षा के विशय में प्राचीन काल से ही लोग यह मानते आ रहे हैं कि स्त्री अवध्य है। फिर भी कौटिल्य ने हत्या या बुरा आचरण करने वाली स्त्रीयों को जान से मार डालने की कठोर आज्ञा दी है। (3) निन्दीत आचरण करने वाली नारी को राक्षसी तुल्य होने से कदापी पूज्यनीय नहीं हो सकती है। प्राचीन भारतीय समाज में नारी के प्रति सभी का दृश्टिकोण उदात्य ही रहा हो, ऐसी बात नहीं है। कुछ ऐसे भी सन्दर्भ भी मिलते हैं, जिनसे सूचित होता है। नारियों के प्रति कुछ लोगों का दृश्टिकोणअच्छा नहीं था। दसीलिए यह कहावतें चल पडी 'न स्त्रीस्वतन्त्रयमर्हति' (स्त्रियों को स्वतंत्रता का अधिकार नहीं है) 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम' (स्त्री और शूद्रों को न पढाऐं)। स्त्री आदि के

लिए वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। लेकिन इस लोक में स्त्रियों का कल्याण हो इसलिए व्यास मुनि ने कृपा करके महाभारत की रचना की है।(4)

इन पुराण वचनों से ध्वनि निकली है कि पुराणकाल से पूर्व और पुराणों की रचना के समय शूद्रों और आचार हीन द्विजों के समान स्त्रियों के प्रति भी उदात्त दृश्टिकोण नहीं था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मतस्य पुराण की रचना के समय यह विचार धारा थी कि स्त्री अपनी हर आवश्यकता के लिए पुरूश पर निर्भर थी पति के विना स्त्री का कोई अस्तित्व नही था। मतस्य महापुराण के 188 वें अध्याय में त्रिपुरदाह के प्रसंग में शत्रु नारियाँ अग्नि को उलांहना देती हुई कहती हैं कि क्या तुमने नहीं सुना है कि स्त्रियाँ भी अवध्य होती है। (5) इससे प्रमाणित होता है कि स्त्रियों का वध अनुचित माना जाता था। मतस्य महापुराण के रचना काल के समय में समाज में यह मान्यता थी कि पति ही स्त्रियों का देवता होता है। पति ही इनका शरणदाता है इस लिए साध्वी स्त्रियों को अपने पति का अनुगमन करना चाहिए। (6) मनुस्मृति में भी कहा गया है कि यदि अवस्थानुसार स्त्री की रक्षा पिता–पति और पुत्र न करें तो वे निन्दनीय होते है। (7)

नारी निन्दा–

इस प्रकार हम देखते है जहाँ एक ओर नारी की प्रशंसा की गई है वहीं दूसरी ओर वैदिक साहित्य पर अनेक विद्वानों ने नारी की निन्दा भी की है लेकिन फिर भी निन्दा की अपेक्षा प्रशंसा अधिक है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी कहा गया है कि स्त्रियों में नाना प्रकार की मूर्खता विद्यमान है (स्त्रीशुहि बालिश्यमनेक विधे) स्मृति कारों में मनु ने सर्वाधिक नारियों की निन्दा की है। मद्यपान, दुश्ट संसर्ग, पति से विरह, इधर–उधर घूमना, असमय सोना और दूसरे के घर में निवास करना ये स्त्रियों के छः दोश माने गये है। वे इतनी कामान्ध होती है कि गुणों की परीक्षा किये विना किसी भी पुरूश से इस लिए संसर्ग करती है कि वह पुरूश है। (8) वास्तव में सृष्टि के प्रारम्भ से ही ब्रह्मा ने स्त्रियों का स्वभाव ऐसा बना दिया। इसलिए इनकी रक्षा करनी चाहिए। (9) मनु कहते है कि स्त्रियों का यह स्वभाव है कि इस जगत में श्रंगार चेश्टाओं के द्वारा पुरूश को आकर्षित कर देती हैं अतएव विद्वान पुरूश को स्त्रियों के विशय में सावधान रहना चाहिए। (10) युवती माता, बहन अथवा पुत्री के साथ पुरूश एकान्त में न रहें क्योकि बलवान इन्द्रिय समूह विद्वान को भी वश में कर लेता है। (11) इस प्रकार हम देखते है कि मनु में स्त्रियों की नैतिक दुर्वलता की अवश्य निन्दा की है किन्तु वह पुरूशों की प्रबल कामवासना से अपरिचित नहीं थे।

दासी प्रथा–

अथर्ववेद के समय ये दासी शब्द घरेलू काम करने वाली अनाथ लड़की के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। वैदिक साहित्य में दासी प्रथा के प्रचलन के असंदिग्ध प्रमाण मिलते है। अर्थशास्त्र तथा मनुस्मिृति में विशेष रूप से राजाओं के दासियों की चर्चा है। (12) धर्मशास्त्रों में दासियों स्वामी की सम्पत्ति समझी जाती थी। धर्मसूत्रों में स्वामी की अन्य सम्मत्ति के साथ–साथ दासियों का भी उल्लेख किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में उस बन्धक रखी हुई सम्मत्ति की चर्चा है जिसका अतिभोग नही होता था।

आचार्य कौटित्य ने उन अभागी स्त्रियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है और उनको यथा सम्भव अन्याय से बचाने का प्रयास किया है। दासी को दूशित करने वाले व्यक्ति को दण्ड का विधान करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति अपने यहॉ गिरवी रखी दासी का सतीत्व नश्ट करें तो उसके गिरवी रखने के बदले मे दिये हुए धन को जब्त कर लेना चाहिए। खरीदी या गिरवी रखी हुई दासी यदि किसी अपराध के कारण कैद हो जाये तो उसके साथ जेल में दुराचार करने पर प्रथम साहस का दण्ड दिया जाना चाहिए और उसके उल्टे उस कन्या को शुल्क स्वरूप कुछ धन देना होगा। वह उसे शुल्क में जितना धन देगा उसका दूना धन उसे राजा को दण्ड स्वरूप देना होगा। (13) इसी प्रकार किसी गर्भवती दासी की प्रसवकालीन सेवा का कोई प्रबन्ध न करें उसे दूसरे के हाथ वेचे या बन्धक रखे तो ऐसा अपराध करने वाले व्यक्ति को प्रथम साहस का दण्ड दिया जाना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसे दास दासियों को खरीदे या बन्धक रखें और इस काम में साक्षी आदि बनकर सहायता करें तो उन दोनों व्यक्तियों को भी प्रथम साहस का दण्ड दिया जाना चाहिए। (14) इसी प्रकार मनु को भी कौटिल्य की तरह दासियों के साथ पर्याप्त सहानुभूति थी। वह उनको उचित वेतन देने का आदेश देते है। (15) महार्शि याज्ञवलक्य के अनुसार (अवरूद्धा) दासी केवल स्वामी सेवा के लिए रखी गई है। अथवा किसी पुरूश विशेश को सौंपी हुई दासी के साथ संभोग करने वाले व्यक्ति को पचास पण का दण्ड दिलाने का अधिकार है। (16) धर्मसूत्रों में परस्त्री गवन के दण्ड विधान का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में वर्ण का ध्यान रखते हुए परस्त्री गवन का दण्ड निर्धारित किया गया है। (17) बौधायन के अनुसार समान वर्ण की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने का प्रायश्चित एक वर्श निर्धारित किया गया है। (18) इसी प्रकार मतस्य महापुराण में भी स्त्रियों के प्रति दुराचार करने वालों के लिए दण्ड का विधान किया गया है। मतस्य पुराण के 227 वें अध्याय में स्त्रियों के प्रति दण्ड नीति के विधान से उस समय की स्थिति से ज्ञात होता है कि उस समय में भी स्त्रियों का पर्याप्त राज संरक्षण था। स्त्रियों के साथ अशिश्ठ व्यवहार करना दण्डनीय अपराध माना जाता थ। यदि कोई किसी अकामा कुमारी के साथ बलात्कार करता था तो उसे तुरन्त मृत्युदण्ड दिया जाता था। यदि सकामा के साथ बलात्कार करें तो उसे दो सौ पण का दण्ड दिया जाता था। दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करने पर पुरूश मृत्युदण्ड का भागी होता था। लेकिन स्त्री निरपराध मानी जाती थी। (19) जो कन्या पिता के घर तीन वार रजस्वला होकर स्वयं पति का वरण कर लेती

थी वह राजा द्वारा दण्डनीय नहीं होती थी।

निष्कर्ष

इस प्रकार अनेक धर्म ग्रन्थों द्वारा दिये गये प्रमाणों से हम इस निश्कर्श पर पहुँचे हैं कि प्राचीन भारतीय समाज में आधुनिक युग की अपेक्षा अधिक सम्मान दिया जाता था। आज के युग में नारी दहेज की आग में जल रही है। हर शहर व गांव में नारी के साथ बलात्कार जैसी धटनायें घटित हो रही है। भारतीय समाज में सभी लोग बेटी के स्थान पर बेटे को अधिक महत्व देते है इसी कारण बेटे के लालची दुश्ट मनुश्य बेटी को गर्भ में ही मृत्यु के घाट उतार देते हैं। और क्षण मात्र भी नहीं सोचते कि यदि बेटी नहीं होगी तो बेटा कहॉ से आयेगा। इस प्रकार भारत के कई राज्यों में स्त्री–पुरूश लिंगानुपात निरन्तर घट रहा है।

अतः हम सभी मनुश्यों को यह विचार करना होगा कि प्राचीन काल से लेकर अब तक स्त्रियाँ किसी भी प्रकार से पुरूशों से पीछे नहीं है। वर्तमान समय में स्त्रियाँ प्रत्येक कार्य को सूचारू रूप से कर रही है चाहे वह कार्य घर में भोजन बनाने का हो या विद्यालय में जाकर शिक्षा देना हो अथवा अस्पतालों में डॉक्टर एवं नर्स के रूप में रोगियों की सेवा करनी हो या वायुमार्ग हवाई जाहज उडाना हो। तो इस प्रकार हमने यह अनुभव किया है कि एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में स्त्रियों की महती भूमिका होती है।

''एक नही दो दो मात्रायें नर से भारी नारी''

(कविवर रामधारी सिंह दिनकर)

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. मनुस्मृति 3.56
2. मनुस्मृति 2.131
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण–4, अध्याय–13
4. श्रीमद्भागवत् 1/4–25
5. मतस्य महापुराण–188/49
6. मतस्य महापुराण–210/17
7. मनुस्मृति 9/4
8. मनुस्मृति 9/13
9. मनुस्मृति 9/16
10. मनुस्मृति 2/214
11. मनुस्मृति 2/215
12. मनुस्मृति 2/219
13. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण–3, अध्याय–13
14. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण–3, अध्याय–13
15. मनुस्मृति 7/125
16. याज्ञवलक्य स्मृति–2.290
17. गौतम धर्म सूत्र – 2.3
18. बौधायन – 2.3/52
19. मतस्य महा पुराण (227/127)
20. मतस्य महा पुराण (227/128)

डॉ0 शेरपाल

असि0 प्रोफेसर (संस्कृत)

समन्वयक कला संकाय

चौधरी हरनाम सिंह

महाविद्यालय

भरौआ–भुता,

बरेली।

(पिन–243126)

मूल निवास–ग्राम–मझगवाँ,

पोस्ट–अमृता खास

तहसील बीसलपुर,

जिला–पीलीभीत

(पिन–262201)

39

A STUDY OF ANTIWAR VISION IN KHALED HOSSEINI'S WORKS

Ashok, Dr. JK Sharma

Abstract

Khaled Hosseini in his novels *The Kite Runner*, *A Thousand Splendid Suns, And the Mountains Echoed* show life in its different tints and shadings. Hemingway is a lot of mainstream in the realm of writing principally for his war novels. His comprehension of death and violence in a war as communicated in *A Farewell to Arms* and *For Whom the Bell Tolls*. His comprehension of death and violence outside war in the midst of harmony is communicated in The Sun additionally Rises. Both the novelists have seen different civil and homegrown wars and political changes and they have made numerous exceptional war and political novels dependent on the encounters accomplished from those wars.The ascent and fall of the Taliban rule in Afghanistan has been a famous subject in fiction written in the wake of the 9/11. KhaledHosseini also managed similar subject in his first novel *The Kite Runner* (2003). Actually, it is additionally the primary novel written in English by an Afghan writer. Through this novel, the novelist has given a valid understanding to the individuals of the world about the Taliban specifically and the traditions and customs of the individuals of Afghanistan all in all.

Keywords: Antiwar Vision, KhaledHosseini's Works, mainstream, novel

Introduction

The Kite Runner is to story of recovery and developing of his perspective. It is a sort of bildungs roman which follows the advancement of character of Amir and his relationship with his local nation and his old companions.

It is the story of the two fathers and children and companions and siblings, and it is a novel about good and bad and the idea of malevolence. Distributed in 2003 to incredible basic and famous recognition, *The Kite Runner* is viewed as a contemporary work of art (47).

It is the story of pre-Taliban Afghanistan, before the Soviets had attacked it and before Islamic religious government had choked its free life. This life is stood out from the existence that turned into the standard in post-Taliban Afghanistan. Despite the fact that the functions of the novel are invented however the portrayal about Kabul, Afghanistan, religion, ethnic contention in Afghanistan and different parts of everyday life in Afghanistan are right and that is the explanation that it turned out to be such an extraordinary accomplishment with the crowd around the world. The novel empowered a whole age to understand the basic Afghans and consider them people and simultaneously to censure religious terrorism and fundamentalism.

The Kite Runner is written in the main individual from the hero's place of perspectives with Amir as storyteller. It is the story of Amir, a little fellow have a place with the religion of Sunni Islam. Amir is the lone offspring of a rich shipper in Kabul. His mom passed on following giving him birth. He relates the long energizing excursion of his life from Kabul to Peshawar in Pakistan lastly from that point to San Francisco, America. (55) There he meets Soraya, the girl of a previous general of Afghanistan and gets hitched with her. During the limited capacity to focus time that he lived in Kabul, Amir used to invest the majority of his energy with his uneducated yet true companion Hassan, the child of their worker Ali having a place with the Hazara ethnic minority. His glad life in Kabul reached a conclusion with the appearance of the Soviet tanks in Afghanistan. He and his family needed to flee to Pakistan and finally settled down in America. His story is followed over the wild and nerve racking functions that his nation experienced. The novel opens in the contemporary U.S. with flashbacks and afterward streak forwards to Afghanistan. Amir's dormant beloved recollections reemerged when he gets a call from Rahim Khan, his father's “old business partner” and his “first grown-up” (167) companion during his initial days by and by living in Peshawar in Pakistan. Amir, who is presently 38 years of age, recalls the sweet and hard encounters of his life in the organization of his childhood companion and worker, Hassan that occurred 26 years back.

- **The Kite Runner**

Khaled Hosseini, the Afghan-American essayist is broadly acclaimed for all his three novels *The Kite Runner, A Thousand Splendid Suns, And the Mountains Echoed* and all these three novels have been successes. These novels are set in the scenery of Afghan clash. In these novels, he has examined the brutal real factors of the contemporary world. Hosseini has managed issues that are of most extreme significance in the twenty-first century.

The ascent and fall of the Taliban rule in

Afghanistan has been a famous subject in fiction written in the wake of the 9/11. KhaledHosseini also managed similar subject in his first novel *The Kite Runner* (2003). Actually, it is additionally the primary novel written in English by an Afghan writer. Through this novel, the novelist has given a valid understanding to the individuals of the world about the Taliban specifically and the traditions and customs of the individuals of Afghanistan all in all. It is Hosseini's nearby perception and extraordinary story advising aptitudes that empower him to portray such complexities of life in Afghanistan during the system of the Taliban. In addition, the separation of time causes him to take a different and target perspective on the functions portrayed in the novel. In a meeting Hosseini says:

And I happened to write a short story called *The Kite Runner* back in the spring of 1999. I had seen a story about the Taliban banning kite flying in Kabul, and since I grew up in Kabul flying kites with my brother and my cousins, my friends, it struck a personal chord, and I wrote a short story, which I thought was going to be about kite flying, and it ended up being about something altogether different. And that short story sat around for two years until March of '01 when I picked it up, and my wife found it and read it and she loved it. I went back to it, and I realized, "Wow! I think there is a novel in this thing." And I had been thinking about writing my first novel for years and never had the courage to, never had the right material. I said to myself, "I think this short story is very flawed as a short story, but it could make maybe a good novel." And it kind of was a personal challenge to finally write that first novel, and I began writing it.[1]

In spite of the fact that it is an endeavor to take a gander at the pretended by the Taliban government in Afghanistan during its reign as portrayed in Hosseini's*The Kite Runner*, nonetheless, the author's other novel *A Thousand Splendid Suns* (2007) will likewise be managed towards the last aspect of this part on the grounds that:

"Both novels illustrate to some extent the excesses and abuses of governments, and the novels include references to capital punishment, political and economic injustice, religious freedom, linguistic diversity, literacy and enfranchisement, and familial relationships"[2].

However, *The Kite Runner* is more commendable than *A Thousand Splendid Suns* so far as their storylines and portrayal of the basic topics, for example, ethnic conflict, religion, and history is concerned, still:

In both novels, characters are caught in crossfire and overwhelmed by external forces. Their inner lives are influenced by an often brutal and unforgiving outside world, and the decisions they make about their own lives are influenced by things over which they have no control: revolutions, wars, extremism, and oppression. This, I think, is even more the case with A Thousand Splendid Suns. In The Kite Runner, Amir spends many years away from Afghanistan as an immigrant in the United States. The horrors and hardships that he is spared, Mariam and Laila live through; in that sense, their lives are shaped more acutely by the events in Afghanistan than Amir's life is ... *The Kite Runner* was a father-son story, and *A Thousand Splendid Suns* can be seen as a mother-daughter story.[3]

The primary novel of KhaledHosseini was distributed in 2003. It was because of the consolation of his better half that he began to work the novel out of the short story of a similar name that he had composed route in 2001, when he had viewed a news piece where it was accounted for that the kite flying was prohibited in Afghanistan by the feared Taliban. He unexpectedly associated with the subject in light of the fact that as a kid alongside his cousins he used to fly kites and do it with such incredible enthusiasm that for quite a long time they just used to discuss kite and flying of the kites. He was unable to envision that the kites which so unreservedly and joyfully used to spot the horizon of Afghanistan involved relinquishment now under the Taliban. He composed a short story and just left it at that. However, when his better half discovered it, she urged him to compose a full length novel about the equivalent and get it distributed. He had never envisioned that his novel could actually locate the light of the day in English. Be that as it may, it did. It turned into a moment hit whenever it was distributed on the grounds that it gives such true record of what the life has been during the long war. The lives of individuals have gone from awful to more regrettable as time passes. Learned individuals were decreased to nothing in opposition to this lone the individuals who had a firearm in the hand and a turban on the head had a state in anyone's life. *The Kite Runner* overwhelmed the world. It let the western world acknowledge what sort of life the ordinary citizens in Afghanistan are driving. Utilizing kite as an image KhaledHosseini has extended how opportunity is in question (45).

The establishment for the accompanying conversation of Islamic fundamentalism as one potential lifestyle for the Taliban lies in the history of Afghanistan. KhaledHosseini, who is an observer to the annihilation of the 200 years of age Afghan government that finished with King Zahir Shah being toppled in 1973, needed to move to Paris in

France alongside his folks in 1976 where his dad held a political post. It happened that two years after their appearance in Paris Daoud Khan, the leader of the new republic also was murdered by a socialist gathering which turned into the impediment on their way back to Afghanistan. Notwithstanding that the socialist overthrow and the Soviet intrusion of December 1979 muddled the issue even more. Thus the family couldn't challenge re-visitation of its local land. All things being equal, the family took political shelter in the United States in 1980 and settled as outcasts in San Jose, California.

Taking in everything from the Soviet intrusion of Afghanistan in 1979 – and the resultant long term struggle and trip of outcasts to Pakistan, Iran and the US – to the ensuing ascent of the Taliban, *The Kite Runner* is an altogether current assessment of warfare on people, social orders and countries. Told through the eyes of two companions Amir and Hassan, the book exhibits that while wars and clashes change through time, the resultant savagery and demolition doesn't.

The Kite Runner is the story of two Afghan young men Amir, the child of well off man in Kabul and his companion, Hasan. The novel is a sort of bildungsroman which follows the improvement of Amir and his relationship with his nation. It additionally portrays the sociopolitical set up of Afghanistan from late 1970s to the fundamentalist Taliban legislature of the 1990s until its fall in 2001. Hosseini has managed major issues like political, social, and financial change in contemporary Afghanistan. As RebecaStuhr puts it:

Hosseini writes compelling stories through which he questions assumptions and breaks apart stereotypes through the strengths and weaknesses of his characters. He interweaves into the action of his stories the details of history, culture, and daily life in Afghanistan. He challenges his readers to reflect on discrimination and political abuse within their own experience in light of instances of such abuses in a different and unfamiliar country.[4]

Amir finds that his own common perspective isn't reflected by the religious zeal that is doing adjusts in Islamic Afghanistan. He forsakes his obligation and flees for a large portion of his life, yet then he awakens to it and afterward returns to his local nation to compensate for his previous flaws.

• *The Kite Runner* is isolated into three areas and the principal segment is set in Kabul. In this part, the youth of Amir, the hero of the novel is portrayed during the mid 1970s to mid 1970s. The connection among Amir and Hassan additionally creates in this segment[5]. The subsequent part starts in 1981 when Soviets attacked Afghanistan and on account of this intrusion, Amir and his dad need to leave Afghanistan for California where they live as individuals from the migrant Afghan people group. This part closes with the marriage of Amir and Soraya and the passing of Amir's dad in 1989. The last aspect of the story starts in 2001 when Amir Re-visitations of Afghanistan through Pakistan. It is Rahim Khan, Amir's guide and his dad's closest companion, who calls Amir and welcomes him to re-visitation of Afghanistan.

• **A Thousand Splendid Suns**

In May 2007, Hosseini delivered his subsequent novel entitled A Thousand Splendid Suns. This novel, which is additionally set in Afghanistan from the mid 1960s to the mid 2000s, tells about the lives of three Afghan women named Nana, Mariam and Laila. The novel is separated into four sections and it manages the connection among mother-daughter and the friendship between women.

Women Characters

The investigation of characters offers approach to get zeroed in fair and square of opposition in Third World women's liberation showed through their considerations. The logicality and level of opposition are found in the activity and stance that attempts to beat cultural predicament and mistreatment through modifying the endorsed jobs and pictures of women. Despite the fact that these women don't mirror each Afghan lady, their points of view and activities speak to a thought that women want to be free.

Nana

A tall, hard lady with lethargic eyes, Nana is Mariam's mom and was one of the servants who had an illegal illicit relationship with Jalil, a rich finance manager in Herat[6]. Nana is the initiator of the novel's lady characters giving her situation as the most minimal part in the Afghan culture. Her ill-conceived daughter puts her in an undesirable circumstance wherein she becomes anti-social at long last. She doesn't let Mariam to an appropriate school, however be instructed by a mullah for the training of the Koran. Her doubt on school is obvious:

"Learn? Learn what, Mullah sahibi?" Nana said sharply. "What is there to learn?" She snapped her eyes toward Mariam. Mariam peered down at her hands.

"What's the sense schooling a girl like you? It's like shining a spittoon. And you'll learn nothing of value in those schools. There is only one, only one skill a woman like you and me needs in life, and they don't teach it in school. Look at me." … "Only one skill. And it's this: tahamul. Endure." (17)

She prompts Mariam on the “lot in life” by saying, “It's lot in life, Mariam. Women like us. We endure. It's all we have. Do you understand? Besides, they'll laugh at you in school. They will. They'll call you harami.” (18).

Nana is stereotyped with her consistent hollering to Jalil's children who convey the everyday requirements for Nana and Mariam. Thusly, Nana needed to show she could be the person who took the expert in the "kolba", her home, a demonstration that can be viewed as an approach to oppose in her battle. With respect to "endurance", Nana considers it to be a capacity to languish calmly over torments exacted by male centric culture. Considered as a way to battle in obstruction, "endurance" is demonstrating her the predominance in confronting Jalil, the advocate of Nana's sufferings (18). Nana's training works fine when Mariam is imprisoned slaughtering Rasheed and being executed to death. In accordance with female obstruction against the male centric sufferings, Nana ends it all (14), since it tends to be viewed as a sensible opposition against what she has endured in her life. In her demise, she makes certain to prevail with regards to halting persecution and misery, which is the main demonstration she can achieve in backward conditions.

Mariam

The creator shapes the personality of Mariam in three ensuing stages: before marriage, after marriage and in the wake of meeting Laila as Rasheed's subsequent spouse. Mariam is depicted as an inquisitive girl for her father and instruction, who has a contention with the mother (16). Youthful Mariam is compelled to wed to an old shoemaker, Rasheed, a man who says, “it annoys him to see a man who's lost the control of his wife” (244). She is a harami, knave, an ill-conceived daughter of a maid with a low situation in the public arena, which makes her detached and forlorn in the climate. Despite the fact that her father, Jalil, is a regarded resident in Herat, she is isolated genuinely from her father's reality. The juxtaposition between Mariam's reality and Jalil's shows how a long way from reality Mariam is since she doesn't see right how unique her life is contrasted with her father's. As such Mariam stays detached because of her physical and scholarly partition from the truth. Her naivety makes her fantasy of an alternate life outside the one she knows. She fantasizes her life at school:

From that point forward, contemplations of study halls and instructors had shaken around Mariam's head, pictures of journals with lined pages, segments of numbers, and pens that made dull, hefty imprints. She imagined herself in a homeroom with different girls her age. Mariam yearned to put a ruler on a page and draw significant looking lines. (17)

Laila

Laila represents the Afghan lady who has a decided spot, duties, and aspiration to satisfy throughout everyday life. Through the phases of her turn of events, her thoughts, past recollections and conditions lead to clashes and advances from male centric obstacles to obstruction set off by sexual orientation balance and women's liberation. The writer readies the pursuers with the pictures of solidified Afghan culture of male mastery and persecution from which sexual orientation disparity, torment and political oppression necessitate that women be subject to husbands, fathers and children. The minimization of women bothers her misery. Its outcomes are aggressive behavior at home, social mobs and female fights in the approaches of separation.

Laila grows up with joy, love and opportunity as a middle class lady in a family that holds the significance of training of women, as the most ideal approach to secure the cultural qualities and lady's commitment for the improvement of Afghan culture. At the point when Rasheed corrupts her she answers: “This is Kabul. Women here used to practice law and medicine; they held office in the government” (249). Having incredible boldness as a lady, she accepts the air of instruction. She shields Mariam from Rasheed and is sufficiently valiant to go out into the roads alone even in the hours of Taliban system (263). She is shrewd and definitive to pursue her awards. However, she is constrained to wed Rasheed after she loses her family and Tariq, her sweetheart, not to be deceived in the male centric Afghan culture.

Regardless of all weaknesses of society, Laila is more fortunate than most Afghan women as she gets proper instruction; it is on the grounds that she is brought up in a family that has faith in the significance of training. Her father prompts her:

Babi had made it clear to Laila from a young age that the most important thing in life after her safety was her schooling. I know you're still young, but I want you to understand and learn this now, he said. Marriage can wait education cannot. You're a very bright girl. Truly you are. You can be anything you want, Laila I know this about you. And I also know that when this war is over, Afghanistan is going to need you as much as its men, maybe even more, because society has no chance of success if its women are uneducated, Laila. No chance. But Laila did not tell Hasina that Babi had said these things, or how glad she was to have a father like him, or how proud she was of his regard for her, or

how determined she was to pursue her education just as he had his. For the last two years, Laila had received the awalnumra certificate, given yearly to a top-ranked student in each grade. (60-61)

• Laila and Mariam get joined against man centric Taliban oppression so much that this solidarity hauls both out of the seclusion that enables them to compensate for their constraints, misery and exploitation perpetrated by the social conditions. The novel offers light to social, social religious and political developments which prepare for corruption and weakness they need to suffer; sexual orientation balance, given upon entering the world, in time ceases to exist when girls arrive at the age 8, which is additionally directed by the Taliban system.

• **And The Mountains Echoed**

The third novel by KhaledHosseini, *And the Mountains Echoed*, is a work of family dramahistorical fiction that inspects the components encompassing one the variables that lead to and resonate from one activity: a helpless family offers their most youthful daughter to a rich couple in Kabul. Set in Afghanistan, the novel ranges more than fifty 50 years and four ages. Hosseini incorporates a few account voices, as opposed to simply the story's principle family. The numerous storytellers give a few unique points into the amazing account of the principle family; however they likewise look at their own specific circumstance and the intentions behind their decisions throughout their life. The pursuer will see numerous similitude's between the "detached" storytellers to the primary characters the individuals from the family part of the excellent account. Riverhead Books previously distributed the novel in 2013, and it follows *The Kite Runner* and *A Thousand Splendid Suns*. The novel is broken into nine parts, each told from the viewpoint of an alternate character.

Characters

Abdullah

In the novel And the Mountain Echoed, one male character named Abdullah hit by blame and regret for not having the option to spare his cherished sister of illegal exploitation in Afghanistan. The main more youthful sister named Pari ought to be offered to an affluent family in Kabul to help their families in these troublesome occasions. He was feeling lament for not having the option to shield his sister from illegal exploitation. This more terrible circumstance makes Abdullah stricken longing to Pari.

Abdullah couldn't get the past behind them both when they are developed and played together as children. Additionally Pari has been deserted by her mom who kicked the bucket while conceived an offspring Pari so Abdullah was sustaining and raising Pari when his father needed to work. Reflected of the misfortune toward his younger sibling that he cherished such a great amount of keep on carrying on Abdullah for quite a long time. Here is the story of Abdullah's memory told by her daughter who was additionally named Pari.

"Some people hide their sadness very well, Pari. He was like that. You couldn't tell looking at him. He was a hand man. But I think, yes, I think he was sad inside[11].

Abdullah consistently feel the agony and misery over the loss of his darling more youthful sister's figure. It is still occurred until he was old and endured the loss of his memory. Then, she actually recollected the figure of her sister, Pari. Be that as it may, his memory is lost and blurred in light of the fact that spooky by an extremely profound feeling of misfortune. Here's a selection that portrays the occasion.

Folds appear on Baba's forehead. For a transitory moment, I think I detect a tiny crack of light in his eyes. But then it winks out, and his face is placid once more. He shakes his head. "No. No, I don't think that's how it goes at all."

"Oh, Abdullah ..." Pari says.

Smiling, her eyes tearedover,Pari reaches for Baba's hands and takes them into her own. She kisses the back of each and presses his palms to her cheeks. Baba grins, moisture now pooling in his eyes as well. Pari looks up at me, blinking back happy tears, and I see she thinks she has broken through, that she has summoned her lost brother with this magic chant like a genie in a fairy tale. She thinks he sees her clearly now. She will understand momentarily that he is merely reacting, responding to her warm touch and show of affection. It's just animal instinct, nothin more. This I know with painful clarify (372-373).

Saboor

Other than Abdullah who was blasted regret for Pari's illegal exploitation, different figures who additionally lament and guiltstricken was father Abdullah and Pari named Saboor. Outrageous neediness made Saboor chose to sell his daughter, Pari. Saboor physical depictions indicated him as a helpless man can be seen from this citation. "His name was Saboor. He was darkskinned and had a hard face, angular and bony, nose curved like a desert hawk's beak, eyes set deep in his skull. Father was thin and reed, but a lifetime of work had made his powerful muscles, like rattan strips tightly wound around the arm of a wicker chair" (19).

Prompting a feeling of misfortune and hopelessness make Saboor hit by sorrow in his life. He

needed to forfeit one of his children to help the other relatives. The image glances clear in the accompanying statement. “Sometimes, in unguarded moments, he caught Father's face clouding over, drawn into confusing shades of emotion. Father looked diminished to him now, stripped of something essential. He loped sluggishly about the house or else sat in the heat of their big new castiron stove, little Iqbal on his lap, and stared unseeingly into the flames. His voice dragged now in a way that Abdullah did not remember, as though something weighed on each word he spoke. He shrank into long silences, his face closed off. He didn't tell stories anymore, had not told one since he and Abdullah had returned from Kabul. Maybe, Abdullah thought, Father had sold Wahdatis his muse as well” (47-48).

Uncle Nabi

Uncle Nabi is the third character who was likewise hit by a feeling of blame and regret in his life when he encouraged her brother by marriage to give his daughter Pari to an affluent family in Kabul. Uncle Nabi thought by giving one of the children, it can spare the family's monetary conditions in his sibling inlaw family. Tragically after the events of illegal exploitation of his niece, the mental states of his brother by marriage, Saboor so discouraged. In like manner, the sibling of Pari named Abdullah who was so attached to his sister. Toward an amazing finish he depends a demonstration of somebody who shows the acquiescence of his whole bequest to a niece he cherished, Pari.

“The second is that you try to find my niece Pari after I am gone. If she is still alive, it may not prove too difficult – this Internet is a wondrous tool. As you can see enclosed in the envelope along with this letter is my will, in which I leave the house, the money, and my few belongings to her. I ask that you give her both this letter and the will. And please tell her, tell her that I cannot know the myriad consequences of what I set into motion. Tell her I took solace only in hope. Hope that perhaps, wherever she is now, she has found as much as peace, grace, love, and happiness as this world allows” (131)

KhaledHosseini in the wake of composing a novel dependent on two women trapped in the unimaginable circumstance of Afghanistan goes worldwide by bringing a large group of characters through his novel *And the Mountains Echoed*. While discussing the explanation he picked through and through an alternate way of storytelling in his latest novel And *the Mountains Echoed*, KhaledHosseini has said:

“Family is so central to Afghan life. It's the way you understand yourself, those around you, and how you perceive yourself in the world as part of this whole.(135)”

It was a cognizant choice, and the regular progression of the book requested it to be more worldwide. I needed to make a story-world that didn't really start with Kabul and end in Kandahar. I needed to extend the geographic milieu for my characters to some degree since I've voyaged a ton in the previous 10 years and I needed to extend my artistic legs as a writer. Numerous writers compose vast and awesome books basically set in a similar town for their whole profession, and I appreciate them for that, yet I needed to go out for a much needed refresher.

Conclusion

One of the standing topics of Khaled Hosseini is religious mistreatment and Islamic obsession in nations like Afghanistan. He isn't at all open minded about gatherings like the Taliban and doesn't apologize for them regardless. Despite the fact that he doesn't take part in direct criticism however he rebukes religious mistreatment, dug in the sacred writings.Ernest Hemingway's method of composing proposes his refined reasonableness. At the point when it is working at its most elevated, it has consistently worked upon at prompt target level which makes an interpretation of thoughts into terms of solid things. Hemingway's writing truth be told isn't composed, it is lifted out of nature and guilefully and skillfully tumbled out upon the page; it is the savage material of consistently lowly discourse and feeling, he composes the exposition of the real world. His composing starts with first individual plural; something like "we" which means we the no-soldiers, the spectators not yet occupied with activity, looking over the stream and fields to the mountains watching troops and rulers passing by, hearing that things are turning sour and seeing what the cholera can achieve and this "we" ranges to "I" lastly offers path to the hero fundamentally like Henry in *A Farewell to Arms*. Now and again he offers approach to "you". Hence, he has embraced the "we" strategy for portrayal combined with wonderful technique to give ground-breaking impact of fiction. Hemingway knew about the art of fiction composing. He needed to make a fine specialty, which would be reasonable altering and re-revising his perspectives, ideas, topics and words a few times, killing a few or huge numbers of the things he envisioned and tolerating something else which fit the work. Anything you realize you can wipe out and it just reinforces your icy mass, was his view.KhaledHosseini's writing additionally changed his own life. After almost 27 years, he got back to Afghanistan to perceive what had happened to his nation and his kin. Like Amir, he had the option to discover his father's old home,

however he additionally perceived that war and ruthlessness demolished where he grew up.

References

1. Hosseini, Khaled. **A Thousand Splendid Suns**. Toronto: Penguin Canada, 2011, pg. 131.
2. Barnet, Berman and Burto. (1961). An introduction to Literature. Boston: Little Brown and Company, pg. 343
3. Hosseini, Khaled. The Kite Runner. London: Bloomsbury, 2003, pg.21.
4. Hosseini, Khaled. **A Thousand Splendid Suns**. Toronto: Penguin Canada, 2011, pg. 228.
5. Siswantoro. (2002). ApresiasiPuisi-PuisiSastraInggris. Surakarta: Muhammdiyah University Press, pg.49.
6. Hosseini, Khaled. **A Thousand Splendid Suns**. Toronto: Penguin Canada, 2011, pg. 224.
7. Hosseini, Khaled. The Kite Runner. London: Bloomsbury, 2003, pg.3.
8. Hosseini, Khaled. **A Thousand Splendid Suns**. Toronto: Penguin Canada, 2011, pg. 238.
9. Siswantoro. (2002). ApresiasiPuisi-PuisiSastraInggris. Surakarta: Muhammdiyah University Press, pg.43.
10. Hosseini, Khaled. The Kite Runner. London: Bloomsbury, 2003, pg.63-64.
11. Hosseini, Khaled. **A Thousand Splendid Suns**. Toronto: Penguin Canada, 2011, pg. 60.
12. Hosseini, Khaled. And the Mountains Echoed. London: Riverhead Books, 2013, pg.71.
13. Hemingway, Ernest. *A farewell to Arms*.1929.London: Jonathan Cape, 1994, pg. 195.
14. Oldsay, Bernard S. Hemingway's Hidden Craft: The Writing of *A Farewell to Arms* .University Park: Pennsylvania State press, 1969, pg. 39.
15. McDowell, Nicholas. Hemingway. O'Rourke Enterprises Inc: Florida 1989.
16. Schneider, Daniel J. "Hemingway's *A Farewell to Arms*: The Novel as poetry." Modern Fiction Studies. XIV. 1968, pg. 9.

Dr. J.K. Sharma
Head (English Deptt.)
Baba Mastnath
University
Rohtak (Haryana)
121004

Ashok
Dr. JK Sharma
Baba Mastnath
University,
Asthal Bohar,
Rohtak

40

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में वर्णित भाषा व शैलीगत विविधता

डॉ0 अनिता

सारांश –

भाशा उपन्यास का एक आवश्यक एवं विशिश्ट तत्व हैं। यह मनुश्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। साधारण अर्थो में मनुश्य की सार्थक व्यक्त वाणी को भाशा कहते हैं। इसके द्वारा मनुश्य के भावों, विचारों और भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। साहित्य के संदर्भ में भाशा को निम्न शब्दों में परिभाशित किया गया है। '' साहित्य यदि जीवन की व्याख्या है, आलोचना है तो भाशा उसको अभिव्यक्ति का स्वर देती है। साहित्य को अभिव्यक्त करने के जो भी विद्या, उपादान रूपबंध है, उन्हें भाशा ही साकार बनाती है, ह्रदय सम्प्रेशण व जन–जन के बीच वही संवाद का माध्यम बनती है।'' [1] एक उपन्यास लेखक अपनी कृति में जिस भाशा का प्रयोग करता है उसका दोहरा महत्व है। '' प्रथम वह लेखक के मन में कथा के एक वैचारिक स्वरूप को व्यक्त करती है जिसके लिए उसके पास यही एक माध्यम है। इसके द्वारा वह उसे पाठकों तक पहुॅचाने मे समर्थ होता है और दूसरा वह अपने उपन्यास में जिन पात्रो की रचना करता है, अपने–अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में वे भी अपने ह्रदय की विविध अनुभूतियों और भावनाओं की प्रतीति दूसरों को करा देते है।''[2] उपन्यासकार देशकाल एवं वातावरण के अनुकूल शब्दों का प्रयोग करके भाशा की विशिश्ठता को बढ़ाता है। डॉ जगदीश प्रसाद मिश्र के अनुसार ''भाशा की दृश्टि से उपन्यास अलग महत्व रखता है इसकी भाशा एक जैसी नहीं हो सकती। उपन्यास में कुछ अंश स्थिर होते हैं, कुछ गत्यात्मक, कुछ गम्भीर और कुछ भावात्मक।'' राहुल के उपन्यासों की भाशा पर विचार करते हैं तो उनके उपन्यासों में भाशा के विविध रूप दृश्टिगत होते हैं। इनके उपन्यासों की भाशा सरल, सहज, व्यवहारिक होने के साथ, संस्कृतनिश्ठ परिनिश्ठित भाशा भी है। इनके उपन्यासों की भाशा में क्षेत्रीयता का पुट भी यत्र तत्र आ जाता है। इनके अनुदित उपन्यासों की भाशा में अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है।

राहुल के उपन्यासों की भाषागत विविधता –

संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित हिन्दी – संस्कृत भाशा को अत्यन्त विराट परिप्रेक्ष्य में देखकर राहुल ने उनके समकालीन स्वरूप को उदघाटित किया। इनके अनुसार – ''संस्कृत हिन्दी की जननी है। हिन्दी की विभक्तियॉ तथा क्रियापद तक संस्कृत पर अवलबिंत है। इस प्रकार यदि विचार करके देखा जाये जो संस्कृत का यह स्वाभाविक अधिकार है कि हिन्दी कोश को अपने शब्द कोश से भरे।''[4] राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में संस्कृतनिश्ठ भाशा विशेश महत्व की है। ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल व वातावरण को साकार करने के लिए राहुल जी ने संस्कृत तत्सम शब्दावली युक्त भाशा का प्रयोग किया है। 'जय यौधेय में स्वर्गिक सुन्दरी के रूप लावण्य का बखान संस्कृतनिश्ठ परिनिश्ठित हिन्दी का अविस्मरणीय उदाहरण है। '' उसका घन नील चिकुर घिर मुख चन्द्र, तब कम्बु –ग्रीव, स्फटिक शिला सम कलश–चुगम सहित वक्षस्थल, फिर सत्रिवली क्षीण, फिर विशाल नितम्ब, जानू–कदली, पाद पदम, पानी के तल पर आये।'' [5]

सरल सहज व्यवहारिक भाषा – राहुल जी ने अपने उपन्यासों में जनप्रिय भाशा का निरन्तर प्रयोग किया है। राहुल जी का मत है कि – ''कोई भी शब्द चाहे वह हिन्दी प्रांतों का हो, अंग्रेजी का हो या अन्य विदेशी भाशा का, यदि वह बहुप्रचलित है और वह यथार्थ परिभाशा दे सकता है उसे लेना चाहिए।''[6] राहुल जी ने समस्त सामाजिक उपन्यासों में सरल सहज स्वाभाविक भाशा को प्रयुक्त किया है। जो दैनिक जीवन में व्यवहार में आती है। 'जीने के लिए' उपन्यास से एक उदाहरण दृश्टव्य है। एक साधू बाबा अपनी आपबीती बता रहे हैं कि किस तरह से काशी के ठग ने उन्हें ठगा – हाथ में उसके दो ढाई रूपये का बड़ा अच्छा लोटा था। किसी भले मानुश से आकर अभिवादन पूर्वक पूछा – ''महाराज भोजन करेगें ?एक महात्मा को भोजन कराने की श्रद्धा है। हॉ भगत क्यों नहीं – साधु ने बहुत प्रसन्न हो उत्तर दिया। आईये यहॉ हलवाई की दुकान पर। क्या खायेगें, पूडी ?कचौडी ?मिठाई ? पाव–पाव भर ?..... श्रद्धालु भगत बाबा का लोटा ले दूध लेने गया। बाबा ने पत्तल साफ कर दी। लेकिन दूध का कहीं पता नहीं । आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता, डेढ घंटा, बाबा चारों ओर देख रहे हैं। .....हॉ दूध लाने के लिए लोटा ले गया। अच्छा तो दूध और लोटा उससे लेते रहिएगा। छः आना पैसा निकालिए।'' [7]

ग्रामीण देशज भाषा – राहुल जी के उपन्यासों में वातावरण अनुकुल भाशा का प्रयोग मिलता है 'भागो नहीं दुनियां को बदलो उपन्यास में इन्होनें ठेट ग्रामीण भाशा का प्रयोग किया है उदाहरण प्रस्तुत है– **भैया** – ''भगवान अपने कितने ही कामों से इस्तीफा दे चुके हैं, हमारे सामने नहीं, उन लोगों के सामने जो भगवान की नश नाडी पहचानते हैं। एक बुंद पुरूश और एक बुंद तिरिया का मिलाकर बच्चा पैदा होता है। .....लेकिन अभी हमारे देश में पुरूशों में न हो, लेकिन तिरियों में पूत की लालसा बेसी होती है।'' [8] इसी भांति 'जीने के लिए' उपन्यास में भी राहुल जी ने ग्रामीण देशी

भाशा का प्रयोग किया है। देवराज का अपनी बडी भाभी से हुआ वार्तालाप ग्रामीण वातावरण को दर्शाता है – भाभी ने ठंडा सर्बत बनाना चाहा लेकिन देवराज ने कहा 'बड़की भौजी सर्बत से, अच्छे मेरे लिए आम हैं। सात वर्श ऐसे देश में रहा जहां आम का दर्शन भी दुर्लभ है।''[9] राजस्थानी परिवेश को सजीव बनाने के लिए राहुल जी ने 'राजस्थानी रनिवास' उपन्यास में राजस्थानी ग्रामीण भाशा का प्रयोग किया है। उदाहरण दृश्टव्य है – ''रॉड चोरी ली दो म्हारे पेट में वी जावादे।'' रॉड ने चुरा लिया, हमारे पेट में नहीं जाने देती है।'' [10]

''मैंने बुखार चड़े, जरे भावड आये (मुझे बुखार जब चडता है तो खाने की इच्छा होती है। [11]

' भाव नख कतरिया म्हारी ओंगड़ियों कटगीं (मां ने नाखून काटा मेरी अंगुलियां कट गयी) [12]

अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी भाषा – राहुल जी के जो उपन्यास भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्धित है उनमें प्रस्तुत अंग्रेज पात्र अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करते हुए दुश्टव्य है।

''वैल, सूबेदार साहब, यह नौजवान कौन है ?''

''हजूर मेरा निश्तेदार है। साहब बहादुर की ताबेदारी के लिए आया है। ''

''पल्टन में बरटी होगा। वेरी वेल ! ऐसा जवान हम मांगटा है। यह कल बरटी होने सकता है।'' .....

''बहोट चोटा ओमर है। रामसेवक सिंह से नहीं, अभी खाने और कसरत करने दो।''[13]

'देवराज की मां राधा द्वारा साहब बहादुर की नकल का प्रसंग इसी भाशा के प्रयोग से रोचक बन पड़ा है।'' [14]

उर्दू अरबी –फारसी निष्ट भाषा – इस भाशा का प्रयोग सामान्य रूप से उन पात्रों के लिए किया जाता है जो मुसलमान है। राहुल जी के ताजिक भाशा से अनुदित उपन्यासों में इस भाशा का प्रयोग बहुतलता से मिलता है। 'सूदखोर की मौत' उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत है –

''अऊजु बिल्लाहि मिनश–शैतानिर, रजीम, बिसम्मिलाहिर रहमानुर रहीम '' (दुश्ट शैतान से भगवान बचाये।''[15]

'दाःखुदा उपन्यास में बुखारा के सौदागर की वेशभूशा का वर्णन एक शब्द चित्रसा हमारे सामने उपस्थित कर देता है।

''उनका रंग उड़ा आंखे फीकी, दाढ़ी जंगल –सी और शरीर निर्बल था। उनका लंबा जामा जमीन तक लटकता, ऊल जलून साफ गर्दन पर कुलावा की मानिंद था। कमर में उन्होनें रूमाल बांध रखी थी। '' [16]

राहुल के उपन्यासों में शब्द समूह – राहुल के उपन्यासों में शब्दों की विविधता देखने को मिलती है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है तो उनके अनुदित उपन्यासों में अरबी–फारसी के शब्दों की प्रधानता है। इनके सामाजिक उपन्यासों मे विदेशी भाशा के शब्दों का प्रयोग यत्र–तत्र प्रयुक्त किया गया है।

राहुल जी ने महान रचनाकारों की भांति नवीन शब्दों से हिन्दी साहित्य का समृद्ध किया। इनके अनुसार नूतन शब्द निर्माण भाशा की समृद्धि व विकास के लिए आवश्यक है।

लोकोक्तियों व मुहावरों का प्रयोग – राहुल सांकृत्यायन अपनी बातों को जन –जन तक पहुॅचाना चाहते थे। जनता के मध्य प्रचलित मुहावरें, लोकोक्तियों, सुभाशितों तथा विशिश्ट शब्द रचनाओं का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि राहुल साहित्य को जनता की सम्पत्ति मानते थे। अपनी रचनाओं को लोकप्रिय एवं लोक हितकारी बनाने के लिए इन्होनें लोकाक्तियों व मुहावरों का बहुलता से उपयोग किया यथा '' ऑखों में कॉटे की तरह चुभना'' [17]

''लेकिन चबाते समय जब कंकड़ियों से युद्ध करना पड़ता था तो समझ में नहीं आता था कि क्या करें ?[18]

''बेचारे स्वयं सेवक के दिल पर बिजली पड़ गयी। '' [19]

''हिन्दू भाईयों अपने बाल–बच्चों की ओर तो देखो, नवाब साहब उन्हें दाने –दाने के लिए मुॅहताज करना चाहते हैं। [20] जनोक्ति अथवा लोकोक्ति में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति होती है। 'भागो नहीं दुनियां को बदलो उपन्यास में राहुल जी ने ग्रामीण परिवेश के अनुकुल लोकोक्तियें का प्रयोग किया है। यथा

''दुनियां ठगिए मम्कर से, रोटी खाइए घी शक्कर से। [21]

''हाथी चले बाजार, कुत्ता भूकैं हजार।'' [22]

इसी भांति इनके राजस्थानी रनिवास उपन्यास में भी राजस्थानी लोकोक्तियों का प्रयोग बहुलता से किया गया है।

''सौत बुरी सूली भली, नितहि छिपावै नैन।
सौत बुरी काचा चून की, आध बटावै पीव। '' [23]

राहुल ने मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाशा का जीवन्त बना दिया। उन्होनें अपनी रचनाओं को संग्रहालय की वस्तु न बनाकर जनोनमुख कर दिया है।

राहुल संस्कृत्यान की भाषा की विशेषताएॅ –

पात्रानुकूल भाषा – राहुल संस्कृत्यान ने ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुरूप जहां एक ओर शूर तेजस्वी एवं स्वाभामिनी पात्रों का चयन किया है सभी रचनाओं को अपनी भाशा का आधार बनाया है वहीं दूसरी ओर उन्होनें पात्रानुकुल भाशा द्वारा ऐतिहासिकता का गुण निर्वह किया है। जय यौधेय उपन्यास में चन्द्रगुप्त द्वितीय से युद्ध का संकेत मिलते ही समस्त यौधे एकजुट होकर युद्ध का आह्वान करते हैं कि ''यौधेय माता के लालो ! मां की लाज तुम्हारे हाथ में है। एक सौ कंठों के साथ आवाज निकली ''पहले हमारी जान जायेगी तब मां की लाज जायेगी।''[24]

राहुल के अधिकांश पात्र साम्यवादी विचारधारा रखते हैं उसी के अनुरूप इनके संवाद दृश्टिगत होते हैं। सिंह सेनापति उपन्यास में

रोहिणी का कथन है ''आज तुम सबको हम अदास बनाते हैं, अब से तुम दास दासी नहीं रहे।''[25] .....पात्रानुकूल भाशा का उत्कृश्ट उदाहरण है।

प्रसंगानुकूल भाषा – राहुल के उपन्यासों में विविध प्रसंगों के माध्यम से कथा का विकास हुआ है। यथा प्रेम प्रसंग, यात्रा प्रसंग, युद्ध एवं वीरता के प्रसंग, हास्य एवं व्यंग के प्रसंग आदि। सिंह सेनापति के उपन्यास में सिंह व रोहिणी के प्रेम प्रसंग में प्रसंगानुकूल भाशा प्रयुक्त की गयी हैं। ''उसने मुंह पौंछकर मेरी ओर ताका। उसकी आंखे सूजी हुई थी। उसके नीले तारकों पर स्निग्ध जल की परत पड़ी हुई थी। .....केशों को धोया सजाया न था, तो भी उलझे होने पर भी वह कौशेय तन्तु की भांति कोमल थे।[26] युद्ध और वीरता के प्रसंगों में प्रसंगानुरूप ओज पूर्ण भाशण को इस्तेमाल किया गया है। दिवोदास में शम्भु की मृत्यु पर उसके दत्तक देवक मनमान्य का कथन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

''एक –एक आर्य को मार डालूँगा, मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि शम्भू माता को जिन्होनें मारा, उन्हें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं।''[27] राहुल ने प्रसंग के अनुरूप भाशा की दिशा व गति परिवर्तित कर दी है।

वातावरण अनुकूल भाषा – राहुल के ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन वातावरण को साकार करने के लिए भाशा का विशेश योगदान रहा है। इन्होनें वातावरण व देशकाल के अनुरूप शब्दों का सयोजन करके वातावरण को उद्घाटित किया है। आर्यो के सप्तसिन्धु प्रदेश की प्राकृतिक स्थिति का चित्रण करते हुए राहुल जी का कलात्मक भाशा प्रयोग दृश्टव्य है।

''सारस्वत भूमि हरे–भरे अरण्यों से अश्वत्थ (पीपल) खादिर, विभीदक, हरिद्र, किंशुक आदि वृक्षों और मुंज, काण्ठ, कुश, दूर्वा आदि तृणों से ढकी थी।''[28] उपरोक्त भाशा चित्र ऋग्वेद काल के प्राकृतिक वातावरण को चित्रित करने में समर्थ है तथा इसी प्रकार के वातावरण अनुकूल भाशा चित्र इनके अन्य उपन्यासों में भी देखने को मिलते हैं।

विचार प्रधान व बौद्धिक भाषा – राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों की भाशा की एक अन्य विशेशता है कि यह विचारात्मकता से युक्त है। जीवन सम्बन्धी विविध समस्याओं का चित्रण करते समय वह विचार प्रदान हो जाती है। 'भागो नहीं दुनियां को बदलो उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

पन्द्रह सौ वर्श के भीतर जो डेढ अरब औरतें फूंकी गयी है वह अपने मन से जलने के लिए गयी थी यह कहना झूठ है। आदमी को अपने प्रान से बहुत प्रेम होता है। जो मरने के लिये तैयार भी हुई होगी, वह सोक से पागलपन से ही। जवान औरत के लिये रॅडापा एक दो दिन का सोक नही है। उसके लिये दुनियां में सभी जगह कांटे ही कांटे बिछ जाते हैं।[29]

''विस्मृत यात्री'' उपन्यास में जीवन के अवसान को भी लेखक ने बौद्धिकता के समावेश से रोचक तथा प्रभावशाली बना दिया है। नरेन्द्र का मृत्य के विशय में कथन है कि ''पुराने को जीर्ण होना ही पड़ता है, उसे नवीन के लिये अपना स्थान खाली करना पड़ता है।''[30]

चित्रात्मक भाषा – राहुल जी ने समर्थ तत्सम शब्दावली युक्त भाशा का प्रयोग करके शब्द चित्र उत्पन्न कर दिये हैं।

''मधुर स्वप्न'' से साम्बिक का रूप सौन्दर्य वर्णन चित्र रूप में आंखों के सामने उपस्थित हो जाता है 'उसके सिर पर मुकुट कानों में कुंडल, गले में रत्नमाला पुररक्त मात्र थे उनसे उसकी शोभा नहीं बढ़ सकती थी। क्षीण कटि, उन्नत वृक्ष, संघ संदृश ग्रीवा, तनु अंग, तनु अंगुली, हिम श्वेत, शरीर वर्ण आरक्त कपोल, बादाम समान लोचन, कोमल सुवर्ण रेखा समभ्रूलता, दीर्घ पक्ष्मनेत्र श्वेत तथा समान दन्त, कृश्णभरक्त दीर्घ केश जूड़ा के रूप में निबद्ध तथा सामने द्विघा विभक्त था।''[31]

भावाभिव्यक्ति की समर्थ भाषा– इनके उपन्यासों की कथा 'इतिहास पर आधारित है तथापि इसमें भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। राहुल जी की विचारधारा साम्यवादी थी। इसी कारण इनके उपन्यासों में साम्यवाद व साम्यवादी विचारधारा से सम्बन्धित पात्रों व इनके द्वारा प्रयुक्त कथनों का मिलना नितान्त स्वाभाविक है। विस्मृत यात्री में नरेन्द्र यश का कथन लेखक के निजी भावों को चित्रित करता है। ''यदि हमें दुनियां में बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय कुछ करना है तो सबसे पहले कश्ट में पड़े लोगों के दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।''[32]

राहुल के उपन्यासों में प्रयुक्त विविध शैली – ''उपन्यासकार द्वारा अपनी रचना को पाठकों तक पहुॅचाने तथा कथा, पात्र आदि नाना तत्वों को संयोजित रूप देने का उल्लेख्नीय कौशल ही शैली कहलाता है।''[33] शैली उपन्यास का एक अभिन्न अंग है, यह वह तन्तु है जो उपन्यास के अन्य सभी तत्वों को परस्पर कुशलतापूर्वक जोड़कर एक प्रभावशाली रूप प्रदान करती है। राहुल के उपन्यास शिल्प का अध्ययन करने पर इनके उपन्यासों में विविध शैली रूप दृश्टिगत होते हैं –

वर्णनात्मक शैली – इस शैली के अन्तर्गत लेखक कथा, पात्र, वातावरण और उद्देश्य आदि का वर्णन –विवरण स्वयं प्रस्तुत करता है। तथा एकदम कथा कहने वाला बन जाता है। इसके द्वारा लेखक पाठक के मस्तिश्क में अभीसिप्त प्रभाव अंकित करता हैं प्रभाव इतना गंभीर होता है कि वर्णन द्वारा ही वस्तु पाठक के समक्ष सजीव और सप्राण हो जाती है। उदाहरणार्थ – ''पामीर पर्वतमाला इस (उद्यान) प्रदेश के उत्तर में है और दक्षिण में भारतवर्श है। जलवायु न अति शीत न अति उश्ण तथा सुखद है।''[34] ऐसा एक ही अन्य उदाहरण दृश्टव्य है – ''यदि आप सरेजूय से कुर्गानतप्पा हो पहाड़ों के अन्दर जाना चाहें तो आपका रास्ता दर्रा–निहां से जायेगा दर्रा–निहां का

दूसरा नाम तंग भी है। यह हिसार की एक अति रमणीय पर्वत श्रृंखला के दर्रो (जोतों) में से एक है।''[35] इसी प्रकार इनके अन्य उपन्यासों में भी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग बहुलता से किया गया है।

विवरणात्मक शैली – विवरणत्मक शैली का प्रयोग ऐतिहासिक तथ्यों व घटनाओं का विवरण देने हेतु किया जाता है। कुछ विद्धानों के अनुसार '' विवरणात्मक शैली में शिल्पगत सौन्दर्य का अभाव होता है क्योंकि यह चित्रात्मकता विहीन नीरस विवरण मात्र है।'' [36] राहुल सांकृत्यायन में ऐतिहासिक उपन्यासकार होने के नाते विवरणात्मक शैली का उपयोग अपने उपन्यासों में किया है। यथा शीत प्रधान देशों में बडे प्रयत्न के साथ बौधिवृक्ष लगाने की कोशिश की गयी है, लेकिन इसमें सफलता नहीं मिली अब तो उससे मिलते जुलते पत्तों वाले वृक्षों को लोगों ने अपने–अपने देश बौधिवृक्ष मान लिया है। लेकिन असली बौधिवृक्ष तो जम्बू द्वीप, सिंहल द्वीप जैसे गर्म देशों में ही मिलता है।''[37] इसी भांति के अन्य अनेक विवरण इन्होनें अपने दूसरे ऐतिहासिक उपन्यासों में दिये हैं।

विचारात्मक शैली – विचारात्मक शैली में किसी समस्या विशय या परिस्थिति आदि पर विचार विमर्श किया जाता है। दीर्घ विचार पूर्ण संवाद व सम्भाशण इसके अंतर्गत आते हैं। राहुल जी के ऐतिहासिक व सामाजिक उपन्यासों में जीवन की विविध समस्याओं को लेकर विचार विमर्श द्वारा समस्या का निदान सुझाया जाता है। भागो नहीं दुनियां को बदलो उपन्यास मे इन्होनें देश की गरीबी व भूखमरी को समस्या रूप में उठाया है। ''बच्चा भूखा नंगा शरीर और वही गरीबी चारों ओर देखता है। सूखे थनों से दूध निकालना चाहता है। उस पर भी जो हमारे देश मे आधे बच्चे बचपन में मर जाये तो बड़े अचरज की बात है।'' [38] पोशण से पीडित गरीब भारतीय बच्चों की दशा पर विचार इसके माध्यम से किया गया है।

विवेचनात्मक शैली – विवेचनात्मक शैली में किसी विशय के गुण–दोशो का गम्भीर विवेचन किया जाता है। राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में गणतन्त्र व राजतन्त्र के गुण व दोशो पर गम्भीर विवेचन किया गया है। यथा ''दिगोदास शाम का वक्त सभा के लिए चुनता था। उस वक्त वह गांव चला आता और गांव की भाशा में लोगों को रात दिन कश्टों से उनका सम्बन्ध है। इस विशय पर व्याख्यान देता है। ''[39] देश में समाज के गम्भीर विशयों पर चर्चा करते हुए राहुल जी ने विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया है।

आत्मकथात्मक शैली – जब उपन्यासकार किसी उपन्यास के प्रमुख पात्र के द्वारा या स्वयं उसका स्थान ग्रहण करके कथा कहता है तो उसकी अभिव्यक्ति का ढंग आत्मकथात्मकता का अभिधान पाता है। राहुल जी ने अपने 'सिंह सेनापति' व' जय यौधेय' उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है।

संवादात्मक शैली – यह शैली मुख्यतः नाट्य क्षेत्र से आयी है और इसका प्रयोग रचना में निसंदेह नाट्कीयता और अभिनेयता समावेश करने के लिए किया जाता है। राहुल जी ने 'भागों में दुनियां को बदलो' उपन्यास में प्रारम्भ से लेकर अंत तक संवादात्मक शैली का निर्वाह किया है।

पूर्व स्मृति फ्लैश बैक) शैली – मनोविज्ञान से यह शैली साहित्य के क्षेत्र में प्रविश्ठ हुई है। इसके अंतर्गत घटना या घटनाओं को तत्काल न दिखाकर किसी पात्र की स्मृति में लौटाकर दिखाया जाता है। राहुल जी ने अपने 'जययौधेय व विस्मृत यात्री' उपन्यास में पूर्व दीप्ति शैली को प्रयुक्त किया है। विस्मृत यात्री से उदाहरण प्रस्तुत है '' अपनी उम्र के लड़कों में मेरा गला बहुत मधुर था और उससे भी अधिक बात यह थी कि स्मृति तेज होने से मुझे बहुत से गीत याद थे। जिसके कारण मैं अपने समवयस्क लडके लड़कियों में बहुत प्रिय था। [40] यहां पर नरेन्द्र यश अपनी बाल्यावस्था को पुनः याद करके खुश होता है।

हास्य व्यंग्यात्मक शैली – राहुल जी अपने ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों के कथा गाम्भीर्य में रोचकता का समावेश करने के लिए हास्य एवं व्यंग्य को प्रयुक्त किया है। इनके सिंह सेनापति उपन्यास में सिंह की भाभी –भामा हास्य एवं व्यंग्य करती हुए चित्रित है तेा जीने के लिए उपन्यास में देवराज की मां राधा के द्वारा साहब बहादुर की नकल का प्रसंग बड़ा ही हास्य जनक बन जाता है। राहुल जी के अनुदित उपन्यासों में भी उपरोक्त दी गयी सभी शैलीयों को किसी ने किसी रूप में निदर्शन किया गया है। शैली के विविध –मुखी प्रयोग ने राहुल जी की उपन्यास रचना की उत्कृश्ठता को बढ़ा दिया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार भाशा व शैली का विविधता की दृश्टि से राहुल जी के उपन्यासों को अध्ययन करने से स्पश्ट हो जाता है कि इनके उपन्यास भाशा व शैली दोनों ही दृश्टियों से विविधता लिये हुए है तथा उनमें भावाभिव्यक्ति की प्रबल सामर्थ्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि –

1. भाषा (द्वैभाशिक) सितम्बर, अक्टूबर 2011 सम्पादक डॉ0 शशि भारद्वाज केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार पृ0 संख्या –217
2 मोहन राकेश का उपन्यास शिल्प डॉ0 सफी उल्लाह अंसारी, प्रकाशन 1995 पृ0 सं0 208
3 पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्वान्त डॉ0 जगदीश प्रसाद मिश्र पृ0 सं0– 384
4 राहुल सांकृत्यायन और प्रगतिशील साहित्य डॉ0 श्रीमती कैलाश देवी सिंह पृ0सं0– 308
5 जय यौधेय – रा0 सा0 पृ0 सं0–16
6 राहुल सांकृत्यायन और प्रगतिशील साहित्य डॉ0 श्रीमती कैलाश देवी सिंह पृ0 सं0– 308
7 जीने के लिए –रा0 सा0 पृ0 सं0– 23
8 भागो नहीं दुनियां को बदलो पृ0 सं0– 11

9 जीने के लिए पृ0 सं0– 172
10 राजस्थानी रनिवास – रा0 सा0 पृ0 सं0– 259
11 वहीं पृ0 संख्या 259
12 वहीं पृ0 संख्या 260
13 जीने के लिए रा0 सा0 पृ0 संख्या –56
14 वहीं पृ0 संख्या 6–7
15 सूदखौर की मौत पृ0 सं0 – 58
16 दाःखुदा अनुदित उपन्यास पृ0 सं0– 154
17 जीने के लिए रा0 सां0 पृ0 सं0– 178
18 वहीं पृ0 संख्या 180
19 वहीं पृ0 संख्या 183
20 वहीं पृ0 संख्या 255
21 भागो नहीं दुनियां को बदलो पृ0 सं0– 200
22 वहीं पृ0 संख्या 233
23 राजस्थानी रनिवास पृ0 सं0– 263
24 जययौधेय पृ0 सं0– 146
25 सिंह सेनापति पृ0 सं0– 165
26 वहीं पृ0 संख्या 41
27 दिवोदास – पृ0 सं0– 124
28 वहीं पृ0 संख्या 19
29 भागो नहीं दुनियां को बदलो पृ0 सं0–183
30 विस्मृत यात्री पृ0 सं0– 69
31 मधुर स्वप्न पृ0 सं0 20
32 विस्मृत यात्री पृ0 सं0– 82
33 गद्य साहित्य– डॉ0 सुरेश चन्द निर्मल (मानस का हंस) पृ0 सं07 52
34 विस्मृत यात्री रा0 सां0 –पृ0 सं0– 1
35 दाःखुदा पृ0 सं0–1
36 स्वर्ण हिन्दी व्याकरण तथा रचना डॉ0 कमल सत्यार्थी बेस्ट बुक पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली पृ0 सं0– 48
37 विस्मृत यात्री पृ0 सं0– 4
38 भागो नहीं दुनियां को बदलो पृ0 सं0– 7
39 जीने के लिए पृ0 सं0– 178
40 विस्मृत यात्री रा0 सां0 पृ0 सं0– 18

डॉ0 अनीता
पत्नी अमित चौधरी
पता– 165, मानसी विहार
सै0–23, संजय नगर, गाजियाबाद
उत्तर प्रदेश – 201002
मो0– 9891140693

41

अस्मिता के अस्मिता पर विमर्श

डॉ0 सीमा शेखर (विश्वकर्मा)

सारांश –

अस्मिता सम्बन्धी चेतना का विस्तार हमारे देश में प्राचीन काल से था। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में ४७ वे श्लोक में अस्मिता को मन की १० इन्द्रियों में एक माना गया हैं।

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

अस्मिता यह मन सहित इन्द्रियों का सूक्ष्म रूप हैं। इसी से मन सहित दसो इन्द्रियों की उत्पत्ति होती हैं। यह उनकी सूक्ष्म अवस्था हैं। अस्मिता के ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य अपने को पहचान पाता हैं।

अस्मिता विमर्श वर्तमान समय में आधुनिक चिंतन का नया राग भले ही लगे, लेकिन यह मानव सभ्यता के विकास क्रम में, प्राचीन काल से प्रत्यक्ष संस्कृति के रूप में, अपने अस्तित्व एवं पहचान की लड़ाई लड़ता रहा हैं। महाभारत जैसे प्रत्यक्ष एवं प्रामाणिक ग्रन्थ में, सूत पुत्र कर्ण अपने अस्मिता के लिए जीवन भर संघर्ष करता रहा। मित्र दुर्योधन के सहयोग से, वह अपने अस्मिता की रक्षा करने में, कुछ हद तक सफल रहा। जिसके कारण वह, जीवन भर दुर्योधन का ऋणी रहा। महाभारत का एक और पात्र एकलव्य गुरु भक्त भील आदिवासी अपनी अस्मिता की लड़ाई में अपने ही, गुरु द्रोण के हाथों छला गया। जब से मानव सभ्यता संस्कृति विकास क्रम में, विकसित होती गई, युगअनुसार नये चिंतन दर्शन अनुसार नवीन स्वरुप ग्रहण कर, न्याय स्वतंत्रता गरिमा अस्तित्व अनुसार समाज के, विभिन्न आयामों को ग्रहण करती हैं। जिसमें प्रमुख रूप से, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भागौलिक, धार्मिक एवं भाषाओँ से जुड़ कर, वह अनवरत गतिशील रहा हैं। आधुनिक काल का समय, स्त्री विमर्श दलित विमर्श अल्प संख्यक हरिजन आदिवासी विभिन अस्मितावादी विमर्श संगठित हो कर, एक आंदोलन का रूप लेकर, अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा हैं। जिसमें बहुत हद तक, वह सफल भी हुआ हैं। संकट नहीं हैं। बल्कि यह लोक तांत्रिक तरीके से, अपने न्याय अधिकार, सामान भागीदारी एवं आत्मसम्मान के साथ सम्मानजनक जीवन जीने के, अधिकार का आंदोलन हैं। वर्तमान समय में, इसमें ट्रांस जेंडर भी शामिल हैं। प्रत्येक मनुष्य चाहे वो, जैसा भी हैं, वह सम्मान जनक ढंग से, जीवन जीने का, अधिकारी हैं। यह अस्तितवाद का, सबसे सरल अवधारणा होगी।

अस्मिता विमर्श आधुनिक युग बोध की वैश्विक चेतना का प्रति फलन हैं। फरांस का आंदोलन से प्रभावित हो कर, यह वैश्विक रूप से तेज गति से प्रसारित हुआ। पुरातन काल से ही, यदा कदा इसके लिए निरंतर संघर्ष के साथ आवाज उठती रही हैं। अर्थात अनादि काल के आक्रमण अशांति अंग्रेजी राज्य के दमन शोषण अत्याचार से ग्रस्त, भारत का जन मानस अपनी पहचान अस्मिता को भुला बैठा था। तब यही के प्रबुध्द वर्ग के लोगो ने, विदेशों में शिक्षा प्राप्त कर देश में उस ज्ञान के माध्यम से, अस्मिता के प्रति जन मानस में चेतना का संचार किया। नव जागरण काल के समय, राजा राम मोहन राय सती प्रथा को बंद करवाया। स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। महात्मा गाँधी ने, इसे समान अधिकार न्याय स्वतंत्रता एवं सम्मान का साथ जोड़ कर देखा। जिसके कारण स्वतंत्रता, दासता, गुलामी से मुक्ति हरिजन का उत्थान छुवा छूत का विरोध, शिक्षा एवं समानता के प्रति आंदोलन के, कारण सम्पूर्ण भारत देश में राष्ट्रीय अस्मिता का संचार हुआ। गांधीजी ने अस्मिता को व्यक्तिगत के साथ, सामाजिक एवं राष्ट्रीयता के साथ वैश्विक परिपेक्ष का, विषय बना दिया। जिसे आगे चल कर, डा आंबेडकर ने इसे ष्मानसिक स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता हैंष कहा। "एक व्यक्ति जिसका मस्तिक स्वतंत्र नहीं वह भले ही बेड़ियाँ में न हो लेकिन वह गुलाम हैं।" "मस्तिष्क की स्वतंत्रता किसी के अस्तित्व का प्रमाण हैं।" मानसिक विकास ही मनुष्य के अस्तित्व का, अंतिम उद्देश्य होना चाहिए। आंबेडकर ने भारतीय समाज में, सब से निचले वर्ग के लोगों में, इसी चेतना का संचार किया। जिसे आज दलित अपना आदर्श मानते हैं। उनका कहना हैं लोक तंत्र तब तक जिन्दा हैं, जब तक सामाजिक लोक तंत्र मजबूत रहेगा। सामाजिक लोगतंत्र जीवन का वह रास्ता हैं, जिसमे स्वतंत्रता, समानता, विश्वबन्धुत की भावना को, जीवन सिध्दांत के रूप में स्थापित किया जाए। इसी प्रकार लोक तंत्र का सही स्वरुप, अपने देश के प्रति, सम्पूर्ण समाज के प्रति, आदर एवं सम्मान की भावना को उच्च स्थान देना हैं ।

अस्मिता विमर्श एक सर्व भौम और गति शील चिंतन हैं। जिसका एक सामाजिक स्वरुप हैं। एक मनुष्य एक मूल्य पर आधारित राष्ट्र का निर्माण। आजादी के बाद देश में लोक तंत्र की स्थापना हुई। भारत देश जो अनादिकाल के, आक्रमण अशांति अंग्रेजो के शोषण से, ग्रस्त भारतीय जन मानस, अपनी पहचान अस्मिता को भुला बैठा था। लोक तंत्र की स्थापना के बाद, भारतीय मनीषियों समाजसुधारको के माध्यम से, जन मानस में अस्मिता की चेतना का, विस्तार होने लगा। परन्तु विशाल भारत देश में, गरीबी अशिक्षा की वजह से, स्त्रियां

खास तौर से, आदिवासी दलित वर्ग अपने रोजी रोटी जुटाने के प्रति जूझ रहा था। वह जीवन जीने के लिए संघर्ष कर रहा था। शिक्षा के प्रसार के बाद ही, लोगों में अपनी अस्मिता के प्रति जागरूकता का संचार हुआ।

हमारे देश में, अस्मिता विमर्श के सबसे विस्तृत क्षेत्र, महिलाये, हरिजन, दलित, आदिवासी एवं अल्प संख्यक वर्ग हैं। इन वर्गों में, गरीबी अशिक्षा के साथ साथ परंपरा एवं रूढ़ी वादिता की जकड़न हैं। सामंत वादी व्यवस्था के कारण, वे सदियों से जुल्मों का शिकार होते रहे थे। इसलिए वे अपनी अस्मिता के प्रति अनविज्ञ रहे। सम्पूर्ण देश के अलग अलग प्रांतो में, यह अलग अलग प्रकार से, उनके उत्थान के लिए प्रयास किये गए। दक्षिण भारत में भक्ति काल के, सातवीं सदी के आस पास नयाँमारों के, भक्ति गीतों में यह परिलक्षित हुआ हैं। उत्तर भारत में यह भक्ति काल के दौरान में दलितों के प्रति चेतना दिखयी देती हैं। कबीर दास के दोहे एवं संत रवि दास के पदों में वह व्यक्त हुआ हैं। बंगाल में नारी अस्मिता के प्रति राजा राम मोहन राय का सती प्रथा का अंत, नारी के सम्मान को, बनाये रखने के प्रयास के तौर पर देखा जाता हैं। जिसमे विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, छुआ छूत शामिल हैं। महाराष्ट्र में, सावित्री बाई फुले एवं ज्योति बा फुले का, नारी शिक्षा के लिए योगदान, नारी अस्मिता के लिए प्रेरणा दायक हैं। आंबेडकर ने, इसे दलित चेतना का, ज्वलंत मशाल के रूप में इसे जलाया।

अस्मिता विमर्श का, मुख्य पहलु यह हैं, की इसका महत्त्व पूर्ण, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनितिक आधार होता हैं। यह आधार जितने अधिक मजबूत होंगे, उनकी उपस्थिति पहचान उतनी ही, सशक्त होगी एवं साहित्य में, उसकी अभिव्यक्ति सशक्त होगी। स्त्री अस्मिता का, सामाजिक, सांस्कृतिक, राज नैतिक, आधार के बावजूद, राजनैतिक क्षेत्र में उनकी संख्या कम हैं। महिला बिल छक। सरकार तथा न्च। दोनों सरकार के कार्य काल के, दौरान बिल पास नहीं हो पाया। वैसे यह चिंतन का विषय हैं, की आरक्षण के माध्यम से, स्त्री राजनैतिक क्षेत्र में अपनी अस्मिता की, पहचान को हासिल कर पायें, क्या यह स्त्री अस्मिता को गवारा होगा ? वह स्वयं सक्षम हो रही हैं। धीरे धीरे ही सही। अस्मिता को जाति, भाषा, लिंग या नस्ल के आधार पर, देखा जाता हैं। जिसके कारण, अस्मिता का विद्रूप रूप बाहर आएगा। जिसके वजह से प्रत्येक अस्मिता, अन्य अस्मिता की प्रति, आक्रामक हो जाती हैं। जैसे की भाषा के क्षेत्र में, तमिल, मराठी, बंगाली का हैं जो एक प्रकार से, दूसरी अन्य भाषाओँ के प्रति, अधिक आक्रामक हैं। भाषाएँ सांस्कृतिक पहचान का आधार हैं। इसे सामुदायिक अस्त्वित कहतें हैं। विश्व भर में विभिन्न अस्मिताओं ने, अपने को भाषाओँ से, जोड़ कर रखा हैं। क्यों की अलग संस्कृतियों का निर्माण, भाषा के माध्यम से हुआ हैं। भाषा अगर सभ्य हैं तो, यह न्याय प्रिय, समानता, विश्व बंधुत्व की भावना को बढ़ाती हैं, तो वहीं वह भाषा, शोषण, उत्पीड़न का कारण भी बनती हैं। एक भाषा का, दूसरी भाषा पर वर्चस्व बनाये रखना उसको हीन साबित करना, उस भाषा वर्ग के लोगो को, हतोउत्साहित करती हैं। भारत में, दलित, हरिजन, आदिवासी वर्ग के, पिछड़े पन का, एक प्रमुख कारण, अशिक्षा के साथ भाषा भी हैं। वह अपनी बोली में संवाद करता हैं, स्कूल में हिंदी, फिर इंग्लिश में, आकर वह पिछड़ने लगता हैं। और फिर वह, ज्यादातर हार मान बैठता हैं। इस प्रकार ज्यादातर, यह वर्ग शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाता हैं। और विकास पथ पर वह ठहर कर रह जाता हैं। स्त्री विमर्श, दलित अस्मिता विमर्श, साहित्य और आलोचना के साथ साथ हिंदी में भाषा की अस्मिता का, प्रश्न उभरकर सामने आ गया हैं। मराठी, तेलगु, तमिल, बंगाली, आदि भाषाओ में दलित एवं स्त्री भाषा, अस्मिता नहीं हैं। उनके विमर्श अलग हैं। दक्षिण भारत में, हिंदी विरोध के आधार पर, तमिल एवं अन्य भाषाई अस्मिता ने, अपने को रेखांकित किया हैं। दलित, हरिजन एवं स्त्री अस्मिता, उनके सर्वांगीण विकास के लिए, अंग्रेजी की अनिवार्यता को कम करते हुए, मातृ भाषाओ के महत्त्व को, समझना आवश्यक हैं। अंग्रेजी, दलितों, आदिवासियों के विकास और शिक्षा में, एक बड़ी बाधा हैं। अंग्रेजी भाषा ने, दलितों, आदिवासियों, माध्यमवर्गी सामान्य जन मानस को, आजादी के पहले एवं 50, 60, 70, 80 के दशक की पीढ़ियों को विकास पथ पर वंचित रखा। उनकी उन्नति रुक गई। इस प्रकार अंग्रजो ने पूरी की पूरी पीढ़ी पर, अंग्रेजी भाषा थोपकर, उनका भविष्य बर्बाद कर दिया। अंग्रेजी के व्यापक अध्यन के आधार पर, यह संख्या करोड़ों में हैं। इस समस्या को समझ कर, कवि भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने, यह कहा षनिज भाषा उन्नति आहे, सब उन्नति का मूलष. किसी को भी अपनी मातृ भाषा छोड़ने, और उस पर विदेशी भाषा को, जबरजस्ती थोपना एवं उसको बांधना उसके साथ, अन्याय हैं। इससे वह अपनी, अस्मिता को खो देता हैं। भाषा, सांस्कृतिक, परंपरा का पर्याय हैं। मात्र भाषा को, त्यागने का अर्थ हैं, सामूहिक रूप से अपनी, सांस्कृतिक परंपरा अनुभवों स्मृतियों से, सम्बन्ध तोड़ना, एक प्रकार से अपनी जड़ों से कट कर, विपरीत दिशा में जाकर, दोयम दर्जे की, नागरिकता में, अपने को ढालना, जो की उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं मानवता को दूषित करता हैं। आदिवासियों, दलितों की, अपनी लम्बी भाषाई परंपरा हैं। यह परंपरा आदिकाल से चली आ रही हैं। उसे प्रोत्साहित करने की जरुरत हैं। लोकगीतों में लोकसाहित्य की, सशक्त अभिव्यक्ति हैं। जिसे काफी हद तक, लोकभाषा, लोकगीतों में आदिवासियों ने, मौखिक यदा कदा लिखित साहित्य के माध्यम से, आगे बढ़ाया हैं। दलितों, आदिवासियों ने, भाषा को जाति निरपेक्ष के रूप में, स्थापित कर रहे हैं। जो सुखद अनुभूति हैं। परन्तु इन्ही समाजों में, नारियों की, स्थिति उनसे भी, अधिक पिछड़ी हैं। इस मायने में दलित महिलाएं, दोहरी दलित होती हैं। यह महिलाएं समाज में अत्यंत दयनीय, जीवन जीती हैं। जिसका कारन,

पारिवारिक, सामाजिक शोषण, अशिक्षा, गरीबी एवं रूढ़िवादिता हैं। शिक्षा आत्म निर्भरता, आदिवासी एवं दलित महिलाओं का, प्रमुख समस्या हैं। जिस पर लोकतांत्रिक सरकारें काम कर रही हैं। परिवर्तन देखने में आने लगा हैं, नई पीढियों में। परन्तु इसके साथ ही, समाज में, अशिक्षा गरीबी के कारण, उपजी नयी अशिक्षित पीढ़ी, उन पर ही, बाधा बन कर, असामाजिक, गति विधियों में लिप्त हो कर, शोषण अत्याचार कर, उनके मार्ग की बाधा हैं। जिसका बड़ा कारण, पितृसत्तात्मक समाज की, लम्बी परंपरा हैं। जिसके कारण, सदियों से, नारियों की अस्मिता को कुचला गया। वह चाहे सवर्ण, निर्धन हो या दलित, आदिवासी या अल्पसंख्यक वर्ग की, महिलाएं ही क्यों न हो। सभी नारियों को, परम्पराओं, वर्जनाओं की बेड़ियों में, जकड़ा गया। जिसके कारण, उनके मानसिक स्थिति पर, गहरा प्रभाव पड़ा हैं। परन्तु, आधुनिक समय में, उन्हें जैसे ही शिक्षा का अवसर मिला, वह ज्ञान प्राप्त कर, अपने अस्तित्व को पहचान पायी । आज की नारी मजबूत हैं, मजबूर नहीं। परन्तु भारत जैसे विशाल, जन संख्या एवं कठिन भगौलिक स्थिति के कारण, सुदूर जंगलों, पहाड़ों एवं गांव में रहने वाले, ग्रामीण आदिवासी, दलितों का जीवन जीने की, लड़ाई जारी हैं। वे अपने अस्तित्व के प्रति अनविज्ञ हैं, आज भी।

स्त्री अस्मिता, बीसवीं सदी के बाद शुरू हुआ। स्त्री मुक्ति आंदोलन के बाद, स्त्रीवादी चिंतकों एवं विचारकों ने कुछ सार्थक कदम उठाये हैं। जैसे नारी को, अपने अस्तित्व के प्रति, बोध कराना। नारी शिक्षा पर ध्यान देना। आर्थिक स्वतंत्रता, अपने अंग की स्वतंत्रता, देह की स्वतंत्रता, जिसके कारण नारी में एक नयी ऊर्जा का, संचार हुआ। हिंदी साहित्य में, महिला लेखिकाओं ने, नई चेतना, नया उन्मेष, के साथ स्त्री चिंतकों के रूप में, नारी अस्मिता को, बहुत ही, सशक्त अभिव्यक्त किया हैं। जिस में से, कृष्णा सोबती, का मित्रो मरजानी हैं। महाश्वेता देवी, चित्रामुद्गल, मैत्रेयीपुष्पा, प्रभाखेतान, अनामिका, सूर्या बाला, अमृताप्रीतम, शिवानी प्रमुख हैं। जिनका मुख्य लक्ष हैं, स्त्री को भी, एक इंसान के रूप में देखा जाए। उसमें भी, अच्छाईया, बुराईआं भी, हो सकती हैं। साहित्यकारों का, उद्देश्य मानवता को, रेखांकिक करना हैं। लिंगभेद, जाति भेद से ऊपर उठ कर, प्रत्येक मानव की अस्मिता के, महत्त्व को समझना और उसे प्रोत्साहित करना अनिवार्य हैं। स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक वर्ग में, बटा हुआ मानव, उन्नति के पथ पर, पूर्णत अग्रसर नहीं हो सकता। अपने व्यक्तिगत अस्मिता के साथ, उसे दूसरे की, अस्मिता का, सम्मान करना चाहिए। अस्मिता विमर्श, नागरिक अधिकार, सामाजिक भागीदारी, आर्थिक अवसर का प्रश्न हैं। अस्मिता विमर्श में, व्यक्तिगत पहचान के लिए, कोई जगह नहीं हैं। पहचान व्यक्तिगत होती हैं, विमर्श व चिंतन सामूहिक होता हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में, नारी के आर्थिक उन्नति के बाद भी, उनका शारीरिक शोषण जारी हैं। घर से अधिक बाहर की दुनिया में। दलित, आदिवासी नारियो के, संताप को यह और कई गुना बढ़ा देता हैं। वर्तमान समय में, नारी शिक्षा एवं पैसा सब कुछ होने का बाद भी, देश में बलात्कार की घटनाये हो रही जो नारी अस्मिता का सबसे बड़ा खतरा हैं। जिसमे उच्च शिक्षित वर्ग के, युवा भी शामिल हैं। उच्च शिक्षित युवतिया भी उनका, शिकार हो रही हैं। यह नारी अस्मिता पर, बहुत बड़ा कलंक हैं। नारी अस्मिता दलित अस्मिता, आदिवासियों की अस्मिता की रक्षा, तभी संभव जब परिवार में, एवं समाज में, राजनैतिक क्षेत्र में, समानता मूलक, विश्वबंधुत्व प्रेम, शिक्षा में, नैतिक शिक्षा के साथ, जीवन मूल्यों का, समावेश जीवन के, प्रत्येक पहलू में शामिल होगा। वर्तमान समय में, तकनिकी शिक्षा प्राप्त कर, युवा सिर्फ, धन प्राप्ति का, उद्येश्य रखता हैं। उसके लिये, नैतिक शिक्षा, जीवन मूल्य, सामाजिक दायित्व, नगण्य हो गये हैं। ऐसे में, समग्र मानवीय अस्मिता का संकट हैं। सम्पूर्ण अस्मिता की रक्षा, समतावादी समाज के, निर्वहन से ही, यह संकट दूर होगा। नहीं तो, स्त्री, पुरुष, सवर्ण, दलित, आदिवासी विमर्श के बीच की, दीवार सदैव बनी रहेगी ।

अस्मिता विमर्श का लक्ष्य, अपनी धरती, अपनी माटी, अपनी संस्कृति, अपनी अस्मिता, अपनी भाषा अपनी अभिव्यक्ति की राष्ट्रीय अस्मिता हैं। जिसका उद्देश्य, आपसी सहयोग के आधार पर, राष्ट्रिय अस्मिता का निर्माण करना हैं। जो समतामूलक समृद्ध और मानवता से परपूर्ण राष्ट्र हो। क्यों की अस्मिता विमर्श, एक सर्वभौम और गतिशील चिंतन हैं। जो मानव के, मानवता वादी जीवन मूल्य पर आधारित हैं।

संदर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ0 हरिशरण वर्मा, हरियाणावी संस्कार गीतों की संस्कृतिक पृष्ठभुमी

डॉ0 सीमा शेखर (विश्वकर्मा)
A8–203
कुमार पार्क इनफिनिया
फुरसुंन्गी रोड़,
पूना – 412308
(महाराष्ट्र), भारत

42

दक्षिण एशिया का परिवर्तित परिदृश्य एवं अन्तः क्षेत्रीय आयाम

डॉ0 एम.के. सिंह (एसो. प्रोफेसर), प्रेम चन्द

सारांश –

प्रादेषिक अखण्डता, प्रभुसत्ता, स्वतंत्रता व राष्ट्र के आन्तरिक मूल्यों की रक्षा तथा बाह्य आक्रमणों का प्रतिकार करना प्रत्येक राश्ट्र का प्रथम उत्तरदायित्व है। समग्र युद्ध के इस काल में शिथिल रक्षा–तन्त्र न तो राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्य रख सकता है और न ही राश्ट्रीय विकास हेतु अनुकूल परिस्थितियों का सृजन ही कर सकता है। इस हेतु जहॉ एक ओर रक्षा सेनाओं की समाघात क्षमता को पर्याप्त सुदृढ़ बनाना आवष्यक है वहीं राष्ट्रीय शक्ति का विकास व उनका संरक्षण भी अपरिहार्य है। कैसे बचा जा सकता है शत्रुओं के आक्रमण, विदेशी दबाबों और आवंकवादी गतिविधियों से। किसी समृद्ध और समर्थ राष्ट्र की पहचान क्या है? राष्ट्र के आन्तरिक और बाहरी शत्रु कौन होते हैं? राष्टघाती प्रवृत्तियॉ क्या हैं? या उनके आम आदमी को ही राश्ट्र क्यों माना जाता है? आम आदमी की प्रतिक्रिया, उसकी प्रसन्नता–अप्रसन्नता, उसका सुख–दुःख, उसकी गरीबी और समृद्धि, उसका अभाव, उसकी अषिक्षा, उसकी बीमारी और बेरोजगारी, उसका विचार और उसका जीवन स्तर ही राश्ट्र का जीवन स्तर क्यों माना जाता है?

अन्तर्राष्ट्रीय परिदृष्य में नाटकीय परिवर्तनों ने प्रत्येक राष्ट्र के सुरक्षा सम्बन्धी अनेक मान्य दृष्टिकोणों को अप्रासंगिक बना दिया एवं नये बोध और नई प्राथमिकतायें उभर कर सामने आयीं है। अन्तर्राष्ट्रीय समीकरण भी बदले है। तथा सम्बन्धों का नवविकसित प्रारुप विश्व राजनीतिक, सामरिक एवं आर्थिक मंच पर उभरा है। वर्तमान में वैष्वीकरण के पष्चात् जो स्थिति उभर कर सामने आयी है, उसकी पृष्ठभूमि में बार बार यह प्रष्न उठता है कि हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा नीति व विदेश नीति की दिषा क्या हो? इस नई स्थिति में एक महत्वपूर्ण तथ्य राष्ट्र की अपनी पड़ोसी देषों के प्रति नीति से भी है, इसका महत्व अब अधिक हो गया है, क्योंकि विश्व की प्रमुख महाशक्तियों ने दक्षिण एषिया में घटित घटनाओं में बारे में रुचि एवं चिन्ता यथासमय प्रकट की है। परिवर्तित विष्व परिदृष्य, क्षेत्रीय सुरक्षा समीकरण आतंकवाद की विकराल चुनौती, नाभिकीय परिदृष्य एवं विष्व की प्रमुख षक्तियों के हितों के कारण दक्षिण एशिया का समस्त परिदृष्य व्यापक रूप से प्रभावित हुआ है। दक्षिण एषिया के लिये सामूहिक मंच के रुप में विद्यमान दक्षेस व असंसियान जैसे संगठनों में संवर्धन की सम्भाव्यताओं का सूक्ष्मता से मूल्यांकन एवं समीक्षा अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी एषिया में अपनी प्रमुखता स्थापित करना भी वर्तमान परिवेश में अनिवार्य प्रतीत होता है। रक्षा नीति की सफलता और असफलता का मूल्यांकन राश्ट्रीय हितों और उनके समक्ष चुनौतियों के संदर्भ में ही संभव है तभी इनसे निबटने की एकीकृत और समन्वित नीति तैयार की जा सकती है। अतः भरतीय सुरक्षा के लिये परिवर्तित दक्षिण एषियाई परिदृष्य में प्राथमिकता की कार्यसूची निर्धारित करना आवष्यकता ही नही अनिवार्यता हैं।

साधारणतः सुरक्षा एक स्थिर दषा नहीं है। सुरक्षा के अन्तर्गत ऐसी परिस्थितियॉ स्थापित करने के प्रयास किये जाते है। जिनमें कि राष्ट्र को किसी प्रकार के खतरे का सामना ही न करना पड़े अर्थात राश्ट्र के भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सामरिक आधारों को अधिकाधिक सुदृढ़ और एक दूसरे के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया जाता है। वर्तमान में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा पूर्ण रूप से बदल चुकी है। इसके अन्तर्गत वर्तमान में बहुत सी समस्याएॅ व चुनौतियॉ हैं, अब यह बाह्य सुरक्षा के खतरों तक ही सीमित नही है। यहॉ यह भी स्पष्ट कर देना आवष्यक है कि सुरक्षा और प्रतिरक्षा एक ही नहीं है। प्रतिरक्षा तो सुरक्षा का अंग मात्र है। अर्थात सुरक्षा एक आवष्यकता है तथा प्रतिरक्षा सुरक्षा प्रदान करने का एक साधन है। इसलिए राश्ट्रीय सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा से जुड़े आधारभूत तथ्यों की समीक्षा आवष्यक है और प्रतिरक्षा, सशस्त्र सेनाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर को भी सही ढंग से समझना आपेक्षित है।

सोवियत संघ के पतन के बाद यह माना जाने लगा था कि शीत युद्ध खत्म हो गया। अमेरिका के दूसरी प्रमुख शक्तियों से मतभेद तो दिख रहे थे लेकिन वे शीत युद्ध की दस्तक नही थें। जापान जर्मनी, फ्रांस या आस्ट्रेलिया से उसके जो मतभेद दिखे वे मूलतः आर्थिक थे और उन्हें हल करने के लिए सैनिक रणनीति की कहीं जरूरत नही थी। उनकी परिणति हुई भी उसी रूप में। कहीं डॉट–डपट कर, कहीं धौस देकर तो कहीं पुचकार कर। दरअसल ये सभी देष आर्थिक शक्ति के रूप में उभरे है। सैनिक शक्ति के रूप में नहीं। फिर ये आर्थिक शक्ति भले ही बन गये हो, अमेरिका के भारी भरकम अर्थव्यवस्था के मुकाबले इनका बाजार और व्यवसाय भी काफी हल्का है।

पामर एवं पर्किन्स ने लिखा है कि राष्ट्र की स्थिति वहां की संस्कृति और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। तथा उसकी सैनिक एवं आर्थिक शक्ति पर भी व्यापक प्रभाव डालती है। एक देष की अवस्थिति वहां की राजनीति और युद्धकौषल का निर्धारण करने में

भी सहयोग देती है। किसी भी राष्ट्र की जलवायु इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी अवस्थिति भूमध्य रेखीय है अथवा विशुवत् रेखीय अथवा इन दोनो के बीच में है। यह भी राश्ट्र की अवस्थिति पर ही निर्भर करता है कि वहां क्या उत्पादन हो सकता है, कौन कौन से खनिज पदार्थ मिल सकते है। और औद्योगिक विकास की क्या संभावनायें है।

भारत चारों ओर से ऐसे देषों से घिरा है जो आज राजनैतिक अस्थिरता व सैनिक दृष्टिकोण से आकर्षण के केन्द्र बने हुए है। उत्तर में हिमालय भारत को सीक्यांग व तिब्बत से पृथक करता है, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के प्राकृतिक अवराध भारत को चीन व वर्मा से अलग करते है। पूर्व में बांग्ला देष, पश्चिम में पाकिस्तान तथा दक्षिण में श्रीलंका जैसे राष्ट्र स्थित है जो वर्तमान समय में दक्षिण ऐशिया की इकाई में महाशक्तियों के रूचिस्थल है। यूरोप व एषिया के भू–युद्धनीतिक व भू–राजनीतिक परिवेश में भारत की केन्द्रीय स्थिति भविश्य में निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। सम्भवतः इसका कारण मैकाइण्डर के हृदय क्षेत्र का सिद्धान्त हो सकता है, जिसे मैकाइण्डर ने पृथ्वी के दुर्ग की संज्ञा दी है। यह अतिशयोक्ति न होगी यदि काह जाये कि किन्हीं राजनैतिक परिस्थितियों में भारत अपनी स्थिति के कारण विश्व की सांग्रामिक कला पर नियन्त्रण कर सकता है।

कई बार स्थिति कुछ राष्ट्रों के लिए हानिकारण भी होती है। बेल्जियम और पोलैण्ड का यह दुर्भाग्य है श्किवे शक्तिशाली पड़ोसी देशो के बीच में सामरिक महत्व के ऐसे स्थानों पर बसे है कि उन्हें बार बार आक्रमणों का षिकार होना पड़ता है। अतः राश्ट्र की स्थिति का राष्ट्रीय शक्ति पर किसी न किसी रूप में अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव अवष्य पड़ता है।

विशाल बाजार की संभावनायें, विपुल जनसंख्या, महत्वपूर्ण सामरिक विन्यास तथा प्रमुख सामुद्रिक व्यापारिक मार्गो का केन्द्र होने के कारण प्रारम्भ से ही यह क्षेत्र बड़ी षक्तियों विशेषकर ब्रिटेन, अमेरिका व पूर्व सोवियत संघ के आकर्शण का क्षेत्र रहा है। द्विराष्ट्र सिद्धान्त को आधार बनाकर ब्रिटेन ने जाह एक ओर भारतीय विभाजन को अपनी चिरप्रतीक्षित महत्वाकांक्षा को साकार करके पाकिस्तान व बांग्लादेश के निर्माण का पथ प्रशस्त किया वही हिन्द महासागर में उत्पन्न षक्ति–रिक्तता की पूर्ति हेतु अमेरिका व सोवियत संघ को यहां व्यापक घुसपैठ का सुअवसर प्रदान किया। उघर भारतीय विभाजन के समय ब्रिटेन द्वारा भारतीय रियासतों के हस्तगत अधिकारों को पुनः रियासतों को सौंप देने से सम्पूर्ण भारत में विखण्डन–प्रक्रिया को भी बढ़ावा मिला। यद्यपि तत्कालीन भारतीय गृहमंत्री सरदार पटेल की दूरदर्शिता व स्पश्ट नीतियों के फलस्वरूप जूनागढ़ व हैदराबाद की समस्याएं तो येनकेन प्रकारेण सुलझा ली गयीं किन्तु कष्मीर संदर्भ में भारत द्वारा उठाये गये विभिन्न अविवेकपूर्ण कदमों से यह अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गयी।

कश्मीर संकट की आड़ में पाक के समर्थन में संयुक्त राष्ट्र संघ व अन्य मंचों पर अमेरिका द्वारा उठायें गये विभिन्न कदमों से दक्षिण एशिया न केवल शीतयुद्ध की चपेट में आया अपितु सम्पूर्ण क्षेत्र तनावग्रस्त हो गया। विश्वसनीय मित्रों की तलाष की अमेरिकी नीति का ही यह परिणाम था कि अमेरिका ने पाकिस्तान के भू–सामरिक व भू–राजनैतिक अवस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ही उसे आर्थिक, सैनिक व कूटनीतिक सहायता देकर दक्षिण एशिया में पूर्व सोवियत प्रसार पर अंकुष लगाने तथा अपने प्रभुत्व क्षेत्र को स्थायी बनाये रखने हेतु अपने दक्षिण एशियाई नीति का पूरक सहयोगी बनाया।

सन् 1950 में पूर्व सोवियत रूस में परमाणु बम विस्फोट, चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना तथा जून 1950 में कोरियाई युद्ध आरम्भ हो जाने से अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय छवि को गहरा आघात तो लगा ही साथ ही भारतीय प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाने की अपील व कोरियाई समस्या के समाधान हेतु अनुकूल अन्तर्राश्ट्रीय वातावरण के सृजन हेतु किये जा रहे प्रयासों से अमेरिका व पाकिस्तान में प्रगाढ़ता उत्पन्न हो गयी। संभवतः यही कारण है कि कोरियाई युद्ध में पाकिस्तान ने संयुक्त राश्ट्र संघ में प्रस्तुत प्रत्येक अमेरिकी प्रस्ताव का प्रबल समर्थन देने के अतिरिक्त अमेरिका व जापान के मध्य सम्पन्न शन्ति संधि को उचित ठहराया। सन् 1950 के अन्त में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान के प्रति अपनायी गयी सौहार्द्रपूर्ण सैन्य आपूर्ति से सम्बन्धित नीति के परिणामस्वरूप पाकिस्तान ने शनैः शनैः अमेरिका के साथ रक्षा सन्धि हेतु सद्–इच्छा प्रकट करना शुरू कर दिया।

दूसरी ओर, स्टानिल की मृत्यु एवं रूस द्वारा हाइड्रोजन बम निर्माण तथा भारत को गुटनिरपेक्षता से विमुख करने में असफल रहने के कारण अमेरिका भी पाकिस्तान को सैन्य संगठनों में प्रवेश दिलाकर उसकी भूमि पर संचार व रक्षा उपकरणों को स्थापित कर साम्यवाद के विस्तार पर अंकुश लगाने हेतु आतुर था। फलतः जान फासटर डलेस की 23–24 मई 1953 की पाक यात्रा एवं अक्टूबर 1953 में जनरल मो. अयूब खां की अमेरिकी यात्राओ से यह बात सुनिश्चित हो गयी कि पाकिस्तान को सामरिक सहायता देने के अतिरिक्त उसके साथ रक्षा समझौता करना दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों के पूर्ति की अनिवार्यता है।

दूसरी ओर साम्यवाद के प्रसार को रोकने के अतिरक्त मुस्लिम देशों की स्त्रातेजिक महत्ता का पर्याप्त लाभ उठाने हेतु पाकिस्तान जैसे प्रमुख दक्षिण एषियाई राष्ट्र को अग्रिम आधार बनाना अमेरिका के लिए अपरिहार्य था। संक्षेप में, विभिन्न सैन्य संगठनों के माध्यम से पाकिस्तान को शस्त्रीकृत करने के पीछे अमेरिका के निम्नलिखित हित थे–

1. पाकिस्तान में अपने सैन्य आधार की स्थापना करके रूस, चीन, नेपाल, भारत व अफगानिस्तान के विरूद्ध जासूसी में अपने तन्त्र का सफलतम इस्तेमाल करना।
2. जनशक्ति, क्षेत्रफल व संसााधनों की दृष्टि से विषाल देष भारत को शक्तिशाली बनने से रोकना।
3. रूस व चीन से युद्ध की स्थिति में पाकिस्तान की भू–सामरिक स्थिति का लाभ उठाकर अपने हितों को संरक्षित करना।
4. एशिया में साम्यवाद के प्रसार पर अंकुश हेतु पाकिस्तान को एक आधार के रूप में इसतेमाल करना।

चीन–पाक–अमेरिकी धुरी एवं अन्तः क्षेत्रीय आयाम

अक्टूबर 1962 में हुए भारत–चीन युद्ध में अमेरिका व ब्रिटेन द्वारा की गयी भारतीय सहायता पूर्व सोवियत संघ की तटस्थता व पाकिस्तान द्वारा चीन के पक्ष में दिए गये विभिन्न वक्तव्यों से दक्षिण एषिया के सामरिक व राजनैतिक परिवेष को नूतन आयाम मिला। भारत–चीन युद्ध में भारत को दोषी बताते हुए तत्कालीन पाकिस्तानी राष्ट्रपति अयूब खां ने काह कि भारत चीन से अपनी सीमा समस्याओं का पारस्परिक वार्ताओं द्वारा शान्तिपूर्वक हल न चाहकर टकराव के मार्ग पर चल रहा है। वास्तव में पाकिस्तान के उक्त कथन का मुख्य लक्ष्य चीन–पाक मैत्री का ठोस आधार निर्मित करना था। अयूब खां की यह मान्यता थी कि चीन के भय से जहां एक ओर भारत की सैन्य महत्वाकांक्षाओं पर अंकश लगाना सरल होगा वहीं कष्मीर प्रष्न पर चीन का सक्रिय समर्थन हासिल करके भविश्य में सैन्य बल पर कष्मीर को हथियाना अपेक्षाकृत सरल हो जायेगा। फलतः 2 मार्च 1963 को चीन व पाकिस्तान ने एक सीमा समझौते पर हस्ताक्षर करके सामूहिक सीमांकन की इच्छा व्यक्त की। चीन पाकिस्तान के मध्य हस्ताक्षरित स समझौते से कष्मीर मसला द्विपक्षीय न रहकर त्रिपक्षीय एवं जटिल हो गया।

पश्चिमी समर्थक सैन्य संगठनों से आधुनिक षस्त्र अर्जित करने व चीन को मैत्रीसूत्र में बांधने के बाबजूद सन् 1965 में भारत–पाक युद्ध में पाकिस्तान को कोई विषेश लाभ नहीं मिला इस युद्ध मं जहां एक ओर कश्मीर प्राप्ति का उसका दिवास्वप्न बिखर गया वहीं चीन से उसे कोई सक्रिय समर्थन न मिलने से निराषा ही हाथ लगी। भारत–अमेरिका व भारत पूर्व सोवियत सम्बन्धों में उत्पन्न हो रही मैत्रीपूर्ण भावना एवं दोनों बड़ी षक्तियों द्वारा कश्मीर मसले को पारस्परिक वार्ताओं से हल करने की अपील से पाकिसतानी शासक काफी क्षुब्ध थे फलतः अमेरिका ने चीन–पाक साहयोग में हो रही प्रगति पर दबाब बनाने हेतु 12 अप्रैल 1967 को भारत व पाक दोनों को दी जाने बाली सैन्य सहायता रोक दी किन्तु इससे पाकिसतान को कोई विषेश सामरिक क्षति नहीं हुई। अमेरिका के उक्त निर्णयों पर पाकिस्तानी षासकों– नागरिकों व बुद्धिजीवियों की व्यापक प्रतिक्रिय के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ उठाने की दृष्ट से पूर्व सोवियत संघ के प्रमुख कोसिनि न पाकिस्तान से अपने संबंधों को दृढ़तर बनाने हेतु अप्रैल 1968 में पाकिस्तान की यात्रा की। लेकिन अपने विभिन्न कूटनीतिक वासामरिक हितों को ध्यान में रखकर चीन ने सोवियत पाक मैत्री को षिथिल करने का हर संभव प्रयास किया। उधर दक्षिण एषिया में बढ़ रहे अमेरिकी सामरिक प्रभुत्व व चीन–पाक सामरिक सहयोग से चिन्तित होकर पूर्व सोवियत संघ ने भारत–पाक सम्बन्धों में मधुरता उत्पन्न करने हेतु दोनों दशों की सरकारों को प्रोत्साहित भी किया किन्तु इसमें आंशिक सफलता भी नही मिल सकी।

सातवें दशक के दौरान महाषक्तियों के मध्य प्रारम्भ तनाव षैथिल्य तथा सीटो व सेण्टों के सदस्यों के साथ सहयोग सम्बन्ध का प्रभाव दक्षिण एषिया के सामरिक व कूटनीतिक परिवेश पर भी पड़ा। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान पर लगाये गये शस्त्र प्रतिबन्ध पर पाक–जनमत के दबाब व अन्य स्त्रोतों से (चीन व पूर्व सोवियत संघ) षस्त्र आपूर्ति की धमकी के फलस्वरूप अन्ततः 7 अक्टूबर 1970 को निक्सन–पशासन ने कुछ सीमित मात्रा में पाकिस्तान को षस्त्र आपूर्ति का निर्णय लिया। अससे भारत–पाक सामरिक समीकरण पर प्रतिकूल प्रभाव के साथ दक्षिण एषिया का सुरक्षा परिवेश व्यापक रूप से प्रभावित हुआ। किन्तु अमेरिकी प्रषासन ने अपने निर्णय में कोई संषोधन नहीं किया। ज्ञातव्य है कि चीन–सोवियत संघर्ष को देखते हुए जहां एक ओर चीन, पाकिस्तान के साथ अपने पक्ष में करने हेतु सतर्क था बहीं दूसरी ओर तत्कालीन अमेरिकी प्रषासन भी दक्षिण एषिया में अपने व्यापक हितों की पूर्ति में पाकिस्तान की भू–सामरिक स्थिति को देखते हुए हर कीमत पर उसे अपने खेमें में रखने हेतु आतुर था। फलतः परिस्थितियों की जटिलता व दक्षिण एषिया की विभिन्न राजनयिक व सामरिक गतिविधियों से प्रेरित होकर पाकिस्तान ने अपने राष्ट्रीय व अन्तर्राश्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु चीन व अमेरिका जैसे परम्परागत शत्रुओं के मध्य मैत्री–सूत्रपात हेतु सुविचारित व सुनिर्धारित किन्तु कूटनीतिक कदम उठाये।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व पटल पर जिस नवीन विश्व व्यवस्था का उदय हुआ उसमें समस्त भू–मण्डल दो विचार धाराओं में विभाजित दृश्टिगत हुआ। यह विचार धाराएँ साम्यवादी और साम्राज्यवादी या समाजवादी और पूंजीवादी के नाम से सम्बोधित की गयी ।इन विचार धाराओं को समृद्धि एवं विस्तारित करने के लिए सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमंरिका ने अथक प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। इन दोनों दशों को इन विचार धाराओं या गुटों का सर्वमान्य नेता मान लिया गया। इन दोनों ही देशों ने भू–मण्डल के प्रत्येक क्षेत्र को अपने विचारों के जाल में फंसाने के लिए धन–छल और बल तीनों का अवलम्बन लिया। इस प्रक्रिया में इन दोनों गुटों ने स्वयं को दो शक्ति गुटों में विभाजित करके दूसरे गुट को नीचा दिखाने का कार्यक्रम भी प्रारम्भ कर दिया। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं हो सकता जहां पर किसी भी प्रकार की समस्याए न हों, अतः इन दोनों गुटों के नेताओं ने जो महाशक्तियों के

रूप में जाने पहचाने जाने लगे थे, प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगे। जिस क्षेत्र की जितनी अधिक महत्वपूर्ण भू–स्त्रातेजिक और आर्थिक स्थिति थी, वहां पर इनका हस्तक्षेप उतना ही अधिक हो गया।

दक्षिण एशिया के स्त्रातेजिक परिवेश को समझने से पूर्व यह आवष्यक है कि दक्षिण एशिया की षान्ति और सुरक्षा को प्रभावित करने वाले आयामें को समझा जाये, जिसके कारण महाशक्तियॉ यहा पर प्रभाव जमाने के लिए प्रयत्नशील हुई और होंगी। इन तत्वों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है–

- भू–राजनैतिक एवं भू–स्त्रातेजिक आयाम
- बह्य क्षेत्रीय आयाम
- अन्तर क्षेत्रीय आयाम
- आन्तरिक आयाम
- आर्थिक आयाम
- भू–राजनैतिक एवं भू–स्त्रातेजिक आयाम

दक्षिण एषिया की भू–राजनैतिक एवं भू–स्त्रातेजी को समझने से पहले यह आवष्यक है कि भू–राजनैतिक एवं भू–स्त्रातेजी को समझा जाये। भू राजनीति दो शब्दों से मिल कर बना है– भू और राजनीति। भू का तात्पर्य है कि किसी भी क्षेत्र की भौगोलिक दषाएं, स्थिति, विस्तार, जलवायु, प्राकृतिक संसाधन आदि। जबकि राजनीति का तात्पर्य राज्य की उन क्रिया कलापों से है जिसमें वे स्वयं को विष्व पटल पर षक्तिमान बनाये रखने के लिए करते है।

भू स्त्रातेजी शब्द भी दो षब्दों से मिलकर बना है– भू और स्त्रातेजी। भू का तात्पर्य भोगोलिक दषाओं से है जबकि स्त्रातेजी का तात्पर्य युद्ध में विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से बनायी गयी योजनाओं से है। इस प्रकार भू –स्त्रातेजी का तात्पर्य भौगोलिक दशाओं का युद्ध के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देष्य से बनायी गयी योजनाओं से है, जिससे सरलतम विजय प्राप्त की जा सके।

संसार के समस्त महाद्वीपों में एशिया महाद्वीप सबसे बड़ा महाद्वीप है। इस महाद्वीप का क्षेत्रफल संलग्न द्वीपों सहित 4 करोड 35 लाख वर्ग कि.मी. में फैला हुआ है। जो विश्व के कुल थल क्षेत्रफल का 29.2 प्रतिशत भाग है। यहां पर 2.5 अरब से अधिक जनसंख्या जो विश्व की आधी से अधिक जनसंख्या है। यह महाद्वीप सभी प्रकार के धर्मो, संस्कृतियों और भाषाओं का घर है। यह महाद्वीप प्राकृतिक संसाधनों की प्रयुरता के बाबजूद आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है और राजनीतिक विकास की दृष्टि से भी बहुत पीछे है।

दक्षिण एशिया भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेष तथा श्रीलंका।

दक्षिण पूर्वी एशिया वर्मा, इण्डोनेशिया, हिन्द–चीन, मलेषिया, फिलीपीन्स, थाइलैण्ड आदि।

पूर्वी एशिया चीन, जापान और हांगकांग।

पश्चिम एशिया अफगानिस्तान, ईरान, इराक, सीरिया, साऊदी अरब, लेबनान, इसरायल, ट्रासजार्डन, टर्की, साइप्रस आदि।

भारत–

भारत दक्षिण एशिया का अकेला देष है जिसकी सीमाएं इस क्षेत्र के सभी देशों से मिलती हैं। वह इस क्षेत्र के सभी देशों को प्रभावित कर सकता है। हिन्द महासागर में अपनी केन्द्रीय स्थिति के कारण वह हिन्द महासागर की राजनीति को भी प्रभावित कर सकता है। भारत की उत्तरी सीमा चीन से मिलती है और सोवियत संघ के विघटित गणराज्यों की सीमाएं भी निकट है। यहां से अफगानिस्तान भी निकट है। भारत के पूर्व में म्यांमार हैं, भारत इन देषों की राजनीति को प्रभावित कर सकता है।

पाकिस्तान–

पाकिस्तान दक्षिण एषिया का दूसरा महत्वपूर्ण देष है। यह भारत के पश्चिम में स्थित एक इस्लामिक देष है। पाकिस्तान की भू–राजनीतिक और भू–स्त्रातेजिक स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह देश खाड़ी देशों के अत्यधिक नजदीक है। यह देश 14 अगस्त 1947 को भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के अंतर्गत भारत को विभाजित कर बनाया गया। यह देष दो भागो में बंटा था, पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान। पारन्तु 1971 में इसका पूर्वी हिस्सा स्वतन्त्र देश, बांग्लादश बन गया।

बांग्लादेश–

बांग्लादेष दक्षिण एषिया का तीसरा बड़ा देश है। इसका जन्म 17 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तान से अलग हो जाने के कारण हुआ। यह 1947 तक भारत का ही एक अंग था। यह भारत के पूर्व में स्थित तथा उत्तर पश्चिम व पूरब तीन तरफ से भारत से घिरा हुआ है। दक्षिण पूर्व में कुछ दूरी तक वर्मा से इसकी सीमाएं मिलती है। जबकि दक्षिण में बंगाल की खाड़ी इसकी सीमा निर्धारित करती है। बांग्लादेष का कोई विषेश भू–स्त्रातेजिक महत्व नही है। फिर भी इसका प्रमुख बन्दरगाह चटगांव प्राकृतिक रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जहां पर नौ–सैनिक सुविधयें प्राप्त की जा सकती हैं। यहां से म्यांमार, भारत तथा दक्षिण पूर्वी एषिया के क्षेत्रों पर निगरानी रखी जा सकती है। राजनीतिक दृष्टिकोण से यह देष अस्थिर रहा है।

श्रीलंका–

श्रीलंका भारत के दक्षिण में हिन्द महासागर की गोद में बसा हुआ है। यहॉ की भौतिक और सांस्कृतिक अस्मिता निकटस्थ पड़ोसी एवं मित्र राष्ट्र भारत से पूर्णतः प्रभावित है। यह देश भी भारत की तरह अंग्रेजी दासता में वर्शो तक रहा। 1948 में अंग्रेजों ने इसे मुक्त किया। 1956 में यह सार्वभौम सत्ता सम्पन्न पूर्ण गणराज्य घोषित किया गया।

श्रीलंका का स्वरूप नाषपाती के आकार का है यह भारत से 20 मील की दूरी पर समुद्री मार्ग से अलग है। श्रीलंका और भारत के मध्य सबसे कम दूरी रामेश्वरम तथा तलाई मन्जार के बीच है।

यह द्वीप मुख्य रूप से हिन्द महासागर में स्थित हैं।

नेपाल–

यह एक स्थलबद्ध देश है। जो पूर्ण रूपेण पर्वतीय क्षेत्र है। इसकी लम्बाई 830 कि.मी. तथा औसत चौड़ाई 150 कि.मी. है। इसका क्षेत्रफल 141059 बर्ग कि.मी. है। वर्ष 1990 में यहां की जनसंख्या 2.2 करोड़ थी। इसके उत्तर में चीन का तिब्बत प्रदेश, दक्षिण में भारत का उत्तर प्रदश तथा बिहार राज्य पूर्व में सिक्किम तथा पष्चिम में शारदा नदी इसकी सीमा निर्धारित करती है। यह हिमालय के पर्वतांचल में बसा हुआ विष्व का एक मात्र हिन्दू राष्ट्र है। भू–राजनीतिक एवं भू–स्त्रातेजिक दृष्टि से भारत के लिए इसका विषेश महत्व है। इसके उत्तरीभाग में महान हिमालय के उत्तुंग हिम–मण्डित शिखर उसकी सीमाओं पर प्रहरी के सदृष खड़े है। तो देष के आन्तरिक भाग में स्थित सुरम्या घाटियां पर्वतों से खिलवाड़ करती सरितायें एवं अविराम गति से कलकल निनाद करते जल प्रपात बरबस मन को आकर्शित करते है। 1950 में भारत ने नेपाल के साथ शान्ति और मित्रता नामक सन्धि की थी जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि कोई भी देश एक दूसरे की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न करने वाले किसी विदेषी आक्रमण को प्रश्रय नही देगा। यदि एसा कोई खतरा उत्पन्न होता है तो दोनों दश एक दूसरे से सलाह कर उसके विरूद्ध प्रभावी कदम उठायेंगे।

भूटान–

भूटान भारत के उत्तरी–पूर्वी सीमा पर स्थित एक स्थलबद्ध राष्ट्र है। यह हिमालय की पहाड़ियों में स्थित है। इस देश की लम्बाई 320 कि.मी. तथा इसकी चौड़ाई 150 कि.मी. है। भूटान के उत्तर में चीन तथा तीन ओर भारत है। यहां की जनसंख्या 1990 में 7.37 लाख थी। यहां मुख्यतः भूटिया जाति के लोग रहते थें परन्तु अब यहां पर नेपाल से आकर लोग बस गये है। आबादी में नेपालियों का अनुपात 35 प्रतिशत है। भूटान दक्षिण एशिया का एक मात्र दश है जहॉ पर राजषाही है। राजशाही के विरूद्ध यहॉ पर असन्तोश व्याप्त है। भू–राजनीतिक एवं भू–स्त्रातेजिक दृष्टिकोण से भारत के लिए इसका विशेष महत्व है, क्योंकि यह भारत और चीन के मध्य स्थित है। इस देष पर यदि किसी शक्तिषाली राज्य का प्रभुत्व स्थापित हो जाये तो भारत के इस देश की सीमा से लगे क्षेत्र तथा प्रमुख रूप से पूर्वोत्तर भारत के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

मालद्वीव–

मालदीव दक्षिण एशिया का सबसे छोटा देष है। यह हिन्द महासागर में स्थित 1190 प्रवाल द्वीपों का एक समूह है। इसका कुल क्षेत्रफल 298 वर्ग कि.मी. है लेकिन यह 90000 कि.मी. के जलीय क्षेत्रफल में विभिन्न मूंगों के आकार की पहाड़ियों पर फैला हुआ है। वर्तमान में इसकी जनसंख्या 256000 है। मालदीव 26 जुलाई 1965 को अंग्रेजों की दासता से स्वतन्त्र हुआ तथा नवम्बर 1968 में गणराज्य बना। यहां के अधिकांश निवासी नाविक है। नारियल फल व ज्वार बाजरा यहां की मुख्य कृशि उपजें है। मछली पकड़ना यहां के निवासियों का मुख्य उद्यम है। यहां की प्रति व्यक्ति आय 400 डालर के लगभग है जो इस क्षेत्र में सबसे अधिक है। यहां पर साक्षरता 95 प्रतिषत हैं। यहां की अधिकांष जनसंख्या मुस्लिम है।

बाह्य क्षेत्रीय आयाम

दक्षिण एशिया अपनी विशिष्ट भू राजनीतिक और भू स्त्रातेजिक स्थिति के कारण प्रमुख शक्तियों के हस्तक्षेप से मुक्त नही रहा है। इसके पश्चिम में सामरिक दृष्टि से तेल सम्पन्न खाड़ी क्षेत्र है। पूर्व में आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एषिया प्रशान्त क्षेत्र है, जिस पर राजनीति का निरन्तर प्रभाव पड़ता है। विगत दशकों में प्रमुख षक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हस्तक्षेप करने के कारण अन्तर क्षेत्रीय सम्बन्धों को बहुत प्रभावित किया है। भारतीय उपमहाद्वीप से ब्रिटिष राज्य के हटने के बाद से ही यहां की क्षेत्रीय राजनीति में पूर्व पष्चिम षीतयुद्ध का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। इसमें जो आपसी क्षेत्रीय शत्रुता चलती रही, उसने प्रमुख शक्तियों को हस्तक्षेप करने का स्वर्ण अवसर प्रदान कर दिया और दक्षिण एशिया के देशों के सम्बन्ध और खराब हो गये।

भारतीय सेवानिवृत्त मेजर जनरल ए.के. करीम के नेतृत्व में रक्षा अनुसंधान कर्ताओं के द्वारा एक रिपोर्ट तैयार की गयी है जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भारत पाकिस्तान के मध्य संबधों में कड़वाहट के बावजूद परमाणु युद्ध या परम्परागत हथियारों से युद्ध होने की संभावना नहीं हैं। जब दोनों देशों को इस बात का पता है कि एक दूसरे के पास परमाणु हथियार के रूप में अस्तित्व को बचानों के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है अतएव परमाणु मसला दक्षिण एशिया के लिए एक खतरा बना हुआ है।

आन्तरिक (राष्ट्रीय) आयाम

दक्षिण एषिया क्षेत्र की एक प्रमुख विशेषता रही है कि यहा पर अन्तः क्षेत्रीय आयाम और आन्तरिक संघर्ष के आयाम आपस में जुड़ गये है। और उन्हें अलग करना सरल नहीं हैं देष की स्थिरता समृद्धि और प्रगति राष्ट्रवाद के सिद्धन्त पर आधारित है। और यह सबको एक सूत्र में आबद्ध किए हुए है। एक भाषा तथा धर्म के होने से राष्ट्र निर्माण में आने वाली कठिनाइयों में कोई कमी नही आती है। ये तत्व किसी क्षेत्र को एक राश्ट्र देष मानने के लिए आवष्यक नहीं है। राष्ट्र मुख्य रूप से ऐ जैसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, हितो और मूल्यों तथा अपने को एक समझने की भावना पर आधारित होता है।यह एक बहुत लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है जिसके दौरान उतार चढ़ाव आना, संघर्श एवं तनाव होना एक आम बात है। इस प्रकार यदि देखा जाये तो आन्तरिक अस्थिरता एवं संघर्श के मूल कारणों में राष्ट्र–देश निर्माण की प्रक्रिया भी एक प्रमुख कारण है।

आर्थिक आयाम

वर्तमान शीतोत्तर काल में यह धारणा निश्चित सी बनती जा रही है। कि आर्थिक शक्तियां अर्न्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नियंत्रित

करती है। विश्व परिदृष्य में यह तथ्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि आर्थिक सृदृढ़ता न केवल आन्तरिक स्थिति की सुदृढ़ीकरण के लिए आवश्यक है अपितु बाह्य प्रभाव स्थापित करने के लिए भी अपरिहार्य है। वर्तमान काल में आर्थिक स्थिति जितनी तीव्रता से राष्ट्रीय और विदेश नीति को प्रभावित कर रही है, उतना इतिहास में कभी भी प्रभावित नहीं कर पायी है। चीन भी दक्षिण एशिया में विगत दो दषकों से निरन्तर अपना प्रभाव बढ़ा रहा है उसने पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका के साथ अनेक क्षेत्रों में आर्थिक सहयोग किया और अ वह भारत के साथ भी अपना आर्थिक सहयोग बढ़ाता जा रहा है। दक्षिण एषिया के भू–राजनीतिक, भू–स्त्रातेजिक तथा आर्थिक महत्व के कारण बड़ी षक्तियां यहा निरन्तर रूचि लेती रही है और आगे भी लेती रहेगीं जबकि इस क्षेत्र की आन्तरिक समस्याओं और यहाँ के देशों के आपसी मनमुटाव ने उन्हें यहां पर अपना पैर जमाने का सुअवसर प्रदान किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अगवानी, एम.एस. (सम्पा), साउथ एषियाः स्टेबिलिटी एण्ड रीजनल कोऑपरेशन, सी.पी.आर.आइ.डी., चण्डीगढ़, 1983
2. ऐलेन, रिचार्ड, ए शार्ट इण्ट्रोडक्शन टू दि हिस्ट्री एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ साउथ–ईस्ट एषिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, न्यूयार्क, 1968
3. अली तारिक, कैन पाकिस्तान सरवाइव? हैमंड्सवर्थः पेंग्विन, 1980
4. बजाज प्रमनाथ, दि हिस्ट्री आफ स्ट्रगल फार फ्रीडम इन कश्मीर, कश्मीर पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1954
5. बिन्द्रा, एस.एस., इंडिया एण्ड हर नेबर्स, दीप एण्ड दीप, नई दिल्ली, 1985
6. डॉ0 श्रीपाल सिंहः भारत तथा समीपवर्ती देश
7. जसजीत सिंहः इंडियन ओसियन, आयल एण्ड सिक्यूरिटी, स्ट्रेटेजिक एनालिसिस
8. राजन मोहनः द नेचर आफ साउथ एशियन रीजन

डॉ0 एम.के. सिंह
(एसो. प्रोफेसर)
रक्षा–अध्ययन विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

प्रेम चन्द
रक्षा–अध्ययन विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

43

"An Investigation Into The Achievement of Science Among The Secondary School Students in Relation to Their Verbal Intelligence Creativity and Reading Interest"

Dr. Jai Pal Singh 'Vyast', Dr. Ramesh Singh

Abstract

The role of education is very much important in the society of human beings in its very dimensions to the life they education has different aspect to carry with the educational schedules the development and maintenance of various allied aspects to the education improve very much important because they have their own purpose and identity to the concept of overall development of a child each education system and educationists refer to the overall development of the child, which may be denoted as mental development, physical and psychological development, social development, intellectual development, spiritual and economic development etc.

Education means the modifications in behavior. This statement peruse to various alterations and modifications which may be conducted with the help of education, environment and teaching for training. Education may only be achieved when the various body systems engaged and involved in a coordinative and systematic form.

The history of man, like that of other forms of existing life, has been one of evolution adoption and change in order to achieve continuation and progress. Man however has surpassed other creatures in the development of the brain and the development has made him superior to other species in the behavior and in control of his environment. The world is becoming more and more competitive. Quality of performance has become the key factor for personal progress. Parents desire that their children climb the ladder of performance as high a level as possible. This desire for high level of achievement puts a lot of pressure on students teachers, schools and in general the education system itself. In fact it appears as if the whole system of education revives round the academic achievement of students. Through various other outcomes are also expected from the system. Thus a lot of attention and efforts are requested for helping students to achieve better in their scholastic endeavors.

Statement of the Problem

"An Investigation Into The Achievement Of Science Among The Secondary School Students In Relation To Their Verbal Intelligence Creativity And Reading Interest."

Objectives of the Study

1. To study the achievement in science of male and female students of secondary schools.
2. To study the thermal intelligence of male and female students of secondary schools.
3. To study the reading interest of male and female students of secondary schools.
4. To find out the relationship between academic achievement and verbal intelligence of secondary students.
5. To find out the relationship between academic achievement and reading interest of secondary students.
6. To find out the relationship between reading and test and verbal intelligence of secondary students.
7. To find out the relationship between heating interest and creativity of secondary students.
8. To find out the relationship between creativity and verbal intelligence of secondary students.

Hypothesis of the Study

There is significant difference between the achievement in science, the verbal intelligence, the reading interest, the academic achievement and verbal intelligence, the academic achievement and reading interest, the reading interest and verbal intelligence, and reading interest and creativity of male and female students of secondary schools.

Need and Importance of the Study

The problem is concerned with many groups of a student of, intelligence and reading. It is necessary to understand both these groups thoroughly so that proper guidance and help may be provided to them.

It is just possible that their academic performance may be somehow the result of the conditions at home they might be having special needs and values and with little more care, direction and guidance, they may flower into excellent being of our nation. This researcher believes that these groups of students are real and can be identified and studies. Hence researcher has decided to conduct the present study.

The study is based on the theoretical orientalxontation developed by Tuel and Warstent (1965 who said that every carries on "intra personal educational environment" they define this environment as "those personality traits, which influence learning and which an individual brinks to the

educational setting". A number of investigation have centered around personality trails, expected differentiate between the creativity interest and intelligence affect which only asserts that academic achievement is not a function of only intellectual potential, but hit influenced by the personality of the learner also. The present study AIMS at investigating the achievement of secondary school student in science, in relation to their verbal intelligence and reading interest. the survey studied by the researcher have revealed that hardly any significant study has been done to find out the relationship between these variables and their comparisons in relation to male and female, government and public, achievement and verbal interest, achievements and reading interest, verbal intelligence and reading interest. Therefore researcher becomes deeply interested to study the difference and correlation among these variables.

Explanation And Definition Of Terms Used Academic Achievement

Academic achievement is the degree of attainment of the students after a period of learning exercise and is measured by examination in different subjects.

Good has defined educational achievement as:

1. Knowledge attends or skill developed in the school subjects usually by test scores or by marks assigned by teacher or both.
2. Achievement of the pupil in the so-called academic subjects such as reading, arithmetic and history as contrasted with skill developed in such areas as industrial art and physical education.

Academic achievement is the records which indicate the scholastic performance of a student in school, if the school task is performed successfully. Achievement in general term is used for the successful attainment of some goal requiring a certain efforts or the degree of success attends in a task example, Solving a test.

Creativity:

The complexity of the concept of creativity e has been recognized by many in the field ce.g (Gown 1972; Roweton 1973, Torrance 1974) and has been the source of apprehension and misgiving especially in terms of its measurement correlates. There is considerable lake of agreement over the definition of the term (Turda 1920) since the word creativity e has through uses become associated with many aspect of creative behavior hand metal functioning that range along a cognitive emotive continuum. The problem of definition is compounded by variety description of the energy source of creativity each dependent on the several existing theoretical models of model functioning.

Each person who takes as interest in creativity naturally gets interested in a particular way; that is he or she enters the continuum at a particular point according to interest, need awareness lacunae compulsion or for some other reasons. Decision to the particular pieces of research is the subject to the very conditions often being resdrchedm the interactive relationship between the cognitive and emotive.

Measurement of Creativity:

During the last few decades efforts having made to measure creativity through test and non testing approaches. The testing best psychometric approach narrows down the concept to the extent of the nature and scope of test items. Measurement of creativity through the test approach is an uphill task. However, broad principles for test construction could be established. Based on the lines of Guilford and Torrance, main investigators developed their own tests.

The creativity test response is popularly scored for fluency, flexibility, originality and elaboration. Manuals are silent especially on the scoring of elaboration. Apart from a few other dimensions like persistency and inquisitiveness, have been included in the definition and measurement of creativity by Passi, B.K. (1972) other than these dimensions Torrance, E.P. (1974) developed streamlined scoring the incorporated five norm referenced measures and this teen criterion referenced measure in the conceptual framework of creativity. The five norm referenced measures include Fluency, Originality, Abstractness of titles, elaboration and resistance of premature closure. The criterion referenced measures include emotional expressiveness, storytelling articulateness movement or action expressiveness of little synthesis of incomplete figures synthesis of lines. Synthesis of circles un usual visualization, extending or breaking boundaries humor, richness of imagery colorfulness of imagery and fantasy.

Many of times our investigators have used artificial and unrealistic testing situations. The stimulus item of the test includes fancy rather than real life situations. However investigators like Kumari, V.M.C. (1993) and a few others have developed creative problem solving test based on age, specific realistic situations. The inclusion of life-like realistic situations is duly emphasized in the writing of many thinker including Edward Be Bono. Apart from the usual testing techniques some other approaches like biographical assessment interviews, group discussions, real field test role playing and link term observation could be used. The biomedical approach to major creativity could be potential

means in future.

The approaches for including creativity called the 5 P's namely person, process, product, press, and potential are quite popular. These approaches are further reinforced by more specific questions about the researches of creativity and the area and the mythology of research. Some of the question is related to those who conduct studies in the area of creativity. These questions are

- What motivates those who study the subject of creativity?
- What would actually be the object of their research studies?
- Who would be involved in studying creativity or what disciplinary or mythological expertise should they hold?

What would be the changing research scenario in the coming transitional decade?

Like this many more questions and innovations are constantly emerging in the arena of creativity. We ought to find out the answers although there are some difficulties in the way.

One of the main difficulties to conduct research in creativity lies in our failure to formulate acceptable definition. Some of our definitions predominantly support the importance of studying the domain of creativity from the viewpoint of its effect on the society whereas some other definitions recognize the importance of personal expressions of the human activity. Hence extrinsic and intrinsic importance is coming to the fare.

There are some who hold and outright assumption that creativity is a mysterious phenomena. One which defies systematic analysis and inquiry. Something which is not clearly defined. Others hold that creativity is a mystical concept which is collusive, challenging, implicit and scientific study. Yet other think creativity is a magical phenomenon. Accordingly there are only a few pleased individuals who have had real creativity implying there by that these geniuses have been specially gifted. Rather than a deliberate attempt to find the nature of such gifts or how to nature them in others this particular myth promotes the belief that it is more productive to simply appreciate the manifestation of these given geniuses.

Another difficulty in the study of creativity is the belief that to be creative, one must be abnormal crazy, bizarre or neurotic, creativity is often equated with pure novelty. Which by definition must be outside the realm of traditional and established pattern of human behavior over emphasis on novelty may often involve madness. Still on other source of resistance lies in the belief that creativity involves Fun, entertainment and merry-making and cannot therefore, involve anything of hard work leading to serious inquiry, such views have also been expressed by Iraksen, S.G. and Murdock M.C. (1988).

Despite these definitional divergences and difficulties there has been a consistent growth of research this complex and Multi-Faceted Phenomenon of creativity and innovation. One of the basic assumptions underlying the inquiry about creativity is that creativity is seen as a saturate Human Phenomenon, Further, the enhanced awareness of creativity will help to examine the imaginative and productive application of this knowledge for improving the quality of our lives.

About fifty years ago the trend of research in the area of creativity changed. Gulford, J.P. (1950) of the president of the American psychological. Association in a address pointed out “Of approximately 121000 books and papers listed in psychological abstract in about twenty three years. Only 186 seemed to have some bearing on the topic of creativity. “Today of course, the proportion looks decidedly healthier. The number of studies of the year and a half of 1963-66 equaled that of the proceeding ten years (for ness) S.J. and Brunelle, E.A. (1967). Much of the literature pores on areas other than education. Such as industry science, business or the arts. Deustch and Shea, Inc. (1958) reported a bibliography and creativity in these areas. It lists some 350 studies from the early 1950-60 listed 50% of its Indian researchers have shown interest in the area of creativity in education, but we have yet to undertake significant educational problems, the research climate, in India, is improving Mariginally. The depressing environment continues to coexist due to a number of Eastors viz a long period of deem powering of teachers increasing rigidity of teaching learning situations the intense standardization of the decision making process Frequent interference of politicians, traditional, overcrowding student population increasing proportion of first generation learner and destining Financial resources available for school system. However, apart from indirect government efforts. A few positive efforts if innovative schooling can be seen in institutions like Bal Bhavans, Janna Prabodhini Mirambika Rishi Valley School. Netrahat Residential Schools. A few public schools selected mission schools. The general picture of research in creativity in India is cheerless in the first those up to 1970. Only five studies were completed. But the situation is gradually improving in 193; as many as 214

research studies have been completed in India. The survey of these studies is being given under different headings like, review of research trends review of research methods, review of research in creativity training of personal, systems approach and coming decades.

The sample of study comprised 835 girls students of grade XI from different higher secondary schools of Srinagar and Baramulla District. Out of the total sample 410 girls were from rural and 495 girls were from urban background. The tools used included information Blank Sheet. Non Language preference Schedule by Chatterji, Verbal test of creative thinking by Baqer Mehdi and Progressive Matrices by Raven Mean, SD "t" values and percentages were used for the analysts of data.

Major Findings:-

Rural and Urban gifted girls did not show any characteristic difference in Parental education.

Rural gifted girl in comparison to urban gifted girls were found to be higher on creativity but difference between the mean scores could not reach any level of significance. No significant difference was found between these two groups on the components of creativity with fluency flexibility and originality.

The vocational interests of gifted rural and urban girls were more or use similar when compared on a one to one basis. [AGM- 1859]

According to Agarwal, Kanta Prasad 1988. Types of schools and corresponding factors as predictor of creativity at secondary level Ph.D. Edu. Jamia Milla Islamia.

Problem: This study concentrates on types of schools and corresponding factors as predictors of creativity at secondary level.

Methodology: The sample comprised 480 male since students of class XI from four types to schools, namely schools, Government schools, Kendriya Vidyalayas and public schools, apart from 275 teachers. The tools used were verbal and non verbal test of creativity, learning Environment Inventory and Socio economic status scale. Mean SD. F Ratio "t' chi-square and multiple regression analysis were used for the purpose of analysis of data.

References:

- **Aaron, P.G.**: Research needs in Educational Psychology in Research needs the study of education Eds. Uday Shankar and S.P.
- **Abraham. P.A. (1969)** : An experimental study of certain personality traits and achievement of secondary schools pupils. Unpublished Ph.D. thesis, Vishal Publishers University Campus Kurukshetra PP.157.
- **Anastasi, A. (1969):** Psychological Testing. New York: The Macmillan Company.
- **Lovitt (1967):** The Psychology of Anxiety, Ronald press, New York.
- **Maan, G.S. (1978):** Value patterns of creative and non-creative students (A cross cultural study) Ph.D. Psy., Agra University.
- **Gupta, O.V. (1977):** Intelligence, Creativity, Interest and Frustration as functions of class achievement, sex and age Ph.D. Psy., Agra University.
- **Dixit, M. Kumari (1985):** A comparative Study intelligence and academic achievement of adolescent boy and girl studying in class IX and XI, Ph.D. Education, Kanpur University.
- **Buch, M.B. (ed) (1974):** A survey of Research in education CASE, M.s. University of Baroda.

Dr. Jai Pal Singh 'Vyast'
Associate Professor
Department of Education
Hindu College, Moradabad

Dr. Ramesh Singh
Department of Education
Hindu College, Moradabad

44

दक्षिण एशिया की शान्ति एवं सुरक्षा में चीन की भूमिका

डॉ0 एम.के. सिंह, प्रेम चन्द

सारांश –

आधुनिक विश्व के प्रगति का ग्राफ देखें तो केवल वे समाज पिछड़े हुए है। जो शताब्दियों पुरानी मान्यताओं को निरंतर जिंदा रखने में अपनी ऊर्जा खपा रहें हैं। अगर दुनिया के चार बड़े धर्मों के आधार पर इनका विश्लेशण करें तो बात आसानी से समझ में आ सकती है। दुनिया के चार बड़े धर्म ईसाई, इस्लाम, बौद्ध और हिन्दू धर्म हैं। बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म के अनुयायी अपनी धार्मिक कट्टरताओं में मुक्ति पाने में अग्रणी रहे है।

चीन के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को देखने से ज्ञात होता है कि वह अन्य शक्तियों से भिन्न रहा है। स्त्रातेजिकसतर पर चीन ही विश्व में एक ऐसा देश रहा है जो दोनों प्रमुख शक्तियों से अपना प्रतिरोध कर सकता था।[1] चीन ने जिस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण स्थान बनाया वह उसका सैनिक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में वह विश्व की प्रमुख शक्ति है क्योंकि उसने द्वितीय प्रहारक बल की क्षमता हासिल कर ली हैं।[2] यदि सैन्य संख्या की दृष्टि से देखा जाये तो चीन के पास विश्व की सबसे बड़ी सेना है।[3] परन्तु सैन्य क्षमता की दृष्टि से वह अमेरिका और रूस के बाद तीसरा स्थान रखता है। एशिया में उसकी सैन्य क्षमता सर्वोपरि है। चीन के शस्त्राागार पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आज उसके पास परम्परागत हथियारों से लेकर आणविक हथियारों की क्षमता उपलब्ध है। उसने अनेक प्रकार के प्रक्षेपासत्रों का निर्माण कर लिया है। उसकें प्रक्षेपास्त्रों में कम दूरी (एस.आर.बी.एम.), मध्यम दूरी (आई.आर.बी.एम. एवं एम.आर.बी.एम.), अंर्तमहाद्वीपीय (आई.सी.बी.एम.), समुद्री आधार से छोड़े जाने वाले (एस.एल.बी.एम.), एवं बहुशीर्शामुखी (एम.आई.आर.बी.एम.) प्रक्षेपास्त्र हैं। जिन पर परमाणु अस्त्रों को रखकर विश्व के किसी भी क्षेत्र पर गिराया जा सकता हैं।

चीन नई लम्बी छलांग के माध्यम से निरन्तर अपनी सेना का आधुनिकीकरण करता जा रहा है।[4] चीनी सेना को जनमुक्ति सेना (पीपुल्स लिबरेशन आर्मी) के नाम से जाना जाता है। चीन की सेना का आधुनिकीकरण करने में माओ–त्से–तुग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान समय में पी.एल.ऐ. के द्वारा अपनी देश में निर्मित तथा विदेशों से भी आयातित अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग किया जाता है। विदेशों द्वारा आयातित शस्त्रास्त्रों में अधिकांश सावियत माडल के शस्त्रास्त्र है।[5] इन शस्त्रास्त्रो का घरेलू उत्पादन भी किया जा रहा है। सोवियत संघ ने 1949 के बाद और अपने सीमा विवादों से पूर्व चीन का सैन्य आधार खड़ा करने में सहायता की थी। सोवियत संघ और चीन में नवें दशक के मध्य में पुनः सहयोंग स्थापित हो जाने के बाद दोनों देशों ने अनेक क्षेत्रों में सहयोग किया जिसमें सैन्य सहयोग का क्षेत्र भी प्रमुख है। शीत युद्ध के बाद रूस ने चीन को 20 अरब डालर के हथियारों की बिक्री की है। चीन ने अपनी सेना को सुदृढ़ करने के लिए एक सुगठित रणनीति बनाई है।[6] चीन ने रूस से दुनिया के आधुनिकतम और विनाशकारी लड़ाकू विमान 60 सुखोई–27 खरीदे है। इसके अतिरिक्त नवीनतम विकसित होने बाले सुखोई–31 और मिग–31 लड़ाकू विमान भी प्राप्त करने पर सहमति हुई है। चीन ने रूस से टी.यू.–22 नामक भारी बमवर्शक विमान खरीदे है। इसके साथ ही टी–72 टैंक, धरती से धरती पर हजारों कि.मी. दूर तक मार करने वाली एस.एस.25 मिसाइल पर भी रूस से बातचीत चल रही है।[7] प्रतिश्ठित रक्षा संस्था यूनाइटेड सर्विस इंस्टीटयूशन की त्रैमासिक पत्रिका यू.एस.आई. जर्नल के संपादक एयर कमाडोर एन.बी. सिंह ने एक अध्ययन में कहा है कि सुखोई–27 और मि–31 विमानों की भारी संख्या में चीनी वायु सेना को मुहैया करा देने से चीन की वायु सेना अपने क्षेत्र की सभी वायु सेनाओं में कहीं आगे निकल जायेगी।[8]

चीन ने अस्सी के दशक में साउदी अरब को सी.एस.एस. –2 नामक प्रक्षेपास्त्र की बिक्री की[9] जिसकी मारक क्षमता 2000–3000 कि.मी. तक मानी जाती है। उसने ईरान को जलयान रोधी सिल्क वर्म और अन्य विकास शील देशों को टैंक राधी और जमीन से जमीन पर मार करने वाले अन्य प्रक्षेपास्त्र भी बेचें। 1987 से 1990 के बीच ईरान को सबसे अधिक शस्त्रों की बिक्री करने वाला देश चीन ही था।[10]

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर अपनी पकड़ बनाने के लिए चीन विदेश नीति का पालन करना आरम्भ किया जिस द्वन्द्वात्मक विदेश नीति कहा जा सकता है। उसने एक तरफ पंचशील, सह–अस्तित्व, सहयोग और राष्ट्रीय आखण्डता जैसी नीतियों को प्रचारित किया तो दूसरी तरफ पड़ोसी राष्ट्रों की सीमाओं पर सशस्त्र झड़पें करके उन पर आक्रमण भी किया। चीन ने इन नीतियों का प्रयोग क्यों किया, इसके लिए उसके हितों को समझना आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र के हित को आगे बढ़ानें का कार्य उस देश की विदेश नीति करती है। अतः चीन की विदेश नीति को देखना अति आवश्यक है।

चीनी विदेश नीति के संबंध में जन परामश दात्री सम्मेलन द्वारा सितम्बर 1949 में पारित प्रस्ताव निम्न है–

"चीन गणराज्य की विदेश नीति का उद्देश्य देश की स्वतन्त्रता, सम्प्रभुता और प्रादेशिक सम्मान की रक्षा करना, स्थाई विश्व शान्ति को सुरक्षित रखना विभिन्न राज्यों में मैत्रीपूर्ण सहयोग को प्रोत्साहित करना तथा आक्रमण और युद्ध की साम्राज्यवादी नीति का विरोध करना है। चीनी गणराज्य विदेशों में निवास करने वाले चीनियों के उचित अधिकारों एवं हितों की सुरक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न करेगा। चीनी गणराज्य उन सभी लोगों को राजनीतिक शरण देगा जा जनहित, शान्ति तथा प्रजातंत्र के लिए संचालित संघर्ष में भाग लेने के कारण अपनी सरकार द्वारा सताये गये है।"

- इन प्रस्तावों के आधार पर चीन की साम्यवादी सरकार ने अपनी विदेश नीति के निम्न लक्ष्य निर्धारित किये–
- चीन की स्वतंत्रता और अखण्डता की रक्षा करना।
- स्थायी विश्व–शान्ति और सभी राष्ट्रों के बीच मैत्री सहयोग के लिए प्रयास करना।
- चीन को एक महाशक्ति के रूप में विश्व क्षितिज पर प्रतिस्थापित करना।
- एशिया में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना।
- एशिया और अफ्रीका में साम्यवादी जगत का नेतृत्व करना और साम्राज्यवादी शक्तियों विशेष कर संयुक्त राज्य अमेरिका के विरूद्ध संधर्ष में साम्यवादी देशों का सहयोग करना।

उन विदेशी शासन व्यवस्थाओं के साथ मैत्रीपूर्ण सबंध स्थापित करना, जो किसी समय राश्ट्रवादी चीन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर चुके है। चीन ऐसे प्रदेशों को जिन पर कभी चीन का प्रभुत्व था वापस लेना चाहता है। अर्थात चीन फारमोसा, कोरिया, पोर्ट आर्थर, तिब्बत, वर्मा, नेपाल, भूटान, हांगकांग, वियतनाम आदि प्रदेशों पर अपना दावा प्रसतुत करता है और इस अवसर की तलाश में रहता हैं कि वह इन्हें अपने देश का एक अंग बना सके। चीन ने समय–समय पर अपने विदेश नीति के लक्ष्यों का प्राप्त करने हेतु परिवर्तन भी किया है। उदाहरणार्थ अमेरिका से सहयोंग, भारत के साथ सीमा पर सैनिकों की संख्या घटाना आदि। इसका लक्ष्य यह है कि चीन आर्थिक दृष्टि से और सशक्त बनने की ओर बढ़ सके।

1949 से लेकर वर्तमान तक यदि चीन की स्थिति का मूल्यांकन किया जाये तो ज्ञात होता है कि चीन की सैन्य क्षमता सुदृढ़ है उसके पास द्वितीय प्रहारक बल उपलब्ध है। परन्तु आर्थिक रूप से वह निरन्तर प्रगति कर रहा है। जहॉ तक विश्व की घटनाओं को प्रभावित करने का प्रश्न है तो उसमें वह पीछे नहीं है। उसने विश्व की किसी भी महत्वपूर्ण घटना को प्रभावित करने का प्रयास नही किया, चाहे क्यूबा संकट रहा हो या पड़ोसियों को ही धमकाने का प्रयास किया है। कोरिया संकट में सोवियत संघ के साथ मिलकर उसकी भूमिका थी, इसके अतिरिक्त भारत व वियतनाम पर उसका आक्रमण भी क्षेत्रीय श्रेणी में आता है।

आर्थिक क्षेत्र में चीन लगातार विदेशी पूंजी निवेश को बढा रहा है। इस समय वह विदेशी पूंजी निवेशकों के लिए सर्वोत्तम देश है। वह अपनी आर्थिक क्षमता को सुदृढ़ करने के लिए औद्योगीकरण पर बल दे रहा है। चीन अपने पड़ोसियों प्रमुख रूप से भारत एवं रूस से अपने सम्बन्धों को सुदृढ़ करता जा रहा है। इसके लिए उसने भारत से सीमा समस्या को हल करने का विचार प्रकट किया तथा उन्हें शान्तिपूर्वक हल करने पर बल दिया है। भारत की सीमाओं से अपनी सैन्य संख्या को कम करने और सेना को सीमा से दूर हटाने के मामले में उसने समझौता भी किया।[19] अतः इन विवेचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चीन इस शताब्दी में विश्व की प्रमुख शक्ति बनने की स्थिति में आ सकता है।

चीन एवं दक्षिण एशिया

दक्षिण एशिया के प्रति चीन की नीति को देखने से ज्ञात होता है कि 1950 से ही वह इस क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। परन्तु उत्तरपूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया तथा दोनों प्रमुख शक्तियों की तुलना में इस क्षेत्र में उसकी भूमिका गौण रही हैं। एक रिपोर्ट में जापान, हिन्द चीन एवं प्रमुख शक्तियों के संबंधों के बारे में विस्तृत उल्लेख किया गया था, लेकिन भारत के साथ सम्बन्धों पर केवल दो वाक्य में ही सब कुछ कह दिया गया था जबकि पाकिस्तान एवं अन्य दक्षिण एशियाई देशों का तो उल्लेख ही नहीं किया गया था। फिर भी यह स्पष्ट है कि चीन की इस क्षेत्र में रूचि है और इसका कारण सीमा की सुरक्षा, प्रतिष्ठा का स्थान एवं क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अहम् भूमिका निर्वाह करने की इच्छा है।

चीन ने 1950 में तिब्बत को जबरदसती अपने देश का हिस्सा बना लिय और उसको अपने परम्परागत संबंधों को दिखाकर उसने दक्षिण एशियाई देशों प्रमुख रू‍प से भारत से इसे स्वीकार भी करा लिया। चीन ने दक्षिण एशिया में भारत से अपने संबंधों को मधुर बनाया और प्रारम्भ से ही हिन्दी चीनी भाई–भाई के नारे लगने लगे। इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य यह था कि भारत उसकी तिब्बत नीति को स्वीकार कर ले और इसका निरोध न करे। भारत ने चीन–भारत समझौता 1954 में चीन की तिब्बत नीति को स्वीकार कर लिया कि तिब्बत चीन का ही अंग है।[21]

सर्वप्रथम चीन ने 1950 में भारत से अपने सम्बन्धों को मधुर बनाया उसके पश्चात पाकिस्तान और अन्य दक्षिण एशियाई देशों में पांव फैलाना शुरू कर दिया। भारत के साथ चीन के आदर्शो की समानता न होने के कारण पीचिंग ने भारत के साथ मिलकर साम्राज्यबाद विरोधी और एशियाई एकता के स्वर में स्वर मिलाकर नारे लगाना आरम्भ किया। भरत और चीन के बीच 23 अप्रैल 1954 को पंचशील के सिद्धान्तों पर समझौता किया गया और यह शपथ

ली गयी कि दोनों देश सहयोग पूर्ण सम्बन्ध बनायेंगे और एक दूसरे देश की सम्प्रभुता और अखण्डता पर कोई आंच नहीं आने देंगें। चीन पंचशील के गुणों का वर्णन करने में सबसे आगे रहा। इसी समय उसने पाकिस्तान नेपाल और श्रीलंका से अपने सम्बन्ध मधुर बनाकर दक्षिण एशिया में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना प्रारम्भ किया।

1959 में तिब्बत से भाग कर हजारों शरणार्थी भारत आ गये, जिसमें वहां के धर्मगुरू और शासन प्रमुख दलाई लामा भी थे, उनका पीछा करते हुए अनेक चीनी सैनिक भारत की सीमा में घुस आयें। चीन ने दलाई लामा को भारत के द्वारा शरण देने को बुरा माना और यहीं से दोनों देशों में तनाव व्याप्त हुआ। जिसने सीमा समस्या को भी जन्म दिया। इसी समय पाकिस्तान दक्षिण एशिया में चीन का प्रमुख मित्र बन गया।[26] भारत चीन युद्ध 1962 के बाद से भारत चीन सीमा विवाद बना हुआ है। इस संघर्ष के बाद पाकिस्तान और चीन में घनिष्ठता बढ़ती गई जिसका लाभ उठाकर पाकिस्तान ने भारत के विरूद्ध अपने संघर्ष को और बढ़ाया। परिणामतः दक्षिण एशिया में शान्ति और सुरक्षा को खतरा बढ़ता गया।

1962 भारत–चीन युद्ध के बाद दक्षिण एशिया में चीनी गतिविधियों का अगला दौर प्रारम्भ होता है। 1960 के दशक के मध्य तक सोवियत चीनी गठबंघन बिखर गया और सोवियत संघ का एशिया में मुख्य सहयोगी चीन के बजाय भारत हो गया। भारत–सोवियत संघ के बढ़ते सहयोग तथा इन दोनों देशों के साथ चीन के सीमा विवाद ने चीन को उसे अमेरिका की आर बढ़ने के लिए बाध्य किया और इस प्रकार चीन, पाकिस्तान–अमेरिका के साथ मिलकर बीजिंग–इस्लामाबाद–वाशिंगटन धुरी के निर्माण में सहयोगी बना। सोवियत संघ के काल्पनिक खतरों को ध्यान में रखकर चीन ने पूर्णतः विस्तारवादी नीति को अपना लिया। नई दिल्ली पर आरेप–प्रत्यारोप लगाकर बीजिंग ने सोवियत संघ के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित किया। प्रारम्भ में भारत–चीन की सीमा समस्या केवल चीन और भारत दो देशों की समस्या थी परन्तु इस धुरी के निर्माण के बाद यह समस्या प्रमुख शक्तियों के शक्ति परीक्षण के दायरे में आ गयी। सोवियत चीन सम्बन्धों के बिगड़ने के साथ चीन–भारत के सम्बन्ध भी बिगड़ते गये।

चीन ने भारत को घेरने के उद्देश्य से हिमालयन राज्य नेपाल को भी सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। चीन ने बांग्ला देश के निर्माण में भारत की भूमिका से नेपाल को डराना प्रारम्भ किया और नेपाल को हर सम्भव सहायता का बचन दिया।[27] चीन ने नेपाल में सामरिक महत्व की सड़कों के निर्माण में भी उसकी मदद की। इसके अतिरिक्त चीन ने नेपाल के आन्तरिक मामलों में दखल देना प्रारम्भ कर दिया। चीन भारत में सिक्किम के विलय को गलत मानता था और अभी तक उसने इसका समर्थन नहीं किया है। चीन का प्रमुख उद्देश्य अब तक यह रहा है कि भारत दक्षिण एशिया में शक्तिशाली न बन सके।

मई 1974 में जब भारत ने अपना परमाणु विस्फोट किया तो चीन और पाकिस्तान दोनों भारत से सशंकित हो गये। उसी समय चीन ने पाकिस्तान को शस्त्रों की बिक्री करना भी प्रारम्भ कर दिया। आठवें दशक के अन्तिम वर्शों में चीन ने पाकिस्तान को 1000 से अधिक टी–79 टैकों की बिक्री की थी। इसके अतिरिक्त चीन ने पाक को 300 विमान भी दिए। इन विमानों में 144 मिग–19 थे। चीन के द्वारा पाकिस्तान को दिए गये विमान उसकी कुल वायुसेना का 65 प्रतिशत के लगभग था तथा उसकी कुल टैंक क्षमता का 75 प्रतिशत टैंक प्रदान किया गया था।[29]

चीन और दक्षिण एशिया के सम्बन्धों के मध्य मुख्य बाधा सीमा समस्या रही है। 1962 भारत चीन युद्ध के बाद चीन ने भारत का बहुत बड़ा हिस्सा अब भी अपने कब्जे में कर रखा है। जिसे वह अपना मानता है। सीमा समस्या को पाकिस्तान ने 1963 में और उलझा दिया जब उसने मार्च 1963 को चीन से समझौता करके पाक अधिकृत कश्मीर का 2050 वर्गमील क्षेत्र उसे सौंप दिया।[30] चीन ने इस क्षेत्र पर प्रसिद्ध काराकारम सड़क का निर्माण कर लिया है जो भारत की सुरक्षा के लिए अत्यधिक खतरनाक है। इस सड़क के द्वारा चीन और पाकिस्तान एक दूसरे से जुड़ गये है।[31]

चीन ने श्रीलंका, बांग्लादेश और भूटान के साथ भी अपने संबंधों को स्थापित किया परन्तु इन देशों के साथ उसके सम्बन्ध पाकिस्तान और नेपाल जैसे घनिश्ठ नहीं हो सके। इन देशों के साथ उसने केवल आर्थिक सम्बन्ध ही बनाये, वह भी बहुत सीमित मात्रा में। चीन और श्रीलंका के बीच सम्बन्धों में अधिक मधुरता थी, इसका एक कारण यह था कि दोनों देश बौद्ध धर्म में विश्वास रखते थे। चीन ने श्रीलंका से चावल रबर आदान प्रदान का समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत चीन ने 500 करोड़ रूपये ऋण दिया जो 20 वर्षों में वापस करना था।[32] चीन श्रीलंका सम्बन्धों पर टिप्पणी करते हुए श्रीलंका के विदेश मंत्री ए.सी.एच.हमीद ने कहा था– श्रीलंका और चीन के बीच सम्बन्ध पहाड़ों के समान प्राचीन है।[33]

1980 के दशक के प्रारम्भ से ही चीन ने स्वंम को महाशक्तियों के उलझाव से अलग रखा। इस समय उसने अपने आर्थिक और सैनिक आधार को निरन्तर सुदृढ़ किया। अफगानिस्तान संकट उत्पन्न होने पर चीन ने मुजाहिदीनों को मात्र साज सामान एवं राजनीतिक आश्वासन ही दिया, उसने इन मुजाहिद्दीनों को कोई सक्रिय योगदान नही दिया। इसका प्रमुख कारण था कि वह सक्रिय योगदान करके सोवियत संघ को नाराज करके अपने विकास की प्रक्रिया में भटकाव नहीं लाना चाहता था। इस समय चीन अपने आर्थिक और सैनिक विकास की तरफ बढ़ रहा था। इसके लिए उसने सोवियत संघ और भारत से अपने संबंधों को सामान्य बनाने की प्रक्रिया को प्रारम्भ कर दिया था। रक्षा अध्ययन

और विषलेशण संस्थान नई दिल्ली की शोधार्थिनी अलका आचार्य का विचार था कि चीन ने स्वंम को प्रमुख शक्ति की भूमिका की ओर आगे बढ़ाने के लिए ही ऐसा किया।[35]

चीन ने पाकिस्तान को काराकोरम–8 जेट प्रशिक्षण विमान बनाने में सहयोग करने का 1987 में समझौता किया। हांग–यिंग–5 पोर्टेबिल पृथ्वी से आकाश में मार करने वाली मिसाइलें 1988–90 के दौरान आपूर्ति की। साथ ही साथ 1990 में 50 टी–69 टैंक तथा 1991 में जिन जियाओं लड़ाकू विमानों की आपूर्ति की। 1989 में चीन ने पाकिस्तान को रेड एरौ एंटी टैंक मिसाइल देने का समझौता किया।[37] चीन ने पाकिस्तान को वर्तमान दशक के प्रारम्भ में एम–11 मिसाइलों तथा 40 एफ–7 विमानों की आपूर्ति की। इसके साथ ही और एफ–7 विमानों को देने का समझौता किया।[38] चीन ने पाकिस्तान को हत्फ–ह1 और हत्फ–2 के निर्माण में भी सहायता की तथा हाल ही में हत्फ–5 का भी पाकिस्तान ने सफलतापूर्वक परीक्षण किया है।

चीन के इस कथन कि "लद्दाख, नेपाल, सिक्किम, भूटान और नेफा (अरुणाचल प्रदेश) चीन के तिब्बती हाथ की पांच अंगुलियॉ है"[39] से नेपाल और भूटान के साथ चीन के सम्बन्ध प्रगाढ़ नहीं हो सके। फिर भी इन दो हिमालयी राज्यों के साथ चीन ने सम्बन्धों को मधुर बनाने का प्रयास किया। भारत के द्वारा सिक्किम को अपना राज्य बनाने के बाद चीन को अवसर प्राप्त हो गया कि वह इन राज्यों को भारत के विरूद्ध प्रयोग कर सके।

चीन और नेपाल के मध्य सम्बन्ध लगभग 30 वर्श से अधिक समय से बने हुए है। परन्तु अस्सी के दशक में दोनों देशों के संबंधों में प्रगाढ़ता आयी। नेपाल ने भी भारत के प्रभाव से निकलने के लिए चीन की तरफ अपना रुख किया।[40] 1980 के प्रारम्भ तक चीन और नेपाल में प्रगाढ़ता प्रारम्भ हो चुकी थी। फरवरी 1978 में सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए चीन के शीर्ष नेता देंग शियाओं पेंग चार दिन की चात्रा पर नेपाल आये, नवम्बर 1979 में चीन के विदेश मंत्री ने नेपाल की यात्रा की। इसके पश्चात् जून 1981 में चीन के प्रधानमंत्री झाओं झियांग ने नेपाल की यात्रा की ।इन सभी यात्राओं का उद्देश्य नेपाल को चीन के करीब लाना था।[41] चीन का एक शिश्ट मंडल चेन जी के नेतृत्व में दिसम्बर 1982 में काठमांडू की यात्रा पर आया। दोनों देशों के बीच आर्थिक सम्बन्ध बढ़ानें के लिए समझौता किया गया। 1985 में दोनों देशों के वित मंत्रियों ने आर्थिक और व्यापारिक सहयोग के लिए हस्ताक्षर किये। नेपाल के तत्कालीन वित्तमंत्री प्रकाश चन्द्र लोहानी ने कहा कि दोनो देशों के अच्छे सम्बन्धों के कारण व्यापार और आर्थिक क्षेत्रों में प्रगति तथा विस्तार हुआ है।[42]

भूटान पूर्णरूपेण भारत संरक्षित देश था अतः उसके साथ चीन के सम्बन्ध सहज नहीं हो सकें। 1949 की भारत–भूटान संधि के अन्तर्गत भूटान के विदेश और रक्षा मामले को भारत देखता आया था। परन्तु 1980 के दशक में भूटान भी चीन से संपर्क करने में संलग्न हो गया। चीन ने भूटान के साथ लगने वाली सीमा जो कुछ विवादित है। दोनों देशों के साथ मिलकर हल करने की बात कही। चूंकि भारत भूटान की विदेश नीतियों को संचालित करता था इसलिए चीन ने भारत को अलग–थलग करने के लिए भूटान से सीधा संपर्क करने पर बल दिया।[43] परन्तु चीन और भूटान की बीच किसी प्रकार का सैनिक संबंध स्थापित नहीं हो सका है।

1980 के दशक में बांग्लादेश और चीन के मध्य सम्बन्धों में मधुरता आयी। दोनों देशों ने आर्थिक एवं व्यापारिक हितों के साथ ही सैनिक क्षेत्र में भी सहयोग किया। जबकि 1971 में बांग्ला देश के अभ्युदय का चीन ने स्वीकार नहीं किया था और बांग्लादेश क्रान्ति की कटु आलोचना की थी। चीन और बांग्लादेश के सम्बन्ध उस समय से प्रगाढ़ होने आरम्भ हुए जब 1975 के बांग्लादेश के विद्रोह को सफल बनाने में चीन ने सहयोग दिया।[44]

बांग्लादेश अपने अधिकांश हथियारों का आयात चीन से ही करता है। चीन बांग्लादेश में शस्त्र कारखाना खड़ा करने तथा सोवियत संघ से प्राप्त मिग विमानों की देखभाल में मदद की। चीन ने बांग्ला देश को लड़ाकू विमान तथा टैंकों की भी बिक्री की।

चीन और श्रीलंका के सम्बन्ध प्रचीन काल से ही है। चीन ने अन्य दक्षिण एशियाई देशों की तरह से श्रीलंका को भी आर्थिक एवं सैनिक मदद प्रदान की। साथ ही साथ श्रीलंका के द्वारा हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाये जाने के प्रस्ताव का सर्दव समर्थन किया चीन ने श्रीलंका के आन्तरिक जातीय संघर्ष से स्वंय को अलग रखा।

यद्यपि म्यांमार को दक्षिण एशिया में नही सम्मिलित किया गया है। फिर भी यहॉ इसका उल्लेख इसएि आवश्यक है क्योंकि यह दक्षिण एशिया की सीमा से जुड़ा है तथा यहॉ बिगत कुछ वर्षो से चीन ने अपनी गतिविधियॉ बढ़ा रखी है। 1988 में जनतंत्र को कुचल कर सैनिक तानाशाही की सत्ता म्यांमार के द्वीपों हांगई और कोको पर अपनी सैनिक गतिविधियॉ निरन्तर बढ़ाता जा रहा है। सैन्य विशेषज्ञों का विचार है कि चीन हिन्द महासागर में अपनी उपस्थिति बढ़ाने के लिए ही ऐसा कर रहा है।[45]

भारत चीन संबंध

भारत दक्षिण एशिया की सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। भारत और चीन एशिया में भी महत्वपूर्ण स्थान रखने के साथ विकासशील देश है। सैन्य शक्ति की दृष्टि से चीन विश्व में तीसरे स्थान पर तथा भारत चौथे स्थान पर है। दोनों देश प्रमुख शक्तियों के प्रभाव में अपने सत्ता ग्रहण काल से ही फसे हुए है। 1962 के भारत चीन युद्ध काल से दोनों के सम्बन्ध खराब हो गये थे जो अब तक प्रगाढ़ नही हो सके है। यद्यपि 1976 के दोनों देशों ने राजनयिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे परन्तु 1988 से पूर्व सम्बन्धों में किसी भी प्रकार की उश्णता नहीं उत्पन्न नही हो सकी।

1980 के दशक में दोनों देशों के मध्य व्यापारिक एवं

आर्थिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए गये तथा सीमा समस्या को सुलझाने के लिए 1980 में एक समिति भी गठित की गयी परंतु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। जुलाई 1986 में अरुणाचल प्रदेश में चीनियों ने घुसपैठ करके भारतीय जनमानस को अपने से दूर कर दिया।[46] परन्तु कुछ सरलता हुई। सीमा विवाद के साथ–साथ चलते हुए दोनों देशों ने अपने व्यापार को 1986 में 140 मिलियल डालर तक पहुॅचाया। इस समय तक चीन भी समझ गया था कि बर्गर भारत के साथ संबंधों को सुधारे उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता है, अतः उसने भारत के साथ संबंधों की भूमिका में अपनी भूल को सुधारा। भारत–चीन सम्बन्धों के सुधार में सीमा समस्या के साथ तिब्बत भी एक आयाम रहा है। 1987 एवं 1989 में तिब्बत में जब विद्रोह हुआ तो भारत ने उसके प्रति कोई जागरूकता नहीं दिखाई, इस कारण भी चीन ने भारत की तरफ हाथ बढ़ाया।[47] 27 मई 1987 को दोनों देशों के मध्य एक व्यापार समझौता हुआ जिसमें दोनों देशों ने अपने व्यापार को जनवरी 1987 से मार्च 1988 तक 150 से 200 मिलियन डालर तक पहुंचाने का निर्णय किया। इस समझौते में भारत से कच्चे लोहे को चीन भेजने की व्यवस्था थी। नवम्बर 1987 में दोनों देशों के बीच सीमा समस्या को सुलझाने के लिए गठित समिति ने आपस में डर और सन्देह को दूर करने का प्रयास किया।[48]

भारत चीन सम्बन्धों के रास्ते में कुछ ऐसे तत्व है। जो शंकाएॅ उत्पन्न करते रहते है। अभी तक चीन ने भारत सिक्किम के विलय को स्वीकार नहीं किया है। चीन ने अरूणाचल प्रदेश के बहुत बड़े हिस्से को आज भी अपना क्षेत्र घोषित कर रखा है। कश्मीर में काराकोरम राजमार्ग का निर्माण अवैध रूप से कर रखा है। चीन भारत के पड़ोसी देशों को शस्त्र आपूर्ति करके भारत को अस्थिर बनाने का कार्य करता रहा है। बीते हुए इतिहास को देखकर चीन पर पूर्णरूपेण भरोसा नहीं किया जा सकता है। जब तक चीन भारत को दक्षिण एशिया का निर्विवाद नेता नही मान लेता है और पाकिस्तान तथा अन्य पड़ोसी देशों को उसकें विरुद्ध खड़ा होने में मदद बन्द नहीं करता है तब तक दक्षिण एशिया की शान्ति और सुरक्षा पर काले बादल मंडराते रहेंगे।

चीन विश्व की एक मध्यम दर्जे की ताकत है। और उसका लक्ष्य 2021 तक विश्व शक्ति बनने का है। वर्तमान में वह यह नहीं जानता कि 1962 का भारत–चीन युद्ध या 1979 का चीन–वियतनाम युद्ध जैसा कोई हादसा हो जाये, जिसकी वजह से उसके विश्व शक्ति के मुद्दे तक पहुंचने की समय सारणी में कोई हेर–फेर हो। आज हमें यह विश्लेशण करना है कि चीन का यह लक्ष्य पूरा हो जाने के बाद अर्थात 2021 के बाद क्या भारत के प्रति उसका रुख आज की तरह ही रहेगा या वह एक बड़ा खतरा बन कर उभरेगा? अगर बह बड़ा खतरा बन कर उभरेगा तो हमें भी तैयारी अभी से ही शुरू करनी होगी। भारत को अपने आपको इतना सक्षम बनाना होगा कि वह चीन का समय पर मुँहतोड़ जबाब दे सकें। इस विश्लेषण को सही रूप देने के लिए जरूरी है कि हम भारत चीन सम्बन्धों का पुराने इतिहास का भी विश्लेषण करें। 1962 के भारत–चीन युद्ध के बारे में आज भी भारत में काफी लोग यह जानते है कि यह हमला चीन ने भारत के ऊपर कोई बहुत दिनों की तैयारी करके और हर तरह के साधन जुटा कर नही किया था बल्कि यकायक ही भारत–चीन विवादों के उठने से, जिसमें कि तिब्बत से भारत में 1959 में दलाई लामा और उनकें साथियों को आना और उनका भारत में शरण दिया जाना भी शामिल है, कर दिया था। यह मत सरासर गलत है कि भारत तिब्बत सीमा, जहा पर 1962 का भारत चीन युद्ध हुआ था, करीब 2500 कि0मी0 लंबी है और हिमालय पर्वत की चोटियों पर से गुजरती है। इसकी औसतन ऊचाई 9000 से 12000 फीट की है। यह इलाका बहुत ही बीहड़ है जहॉ खान पान की कोई सामग्री नहीं मिलती है। सिर्फ मिलती है। बर्फ, ऊॅची चट्टानों और बहुत घने जंगल। 1962 में तो भारत की ओर की सड़के भी सीमा से 300 से 400 कि0मी0 अपनी तरफ ही खत्म हो जाती थी। आगे जाने के लिए जवानों को हफ्तो पैल चलना पड़ता था और भारी सामान खच्चरों से जाता था या हवाई जहाज से पैराशूट के जरिए गिराया जाता था।

अगर चीन कहता है कि वह भारत का मित्र है और भारत को उससे कोई खतरा नहीं है तो जिस तरह जल्दी से उसने रूस से और बर्मा से अपनी सीमा विवाद सुलझा लिया है वैसा ही भारत से भी क्यों नही सुलझा लेता? उसकी मध्यम दूरी तक मार करने बाली परमाणु मिसाइल, जो कि तिब्बत में तैनात है, उनका निशाना किधर है?उनकों बहॉ से हटा क्यों नहीं लेता? आज के हालात देखतें हुए, भारत के लिए जरूरी है कि जाहॅ बह एक तरफ चीन से सम्बन्ध सुधारने की पूरी कोशिश करे, वहीं अपनी सुरक्षा के विकल्पों में भी ढील नहीं डाले। सारे विवाद भी सुलझ जायेंगें, जब हम खुद एक सक्षम ताकत बन कर उभरेंगे।

निष्कर्ष:

भारत को अपनी रक्षा नीति को निर्धारित करते समय निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

- रूस के साथ भारत के सम्बन्धों का विपरीत प्रभाव अमेरिका एवं चीन पर नहीं पड़ने देना चाहिए। रूस के साथ भारत के सम्बन्ध पूर्ण रूप से पूर्ववत बने रहना आवश्यक है।
- भारत को अमेरिका के साथ अपने सम्बन्धों का निर्धारण पूर्ण रूप से संकुचित राष्ट्रीयता के आधार पर नहीं करना चाहिए। उसे उन घटनाओं को जिनका सम्बन्ध रक्षा से है, ध्यान में ररखकर ही ऐसा करना चाहिए।
- भारत को चीन की सामरिक शक्ति के विस्तार को रोकने का प्रयास नाभिकीय प्रतिरोधक क्षमता के आधार पर ही करना चाहिए।

- एशिया की घटनाओं के संदर्भ में भारत को एक विशिष्ट नीति का निर्माण कर राजनयिक स्तर पर अपनी स्त्रा तेजी को विकसित करना होगा। तथा
- रक्षा की आड़ में पाकिस्तान की सैनिक तैयारियों के विरूद्ध भारत को अपने राजनीतिक, सामरिक अभियान को तेज कर अपनी सामरिक क्षमता में निरन्तर वृद्धि करना आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मइकेल बी. यहूदाः चाइनीज रोल इन वर्ल्ड अफेयर्स, क्रूम हल्म, लंदन, 1978, पृ. 11
2. चीनी विदेश नीति के संबंध में जनपरामर्श दात्री सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्ताव, सितम्बर 1949.
3. चिन्तामणि महापात्र : चाइनीज नेवी – डवलपमेंट एण्ड डिपलोमेसी, स्ट्रेटेजिक एनालिसिस, नवम्बर 1988 पृ. 865.
4. जसजीत सिंह : एशिया में शस्त्रों की होड़ का बोझ, सामरिक समीक्षा, मार्च 1990 पृ. 2
5. ए.एन. मिश्रा : द डिप्लोमेटिक ट्रायेन्गिल चाइना इण्डिया अमेरिका, जानकी प्रकाशन, पटना, 1980 पृ. 126
6. स्टेवन इ. लेवाइन : चीन और दक्षिण एशिया, सामरिक समीक्ष, आई.डी.एस.ए., जनवरी–मार्च 1990 पृ. 39

डॉ0 एम.के. सिंह
(एसो. प्रोफेसर)
रक्षा–अध्ययन विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

प्रेम चन्द
रक्षा–अध्ययन विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

45

"A Study & Test of Some Factors Related to the Achievement of Secondary School Students"

Dr. Jai Pal Singh 'Vyast', Dr. Ramesh Singh

Abstract

It is a common phenomenon to describe, explain, predict and control the circumstances with which they deal. The behavioral sciences also attempt to describe behavior in the same manner. Scientists Endeavour to use observation as the basis for answering question of interest. In other words, we can say that scientist have certain facts and analyze them in an unbiased manner to draw conclusions. Research design obviously place significant role in drawing inference using behavioral observations on a limited number of subjects and making predictions about the behavioral of the large group represented by the subjects. Edwards (1968) believed that in research we do not help hazards to make observations of any and all kind s but rather our attention is desired towards those observations that "we believe to relevant to the questions we have previously formulated". His contentions reflected the points that researcher should be well planned and must be carried out using sound means and techniques of investigations.

Lindquist (1956) pointed out that the "researches are designed to proceed in a planned manner to control variance and to answer pertinent research questions". Mohsin (1984) advocated that, "research design depicts the plan which states the basis of which conclusions could be drawn". Further elaborating Ferguson (1981) asserted that several methodological approaches and designs were developed but the choice and appropriate design depends upon the special characteristics of the sample, nature of measuring instruments and restraints regarding the manipulation of variables being studied. Thus, the choice of a method is governed by the aims of the study, the variables and investigations and the nature of the date. Our understandings of research design helps in carrying out the investigation to fulfill ultimate aim with utmost objectively. The present investigation was intended to an investigation into the achievement of science among the secondary school students in relation to their verbal intelligence creativity and reading interest keeping in view the objectives of the study the following steps have been undertaken for accomplishing the task.

In this study presented are the procedures followed like; Selection of subjects, sampling technique, description of tools, collection of data and the statistical analysis applied in the study.

Selection of subjects:

The sample for the present study was drawn from 40 secondary schools 20 government added hand 20 private students in Moradabad region that is JP Nagar district, Moradabad district, Bijnor district and Rampur district of Uttar Pradesh. 250 male and 250 female students take in for the sample of this study.

Sampling technique:

Sampling is a representation of whole population. Scientific research aims at generalization. So a good sample reproduces the characteristics of the population with the greatest possible accuracy of course with in restrictions imposed by its size.

The researcher approached all the principles of 40 secondary schools, requesting for their favor. After taking permission from the appropriate authorities, the researcher selected students from the schools. The selection of the sample was done by using random sampling technique. The distribution has been given table number 1.

Table No.-1

Distribution of Sample

S.No.	Type of Schools	Number of Schools	Number of Students taken from each district school	Gender		Total
				Boy	Girl	
1.	Govt. Aided Schools	J.P. Nagar District Urban Schools -3 Rural Schools -2	J.P. Nagar District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X10=20	21 10	21 10	42 20
		Rampur District Urban Schools -3 Rural Schools -2	Rampur District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X10=20	21 10	21 10	42 20
		Bijnore District Urban Schools -3 Rural Schools -2	Bijnore District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X10=20	21 10	21 10	42 20
		Moradabad District Urban Schools -3 Rural Schools -2	Moradabad District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X11=22	21 11	21 11	42 22
2.	Private Schools	J.P. Nagar District Urban Schools -3 Rural Schools -2	J.P. Nagar District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X10=20	21 10	21 10	42 20
		Rampur District Urban Schools -3 Rural Schools -2	Rampur District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X10=20	21 10	21 10	42 20
		Bijnore District Urban Schools -3 Rural Schools -2	Bijnore District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X10=20	21 10	21 10	42 20
		Moradabad District Urban Schools -3 Rural Schools -2	Moradabad District Urban Schools -3X14=42 Rural Schools -2X11=22	21 11	21 11	42 22
	Total	40		250	250	500

Description of tools using in the study:

Factual material of data, unknown or untapped so far is essential in every study. They can be obtained from many sources, direct or indirect. It is necessary to evolve a systematic procedure to collect essential data.

For collecting the new unknown data required for the study of any problem one my use various devices. For each and every type of research we need certain instruments to gather new facts or to explore new fields. The instruments thus employed as means are called tools. The selection of suitable tools is of vital importance for successful research. If tools are not properly selected the purpose of research is defeated. Keeping this in mind of the following tools were used to collect date for the present study:

A. Academic achievement test

B. Reading interest test

C. Creativity test

D. Verbal intelligence test

Academic achievement test:

Description of the tool- academic achievement test constructed by researcher is used to measure academic achievement off science students. The test was considered for 100 questions measuring academic achievement of science.

Administration: The test was administered on the given sample of 500 students. Before administration clear instruction work given to the students about test.

Scoring: In this test there are 100 questions, each question carried one mark. The maximum possible score of this test is 100.

Reading interest test:

Description of the tool- reading interest test developed by Dr. K. Chadda is used to measure reading interest of the students.

Administration- the test was administered on the given sample of 500 students. Before administration clear instructions were given to the students about test.

Verbal intelligence test:

Description of the tool- verbal intelligence test developed by Dr. R.K. Ojhà &Dr. K. Rày chowdury is used to measure verbal intelligence of the student.

Administration- the test was administered on the given sample of 500 students before administration clear instructions were given to the students about test

Scoring: 1 mark is given to correct answers

Reliability

Ability Test	Reliability by Split Half method	Reliability by Kuder Richardson formula
V.I.T.	.87	.91
V.I.T. 1	.81	.89
V.I.T. 2	.86	.88
V.I.T. 3	.71	.73
V.I.T. 4	.74	.88
V.I.T. 5	.64	.68
V.I.T. 6	.58	.79
V.I.T. 7	.79	.81
V.I.T. 8	.75	.83

Validity

Showing Correlation between the eight part of the Verbal Intelligence Test

Sub - Test	A II	A III	N IV	C V	P VI	B VII	S VIII
I Classification	.503	.401	.560	.421	.397	.382	.512
II Analogies		.510	.493	.491	.461	.480	.390
III Synonyms			.310	.348	.407	.389	.401
IV Number Test				.501	.421	.497	.501
V Completion Test					.513	.554	.520
VI Paragraph						.437	.393
VII Best Reasons							.574
VIII Simple Reason							

Showing correlation between the six Ability Tests

	I V.I.T.	II Maths	III Pattern Drawing	IV Vernon's 'S'	V Block Design	VI Raven's Matrices
I V.I.T.						
II Maths	.507					
III Pattern Drawing	.463	.336				
IV Vernon's 'S'	.307	.600	.209			
V Block Design	.599	.460	.431	.406		
VI Raven's Matrices	.397	.590	.340	.254	.302	

Creativity Test:

Description of the tool: Verbal test of creative Thinking developed by Baqer Mehri is used to measure creativity of the student.

Administration- The verbal test creativity includes four sub tests namely consequences test, unusual uses test, similarity test and product improvements test.

Consequences Test: The consequences test consists of three hypothetical situation: (a) What would happen if man could fly like birds? (b) What would happen if our schools had wheels? And (C) What would happen if man does not have any need for food?

The subject is required to think as many consequences of these situations as he can and write them under each situation in the space provided. The situations being hypothetical minimize the effect of experience and also provide the subject with an unlimited opportunity to make responses. The test encourages free play of imagination and originality. An example is given on the test booklet to acquaint the subjects with the nature of the test. The time allowed for the three problems is 4 minutes each.

The total time required for administering the test is 48 minutes in addition to the time necessary to given instruction passing out booklets to children and collecting them back.

Reliability Of The Test

The test-retest reliabilities of the factor scores and also the total score were obtained on a small sample (N=31).

Test-retest Reliabilities of factor Scores and the total Creativity Score (N=31).

Fluency	Flexibility	Originality	Total Creativity Score
.945	.921	.896	.959

Validity Of The Test

The validity coefficients against the teacher rating for each factor are given below:

Validity Coefficient for factor Scores against Teacher Rating (N=300)

Total Creativity Score (N=31)

Fluency	Flexibility	Originality	Total Creativity Score
.40	.32	.34	.39

All Correlations are significant beyond .01 level.

The validity coefficient for factor scores and the total creativity score are high enough (Sig. beyond .01 level) to place confidence in the use of the test Higher correlations with teacher ratings are usually not obtained due to the unreliability of the rating.

Scoring: As there is no right or wrong responses for the test much care has to be exercised at the time of scoring. The scorer has to acquaint himself fully with the method of scoring and the use of scoring sheet.

The following points have to be kept in mind while scoring:

(1) Each item is to be score for fluency, flexibility and originality. The definition of these terms are given below:

Fluency- Fluency is represented by number of relevant and unrepeated ideas which the testee produces. Releavance is judged on the basis of the appropriateness of the response when considered in relation to the test problem. An unrepeated idea is one which has been expressed only once under a given problem.

Flexibility- Flexibility is represented by a person's ability to produce ideas which differ in approach or though trend. All ideas which fall under one category of approach or though trend are treated one for purposes of flexibility scoring. Thus if five ideas are produced and all belong to only one category of approach or though trend, then the score for flexibility will be one, but if all the five ideas are based on five different approaches or thought trends, then the flexibility score will be five. There could be intermediate scores for flexibility depending on the number of categories of thought trends to which the responses belong.

Originality- Originality is represented by uncommonness of a given response; Responses given by less than 5% of the group are treated as original.

(2) The scores may be directly entered on the answer sheet by closely following the scoring guide.

(3) If the scorer comes across responses which are not mentioned in the scoring guide, he should briefly mention them on the backside of the scoring-sheet and score them for originality after all the test scripts have been scored. The instructions for scoring the new responses for originality are also given on the scoring-sheet.

Flexibility categories for such new responses will also have to be determined at the time of scoring. If the new response falls in a category which is already given in the scoring guide, the same should be used. But if the new responses seem to belong to an entirely new category then a new alphabet serial should be used for scoring.

Collection of Data:

The collection of data is accomplished in Moradabad Region i.e. J.P. Nagar, Moradabad, Bijnore and Rampur of Uttar Pradesh. The researcher personally visited in forty selected secondary schools to collect information from the selected sample.

The researcher directly approached the subjects. After a brief talk and rapport with the students, the researcher distributed questionnaires. The students were asked to fill up general information and then to give the answers of all the items mentioned in the test. Assistance where ever required is given to the students by the researcher. When the questionnaires were filled, they were collected from the students.

References

- **Byrne, D. (1974):** Introduction to personality, Prentice Hall, New York.
- **Fergusin, G.A. (1981):** Statistical analysis in Psychological and education New Delhi McGraw Hill.
- **Farrant, R.H.:** Intelligence abilities of deaf & hearing children compared by factor analysis. American Annals of the Deaf. 109(3). 306-325.
- **Johanson, E.B. L; Rossann J.B. (1971):** Interest patterns among Economists. Journal of counseling psychology.
- **Lindquist, E.F. (1956):** Design and analysis of experiments in psychology and education. Boston : Houghton Miffin Co.
- **Gaugh, H.G. (1947):** Factors related tp academic achievement of high school students. J. Educl. Psychol. 40:65-75
- **Anastasi, A. (1969):** Psychological Testing. New York: The Macmillan Company.
- **Best, J.W. and Kahn, J.V. (2003):** Research in education New Delhi: Prentice Hall of India Private Limited.

Dr. Jai Pal Singh 'Vyast'
Associate Professor
Department of Education
Hindu College, Moradabad

Dr. Ramesh Singh
Department of Education
Hindu College, Moradabad

46

कबीर का दार्शनिक चिंतन

पूजा

सारांश –

'दर्शन' शब्द संस्कृत की 'दृश' धातु में 'ल्यूट' प्रत्यय लगने से बना है। 'दृश्यते इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु का सत्यभूत तात्विक विवेचन किया जाए, वह दर्शन कहलाता है। दर्शन शब्द का व्यवहार आलोचनात्मक व्याख्यान, तार्किक पर्यवेक्षण या वेदान्त आदि चिंतन सम्प्रदायों के लिए होता है। अपने पारिभाषिक रूप में दर्शन शब्द से उस शास्त्र का बोध होता है, जिसमें आत्मा, परमात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत्, धर्म, मोक्ष और मानव–जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण हो। सामान्यतः जीवन में जो कुछ भी घटित होता है, मनुष्य उसके संबंध में अपनी किसी–न–किसी प्रकार की धारणा अवश्य बना लेता है। धीरे–धीरे मनुष्य की इस मनन शक्ति का वृत्त व्यापक होता चला जाता है। वस्तुतः वैयक्तिक परिधि की संकुचित सीमाओं को तोड़कर सम्पूर्ण मानवता तक अपना विस्तार करने वाली वह चिंतन शक्ति मानव–जीवन की मूल सार्थकता के अन्वेषण की ओर प्रवृत्त होती है और व्यक्ति का साधक व्यक्तित्व आत्मा के स्वरूप–स्पष्टीकरण, उसके उद्‌गम, कर्त्तव्य एवं उद्देश्य आदि की मीमांसा करने लगता है। यही मानव की मननशीलता का वह चरम सोपान है, जो दर्शन विचारधारा की परिधि में अपनी अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार जब व्यक्ति अपनी बुद्धि के ही तर्कों, सिद्धान्तों या आदर्शों से शासित होकर, असाधारण रूप से आग्रह के साथ, उन्हीं के आधार पर ब्राह्य–जगत् के सामान्य स्वरूप के संबंध में स्पष्ट चिंतन करता है, तब मनुष्य के इस दृष्टिकोण को दार्शनिक दृष्टिकोण या चिंतन कहा जा सकता है।

भक्ति काव्य में भक्त कवियों ने अपने आचार्यों से दार्शनिक तत्ववादी सिद्धान्तों का ज्ञानार्जन किया है तथा अर्जित ज्ञान को उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर अपनी विभिन्न रचनाओं में उकेरा है। इन्हें सीधे तौर पर दार्शनिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इनके काव्य में चिंतन भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा गौण है। यद्यपि भक्त कवि किसी–न–किसी आचार्य के शिष्य माने जाते हैं लेकिन उनके काव्य में संबंध आचार्यो के तत्ववाद को तार्किक चिंतन के रूप में परिणत नहीं किया गया है। जहाँ तक कबीर का प्रश्न है, कबीर अत्यधिक स्वतंत्र व्यक्ति के साधक रहे हैं। इन्होंने कोई दार्शनिक मत प्रस्तुत नहीं किया। परन्तु इनके काव्य में कई तरह के सिद्धान्तों को देखा जा सकता है। कबीर किसी पूर्व प्रचलित विशिष्ट सम्प्रदाय या मतवाद आदि से बंधे हुए नहीं थे।

रामकुमार वर्मा ने कबीर के दर्शन के संदर्भ में लिखा है कि – "संत मत का दर्शन किसी विशेष शास्त्र से नहीं लिया गया। शास्त्रों में कबीर की आस्था नहीं थी क्योंकि शास्त्र एक दृष्टिकोण विशेष से लिए या कहे जाते हैं और साम्प्रदायिकता के आधार पर ही टिके होते हैं– अतः संत सम्प्रदाय का दर्शन उपनिषद्, भारतीय, षड्दर्शन, बौद्ध धर्म, सूफी सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय की विश्वजनीन, अनुभूतियों के तत्वों को मिलाकर सुगठित हुआ है। ये तत्व सीधे शास्त्र से नहीं आए, वरन् शताब्दियों की अनुभूति तुला तुलकर महात्माओं की व्यावहारिक ज्ञान की कसौटी पर कसे जाकर सत्संग और गुरु के उपदेशों से संगृहित हुए। यह दर्शन स्वार्जित अनुभूत हैं, जैसे सहस्त्रों पुरुषों की सुगंधित मधु की एक बूँद में समाहित है।"[1] कबीर का लक्ष्य जिस प्रकार किसी काव्य की रचना करना नहीं था, ठीक उसी प्रकार किसी दर्शन की व्याख्या करना भी नहीं था। वे मूलतः संत थे। तथापि उनकी ईश्वरीय भक्ति में प्रेम की विविध भाव–व्यंजना करते हुए उन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया आदि के बारे में जो विचार व्यक्त किए हैं, उन्हीं के आधार पर कबीर के दार्शनिक विचारों का मूल्यांकन किया जा सकता है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, "कबीरदास ऐसे मिलन बिन्दु पर खड़े थे जहां एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहां एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी और सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे। वह दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के गुणदोष उन्हें स्पष्ट दिखाई देते थे।"

इस प्रकार कबीर की वाणी में विभिन्न विद्वानों ने दार्शनिक विचारों को खोजने का भरसक प्रयास किया है। यदि गहराई से देखा जाए तो कबीरदास न केवल क्रान्तिकारी समाज सुधारक थे अपितु वे एक दार्शनिक कवि भी थे। इस संबंध में महादेवी वर्मा ने लिखा है कि "कवि में दाशनिकता को खोजना बहुत साधारण हो गया है। जहाँ तक सत्य के मूलरूप का संबंध है वे दोनों एक–दूसरे के अधिक निकट हैं अवश्य पर साधन और प्रयोग की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं। बुद्धि के निम्न स्तर से अपनी खोज आरंभ करके उसे सुक्ष्म बिंदू तक पहुंचाकर दार्शनिक सन्तुष्ट हो जाता है। उसकी सफलता यही है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुंचने के लिए वही बौद्धिक दशा संभव रहे। अन्तर्जगत् का सारा वैभव परखकर सत्य का मूल आंकने का उसमें अवकाश नहीं, भाव की गहराई में डूबकर जीवन की चाह लेने का अधिकार उसे नहीं।" इसी प्रक्रिया में क्षितिज मोहन ने कबीर के दार्शनिक विचारों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्व–ग्रासी है। वह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहती इसीलिए वह ग्रहणशील है, वर्जनशील नहीं, इसीलिए उन्होंने हिंदू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है।" कबीर की इस ग्रहणशील प्रवृत्ति ने नाना धर्म–साधनाओं के उत्तमोत्तम तत्वों को ग्रहण करके अपनी जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया है, उसमें स्वभावतया ही किंचित् अस्पष्टता का अभिनिवेश हो गया है। इसके विपरीत आचार्य शुल्क लिखते हैं कि "कबीरदास कभी तो अद्वैतवाद की ओर झुकते दिखाई देते हैं और कभी एकेश्वर वाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुण भाव से भगवान को पुकारते हैं और कभी निर्गुण भाव से असल में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धान्त नहीं था।"

इस प्रकार विभिन्न चिंतकों ने कबीर पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है जोकि एकमत नहीं है कबीर के दार्शनिक चिंतन को समझने के लिए बह्म, जीव, जगत, माया आदि निम्न तत्वों पर विचार किया गया है।

ब्रह्म– कबीर उच्च कोटि के महान संत एंव भक्त कवि थे। इनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, परब्रह्म का अन्वेषण कर उनसे साक्षात्कार करना। यद्यपि कबीर को विभिन्न धर्मग्रंथों का ज्ञान था। लेकिन ब्रह्म के विषय में उन्होंने जो विचार व्यक्त किए हैं वे उनकी स्वानुभूति का परिणाम हैं। इनका ब्रह्म संबंधी ज्ञान उपनिषदों के अद्वैतवाद से प्रभावित है। अद्वैतवादियों के समान ही कबीरदास का विश्वास है कि ब्रह्म से ही संसार की उत्पत्ति हुई है और वही ब्रह्म उसे नष्ट भी कर सकता है। वह ब्रह्म पूरी तरह निराकार, रूपहीन और संसार के कण–कण में व्याप्त है डॉ0 सरनाम सिंह ने कबीर ने ब्रह्म के विषय में कहा है कि, "उसी अद्वैत तत्व को कबीर ने अनेक नामों से अभिहित किया है। परब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, खालिक, निर्गुण, भगवान, राम, पुरूषोत्तम आदि अनेक नामों से वे उसी अद्वैत तत्व की ओर संकेत करते हैं। वह गुण विहिन है। उसका न कोई रूप है, न रंग है, उसमें न ही कुछ देखने की कोई चीज है। उसका कोई नाम भी नहीं रखा जा सकता, क्योंकि वह निर्गुण और निराकार है।"

वस्तुतः ब्रह्म दो प्रकार के माने जाते हैं – एक सगुण और दुसार निर्गुण। "श्रतियों के परिशीलन से स्पष्ट ही जान पड़ता है कि ऋषियों के मस्तिष्क में ब्रह्म के दो स्वरूप थे, एक गुण, विश्लेषण आकार और उपाधि से परे निर्गुण, निर्विशेष, निराकार और दूसरा इन सब बातों से युक्त अर्थात् सगुण, सविशेष, साकार और सोपाधि।"[2] ब्रह्म निर्गुण है या सगुण। यह एक विवादित पक्ष रहा है। किन्तु कबीर का ब्रह्म निर्गुण है वह सारे संसार में व्याप्त है। उस परब्रह्म के न तो हाथ है और न ही पैर। वह सत्य रज तम आदि गुणों से परे है। उसका कोई आदि अंत नहीं है। वह न पृथ्वी है, न वायु है, न आकाश है। वह अग्नि या पानी में भी नहीं रहता। वह सरस्वती, गंगा, यमुना जैसी पावन नदियों में भी नहीं है। वह समुद्र की लहरों में भी निवास नहीं करता। वह पाप–पुण्य से अलग–थलग, वेद–पुराण और शास्त्रों से भी परे है। कबीर कहते हैं कि उस परमतत्व को न तो कोई देख सकता है और न ही कोई उसे प्राप्त कर सकता है वह न खाता है, न पीता है, न जीता है, न मरता है। उसका कोई रूप रंग अथवा वेशभूषा नहीं है। वह असीम, अनन्त, अनिर्वचनीय, अरूप तथा सर्वव्यापी है। "सतं सम्प्रदाय का ब्रह्म एक है, उसका रूप और आकार नहीं है। वह निर्गुण और सगुण से परे है, वह संसार के कण–कण में है। यह मूर्तिया तीर्थ में नहीं है। वह हमारे शरीर में ही है हमारी प्रत्येक सांस में है। वह अवतार लेकर नहीं आता है वरन् संसार की प्रत्येक वस्तु में प्रच्छन्न रूप में वर्तमान है।"[3] निःसंदेह कबीर का ब्रह्म का रूप है, न आकाश वह निर्गुण–सगुण से परे है। वह अजन्मा अव्यक्त है। जिसके न मुख है, न मस्तक, न रूप है न कुरूप, जो पुष्प की सुगंध से भी पहला होने के कारण अति सूक्ष्म है। कबीर कहते हैं कि

जाकैं मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पहुँच वास ते पातला, ऐसा तत्व अनूप।।[4]

कबीर का ब्रह्म तेज से भरा है, ऐसा तेज है जैसे सूत्रों की माला हो। वह प्रकाश रूप है।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्याही पखान।"

अतः स्पष्ट है कि कबीर का ब्रह्म निर्गुण सगुण से परे है। वह निरंजन, अजन्मा है। तेजयुक्त है, सत्यस्वरूप है और उसने ब्रह्माण्ड में अपनी लीला का विस्तार कर सबके हृदय में विराजमान है।

जीव

कबीर परमतत्व को ही सर्वोपरि मानते हैं। इनके मतानुसार जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है। जिस प्रकार अद्वैतवादियों ने उपनिषदों को आधार बनाकर ब्रह्म एवं जीव की तथा आत्मा और परमात्मा की एकता स्थापित की है, वैसे ही कबीर ने भी आत्मा और परमात्मा की एकता स्थापित की है, वैसे ही कबीर ने भी आत्मा और परमात्मा तथा ब्रह्म व जीव में अंश–अंशी का संबंध स्थापित किया है। वे कहते हैं कि इस संसार में परमात्मा के अतिरिक्त कोई तत्व नहीं है अर्थात् जीव आत्मा ही परमात्मा का रूप है। कबीर कहते हैं कि हरि में पिंड और पिंड में हरि है। वह सभी तत्वों में समाया हुआ है। शरीर में स्थापित जीवात्मा के सबंध में कबीर ने कहा है कि न तो वह मनुष्य है, न देव, न योगी, न यती, न अवधूत, न माता, न पिता, न पुत्र, न राजा, न रंक, न ब्राह्मण, न बटई, न तपस्वी, न शेख।

कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा को एक ही सत्ता माना है, किंतु माया के प्रभाव के कारण दोनों में अंतर प्रतीत होता है। वे कहते हैं कि रात्रि के स्वप्न में पारस (ब्रह्म) और जीव में भेद रहता है, जब तक मैं सोता रहता हूँ तब द्वैतभाव बना रहता है, जब जागता हूँ तो अभेद हो जाता है। यहाँ पर रात्रि अज्ञानावस्था का प्रतीक है और जागृति ज्ञान दशा का। जागृति अवस्था में जीव और ब्रह्म की सत्ता एक है। कबीर लिखते हैं कि –

"कबीर सुपिनैं रैणि के जीभ में छेक।
जे सोऊँ तो दोड़ जणाँ, जे जागूँ तो एक।"

कबीर जीव को ब्रह्म का अंश मानते हुए कहते हैं कि –

"कहु कबीर इहु राम कौ अंसु।
जर–कागद पर मिटै न यंसु।।"

इसी प्रकार कबीर कहते हैं कि जिन पंच तत्वों से मिलकर शरीर का निर्माण हुआ है उन तत्वों का आदि कारण भी वही है। उसी ने जीव को कर्म बंधन से युक्त किया है। उसी का सब में अस्तित्व है–

"पंच ततु मिलि का काया, कीनी ततु कहा ते कीनरे
करम बंध तु जीउ कहत हौ, करमहि किनी जीउ दीनु रे
हरि भाई तनु है तन महि हरि है सरब निरंतर सेईते।"

कबीर कहते हैं कि जब यत पंच तत्वों से निर्मित शरीर जब नष्ट होता है तब जीव और परमतत्व का भेद नष्ट हो जाता है। वे कहते हैं कि –

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतरि पानि।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तथ कहयों ज्ञानी।"[6]

जगत

कबीर की दृष्टि में जगत का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। कबीर ने अद्वैतवादियों के समान ही ब्रह्म को सत्य तथा जगत् को मिथ्या माना है। ये संसार की सत्ता को नश्वर कहते हैं और उसे क्षणभंगुर मानकर बाजीगर का खेल कहते हैं। केवल माया के कारण की इसकी सत्ता दृष्टिगोचर होती है। डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा के शब्दों में, "अद्वैतवादियों की भांति कबीर जगत् की पारमार्थिक सत्ता

स्वीकार नहीं करते। वे जगत् को स्वप्निल, नश्वर, असत्य आदि नामों से अभिहित कराते हुए भी उसके साथ मनुष्य के संबंधों पर वे समुचित विचार करते हैं। उन्होंने अपने समय में जिस राजनैतिक और सामाजिक उथल–पुथल को देखा, उससे उनके मन में बड़ा आंदोलन हुआ।" इससे स्पष्ट है कि कबीर ने जगत् के व्यवहारिक स्वरूप को स्वीकार किया। वे संसार के मिथ्या भाव को प्रकट करने के लिए उसे सेमल का फूल, आकाश, निलिमा, धुआँ–धरोहर आदि कहते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि –

"यहूं ऐसा संसार है, ज्यों सेमल का फूल,
दिन दस के व्यवहार में झूठै रंग न भूल।।"

कबीर ने जगत की वास्तविक स्थिति को समझने के लिए पानी और बर्फ का उदाहरण भी दिया है–

"पानी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाइ
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ।"

कबीर की इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि पानी से ही हिम बना था और हिम अंत में पिघल कर वही फिर पानी बन गया। अर्थात् कबीर समझाना चाहते हैं कि ठीक उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत में एकमात्र सत्ता है यहाँ जो है सो है। इसके अलावा बाकी सभी रूप–रंग अस्थायी एवं क्षणभंगुर है। हम जहाँ से आए हैं वही हमें चले जाना है, हम जिससे बने हैं अंततः उसी तत्व में विलिन हो जाना ही हमारी नियति है। यहाँ जो है – वहीं हमेशा रहता है, सब उसी ब्रह्म के भिन्न–भिन्न रूप हैं। सर्वव्यापि ब्रह्म जब अपनी लीला का विस्तार करता है तब इस नामरूपतामक जगत् की सृष्टि होती है। डॉ0 सरनाम सिंह ने कबीर के जगत संबंधी विचारों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "कबीर के अनुसार यह जगत नाम रूपात्मक है। देश और काल इसकी सीमाएँ हैं। रूप का नाम रखा जाता है। जब तक रूप है तभी तक नाम भी सार्थक है इसलिए कबीर जी कहते हैं "रूप के विनष्ट होने पर क्या नाम रखोगें।"

माया

कबीर ने माया को परब्रह्म की एक शक्ति माना है जो विश्वमयी नारी के रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण जीवनों को ठगती और फँसाती रहती हैं। यह ऐसी ठगिनी है कि सदैव त्रिगुणमयी फाँस हाथ में लिए रहती है और बड़ी मीठी वाणी बोलती हैं। इस ठगिनी का परित्याग करने के लिए कोई लाख प्रयास करतें, फिर भी वह उसका पीछा नहीं छोड़ती हैं यह जल, थल और आकाश में सर्वत्र व्याप्त है। यह नानारूप धारण कर जप–तप एवं योग–साधना में विघ्न डालती है। कबीर ने इसे डायन की संज्ञा दी है। काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर नामक इसके पाँच पुत्र हैं, जो जीवों को सताते रहते हैं और नाना प्रकार के नाच नचाते रहते हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा कबीर के संदर्भ में लिखते हैं कि "संत मत में माया अद्वैत माया की भाँति भ्रमात्मक और मिथ्या तो है ही, किंतु इसके अतिरिक्त यह सक्रिय रूप से जीव को सत्य से हटाने वाली भी हैं। इस दृष्टि में संत सम्प्रदाय में माया का मानवीकरण है। एक नारी के रूप में है, जो ठगिनी है, डाकिनी है, सबको खाने वाली है।"[7] कबीर कहते हैं कि माया सत, रज, तम में उत्पन्न एक वृक्ष है दुःख और संतोष इसकी शाखाएँ हैं। शीतलता इसके सपने में भी नहीं है–

कबीर माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीको तनि ताप।"[8]

कबीर माया को डाकिनी व पिशाचिनी बताते हैं और कहते हैं कि यह सारे सांसारिक प्राणियों को खा जाने वाली है–

"कबीर माया डाकिनी, सब किसही कौ खाइ
दाँत उपणौं पापड़ी, जे संतो नेड़ी जाई।"[9]

इस प्रकार कबीर व्यक्तियों को माया से दूर रहने की सलाह देते हैं। कबीर कहते हैं कि यदि माया सौ बार भी बाँह देकर बुलाए, फिर भी उससे नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि इसने नारद जैसे मुनियों को भी निगल लिया तो इस पर कैसा भरोसा किया जाए। साधारण जीव को वह कैसे छोड़ सकती है।

"कबीर माया जिनि मिलैं, सौ बरियां दे बाँहिं
नारद से मुनियर मिलें, किसी भरौसो त्याँहि।।"[10]

मोक्ष

कबीर मोक्ष प्राप्ति के लिए मुक्ति, निर्वाण, अभय–पद, परम पद आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। कबीर ने आत्मा का पंच तत्वों से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन होना या आत्मा और परमात्मा की दवैतानु भूति का समाप्त हो जाना ही मुक्ति की दशा माना है। कबीर कहते हैं कि जहाँ परम ज्योति प्रकाशमान है, वहां इन्द्रिय माध्यमों से न पहुँचा जा सकता है और न ही उसे देखा जा सकता है अर्थात् वहाँ किसी लौकिक साधन के द्वारा भी नहीं पहुंचा जा सकता है। पानी और बर्फ के रूपान्तरण की प्रक्रिया के समान विशुद्ध चैतन्य माया से संबलित होकर विशुद्ध चैतन्य या शुद्ध ब्रह्म हो जाता है। इनमें तत्वतः भेद नहीं रहता है कबीर कहते हैं कि–

"पानी ही ते हिम भया, हिम इबैं गया बिलाइ,
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कइया न जाय।"

अतः इस अवस्था में 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं रहता है। धीरे–2 यह मैं 'तू' में समा जाता है। यह बूँद के समुद्र में समाने और समुद्र के बूँद में समाने की प्रक्रिया है। मन का भ्रम दूर हो जाने पर कबीर को परब्रह्म का साक्षात्कार होता है और कबीर इस परब्रह्म स्वरूप में समा जाते हैं। उन्हें संसार की समस्त विषमताएं आनन्ददायक प्रतीत होती हैं।

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि कबीर ने किसी स्वतंत्र दाशनिक चिंतन का सूत्रपात नहीं किया, उन्होंने अपनी दार्शनिक चेतना को अलग–अलग स्रोतों से ग्रहण करते हुए उस पर अपनी अनुभूति की मुहर अवश्य लगाई है। कबीर का दर्शन पाठक या श्रोता को तटस्थ ज्ञान की शुष्कता में नहीं छोड़ता अपितु वह जीवन के नितांत आत्मीय और जीवंत प्रसंगों के संसार में ले जाता है। ब्रह्म, जीवन–मरण, माया, जगत, मोक्ष आदि शब्द कबीर के दर्शन में मात्र शब्द नहीं हैं, अपितु अनुभव के जीवंत प्रसंग हैं जिनके माध्यम से कबीर सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं। दर्शन कबीर के यहाँ उद्देश्य मात्र न रहकर वरन् भक्ति का साधन है। इस रूप में वह पर्याप्त भी है और प्रासंगिक भी।

संदर्भ

1. राजकुमार वर्मा, कबीर एक अनुशीलन, 1998, पृ0 85
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर 1990, पृ0 86

3. वही, पृ. 86
4. मोहन सिंह कर्की, कबीर 2001, पृ0 70
5. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली 2011, पृ0 58
6. वही, पृ0 128
7. रामकुमार वर्मा, कबीर एक अनुशीलन 1998, पृ0 85
8. जी.एन.दास, मिस्टिक संग्ज ऑफ कबीर, 1994, पृ0 42
9. वही, पृ0 42
10. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, 2011, पृ0 75

पूजा
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

47

योगदर्शन की अवधारणा एवं व्यावहारिक पक्ष

डॉ0 मंजू चौहान

सारांश –

जिस डर से सब जब डरे,
मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों,
पूरन परमानन्द।।

मन को वश में करने की मुक्ति ही योग है।

भारतीय दर्शन में योग का अत्यधिक महत्व है। तत्व साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार के लिए योग साधना की आवश्यकता प्रायः सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है। वैदिक एवं अवैदिक दर्शनों में योग की उपादेयता सर्वमान्य है। सविकल्प बुद्धि को निर्विकल्प प्रज्ञा में परिणत करने हेतु योग–साधना की उपादेयता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। संहिता, आरण्यक एवं उपनिषद् में योग की महनीयता का वर्णन उपलब्ध है।

योग के कई प्रकार है – गीता में ज्ञान योग, भक्तियोग और कर्मयोग तथा ध्यान योग का वर्णन है। राजयोग एवं हठयोग भी प्रसिद्ध है।

यहाँ हम महर्षि पतन्जलि के राजयोग का वर्णन करेंगे।योग तत्व ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रायोगिक साधना का विवेचन करता है। सांख्य के पच्चीस तत्वों को तथा अप्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्दरूपी प्रमाणत्रयी को योग द्वारा स्वीकार किया गया है। योग ने ईश्वर की सत्ता स्वीकार की है, अतः इसे सेश्वर सांख्य भी कहा जाता है। गीता में सांख्य को ज्ञान और योग को कर्म माना गया है तथा वस्तुतः दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।

योग दर्शन का प्रचलित अर्थ है मिलन। अर्थात्' जीवात्मा का परमात्मा से मिलन।–'गीता में योग को 'दुःख के संयोग का वियोग', बताया गया है। जो सांख्य सम्मत 'दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति' की ओर संकेत करता है। किन्तु साथ ही उसे सांख्य के विपरीत अनन्त आनन्द या 'आत्यन्तिकसुख' भी बताया है।

योग यह स्थिति है जहाँ योगी बड़े से बड़े दुःख से भी विचलित नहीं होता, जिस स्थिति से बढ़कर अन्य कोई लाभ नहीं मानता और जिस स्थिति में वह आत्यन्तिक सुख का अनुभव करता है। गीता में योग को 'चित्त निरोध' एवं सतत्व तथा 'ब्रह्म–भाव' भी बताया गया है। गीता के अनुसार योग में ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय हो जाता है।

पातन्जल योग सूत्र में चार पाद है। प्रथम समाधिपाद है, जिसमें समाधि के रूप एवं भेदों का और चित्त तथा उसकी वृत्तियों का वर्णन है। द्वितीय साधना पाद में क्रिया योग, क्लेश , क्लेश दूर करने के साधन, योग के बहिरंगो आदि का वर्णन है। तृतीय विभूतिपाद में योग के अन्तरंगों का एवं योग शक्ति से उत्पन्न विभूतियों का वर्णन है और अन्तिम चतुर्थ कैवल्यपाद में समाधिसिद्धि तथा कैवल्य आदि का निरूपण है।

योग शब्द 'युज्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है समाधि। पतन्जलि ने योग को 'चित्तवृत्ति निरोध' बताया है। चित्तवृत्तियों का निरोध समाधि में होता है। अतः योग को समाधि भी कहा गया है। योग में वृत्ति, अंहकार और मन इन तीनों को मिलाकर 'चित्त नाम से सुशोभित किया है।

गीता में श्रीकृष्ण ने एक स्थल पर कहा है– ''योग कर्मसु कौशलम्'' अर्थात् योग से कर्मो में कुशलता आती है। स्पष्ट है कि यह वाक्य योग की परिभाषा नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को योग कहते है। परन्तु यह परिभाषा बौद्धों को स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि बौद्ध ईश्वर अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हे। इसी प्रकार सांख्य दर्शन भी ईश्वर की सत्ता को असिद्ध मानते है। पंतजलि के योग दर्शन में जो परिभाषा दी है – ''योगश्तिवृत्ति निरोधः।'' चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है।

परन्तु इस परिभाषा पर कई विद्वानों को आपत्ति है। उनका कहना है कि चित्तवृत्तियों के प्रवाह का नाम ही चित्त है। पूर्ण निरोध का अर्थ होगा चित्त के अस्तित्व का पूर्ण लोप, चित्ताश्रय समस्त स्मृतियों और संस्कारों का निःशेष हो जाना। यदि ऐसा हो जाय तो फिर समाधि से उठना संभव नहीं होगा, क्योंकि उस अवस्था के सहारे के लिए कोई भी संस्कार बचा नही होगा। योग को विभिन्न दर्शनो, विद्वानों आदि ने भिन्न–भिन्न रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया है। ये परिभाषाऐं एक–दूसरे से विपरीत हो सकती है। परन्तु विश्व के लगभग सभी धर्मो, विद्वानों, दार्शनिकों, चिकित्सकों आदि ने योग के व्यावहारिक पक्ष को निर्विवाद स्वीकार किया है। योग को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है।

1. **पातंजल योग दर्शन के अनुसार**–

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः–(1/2)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।

2. **सांख्य दर्शन के अनुसार** –

'पुरूषप्रकृत्योर्वियोगेपि योगइत्य–मिधीयते।' अर्थात पुरूष एवं

प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरूष का स्व स्वरूप में अव्यवस्थित होना ही योग है।

3. **भगवद्गीता के अनुसार** –

सिद्धासिद्धयों समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते (2/148) अर्थात् सुख–दुःख, लाभ –अलाभ, शत्रु –मित्र, शीत और उष्ण आदि द्वन्द्वों में सर्वत्र समभाव रखना, योग है।

जैन धर्म में सम्पादित तत्वार्थ सूत्र के अनुसार मन, वाणी और शरीर सभी गतिविधियों का कुल योग है। उमास्वती कहते है कि अस्त्रावाया कार्मिक प्रवाह का कारण योग है।

4. बौद्वधर्म के अनुसार –

कुशलं चितैकग्माता योगः। अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता योग है। आचार्य हरिभद्र के अनुसार –

मोक्खेण जोयणाओं सत्वो वि थम्म वव्हारो जोगो–मोक्ष से जोड़ने वाले सभी व्यवहार योग है।

'योग' शब्द का उद्गम संस्कृत भाषा से है और इसका अर्थ जोड़ना, एकत्रित करना है। यौगिक व्यायामों का एक पवित्र प्रभाव होता है और यह शरीर मन, चेतना और आत्मा को संतुलित करता है। योग हमें दैनन्दिन की मांगों, समस्याओं और परेशानियों का मुकाबला करने में सहायक होता है। योग स्वयं के बारे में समझ अर्थात् आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझने से है एवं जीवन का प्रयोजन अर्थात् आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक दुःखों से पूर्णतः छुटकारा प्राप्त करने से है एवं ईश्वर से हमारे संबंध की जानकारी विकसित करने के लिए सहायता करता है। आध्यात्मिक पद पर योग हमें आत्मसाक्षात्कार के साथ–साथ मोक्ष परमानन्द मिलन और सर्वोच्च ज्ञान की ओर अग्रसर करता है।

योग विश्व की सृजनात्मक चेतना है जो सदैव सजग रहती है और कभी सोती नहीं, जो हमेशा थी, जो हमेशा है और हमेशा रहेगी।

हजारों वर्ष पहले भारत में ऋषियों, बुद्धिजीवियों, संतों,आयुर्वेदाचार्यो आदि ने अपनी योगसाधना से प्रकृति और ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्यों की खोज की थी। उन्होंने भौतिक और आध्यात्मिक शासनों के कानूनों का पता किया था और विश्व में संबंधों की अन्तःदृष्टि प्राप्त की थी। उन्होंनें ब्रह्माण्ड के नियमों, प्रकृति के नियम और तत्वों,धरती पर जीवन और ब्रह्माण्ड में कार्यरत शक्तियों और ऊर्जा के बाह्रय संसार और आध्यात्मिक स्तर दोनों पर ही जाँच की थी।

इस प्रकार इन योग शास्त्रियों ने ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था,जिनमें से कुछ आधुनिक विज्ञान द्वारा पुनः प्रतिस्थापित किया गया है।

कोशग्रन्थों के अनुसार हृदय–मन, अन्तःकरण, मानस तथा चित्त का पर्याय माना गया है। आशय अन्तःकरण या मन से लिया जाता है। जो सदा विकारशील, परिणामी तथा अनुभूति प्रतीति का आधार है। इस कारण चित्त नित्य धर्मों तथा अनुभवशील तत्व है। बुद्धि, अन्तःकरण या मानस के नाम से पुकारे जाने वाले चित्त के जो नित्य धर्म रहते हैं। वे चित्तवृतियाँ कहलाते हैं। योग दर्शन के अनुसार चित्त तत्व प्रदान प्रवृति का ही परिणाम है। यह प्राकृत होने से जड़ और विकारशील होने के प्रतिक्षण परिणामशाली है। यह सत्व, रज और तम की अधिकता के कारण क्रमशः तीन प्रकार का होता है– प्रख्याशील, प्रवृत्तिशील और स्थितिशील। जब चित्त में विज्ञेय विषयों का आकार उपस्थित हो जाता है, तब उसे ज्ञान कहते हैं। इसी कारण ज्ञान को चित्त या बुद्धि का ही धर्म मानते हैं। ज्ञान की अनेक दशाओं के कारण चित्त की पांच प्रवृतियाँ मानी जाती है। योग में चित्त जड़ तत्व है। परन्तु आत्मा का प्रतिबिम्ब चित्त पर पड़ने से वह भी चेतना के समान कार्य करने लगता है। यही चित्त की वृत्ति कहलाती है। ये चित्त वृत्तियाँ अज्ञान के कार्य हैं। धर्म–अधर्म तथा वासनाओं की उत्पत्ति के कारण से ये वृत्तियाँ क्लेश उत्पन्न करती हैं और 'क्लिष्ट' कहलाती हैं। जब बुद्धि सात्विक हो तब ये वृत्तियाँ अक्लिष्ट कहलाती है।

1. प्रमाण–'प्रमायाः करणं प्रमाणं' प्रमा को प्रमाणित करने को प्रमाण कहते हैं। सांख्य के समान योग से भी प्रत्यक्ष अनुरूपी द्वार से चित्त बाहर जाकर विषयों से रंजित हो, विषयाकार हो जाता है। इसे ही प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।
2. विपयर्य – किसी वस्तु के मिथ्या ज्ञान को विपयर्य कहते हैं।
   विकल्प – विकल्प वह ज्ञान है जिसमें कुछ वस्तु का ज्ञान हो परन्तु वह चैतन्य से पृथक कहाँ है? इन दोनों का पृथक समझना ही विकल्प है।
3. निद्रा– किसी वस्तु के अभाव के ज्ञान की आलम्बन करने वाली वृति ही निद्रा है।
4. स्मृति – अनुभूत किये गये विषयों का पुनः उसी रूप में स्मरण होना स्मृति कहलाता है।

योग का मूल उद्देश्य चित्त वृतियों का निरोध करना है। चित्त इन्द्रिय सहयोग द्वारा तथा अन्य साधनों से विषयों का प्रतिबिम्ब बनाता है। चित्त वृत्तियों के कारण अस्थिर रहता है।

चित्त सत्व, रज, तमों गुण से युक्त होने के कारण चंचल और अस्थिर होता है। सत्व, रज और तमों गुणों के कारण चित्त की पाँच अवस्थाऐं होती है।

1. **क्षिप्त अवस्था** – क्षिप्त अवस्था में चित्त रजोगुण की अधिकता के कारण अस्थिर और चंचल बना रहता है तथा बर्हिमुख होने से संसार के सुख–दुख आदि विषयों की ओर स्वतः प्रवृत रहता है। प्रबल हिंसा आदि प्रवृत्ति के कारण कभी–कभी इसमें भी समाधि हो जाती है।
2. **मूढ़ अवस्था** – मूढ़ चित्त तमोगुण की अधिकता के कारण विवेक शून्य रहता है। ऐसा चित्त राक्षस आदि मादक द्रव्य का सेवन करने वाले लोगों को होता है। निद्रावस्था में चित्त की कुछ वृत्तियों

का कुछ काल के लिए तिरोभाव हो जाता है। किन्तु यह अवस्था तब होती है, जब चित्त तमोगुण से आच्छन्न हो जाता है।

3. **विक्षिप्त अवस्था** – यह वह अवस्था है जबकि सत्व की अधिकता रहने पर भी रजोगुण के कारण चित्त की दृष्टि कभी सफलता और कभी असफलता के बीच भटकती है।
4. **एकाग्र अवस्था** – एकाग्र का अर्थ है– एक ही विषय का चिन्तन करने वाला चित्त। इसमें वह सभी वस्तुओं से हटकर किसी एक विषय पर केन्द्रित हो जाता है और बर्हिवृत्तियों का निरोध हो जाता है। ऐसा चित्त प्रथम कक्षा के योगियों का होता है। इसमें चित्त के देर तक एक विषय पर लगे रहने के कारण सभी चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं होता। तथापि यह योग की प्रथम सीढ़ी है। यह दशा योग के अनुकूल है, क्योंकि इसमें सत्व गुण का अधिकाधिक प्रकाश रहता है। जो आत्मसाक्षात्कार में सहायक होता है।
5. **निरूद्ध अवस्था** – वृत्तियों का निरोध होकर चित्त में उनके संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं तो वह सिद्ध होता है। इसी अवस्था को योग कहते हैं। प्रथम तीन अवस्थायें योग में बाधक हैं।

जो व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार के जिज्ञासु हैं। उनके लिए महर्षि पतंजलि का योग दर्शन एक अमूल्य निधि है। जो शरीर, इन्द्रिय, मन के समस्त बंधनों से रहित, शुद्ध आत्मा के दर्शन करना चाहते हैं, उनके लिए योग एक महान साधन है।

चित्त की शुद्धि और पवित्रता के लिए योग में आठ प्रकार के साधन बतलाए हैं–

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि।
9. ये योगांग कहलाते हैं।

योगाभ्यास करते समय साधक को विशेष अवस्थाओं में विशेष सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये सिद्धियाँ आठ प्रकार की हैं। अतः इन्हें अष्टसिद्धि या अष्टेश्वर्य कहते हैं।

1. अणिमा अर्थात् योगी चाहे तो अणु के समान छोटा या अदृश्य बन सकता है।
2. लधिमाः अर्थात् योगी चाहे तो रूई से भी हल्का होकर उड़ सकता है।
3. महिमा अर्थात् योगी चाहे तो पहाड़ के समान बड़ा बन सकता है।
4. प्राप्ति अर्थात् योगी चाहे तो कहीं से कोई वस्तु मंगा सकता है।
   प्राकाम्य अर्थात् योगी की इच्छाशक्ति बाधारहित हो जाती है।
6. वशित्व अर्थात् योगी सब जीवों को वशीभूत कर सकता है।
7. ईशत्व अर्थात् वह सब भौतिक पदार्थों पर अधिकार जमा सकता है।
8. यत्रकामावसायित्व – योगी का जो संकल्प होता है, वह उसकी सिद्धि हो जाती है। परन्तु योगदर्शन का बड़ा आदेश है कि साधक इस ऐश्वर्यों के लोभ से योग साधन में प्रवृत्त नहीं हो। योग का लक्ष्य है– भक्ति की प्राप्ति। साधक को अलौकिक ऐश्वर्यों की चकाचौंध में नहीं पड़ना चाहिए नहीं तो वह पथभ्रष्ट हो जाता है। योगी को चाहिए कि वह सिद्धियों के फेर में नहीं पड़कर आगे बढ़ता जाये और अंतिम लक्ष्य–आत्मदर्शन पर पहुंच जाये।

योग प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक मनुष्य को प्रकृति द्वारा दिया गया बहुत ही महत्वपूर्ण और अनमोल उपहार है, जो जीवनभर मनुष्य को प्रकृति के साथ जोड़कर रखता है। यह शरीर और मस्तिष्क के बीच सामन्जस्य स्थापित करने के लिए इन दोनों को संयुक्त करने का सबसे अच्छा अभ्यास है। यह व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और बौद्धिक स्तर पर नियंत्रण के द्वारा उच्च स्तर की संवेदनशीलता प्रदान करता है।

व्यावहारिक रूप में योग का तात्पर्य 'जोड़ना या बांधना' है। जिस प्रकार घोड़े को एक स्थान पर बांधकर उसकी चपलता को नष्ट कर दिया जाता है। उसी प्रकार योग द्वारा मन को एक स्थान पर केन्द्रित करके चित्तवृत्तियों को निरोध किया जाता है।

समीक्षा–

'जीवात्म परमात्म संयोगो योगः' के द्वारा भगवान याज्ञवलक्य ने जिस योग की विवेचना की है। वह केवल कल्पना नहीं, अपितु हमारे दैनिक जीवन की एक अनुभूत साधना है और एक ऐसा उपाय है जिसके द्वारा हम अपने साधारण मानसिक क्लेशों एवं जीवन की अन्यान्य कठिनाईयों का बहुत सुविधापूर्वक निराकरण कर सकते हैं। हमारे अन्दर मृग में कस्तूरी के समान रहने वाली जीवात्मा एक ओर मन की चंचल चित्त वृत्तियों द्वारा परमात्मा उसे अपनी ओर बुलाता है। इन्हीं दोनों रज्जुओं से बंधकर निरन्तर काल के झूले में झूलने वाली जीवात्मा चिरकाल तक कर्मकलापों में रत रहती है।

यह जानते हुए भी कि जीवात्मा दोनों को एक साथ नहीं पा सकती और एक को खोकर ही दूसरे को पा सकना संभव है। वह दोनों की ही खींचतान की द्विविधा में पड़ी रहती है तथा जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच मन बाधक के रूप में आकर उपस्थित होता है। कुरूक्षेत्र में पार्थ ने मन की सत्ता से भयभीत होकर ही प्रार्थना की थी– 'चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाधि बलवदृढ़म।'

कहा जाता है कि योग हिन्दू धर्म से उत्पन्न हुआ है और दुनियाभर में इसका अभ्यास किया जाता है। विश्व के लगभग ढाई अरब लोग एक सर्वेक्षण के मुताबिक योगाभ्यास करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में योग करने वाले व्यक्तियों की संख्या में लगभग 50

प्रतिशत वृद्धि हुयी है।

योग का अभ्यास किसी के द्वारा भी किया जा सकता है। क्योंकि यह आयु, धर्म, स्वास्थ्य, परिस्थितियों से परे है। यह अनुशासन और शक्ति की भावना में सुधार के साथ ही जीवन को बिना शारीरिक और मानसिक समस्याओं के स्वस्थ जीवन का अवसर प्रदान करता है। पूरे संसार में इसके बारे में जागरूकता को बढ़ाने के लिए 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस या विश्व योग दिवस के रूप में मनाया जाता है।

हम योग से होने वाले लाभों की गणना नहीं कर सकते हैं। हम इसे केवल एक चमत्कार की तरह ही समझ सकते हैं। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के अनुसार 'योग विस्मरण में दफन एक प्राचीन मिथक नहीं है। यह वर्तमान की सबसे बहुमूल्य विरासत है। यह आज की आवश्यकता और कल की संस्कृति हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. भारतीय दर्शन – चन्द्रधर शर्मा
2. भारतीय दर्शन – श्री सतीश चन्द्र 3. चटोपाध्याय
3. भगवद्गीता – (2, 48)
4. पातंजल योग दर्शन – (1,2)
5. बौद्धधर्म का अमरणवाणी धम्मपद
6. सांख्यकारिका – ईश्वरकृष्ण
7. योग सूत्र – (अध्याय 1,2)
8. योग सूत्र और भाष्य – 2,26–55
9. योग सूत्र, भाष्य और वृत्ति – 1,23,129
10. व्यास भाष्य – (1,5)

प्राचार्या
डॉ0 मंजू चौहान
एस.डी.पी.जी.महाविद्यालय
खाजूवाला (बीकानेर) राजस्थान
मोबाईल– 9461010866
9461469049
ईमेल – chouhanmanohar2@gmail.com

48

बालेन्दू शेखर तिवारी के व्यंग्य साहित्य में पारिवारिक समस्याएं

प्रवेश कुमारी

सारांश –

सारांश साहित्य मानव विकास का लेखा – जोखा है। मानव जाति की बुद्धि के विकास ने उसे भावों से उठकर विचारों की अभिव्यक्ति की प्रेरणा दी। वर्तमान और वास्तविक जीवन से जुड़ा साहित्य अनुभूति, संवेदना, गंभीरता, बौद्धिकता को जब वैभव पूर्ण शैली के सांचे में ढालता है तब व्यंग्य की उत्पत्ति होती है।

व्यंग्य परिवेशगत विडम्बनाओं विद्रपताओं विसगतियों, अमानवीयता के प्रति भोगी हुई पीड़ा से उत्पन्न होता है। विसंगतियों में सुधार हेतु निर्मम प्रहार घरता हुआ व्यंग हास्य का आलम्बन लेकर साहित्यिक रूप प्राप्त करता है। स्वातंत्रयोत्रर साहित्य में नव – निर्माण पर बल दिया गया, पर टूटते सपने, बिखरते मूल्यों स्वार्थपरकता को देख लेखकों में जो आक्रोश उपजा, वह उनकी रचनाओं में व्यंग्य के रूप में दिखाई देता है।

स्वातंत्रयोत्रर काल में व्यंग्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ा। व्यंग्य स्वतंत्र विधा तो बना है। परन्तु वह अन्य विधाओं का प्राण – स्वर बन गया है।

व्यंग्य, लेखन, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आदि रूपों में सामने आया। अत्यधिक राजनीतिक गिरावट, शासन और उसके विभिन्न अंगों में व्याप्त भ्रष्टाचार, कथन – करनी में अंतर घोर सांप्रदायिकता, तेजी से बढ़ती बेरोजगारी, भाई भतीजावाद आदि के मिले–जुले परिणामस्वरूप व्यंग्य – लेखन एक नयी विधा के रूप में विकसित हो चला।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी – उपन्यासों नाटकों ने व्यंग्य के विकास में भूमिका निभाई है। प्रेमचंद से लेकर भगवतीचरण वर्मा तक ऐसे उपन्यास, नाटक थे जिनमें व्यंग्य गौण था, इनमें प्रसंगानुरूप व्यंग्य का समावेश था परन्तु बालेन्दु शेखर तिवारी ने 'रिसर्च गाथा' (1979) के साथ व्यंग्य का प्रारंभ किया। इनके व्यंग्यों में परिवार के क्षेत्र में व्याप्त समस्याओं का खाका प्रस्तुत है।

व्यंग्य के माध्यम से एक विशिष्ट सोच को विकसित करने वालों में बालेन्दु शेखर तिवारी की पहचान इसी कारण सुस्थिर हो सकी है कि उन्होंने सोदेश्य और प्रभावक व्यंग्य की गंभीर प्रस्तुति की है। उनका व्यंग्य पारिवारिक सच को एकदम निकट है और व्यंग्य –विधा को अपनाकर उन्होंने अपने मन की पीड़ा को वाणी दी है। इनका व्यंग्य गंभीरता के लबादे से अधिक बोझिल है।

बालेन्दु शेखर तिवारी ने अपने व्यंग्य साहित्य के पारिवारिक समस्याओं पर सूक्ष्म दृष्टि से प्रभाव डाला है। पारिवारिक समस्याओं का चित्र बालेन्दु शेखर तिवारी की कहानियों में सम्मानित हुए है ।

1. बिखरते हुए दाम्पत्य से उत्पन्न समस्यां
2. टूटे हुए दाम्पत्य से उत्पन्न समस्यां
3. परिजनों की स्वार्थी वृत्ति की समस्या
4. आत्मीयता की समस्या
5. बालेन्दु जी की रानियाँ 'अस्तांचल' 'एक जंगल आदमियों का' आदि व्यंग्यो में चित्रित दाम्पत्य बमेल विवाह के धरातल पर अवस्थित होने से उनमें बहुत जल्दी भी बिखराव आ जाता है 'रानियाँ' व्यंग्य के डॉक्टर कुमार में जितना अभिजात्य है, उसकी पत्नी उतनी ही कुहड़ एवं गँवार है। अतः कुमार स्वयं को इमोशनलीस्टेटेड पाता है। अपनी पत्नी को वह देहांत के परिवार में छोड़कर शहर में अकेले रहता है। 'एक जंगल आदमियों का' व्यंग की व्यंग्य – नायिका संगीत – प्रेमी एवं भावुक है। जब कि उसका पति व्यवहार – चतुर व्यत्ति है। दोनों की इस रुचि – भिन्नता के कारण नायिका अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट है। 'अस्तांचल' व्यंग्य की चित्रा का पति उसके मनपसंद न होने से वह अपने पति के साथ आंतरिक रूप से कभी नहीं जुड़ पाती है। इस प्रकार पति–पत्नी का अनमोल स्वभाव विवाहित जीवन में बिखराव पैदा करता है। इस प्रकार बालेन्दु जी ने यह चित्रित किया है कि पति या पत्नी का विवाह बह्य आकर्षण, दोनों का परस्पर के चरित्र के प्रति उभरता संशय तथा बेमेल विवाह दाम्पत्य जीवन में बिखराव उत्पन्न करता है।

बालेन्दु जी की 'मानिनी' 'उकान' 'संदर्भहीन' 'यथार्थ से आगे' 'अक्षम्य' में 'मोरी रंग दे चुनरिया' 'परायी बेटी का दर्द' आदि व्यंग्यों में टूटे हुए दांपत्य जीवन के दृश्य दृष्टिगत होते हैं। उक्त व्यंग्यों में बालेन्दु जी ने ध्वस्त एवं टूटे दांपत्य संबंधों के कारणों की छान–बीन की है जो इस प्रकार है –समकालीन महानगरीय परिवेश में व्यक्ति को ऐसी अंधी दौड़ में डाल दिया है कि वह अपने घर, परिवार सबको रोदता हुआ पदोन्नति प्राप्त करना चाहता है

प्रायः दो व्यक्तियों के बीच तीसरे की अवस्थिति स्वागताई नहीं होती। बालेन्दु जी की 'पराई बेटी का दर्द' 'अक्षम्य' 'मानिनी' आदि व्यंग्यों में विवाह बाह्य संबंधों के फलस्वरूप दाम्पत्य संबंधों के समापन का चित्रण हुआ है। अक्षम्य व्यंग्य में बिंदु की सधवा सास का पड़ोसी गणेशी से अवैध संबंध था। अपने इस अवैध संबंध के नैरंतर्य में बिंदु की सास घर में बिंदू की उपस्थिति को बाधा के रूप में पाती

है। अतः बिंदु के साथ उसे हमेशा के लिए घर से बहिष्कृत कर देने की साजिश करती हैं। वह अपना अनाचार आरोप उठाकर अपने पुत्र के कानों में बिंदू के प्रति संशह – विष उड़ेल देती है। सास द्वारा लगाया गया झूठा लांछन बिंदु के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता है। अतः बिंदु हमेशा के लिए पति का घर त्याग देती है।

इस व्यंग्य के दांपत्य में सामाजिक धरातल पर किसी भी प्रकार की समक्षता ना होने से उनके वैवाहिक संबंध बहुत जल्दी समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार बालेन्दु जी की उपनिर्दिष्ट व्यंग्यों में पुरुष का हीनता बोध स्त्री तथा पुरुष का विवाह–बह्य आकर्षण तथा बेमेल विवाह आदि विभिन्न कारणों से दांपत्य जीवन में आये अलगाव तथा समापन का चित्रण पाया जाता है।

समकालीन विषय स्थितियों का दबाव प्रायः हर आदमी पर दिख पड़ता है। इस आर्थिक दबाव तथा स्वार्थ से रिश्तों की आत्मीयता समाप्त कर दी है। अर्थाश्रित होते जा रहे हैं पारिवारिक आदमी रिश्तो के कई परिदृश्य बालेन्दु जी की व्यग्यों में दृष्टिगत होते हैं। बालेन्दु जी की 'यातना चक्र' कोऊ ना 'जाननहार' 'स्वयंवर' 'मोरी रंग दे चुनरिया' 'दंभ के कोर' 'सती' 'आखिरी सौगात' 'बेड़ियां' 'बोल री कठपुतली' आदि व्यंग्यो में परिजनो की स्वार्थी वृत्ति का चितरण हुआ है। 'सती' व्यंग्य की विधवा कांता आर्थिक दृष्टि से एक शोषित चरित्र है। पति की मृत्यु के बाद तुरंत नौकरी में जुट जाने पर नौकरी की पहली तनख्वाह जब कांता अपने ससुर के हाथ थामने आने लगी तो उसकी सांस पुत्र वियोग का दुख भूल कर बहू के हाथ से तनख्वाह का लिफाफा छीन कर नोट गिनने बैठ गई थी।

समकालीन जीवन मूल्यों में शीथिलता एवं बदलाव आ जाने से परिवारजनों के जितने भी संबंध हो सकते थे उनमें भी प्रायः बदलाव तथा शीतलता दृष्टिगत आने लगी है बालेन्दु जी की 'दूसरी दुनिया' 'नैहर छूटो जाए' 'औकात' 'शुभकामना' 'कोऊ जानकार' 'हमको दियो' 'परदेस' आदि व्यंग्यों में आत्मीय संबंधों के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं। 'कोऊ जानकार' व्यंग्य की विधवा बू नीता की शादी में नीता की शादी में नीता की माँ के लिए मीनु की माँ आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर भी कुल सात सौ की साड़ी खरीदती है, फिर भी नीता की मां संतुष्ट नहीं हो पाती है कि उसे अपनी बहन से उपहार के रूप में साड़ी की नहीं सोने चांदी की चीज की अपेक्षा थी। अतः उपहार में लाई गई साड़ी को नजर–अंदाज कर देती है। इस प्रकार रिश्तो का मूल्य अब उपहार के मूल्यों के सहारे आंका जाने लगा है।

'साथी' ही व्यंग्य के कलेक्टर पुत्र को अपने बंगले के बैठक के कमरे में पिताजी की उपस्थिति और अस्वस्थ कर देती है खास कर मेहमानों के होने पर बैठक के कमरे में पहुंचते हैं बाबूजी दूसरे आदमी बन जाते हैं कमरे के वातावरण में अजीब सा तनाव भर जाता है। प्रतिपाद्य व्यंग्य की व्यंग्य नायिका के उक्त स्वागत से आभास मिल जाता है कि नयी पाड़ी बालेन्दु जी की 'टूटने से जुड़ने तक' 'मध्यांतर' तथा 'कुहासे' व्यंग्यों में जुड़ते हुए दाम्पत्य जीवन के चित्र दृष्टिगोचर होते हैं 'टूटने से जुड़ने तक' व्यंग्य में पत्नी की न्यूनताबोध तथा 'मध्यांतर' और 'कुहासे' आदि व्यंग्यों पति – पत्नी के मन में परस्पर के प्रति उभरते संशय – बोध के कारण उनके दांपत्य जीवन में बिखराव की स्थिति उपस्थित होती है।

बालेन्दु जी के की व्यंग्यों में पारिवारिक समस्याओं के बाद नारी वर्ग विशेषक समस्याओं का अधिकांशतः का चित्रण पाया जाता है। बालेन्दु जी की व्यंग्यों में परिवार के भीतर नारी जीवन से संबंधित समस्याओं का आंकलन निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है।

बालेन्दु जी की निम्नांकित कहानियाँ दहेज पीड़ित नारी की गहन समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्त करते हैं 'दूसरी दुनियाँ' 'कवच' 'कन्यादान' 'बकुल फिर आना' 'छोटी बेटी का भाग्य' 'यातना चक्र' 'आखरी सौगात' 'औकात' 'कोऊ न जाननहार' 'बोल सी कठपुतली' 'रानियाँ' 'कोख का र्दप आदि कहानियाँ

'बकुल फिर आना' व्यंग्य में बालेन्दु जी ने स्पष्ट किया है कि मां–बाप प्रायः बेटे की सुरक्षा की गारंटी हेतु दान भेज देते हैं, फिर भी गारंटी नहीं मिल पाती। बकुल की शादी में 10 तोला सोना और पंद्रह हजार की नकद रकम दिए जाने के बावजूद बकुल के ससुराल वाले अतिरिक्त लालच में अमानुष बनकर बकुल को जलाकर मारते हैं। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि बकुल का पति हत्यारा है, यह मालूम होने के बावजूद वह एक अन्य मजबूर कन्या–पिता अपनी लड़की का ब्याह बकुल के विधुर पति के साथ इसलिए कराता है क्योंकि वह दहाजू जो होने से सस्ते में मिल पाया था। 'दूसरी दुनिया' व्यंग्य कि सुषमा उच्च शिक्षित होने के बावजूद दहेज के अभाव में सुयोग्य एवं मनपसंद दूल्हे का चुनाव नहीं कर पाती है अर्थात उसमें कम शिक्षित लड़के से उसे ब्याह करना पड़ता है। बालेन्दु जी ने यहाँ दहेज की समस्या के कारण मध्यवर्गीय कन्या–पिता की विवशता, दयनिता एवं असहायता सुषमा के पिता द्वारा अद्योलिखित कथन में मुखरित की है "सलाह देने तो हर कोई आता है पैसा कोई नहीं देता फोन में राम कहाँ से लाऊँ डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर, चालीस हजार से ऊपर तो इन लोगों की बोली शुरू होती है। मुश्किल से यह लोग बारह हजार पर राजी हुए हैं"

बालेन्दु जी ने निम्नलिखित व्यंग्यों के नारी–पात्रों के माध्यम से कामकाजी नारी के जीवन की संश्लिष्ट समस्याओं पर दृष्टिपात किया है 'स्वयंवर की प्रभा' 'बोल री कठपुतली' की आभा 'सती की कांता' 'बेड़ियों की रजनी' 'हमको दियो' 'प्रदेश की कुसुम' 'याताना चक्र' की प्रेमा, 'कोऊ न जाननहार' की मनु, 'आखरी सौगात' की सुमन, 'सन्नाटा' की उत्तरा, 'मध्यांतर' के विमल आदि उपरोक्त कमोऊ नारी–पात्रों में से प्रभा, रजनी, प्रेमा, सुमन, कुसुम, आदि कुँवारे नारी पात्र विवाह के न होने पर अकेलेपन तथा परिजनों की स्वार्थी वृति आदि के कारण त्रस्त हो गए हैं। ये नारी पात्र अपने

पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण अपनी विधवा माँ तथा छोटे भाई–बहनों को नौकरी करके सहारा देते हैं किंतु इस उपक्रम उनके विवाह की उम्र बीत जाती है।

मध्यांतर व्यंग्य में बालेन्दु जी ने अर्जिका विमल के माध्यम से अर्जिका नारी की संश्लिष्ट समस्या को मार्मिकता के साथ उभारा है विमल को विवाह से पूर्व अपने भाई–बहनों तथा अपने दहेज की रकम जुटाने हेतु तथा शादी के बाद कुल तीन ननदों की शादी का कर्तव्य निभाने हेतु नौकरी करनी पड़ती है। नौकरी करने की इच्छा ना होने पर भी मध्यमवर्गीय स्थितियों का तकाजा होने से विमल को आजीवन नौकरी का जुगाड़ करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। दूसरी ओर दिनभर की नौकरी की थकान भीड़ से भरी बसों की सुबह–शाम लंबी यात्रा घर देर से आने पर पति की बहमी नजरों तथा तानों का सामना, फिर घर का कामकाज इन सबसे विमल थकहार जाती है। विमल की हताशा को बालेन्दु जी ने निम्नांकित शब्दों में अंकित किया है और दिन भर के बाद जब घर लौटना होता है तो दोनों थके हुए, टूटे हुए होते हैं। सारा उत्साह, दफ्तर का रूटीन सोख गया होता है। शेष रह जाती है सिर्फ खीच झुंझलाहट और उलझने।

'मोरी रंग दे चुनरिया' पुस्तक के समर्पण के अंतर्गत बालेन्दु जी लिखती हैं उन अभागी बहनों को जिनकी मांग का सिंदूर असमय पुँछ गया है इस कथन की भावना की समस्या को बाल इंदु जी ने यातना चक्र कवच बेड़ियां मोरी रंग दे चुनरिया आखरी सौगात पति को ना जान अन्हार स्वयंवरा दिव्यांगों में उतारने का प्रयास किया है।

मोरी रंग दे चुनरिया व्यंग में बालेन्दु जी ने जया की वैधव्य–जनित आत्मपीड़ा को उत्कृटता के साथ ध्वनित किया है। जया के पति की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक के लिए उसे अछूत करार देकर एक अलग से कमरे में बंद कर दिया जाता है। उसके टी.वी. और रेडियों सुनने देखने खानपान रंगीन परिधान घूमने फिरने तथा कुल मिलाकर उसके आचार विचार पर कई तरह के बंधन डाले जाते हैं। उसे पानी का घड़ा छुने नहीं देता। एक प्रकार से जहां जया को उसके अस्पृश्य एवं पराधीन होने का आभास मिल जाता है। 'सती' व्यंग्य की विधवा कांता कि सास कांता को अपशकुनी करार देकर भली सुबह में विधवा बहू का मुंह देखना अशुभ–सुचक मानती है। कांता के सास विधवा बहू को अपमानित एवं प्रताड़ित करने का एक भी मौका चूकने नहीं देती, कांता पर उसकी सास हटाए वैराग्य–बोध थोपना चाहती है। अगर कांता कभी हल्का सा मेकअप भी कर भी लेती है तो सांस ताने देती है "आदमी मर गया पर इसका मन नहीं मरा"।

परिजनों से परित्यक्ता एवं बहिष्कृत कर दी गई नारियों की समस्या बालेन्दु की निम्नलिखित व्यंग्यों में प्रस्तुत हुई है 'उफान' 'अक्षम्य' में 'एक घर सपनों का' आदी इन तीनों व्यंग्यों के क्रमशः कांता, बबलू की मां और रेखा की अम्मा आदि नारी पात्र परिजनों द्वारा घर से बहिष्कृत कर दिए जाने तथा अकेलेपन के बोध से पीड़ित हैं। 'यथार्थ से आगे' व्यंग्य के बबलू के माता–पिता का बेमेल विवाह है। इसे दांपत्य में मानसिक तथा सामाजिक धरातल पर किसी तरह की समकक्षता न होने से वे बहुत जल्दी एक दूसरे से तलाक लेते हैं। फिर भी बबलू को मिलने उसके पिता यदा–कदा आते हैं तो उनसे भेंट करने की आतुरता एवं अधीरता तथा पति की वापसी के समय बिछोह की व्यथा बबलू की मां बड़ी तीव्रता से अनुभव करती है। पति को अपने से दूर ले जाने वाली रेल को वह निगोड़ी कहती है। बालेन्दु जी की 'माननी' 'सती' कथा 'ममता तू न गई मेरे मन तै' आदि यंग्यो में बाँझ नारी की असहायता, अकेलापन अवमानना आदि अवस्थाओं से ग्रस्त जीवन का चित्रण हुआ है। बालेन्दु जी कृत 'सती' कि नीलम 'मानिनी' की शीला भाभी 'ममता तू न गई मोरे मन ते' की व्यंग नायिका आदि नारी पात्र वंध्यत्व के कारण आत्म पीड़ित है। संतान का अभाव नीलम के जीवन में एक रिश्ता पैदा करता है। अतः वह सोचती है काश उसकी गोद में एक खिलौना होता तो बाकी जिंदगी का अकेला सफर खुशी से काट लेती है। एक और पति की असाध्य बीमारी दूसरी और निसंतान होने की कसक तिस पर असहायता एवं अकेलेपन का बोध आदि के कारण उसे अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होता है और इस अर्थहिन जीवन से छुटकारा पाने हेतु नीलम खुदकुशी कर लेती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष कहा जाता है कि बालेन्दु शेखर तिवारी ने अपने व्यंग्य साहित्य में नारी का पारिवारिक समस्याओं को प्रत्येक दृष्टिकोण से उभारने का प्रयत्न किया है जिसमें वे पूर्णतः सफल रहे है।

संदर्भ

1. डॉ0 विनय कुमार पाठक डॉक्टर जय श्री शुक्ला हिंदी व्यंग कर्म एवं समकालीन परिदृश्य
2. डॉ0 स्मिता चिपलुणकर हिंदी के प्रमुख जयकार
3. बालेन्दु शेखर तिवारी 21वीं सदी की नई व्यंग रचनाएं
4. बालेन्दु शेखर तिवारी राग दरबारी पुनर्मूल्यांकन
5. 100 बालेन्दु शेखर तिवारी अनुवाद शास्त्र
6. आरपी वर्मा बालेन्दु शेखर तिवारी व्यंग समग्र एक
7. आरपी वर्मा बालेन्दु शेखर तिवारी व्यंग समग्र 2
8. आरपी वर्मा बालेन्दु शेखर तिवारी व्यंग समग्र 3

प्रवेश कुमारी
शौधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक
म0 न0 21, नन्दवानी नगर
सोनीपत
पिन–131001

49

तलाक की अग्नि में स्वाहा बालमन : आपका बंटी

पूजा

सारांश –

कुम्हार जिस प्रकार से कच्ची मिट्टी से बर्तनों का निर्माण करता है ठीक उसी प्रकार से माता–पिता तथा परिवार के अन्य लोग मिलकर अपने बच्चों के भविष्य का निर्माण करते हैं। कुम्हार का बर्तन बनाते समय यदि चाक पर से संतुलन बिगड़ जाए तो बर्तन का पूरा आकार ही बिगड़ जाता है यही स्थिति परिवार पर भी लागू होती है। तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक परिवेश बदलते रिश्तों के भंवर में जब माता–पिता फंस जाते हैं तो बालक इस विष से कैसे वंचित रह सकता है। ऐसे परिवेश में बालमन रोगग्रस्त हो जाता है। इसी पृष्ठभूमि पर खरा उतरता है उपन्यास– 'आपका बंटी'। कथा–साहित्य में बालमन को केंद्र में रखकर लेखनी चलाने वाले लेखकों में मन्नू भण्डारी का नाम अग्रणीय है। मन्नू भण्डारी का लेखन हमारे सामने उस समय प्रस्तुत हुआ जब स्त्री लेखन की पृष्ठ भूमि नगन्य थी। स्त्री लेखन की परम्परा में अग्रसर मन्नू भण्डारी ने स्त्री–विमर्श के साथ–साथ बालमनोविज्ञान पर भी अपनी लेखनी चलाई है। वे मूलतः स्त्री चेतना को अत्यन्त सहजता के साथ न केवल अपने साहित्य में उकेरती हैं बल्कि 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्त्री–विमर्श की एक प्रमुख कड़ी के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती हैं। मन्नू भण्डारी एक शिक्षिका थी। लंबे समय तक उनका बच्चों के साथ तादात्मय होने के कारण ही बंटी जैसा पात्र उनकी कलम से उभरता है।

मन्नू भण्डारी का जन्म 3 अप्रैल, 1931 को मध्यप्रदेश के भानपुरा नामक गांव में हुआ था। इन्हें अपने दो बड़े भाइयों और दो बड़ी बहनों का स्नेह प्राप्त था। इनके पिताजी सुखसंपतराय भण्डारी आर्य समाजी व समाज सुधारक थे। इनका परिवार मध्यवर्गीय मारवाड़ी परिवार रहा है। इनके सभी भाई–बहन उच्च शिक्षित व नौकरी पेशे में रत रहे हैं, मन्नू भण्डारी का पूरा नाम महेंद्र कुमारी है। मन्नू नाम उन्हें परिवार में सबसे छोटी होने के कारण मिला। इनकी माता का नाम अनूप कुंवारी था। मन्नू जी जिस व्यक्तित्व को लेकर साहित्य जगत में आई, उनके व्यक्तित्व पर उनके पिता की महत्वपूर्ण छाप रही है। समाज–सेवी होने के कारण इनके पिताजी लोगों के साथ अनेक मुद्दों पर विचार–विमर्श करते थे।

मन्नू भी इस बात–चीत में अवश्य ही भाग लेती थी अपने पिता के बारे में मन्नू जी कहती हैं कि बहस में उनके पिता अपनी विरोध कभी स्वीकार नहीं करते थे। यहीं से मन्नू ने अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना सीखा। सन् 1957 में उनका राजेंद्र यादव के साथ विवाह हुआ। यह एक अन्तर्जातीय विवाह था। परिवार इस विवाह से खुश नहीं था लेकिन मन्नू जी के स्वभाव में विरोध करना पूर्ण रूप से समा चुका था। दसवीं कक्षा से ही मन्नू स्वाधीनता आंदोलन के अंतिम दशकों में पूरे जोश से हिस्सा लेती थी। मन्नू भण्डारी के संपूर्ण कथा साहित्य पर बात की जाए तो उनका साहित्य विचारधारा सत्य की चर्चा न करके उसके लिए अच्छी स्थिति बनाने हेतु की गई बातचीत भी है। मानव जीवन विभिन्न पहलुओं से विभिन्न समस्याओं को चुनकर पूर्ण सजगता के साथ प्रभावशाली ढंग से साहित्य में चित्रित किया है। अध्यापिका होने के कारण मन्नू भण्डारी बालमन को चित्रित करने में पूर्ण रूप से सफल रही हैं।

'आपका बंटी' 1970 ई0 में प्रकाशित उपन्यास मन्नू भण्डारी द्वारा लिखित बाल मनोविज्ञान पर आधारित बहुचर्चित व उन कालजयी बेजोड़ उपन्यासों की श्रेणी में आता है जिनके बिना न बीसवीं शताब्दी के हिंदी उपन्यासों की बात की जा सकती है और न ही स्त्री–विमर्श को उचित धरातल पर समझा जा सकता है। आज से 50 साल पहले लिखा गया यह उपन्यास आज भी उतना ही प्रासंगिक है। डॉ0 मनमोहन सहगल के अनुसार, "मन्नू भण्डारी द्वारा संस्पृष्ट यह समस्या शायद साहित्य में पहली बार प्रस्तुत की गई है। तलाक और पुनर्विवाह के आगे सन्तानवान माता–पिता तलाक तथा उस पर पुनर्विवाह जीवन पर कितना बड़ा आघात बन सकता है। इस पर पहली बार ध्यान आकर्षित किया गया है। बढ़ती हुई वासना भारतीय फलक पर भी शायद ऐसी माँग तो करने लगेगी, किंतु सामाजिक घटकों का क्या होगा, जो माता–पिता के इस रति पर कुर्बान कर दिए जाएँगे। आपका बंटी इसी आश्य का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। नये समाज के लिए विचारोत्तेजक समस्या है। वैधी अधिकारों की दौड़ में राष्ट्र की होनहार सम्पत्ति को दांव पर लगाने का अधिकार है। क्या रति–सुखान्वेशी माँ–बाप को दिया जा सकता है यही चिंतनीय है।"[1] इस उपन्यास में लेखिका ने दिखाया है कि आज के पढ़े–लिखे शिक्षित नौकरी पेशा करने वाले पति–पत्नी अपने अहम् और व्यस्तता के कारण आपस में टकराते है और अपनी महत्वकांक्षा की पूर्ति में अपनी संतान के जीवन की परवाह नहीं करते हैं। सही मायनों में यह उपन्यास उस उपभोगतावादी समाज का दर्पण है, जिसमें मानवीय संवेदना को स्वार्थ की चक्की में निर्ममता से पीस दिया जाता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र बंटी जिसका असली नाम अरूप बत्रा है। संपूर्ण कथा इन्हीं के इर्द–गिर्द चक्कर लगाती है। बंटी की माँ शकुन जो कि एक अध्यापिका है और पिता अजय

मैनेजर हैं। इनके आपसी टकराव के कारण बंटी अपने जीवन की दिशाएँ खो बैठता है। शकुन पिछले सात वर्षों से बंटी को लेकर पति से अलग रहती है। अजय कलकत्ता में रहता है। समय–समय पर वह बंटी से मिलने भी आता हैं माँ के साथ रहते हुए उसका विकास एक लड़के के समान नहीं हो पाता है। अनेक बार उसका बालमन विद्रोह करता है। शकुन बंटी को अन्य बच्चों से भी कम मिलने देती है। जिस कारण उसके स्वभाव में अत्यधिक कोमलता तो आती ही है साथ ही उसके व्यक्तित्व का भी विकास कम ही हो पाता है वह कैरम जैसा घरेलू खेल खेलता है। बंटी के पिता शकून को मनोचेतावनी स्वर में कहते हैं कि "मुझे डर है शकून..... तुम्हारा यह अतिरिक्त स्नेह बंटी को बौना न बना दे।" इसी कारणवश बंटी की सोच का दायरा भी बहुत ही सीमित हो गया है। अजय जब बंटी से मिलने आता है तब बंटी समझ ही नहीं पाता कि उसके माता–पिता आपस में क्यों नहीं मिलते वे एक घर में क्यों नहीं रहते। परिस्थितिजन्य संवेगों के कारण शकून स्वयं ही आन्दोलित होती रहती है। मम्मी के स्वभाव में बार–बार होने वाले परिवर्तन बंटी की समझ से परे हैं। डॉ0 राजेंद्र मिश्र ने लिखा है कि "मम्मी के रूप में शकुन का जीवन भी बंटी है और वह उसकी समस्याओं का केंद्र भी दूसरे यह उपन्यास का पात्र न होकर मध्यवर्गीय समूचे समाज में बंटी जैसे बालकों का प्रतिनिधित्व है। वह एक प्रतीक है आज की पारिवारिक विसंगतियों के बीच संवदेनहीन परिवेश का।"[2] "शकुन बंटी को अपने हथियार के रूप में पति के खिलाफ इस्तेमाल करना चाहती है वह कहती हैं कि बंटी उसका बेटा ही नहीं वह हथियार भी है जिससे वह अजय को रचर करेगी।"[3] दोनों ही पति–पत्नी अपने अहमबोध के कारण तलाक ले लेते हैं। दोनों ही बंटी की उपेक्षा करते हैं। परिवार की धुरी को त्याग, प्रेम, सहिष्णुता, समर्पण आदि से मजबूत होती हैं जिसका इस परिवार में अभाव था। बंटी अपने मम्मी–पापा को एक साथ देखना चाहता है लेकिन उसकी यह इच्छा पूरी नहीं होती। वह दोनों के मध्य सेतू नहीं बन पाता उसके मम्मी–पापा दोनों अलग–2 जीवन साथी चुन लेते हैं और बंटी को खो देते हैं। बंटी अतिरिक्त संवेदनशील है और समाज की दृष्टि से एबनार्मल।"[4] बालमन पर इस विवाह से गहरा आघात लगता है एक बच्चा जिसे तलाक व विवाह के बारे में कोई भी ज्ञान नहीं है। वह अपनी मां के दूसरे विवाह की बात सुनकर ही तिलमिलाने लगता है। इसकी इस दशा की और उसके माता–पिता दोनों में से किसी का भी ध्यान नहीं जाता। इससे "बंटी के बाहर का ही नहीं, भीतर का भी जैसे सब कुछ थम गया। थम नहीं गया जैसे सबकुछ सहम गया। जिद, गुस्सा, रोना–चिल्लाना।"[5] घर में काम करने वाली फुफी ही बंटी के मन के द्वंद को समझती है। वह शकुन को भी समझाती है कि "साहब ने जो किया तो आपकी मिट्टी पलीद हो गई और अब आप जो कर रही हैं इससे बच्चे की मिट्टी पलीद होगी, चेहरा देखा है बच्चे का कैसा निकल आया है, जैसे– रात–दिन घुलता रहता है भीतर ही भीतर।"[6] लेकिन फिर भी शकून जब फूफी की बात नहीं समझ पाती और अपना दूसरा विवाह करने का फैसला नहीं बदलती तब फूफी भी घर छोड़कर हरिद्वार चली जाती है और जाते समय शकुन से वचन लेती है कि "रुपया–पइसा का होगा क्या? देना है तो एक वचन दे दो कि हमारे बंटी भैया को जैसे आपने बिखरा दिया है आजकल, वैसा और मत करना। बाप के रहते यह बिना बाप का हो रहा, अब माँ के रहते यह बिना माँ का न हो जाए।"[7] अजय–शकुन की पारिवारिक श्रृंखला में सबसे अधिक पिसता है बालमन बंटी।

दूसरे विवाह के पश्चात् दोनों ही आपसी तनाव से मुक्त हो जाते हैं लेकिन बंटी न तो इधर का रहता है और न ही उधर का। "मन्नू ने आपका बंटी' में इन तीनों को लिया है– टुटते वैवाहिक संबंधों में संतान की मनोवैज्ञानिक स्थिति, वैवाहिक संबंध भी टूटने–जुड़ने की प्रक्रिया से गुजरेंगे और इस असुरक्षित दुनिया में स्त्री अपने मानसिक प्रलय की कथाएं भी खुलकर बयान करेगी– मगर इस सबकी मनौवैज्ञानित दहशत भुगतनी होगी बंटी यानि संतान को।"[8]

शकुन विवाह के पश्चात् बंटी को भी अपने साथ डॉ0 जोशी के घर ले जाती है। बंटी तिलमिला उठता है। वह सहन नहीं कर पाता कि उसकी मम्मी पर किसी और का अधिकार है। प्रारंभ में बंटी समझौतावादी प्रक्रिया देता है। वह रात में अकेले सोने से डरता है लेकिन फिर भी वह अपनी समझौतावादी प्रक्रिया के चलते अकेले रहने का प्रयास करता है लेकिन बाद में उसके सब्र का बाँध टूट जाता है। डॉ0 जोशी के घर में बेटी स्वयं को अकेला महसूस करता है। जोशी की कोठी में लगे तिकोना का बोर्ड देखकर अपने आप को फालतू समझता है। बोर्ड पर लिखा था दो ही बच्चे होने चाहिए। बंटी अपने आप को तीसरा अर्थात् फालतू बच्चा समझता है। उसे एहसास होता हैकि अपने घर से उखड़ने के पश्चात् वह हर जगह से उखड़ गया है। वह नए घर में अपने आपको समायोजित नहीं कर पाता। वह अपने पापा के पास जाना चाहता है। वह अपनी माँ के साथ झगड़ा करता है और अपने पिता अजय को बुलाकर उसके साथ कलकत्ता चला जाता है लेकिन वहीं पर भी उसे वैसी ही स्थिति मिलती है, उसे हॉस्टल भेज दिया जाता है। "आँसू भरी आंखों के सामने डिब्बे की हर चीज, बैठे हुए अजनबी लोगों के चहेरे पहले धुँधले हुए और धुंधले हुए और फिर एक–दुसरे में मिल गए। पापा का चेहरा भी उन्हीं में मिल गया और फिर धीरे–2 सारे चेहेरे एक–दूसरे में गड्डमइड हो गए।"[8] कभी तो वह आपका बंटी हो गया है। इस संदर्भ में डॉ0 राजेंद्र मिश्र लिखते हैं कि "लेकिन भारतीय समाज में न तो पारिवारिक स्थितियाँ अधिसंख्या मिलती हैं और न ही हर बालक में एक अतिरिक्त जीवन संवेदन ही होता है। किंतु, नही अपने परिवेश के प्रति भी अत्याधिक संवदेनशील है। वह वर्ग पात्र होकर भी व्यक्ति पात्र ही अधिक है। अतः बंटी किन्हीं दो–एक घरों में नहीं,

आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है– अलग–2 संदर्भों में, अलग–अलग स्थितियों में।" डॉ0 चंद्रकांत पटेल के अनुसार, "आज की प्रमुख समस्या है – व्यक्ति के अहम् का निरंतर बढ़ते जाना। स्त्री जहाँ एक ओर शिक्षित हुई है, वहां उसका अहं भी बढ़ा है। इन दो के 'अहं–टकराव' में बंटी जैसे बच्चों को बलि का बकरा बनना पड़ता है। वे कहीं के नहीं रहते उनकी कुण्ठाएँ दूसरे सामाजिक प्रश्नों को पैदा करती हैं।"

बच्चे दाम्पत्यजीवन में सेतु का काम करते हैं लेकिन इस उपयोगितावादी और उपभोगतावादी परिवेश में वही बच्चे किस प्रकार माता–पिता के ऊपर भार बन जाते हैं यह पता ही नहीं चलता। चौथी कक्षा में पढ़ने वाला मासूस बंटी जिसे अपनी 7 साल की बाल उम्र में शरारतें करनी चाहिए थी उस उम्र में वह डरा, सहमा और अपने अस्तित्व को तलाशने में मशगूल था। वही एक पैंडुलम की मानिंद रिश्तों के बीच लेफ्ट–राइट कर रहा था। बचपन को निर्ममता से कुचल कर नश्तनाबूद करने की क्रिया को कलमबद्ध करने का प्रमाण है – आपका बंटी। बंटी को सभी ने आपका–आपका कहकर एक–दूसरे की तरफ केवल ढकेला है, किसी ने उसको अपनाया नहीं। अतः लेखिका में बंटी के माध्यम से बालमन का यथार्थ चित्रण किया है। अहंग्रस्त पति–पत्नी के बीच बंटी जैसे निरीह, निश्पाप, निर्दोष बच्चे की स्थिति बड़ी शोचनीय बन रही है। वासतव में एक बालक का समुचित विकास माता–पिता दोनों के सहयोग से ही होता है लेकिन बंटी अपने मम्मी–पापा के अलग तो जाने की पीड़ा को स्वयं सबसे ज्यादा भोग रहा है। आज यह अकेले बंटी की स्थिति नहीं है। समाज में ऐसे कई बंटी है जो मामी–पापा द्वारा की गई गलती की सजा को भोगते हुए एकाकी जीवन जीने के लिए विवश हैं।

'आपका बंटी' उपन्यास में लेखिका ने सिर्फ बालमन की ही नहीं बल्कि स्त्री की मनोव्यथा को भी सामने लाने का प्रयास किया है। एक स्त्री के मन की व्यथा और उसकी वेदना, ऐसा लगता है कि मानो शकुन एक नारी, एक माँ दोनों पात्रों के बीच पीस कर रह गई वह न तो अच्छी माँ बन पाई और न ही एक अच्छी पत्नी। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से माता–पिता को उनके कर्त्तव्यों का बोध कराना चाहा है, और केवल बोध कराना ही नहीं बल्कि अपने बच्चों के प्रति भावनात्मक स्वास्थ्य और विकास के प्रति जागरूक भी कराना चाहा है।

साथ ही दाम्पत्य जीवन में अहं की समस्या के दुष्परिणाम की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहा है। इनके अनुसार दाम्पत्य जीवन से जुड़े किसी भी फैसले में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए और अपने अहं को कभी भी बीच में नहीं लाना चाहिए, क्योंकि इसमें केवल दो पक्ष ही नहीं अपितु तीसरा पक्ष भी प्रभावित होता है, वह है – बच्चा। आज के इस आधुनिक दौर में पारिवारिक संबंधों में संयम की आवश्यकता है। संयम, प्यार और समझदारी से ही स्वस्थ और सुंदर समाज की कल्पना की जा सकती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हम एक ऐसी अन्योन्याश्रित दुनिया में रह रहे हैं जहाँ बच्चे अपने आस–पास जो कुछ देखते, सुनते, महसूस करते एवं सीखते हैं वही सब उनके भविष्य का निर्धारण करता है कि वे किस तरह के माहौल में पले–बढ़े हैं और बड़े होकर क्या बनेंगे। बच्चों के जीवन में सर्वाधिक महत्व माता–पिता का होता है। इनके अभाव में बच्चे को विकास अवरूद्ध हो जाता है। बच्चे की सभी इच्छाएँ कुंठित हो जाती हैं, किसी भी बच्चे के लिए माता–पिता दोनों का होना समान रूप से अनिवार्य है। बच्चा केवल एक के साथ नही रह सकता क्योंकि जन्म के उपरांत ही यह प्रत्यक्ष रूप से दोनों से जुड़ा होता है और यह प्रत्येक बच्चे का मानवीय अधिकार भी है। इस दाम्पत्य जीवन में अहं की कोई जगह नही होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 मनमोहन सहगल, हिदी उपन्यास के पदचिन्ह, पृ0 336
2. डॉ0 वंशीधर, डॉ0 राजेंद्र मिश्र, मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सृजनात्मक साहित्य, पृ0 37
3. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, पृ0 47
4. डॉ0 राजेंद्र मिश्र, मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सृजनात्मक साहित्य, पृ0 39
5. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, पृ0 163
6. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, पृ0 129
7. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, पृ0 131
8. राजेंद्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, पृ0 229
9. डॉ0 राजेंद्र मिश्र, मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सृजनात्मक साहित्य, पृ0 49

पूजा
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

50

Mechanism behind Comprehensive Physical fitness

Dr. Narrender Duggal

Abstract:

Physical fitness is a state of health and well-being and, more specifically, the ability to perform aspects of sports, occupations and daily activities. Physical fitness is generally achieved through proper nutrition, moderate-vigorous physical exercise, and sufficient rest. But comprehensive physical fitness is achieved through the parameters related to health and skill. This paper covers the definition of physical fitness and, their components. The paper also includes the analysis of different components of health related physical fitness as well skill related physical fitness on the basis of different parameters like method of testing, different exercises of training the components, their benefits etc. It is suggested that an individual should be trained with each of these components to be in peak fitness.

Keywords: fitness, health related physical fitness, skill related physical fitness, cardiovascular

1) Introduction

According to the Oxford dictionary, fitness is 'the condition of being physically fit and healthy.' Thus, physical fitness is the capacity of the heart, lungs, and muscles to function efficiently in order for the body to work at its best . It is important for health, physical performance, and mental well being. It does not mean that one is the best at a given sport or sport skill. Fitness is personal. Its goal is self improvement toward a healthy active lifestyle. Physical Fitness is constituted by two parts i.e. Health related fitness and Skill related fitness .

Health-Related Physical Fitness

This type of fitness consists of those components of physical fitness that have a relationship with good health . Possessing good health-related fitness is related to lower risk of illness and improved quality of life.

Skill-related Physical Fitness

It consists of those components of physical fitness that have a relationship with enhanced performance in sports and motor skills. The components are commonly defined as agility, balance, coordination, power, speed and reaction time. Fitness tests that are not directly related to improved health were designated as skill-related physical fitness components. Possession of skill-related fitness abilities enhances ability to perform in sports and games. It is assumed that people who possess skill-related fitness will be more likely to engage in regular activity and for this reason will have enhanced health related fitness and a lower risk of diseases .

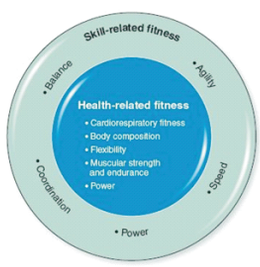


Figure 1: Components of Physical fitness

2) Literature

Physical fitness may be defined as a physiological state of well-being that provide the foundation for the tasks of daily living, a degree of protection against hypo kinetic disease, and a basis for participation in sport (American Alliance for Health Physical Education, Recreation and Dance [AAHPERD], 1988). Physical fitness includes nonperformance components of physical fitness that relate to biological system that are influenced by one's level of habitual physical activity (Bouchard, 1990). Physical fitness refers to "a set of attributes that related to the ability to perform physical activity" (U.S. Department of Health and Human Services [USDHHS], 1996). Physical fitness is the ability of the body systems to work together efficiently to allow people to be healthy and effectively perform activities of daily living (Corbin & Lindsey 2007). The amount of physical fitness ranges is form low to high (Caspersen et al., 1985). Physical fitness can be classified into health-related and skill-related fitness .

Health-related fitness components not only help the body to perform more efficiently, but also help prevent disease and

improve overall health and well-being. Manitoba's combined physical education/health education curriculum emphasizes the health-related components of fitness—that is, the physical and physiological components of fitness that have a direct impact on health status . Health-related fitness means that portion of physical fitness which is directed toward the prevention of or rehabilitation from disease as well as the development of a high level of function capacity for the necessary and discretionary tasks of life (Plowan & Smith, 2008). According to Hoeger and Hoeger (2009), health-related fitness consists of five components: cardio respiratory endurance, muscular endurance, muscle strength, flexibility, and body composition and is determined by a combination of regular activity and genetically inherited ability.

On the other hand, skill-related physical fitness is portion of physical fitness which is directed toward optimizing athletic performance Plowan and Smith (2008). Skill-related physical fitness is less related to good health and more related to ability to learn sport and other kinds of physical skill (Corbin & Lindscey, 2007). Skill-related physical fitness is needed for success in athletics and lifetime sport and activities. Fitness components important for success in skillful activities and athletic events; encompasses agility, balance, coordination, power, reaction time, and speed (Hoeger & Hoeger, 2010). Different components of skill related fitness are agility, balance, coordination, speed, power and reaction time . One exercise or other form of exercise helps us to improve the overall fitness. But where performance is concerned, the greatest improvements arise from training that develops the skills specifically related to the activity of choice . For instance, one needs cardiovascular endurance and flexibility to play tennis. But to become *good* at tennis, one has to work on agility, power, speed, and hand-eye coordination.

In terms of prevention of diseases, the main emphasis of any fitness programs should be placed on the health-related fitness as skill-related fitness is crucial for success in sports and athletics, and it also contributes to wellness (Hoeger & Hoeger, 2005).

3) Analysis of different parts of Physical Fitness

Different components of health related physical fitness as well as skill related physical fitness are analyzed in Table 1 and Table 2 respectively.

3.1) Analysis of components of skill related physical fitness

The following table gives a comparative scenario of different components of health related physical fitness :

Table 1: Components of Health related physical fitness

Component of Health related physical fitness	Definition	Test can be done to measure	Exercises	Benefits of Training
Cardiovascular endurance	Ability of the heart and lungs to work together to provide the needed oxygen and fuel to the body during sustained workloads as well removal of metabolic waste	Copper Run Test and Three-Minute Step test	➢ Jogging ➢ Cycling ➢ Swimming ➢ Active Sports	• Strengthens heart muscle • Increases lung capacity • Regulates blood pressure • Reduces stress/ enhances mood • Lowers unhealthy cholesterol • Aids sleep • Prevents obesity
Muscular Endurance	Ability of the skeletal muscles to perform continuous without fatiguing	Push-up Test	➢ Push-ups ➢ Planks ➢ Squats ➢ Sit-ups ➢ Lunges	When done frequently, it actually works to prevent injury, age-related decline in muscle, and a host of other things.
Muscular strength	Amount of force muscles can exert in one blow	Push up test	➢ Bicep curls with dumbbell ➢ Dumbbell rows ➢ Barbell squats ➢ Deadlifts ➢ Barbell lunges ➢ Pull-ups ➢ Tricep dips	• Builds and maintains muscle mass as you age • Boosts mood and energy levels • Aids bone health • Burns excess calories • Shreds excess fat stores
Flexibility	Ability of each joint to move through available range of motion for a specific joint.	Sit and Reach Test	➢ Dynamic warm-ups ➢ Yoga ➢ Dancing	• Increases athletic performance • Reduces chance of injury during physical activity • Eases muscle aches, pains, and cramps • Improves balance & posture

3.2) Analysis of components of skill related physical fitness

The following table gives a comparative scenario of different components of skill related physical fitness:

Table 2: Components of skill related physical fitness

Component of skill related fitness	Definition	Training Moves	Benefits of training the component
Power	Ability to produce force speed with great speed	➢ Kettlebell Swings ➢ Squat Jumps ➢ Box Jumps ➢ Medicine balls	• Improved cardiovascular function • Enhanced strength • Increased endurance with time • Rapid calorie burning • Boosted overall performance in sports and athletics
Speed	Ability to move a distance/complete a body movement in a short period of time	➢ Deadlifts ➢ Box jump ➢ Tyre flips ➢ Sled pushes	• Injury prevention • Improved cardiovascular endurance • Better metabolic rate and fat burning • Increase in bone strength • Muscle growth
Agility	Ability to control body's movement & to change the body's movement quickly	➢ Cone drills ➢ Ladder drills ➢ Plyometric box drills	• Prevention of injuries • Recovery time boost • Enhanced cognitive function
Coordination	Ability to use two or more body parts together well, or to use the senses along with the body parts	➢ Juggling ➢ Tennis ball dribbling ➢ Skipping	• Gets better in a number of sports & physical activities • Improving cognitive function
Balance	Ability to remain upright either while standing still or moving	➢ Balance boards ➢ Squats ➢ Tai Chi ➢ Yoga	• Enhanced performance during sports and athletic activities • Improved cognitive function • Increased injury prevention, even during everyday life
Reaction Time	The rate of movement once a person realizes the need to move	➢ Tennis ball drill ➢ Sprinting with signals ➢ Take a run outside	

3.3 Analysis of skill related physical fitness in terms of sports

Kotecki (2010) explained different components of skill-related physical fitness with respect sports specifications. These studies are:

As **Agility** is the ability to quickly and accurately change the direction of the movement of the entire body in space. So, it is required in games like tennis where ball should be reached in time.

As **Balance** is the ability to maintain equilibrium while moving or stationary. Activities such as gymnastics, ballet, and skiing require balance.

As **Coordination** is the ability to combine the senses with different body parts to perform activities smoothly and accurately. Activities such as catching a baseball or kicking a football require the hands and eyes or foot and eyes to work together.

As **Power** is the ability to transfer energy into force at a fast applies speed and strength to produce a muscular movement. Almost all sport requires power to perform well.

As **Reaction time** is the amount of time it takes to respond and react to a stimulus. Activities such as returning a serve in tennis or badminton require fast reaction times.

As **Speed** is the ability to move quickly from one point to another. Actives such as the 100 or 200 meter sprint in track or running the baseball require speed.

Conclusion

As physical fitness is expressed in terms of a state of well-being with a low risk of premature health problems and energy to participate in a variety of physical activities (Howley & Franks, 2007). How well the body performs in each one of the components of physical fitness as a whole defines the total fitness. Health-related fitness is characterized by moderate to vigorous physical activity. This fitness is a better match for people who are generally unwilling to exercise at high intensities. Health-related fitness activities can be integrated into everyday activities that are often characterized as lifetime activities. In contrast, skill-related physical fitness includes health-related components, but it also covers components related to physical performance. Skill-related fitness is the right choice for people who can and want to perform at a high level, but it is less acceptable to most people because it requires training and exercising at high intensities.

References

[1] C. B. Corbin, K. F. Janz, and F. Baptista, "Good Health: The Power of Power," J. Phys. Educ. Recreat. Danc., vol. 88, no. 9, pp. 28-35, 2017.

[2] S. L. Outcomes and K. Understandings, "Lesson 6?: Planning for Physical Fitness," pp. 161-184.

[3] N. A. for S. and P. Education, S. F. Ayers, and M. J. Sariscsany, "Physical Education for Lifelong Fitness: The Physical Best Teacher's Guide," p. 339, 2010.

[4] M. Strength, M. Endurance, B. Composition, and H. P. Fitness, "5 TH GRADE FITNESS STUDY GUIDE," pp. 1-5.

[5] P. Fitness and H. Services, "CHAPTER 2 Physical fitness," in http://digital_collect.lib.buu.ac.th/dcms/files/53910920/chapter2.pdf, 2007.

[6] A. Kariyawasam, A. Ariyasinghe, A. Rajaratnam, and P. Subasinghe, "Comparative study on skill and health related physical fitness characteristics between national basketball and football players in Sri Lanka," BMC Res. Notes, vol. 12, no. 1, pp. 1-5, 2019.

[7] "index @ www.pdhpe.net." .

[8] "www.scienceforsport.com." .

[9] "index @ www.livingston.org." .

[10] S. C. E. Schmidt, S. Tittlbach, K. Bös, and A. Woll, "Different Types of Physical Activity and Fitness and Health in Adults: An 18-Year Longitudinal Study," Biomed Res. Int., vol. 2017, 2017.

[11] T. Principles and F. Plans, "Fitness Level II | Power Standards," no. 426, pp. 1-21, 2014.

Dr. Narrender Duggal

Associate Professor in Physical Education,

DAV Centenary College,

Faridabad

51

डॉ० हरिशरण वर्मा कृत'आश्रयकुटी' नाटक में संवेदनशीलता

डॉ० प्रवेश कुमारी

सारांश –

'नाटक' हिंदी साहित्य की प्रभावशाली एवं सशक्त विद्या है।'नाटक' पाँचवा वेद भी कहा जाता है। भारत में नाटक की परंपरा सदियों से चली आ रही है। प्राचीन समय में मनुष्य अपने अभिनय कला का प्रदर्शन रंगमंच पर नाटकों के माध्यम से ही करता था।'नाट्य शास्त्र' के प्रणेता भरतमुनि का मानना है कि योग, कर्म और समस्त शिल्पोंका समावेश नाटक में है।

'डॉ हरिशरण वर्मा' आधुनिक युग के संवेदनशील नाटककार हैं। वे अपनी रचनाओं में समाज के यथार्थ को सजगता व संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। इनके नाटकों में आधुनिक जीवन की जटिलता का वर्णन अत्यंत सजीव दिखाई पड़ता है। इनके नाटकों के पात्रों की भाषा नवीनता के बौध के साथ–साथ सामाजिक धरातल से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। इनके नाटक सैद्धांतिकी और जड़ता को तोड़कर सामाजिक यथार्थ को संवेदनशीलता व व्यवहारिक धरातल पर प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं।

'आश्रय कुटी' नाटक में डॉ. वर्मा ने जीवन के अनुभव के मानवीयसार्थकता, संवेदनशीलता के साथ प्रकट किया है।इनके पात्रो की भाषा में एक नयापनदिखाई देता है। इस नाटक में वर्तमान समाज की विसंगतियों का जीवंत वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द– संवेदना, रूपक, करुणा, हृदय, मध्यमवर्ग, सजगता, कष्टानुभव।

नाटक

'नाटक' साहित्य की एक महत्वपूर्ण विद्या है जिसमें दृश्य व श्रव्य तत्वों का सुंदर समन्वय मिलता है। नाटक एक गतिमान क्रिया है। नाटक कथानक पात्रों के कथोपकथन या क्रियाकलापों के साथ–साथ आगे बढ़ता है। नाटक को सुनकर या देखकर प्रेक्षक नाटक के साथ एकाकार हो जाता है और प्रेषक का नाटक के साथ एकाकार हो जाना ही नाटक की सफलता भी है। नाटक एक बहुत ही लोकप्रिय विद्या है। यह भारत के साथ–साथ अन्य देशों में भी काफी लोकप्रिय विद्या मानी जाती है।

नाटक शब्द की उत्पत्ति 'नट्' धातु से हुई है। जिसका अर्थ होता है नाटक खेलने वाला या अभिनेता। शब्दकोशानुसार–

"नाटक शब्द का अर्थ वह साहित्यिक रचना है जिसमें कथावस्तु, चरित्र, क्रिया, व्यापार और संवाद योजना की ऐसी संरचना हो कि उसे मंच पर प्रस्तुत किया जा सके।"[1]

'रूपक' को नाटक का पर्यायवाची शब्द माना जाता है, लेकिन दोनों के अर्थ में सूक्ष्म अंतर है। संस्कृत के आचार्यों ने 'रूपक' को 'नाटक' से अधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। इन्होंने 'रूपक' के अट्ठारह भेद किए हैं,जिसमें नाटक भी एक भेद है।

"नाटक शब्द में गति एवं क्रियात्मकता की प्रमुखता होती है। जबकि रूपक में स्थूल रूप और वेशभूषा आदि को अधिक महत्व दिया जाता है।"[2]

आचार्य भारतमुनि ने नाटक को लोक व्यवहारों का अनुकरण कहा है – "लोक वृत्तानुकरण नाट्य मेतन्मयाकृतम्।"[3]

'नाटक' अन्य विधाओं की तुलना में जनसमुदाय पर व्यापक प्रभाव डालने की दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है। अभिनेयता व दृश्यता के कारण दर्शक रचना से अधिक तादात्म्य स्थापित करता है।

संवेदना

जो भाव हृदय को छू लेंस्पर्श कर लें। उसे संवेदना कहा जाता है। किसी भी भाव या स्थिति का मनव मस्तिष्क पर जो प्रभाव पड़ता है और उसकी जो प्रतिक्रिया होती है, उसे संवेदना कहा जाता है। संवेदना शब्द 'संस्कृत' का शब्द है। जिसका अर्थ सुख–दुख का अनुभव या ज्ञान की प्रतीति। संवेदना शब्द की व्युत्पत्ति 'वेदना' शब्द के पूर्व 'सम्' उपसर्ग लगा देने से होती है।सम् का अर्थ होता है –सम्यक रूप से, समान रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से।

"साधारणतः संवेदना या संवेदना शब्द का अर्थ होता है अनुभव करना, सुख–दुख आदि की प्रतीति करना, ज्ञान अथवा अनुभूति विदित होना। संवेदना शब्द के मूल में 'वेद' शब्द है। वेद से वेदना और संवेदना शब्द बने हैं। हिंदी में यह शब्द प्रायःसहृदयता, सहानुभूति के यथार्थ रूप में ही प्रचलित है।"[3]

छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति की उदात् वृत्तियों तक हो जाता है। इस तरह संवेदना का मूल अर्थ अनुभूति करना,सहृदयता, सहानुभूति, करुणा, सम–संवेदना रूप से अभिव्यक्त करना इंद्रियांनुभव आदि संवेदना के अर्थ की पुष्टि करते हैं।

डॉ. हरिशरण वर्मा कृत नाटक "आश्रय कुटी' में इन संवेदना, सहानुभूति सहृदयता, करुणा, आदि का स्पष्ट रूप दिखाई देता है। ये सभी संवेदनाएं, मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं के रूप में, स्त्री–पुरुष संबंधों के रूप में, नारी की त्रासदी के रूप में हमें एक नाटक में दिखाई देती है।'नाटक' में नायिका 'कमलेश' एक

मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखती है। उसका एक गलत कदम उसके परिवार को बर्बाद कर देता है। उसके पिता का समाज में, बिरादरी में उठना–बैठना, बोलना–चालना बंद हो आता है। समाज में अपने आप को स्थापित करने के लिए वे कमलेश से अपने सारे संबंध तोड़ लेते हैं। जब थानेदार कमलेश के पिता अमर से कहते हैं कि आपकी बेटी को अपने साथ ले जाओ तो अमर कहता है –

"अमर– गलती अनजाने में होती है, जो जानबूझकर की जाए वो गलती नहीं होती।

थानेदार– फिर आप अपनी बेटी को लेने कब आ रहे हैं?

अमर–कभी नहीं।

थानेदार –क्या आप अपनी बेटी से प्यार नहीं करते?

अमर–प्यार था, पर अब नहीं।"[4]

इस संवाद में करुणा रूपी संवेदना झलक रही है। एक बाप अपनी बेटी को उसकी एक गलती की वजह से स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसे डर है कि कहीं कमलेश की वजह से उसकी दूसरी बेटी की शादी भी मुश्किल में पड़ जाएगी। चाहते हुए भी सामाजिक ताने–बाने के आगोश में जकड़ा हुआ कमलेश का परिवार उसे नहीं अपना पाता।

"अमर– मैं उसे कभी माफ नहीं करूँगा।

थानेदार –क्यों?

अमर– सर, हमारा परिवार उसे कभी स्वीकार नहीं करेगा।

थानेदार– परंतु क्यों?

अमर–क्योंकि, मुझे अपनी दूसरी बेटी की शादी करनी है। वह कुलकलंकनी तो हमारे लिए मर गई। कृपा करके उसे हमारे घर ना भेजें, हमारी पहले भी बहुत बदनामी हो चुकी है।"[5]

संवेदना के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि – "संवेदना का अर्थ दुःखात्मक अनुभूति ही है। उसमें भी दुःखानुभूति से इसका गहरा संबंध है। संवेदना शब्द अपने वास्तविक याअवास्तविक दुःख पर कश्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दुख का अनुभव करना ही संवेदना हैं।"[6]

कमलेश भी अपने द्वारा उठाए गए एक गलत कदम के कारण दुखी हो जाती है। वह थानेदार से कहती है कि –

"मेरा भविष्य तो अब अंधकारमय है। कारण, मैंने नादानी न की होती और अशोक की चिकनी–चुपड़ी बातों में ना आई होती तो मेरा सुखी संसार न उजड़ता। बी.एस.सी. के बाद एम.एस.सी. की तैयारी कर रही होती है और फिर किसी अच्छे घर की बहू बनती।(विलाप करते हुए) माता–पिता की दुलारी बेटी आज उनके लिए घृणा के पात्र बन गई है। माता–पिता, भाई–बहन सब छूट गए। सर्वस्व लुट चुका है। आखिर मैं जीवित क्यों हूँ– मैं मर जाना चाहती हूँ – मैं मर जाना चाहती हूँ।[7]

संवेदना एक आंतरिक तत्व है जिसमें भाव, संवेग, मनोवृतियाँ, विचारों और अवधारणाओं का संयमित आवेग रहता है। टूटते परिवार, टूटता विश्वास, घर से अलगाव, घर से छुटकारा पाने का प्रयत्न, स्त्री–पुरुष का आपसी मनमुटाव और असुरक्षा की भावना, अपनी अस्मिता की खोज, कुंठित व्यक्तित्व के साथ–साथ नैतिक व आदर्श सोच, सहानुभूति, प्रेम आदि सूक्ष्म अभिव्यक्ति के रूप में संवेदना डॉ. हरीशरण वर्मा के नाटक 'आश्रय कुटी' में अभिव्यक्त हुई है। कमलेश को जब नारी संरक्षण गृह में भेजा जाता है तो उसे अहसास होता है कि वह एक गंदगी से निकलकर दूसरी गंदगी में आ फंसी है। उसका मन कुंठित हो जाता है। वह अपने साथ हुए दुराचारों से तंग आकर अपनी आत्महत्या का प्रयास करती है और छत से छलांग लगा देती है। किंतु छलांग लगाने के बाद भी वह बच जाती है। वह कहती है–

"हे भगवान, मृत्यु भी मुझे धकेल कर चली गई। ठीक होने के बाद मैं फिर उस यातना गृह मेंझोंक दी जाऊंगी। परंतु इस बार वह किसी शारीरिक शोषण से नहीं बच पाएगी।"[8]

कुंठा, असुरक्षा की भावना के साथ–साथ प्रेम, नैतिकता, आदर्श रूपी सूक्ष्म अभिव्यक्ति के रूप में संवेदना के दर्शन भी "आश्रय कुटी" नाटक में होते हैं। पंकज, जोकि कमलेश को गुंडों से बचाता है। अस्पताल में भर्ती कमलेश के लिए एक बार फिर मसीहा साबित होता है। कमलेश कसमकस में थी। उसे नहीं पता था कि अस्पताल से छुट्टी मिलने पर वह कहां जाएगी, उसका क्या होगा।तभी पंकज उसके लिए भगवान साबित होता है। वह अचानक अस्पताल लाकर उसे अपने साथ अपने घर, अपनी माँ,पत्नी व बच्चों के पास ले जाने की बात कहता है। वह कहता है –

"यदि तुम्हारी सहमति हो तो मैं तुम्हें अपने घर ले चल सकता हूँ।

कमलेश –आपके घर ..... आपको कोई असुविधा तो नहीं होगी?

पंकज–नहीं?

कमलेश –क्यों?

पंकज–घर बड़ा है। कई किराएदार रहते हैं।

कमलेश– मेरी सेवा कौन करेगा?

पंकज– जब तक ठीक नहीं हो जाती, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। गांव से मेरी माँ भी आने वाली है। वे भी तुम्हारी देखभाल करेंगी।"[9]

पंकज का पूरा परिवार कमलेश को दिल से अपनाता है। पंकज और उसका दोस्त विनोद कमलेश को आगे पढ़ने में सहायता करते हैं, उसकी कोचिंग सेंटर भी खुलवा देते हैं। पंकज की माँ दिल से उसे अपनी बेटी स्वीकार कर लेती है। कमलेश भी उसे अपना ही घर समझने लगती है। कमलेश को धोखा देने वाले लड़के को भी

पंकज व उसका दोस्त सजा दिलवाते हैं। अतः डॉ. हरिशरण वर्मा द्वारा रचित नाटक 'आश्रय कुटी' संवेदनाओं से निहित है। इस नाटक में हृदय से हृदय तक यात्रा में संवेदना की मुख्य भूमिका रही है। शब्दों के माध्यम से संवेदना की व्यापकता और विविधता को स्थान–स्थान पर प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

अंततः हम कह सकते हैं कि आशाओं, निराशाओं, सुख–दुख, अपेक्षाओं, मान–अपमान, प्रेम,घृणा, कुंठा आदि के साथ–साथ सामाजिक विषमताओं,रूढ़ियों, परंपराओं में जकड़ा मनुष्य, उसकी टूटती बिखरती आशा, मध्यमवर्गीय तनाव आदि की सोद्देश्य अनुभूति इस नाटक में संवेदना के माध्यम से की गई है। अतः संवेदना ही वह साधन है जो हृदय को हृदय से मिलाने का कार्य करती है। जीव व्यश्टि से इतर सभी संबंध जोड़ती है। डॉ. हरिशरण वर्मा ने अपने नाटक के माध्यम से अपने युग के यथार्थ और अपनी संवेदना को मिलाकर, मानवीय संवेदना में ढलकर एक नया रूप प्रकट करने की कोशिश की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सं. गोविन्द चातक, 'आधुनिक हिन्दी शब्दकोश', पृ० सं० 306
2. डॉ0 गणपति चन्द्र, 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत', पृ० सं० 292
3. डॉ0 वीरेन्द्र भारद्वाज, 'अग्नि सागर', संवेदना पक्ष, पृ० सं० 41
4. डॉ0 हरिशरण वर्मा, 'आश्रय कुटी', पृ० सं० 45
5. वही, पृ० सं० 46
6. आचार्य रामचन्द्र शुल्क, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० सं० 691–692
7. डॉ. हरिश्राण वर्मा, 'आश्रय कुटी', पृ० सं० 46–67
8. वहीं, पृ० सं० 59
9. वहीं, पृ० सं० 65

डॉ0 प्रवेश कुमारी
सहायक आचार्य
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक
दूरभाष न 9466429844
अणुडाक parveshruhil4@gmail.com

52

भारतीय संस्कृति और नारी– विमर्श

डॉ0 दान पति तिवारी

सारांश –

प्राचीन भारत में महिलाएं काफी उन्नत व सुदृढ़ थीं। समाज में पुत्र का महत्व था, पर पुत्रियों को समान अधिकार और सम्मान मिलता था। मनु ने भी बेटी के लिए संपति में चौथे हिस्से का विधान किया। उपनिषद काल में पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी शिक्षित किया जाता था। सहशिक्षा व्यापक रूप से दिखती है, लव–कुश के साथ आत्रेयी पढ़ती थी। नारी भी सैनिक शिक्षा लेती थी। महाभारत काल से नारी का पतन होना शुरू हुआ तो मध्यकाल आते–आते नारी पूरी तरह से पुरुषों की गुलाम, दासी और भोग्या बन गई

हजारों भारतीय महिलाओं ने अपने कर्म, व्यवहार और बलिदान से विश्व में आदर्श प्रस्तुत किया है। प्राचीनकाल से ही भारत में पुरुषों के साथ महिलाओं को भी समान अधिकार और सम्मान मिला है इसीलिए भारतीय संस्कृति और धर्म में नारियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन भारतीय महिलाओं ने जहां हिंदू धर्म को प्रभावित किया वहीं इन्होंने संस्कृति, समाज और सभ्यता को नया मोड़ दिया। भारतीय इतिहास में इन महिलाओं के योगदान को कभी भी भूला नहीं जा सकता।

माता पार्वतीः भारतीय महिलाओं में सबस`विराट व्यक्तित्व है मां पार्वती का। दुनिया भर की महिलाओ`के लिए वे आदर्श और प्रेरणा स्रोत हैं।माता सती नेही पार्वती के रूप में दूसरा जन्म लिया था।पहले जन्म में वे ब्रह्मा के पुत्र दक्ष की पुत्री थी और उन्होंन `भगवान शिव स`विवाह किया था। बाद में दक्ष द्वारा शिव के अपमान के चलते उन्होंने यज्ञ में कूद कर आत्मदाह कर लिया था।दूसरे जन्म में उन्होंने हिमालयराज के यहां जन्म लिया और पार्वती कहलाई।पार्वती इसलिए की वह पर्वत राज की राजकुमारी थीं।आज भी वह पर्वतों की रानी है।इस जन्म में भी उन्होंने भगवान शिव से विवाह किया।

माता सती और उनके दूसरे जन्म की गाथा देवी भागवत पुराण में दर्ज है। वे धरती पर ही कश्मीर के क्षेत्र में रहती थी।ऋषि कश्यप के साथ मिलकर उन्होंने कई असुरों का वध किया था।आज भी संपूण `हिमालय के पर्वत क्षेत्र की वही माता रक्षा करती है।उन्हें पहाड़ों की देवी कहा जाता है।

शिव की पत्नी मां पार्वती का ध्यान करना ही सही माग `है।अन्य किसी देवी का ध्यान शाक्त धर्म के विरुद्ध है।वहीं जगदम्बा, उमा, गौरी, कालका और सती हैं।इनके दो पुत्र हैंगणेश और कार्ति के यत था एक पुत्री है वन माला।

ब्रह्मवादिनी वेद ज्ञऋषिगार्गीः वेदों की ऋचाओं को गढ़न`में भारत की बहुत–सी स्त्रियों का योगदान रहा है उनमें`से हीएकहै गर्ग वंश में`वचक्नु नामक महर्षि की पुत्री श्वाचकन्वीगार्गीश। कृष्ण–अर्जुन संवाद से जिस तरह गीता का जन्म हुआ उसी तरह याज्ञवल्क्य–गार्गीकेप्रश्न–उत्तरों के कारण श्बृहदारण्यकउपनिषदश्कीऋचाओं का निर्माण हुआ। उपनिषदवेदों का एक हिस्सा है जिन्हें वे दांत भी कहते हैं।

कौशल्या : भगवान राम की माता कौशल्या बहुत ही सहृदय थीं। अपने पुत्र का वन–गमन उसके लिए सबसे हृदयविदारक घटना थीं। माता कौशल्या ने अपने पुत्र को इस प्रकार संस्कारित किया कि विमाता कैकेयी के कुभावों से भी राम विचलित नहीं हुए और सहर्ष वनवासी होना स्वीकार कर लिया।

परिस्थितिवश कौशल्या जीवनभर दुरूखी रहती हैं। अपने वास्तविक अधिकार से वंचित होकर उनका जीवन करुण और दयनीय हो जाता है लेकिन फिर भी वे संयम और सामंजस्यता से पातिव्रत्य, धर्म, साधुसेवा, भगवदाराधना का पालन करती रहीं। कौशल्या की कथा और चरित्र पर कई विद्वानों ने ग्रंथ लिखे हैं। रामायण और रामचरित मानस में उनके व्यक्तित्व का वर्णन विस्तार से मिलता है।

शबरी : शबरी को श्रीराम के प्रमुख भक्तों में गिना जाता है। शबरी का वास्तविक नाम 'श्रमणा' था। वह भील समुदाय की 'शबरी' जाति से थीं। शबरी के पिता भीलों के राजा थे। शबरी जब विवाह के योग्य हुई तो उसके पिता ने एक दूसरे भील कुमार से उसका विवाह पक्का कर दिया और धूमधाम से विवाह की तैयारी की जाने लगी। विवाह के दिन सैकड़ों बकरे–भैंसे बलिदान के लिए लाए गए।

सीता : राजा जनक की पुत्री का नाम सीता इसलिए था कि वे जनक को हल चलाते वक्त खेत की रेखाभूमि से प्राप्त हुई थीं इसलिए उन्हें भूमिपुत्री भी कहा गया। राजा जनक की पुत्री होने के कारण उन्हें विदैही भी कहा गया। जनक विदैही संस्कृति और धर्म के अनुयायी थे।

राम से विवाह के बाद सीता के जीवन में एक नया मोड़ आया। राम के वनवास काल में सीता का रावण ने हरण कर लिया था। सीता को अशोक वाटिका में रखकर रावण ने साम, दाम, दंड, भेद आदि सभी उपायों से सीता को खुद से विवाह करने के प्रयास किए किंतु सीता ने अपने पारिवारिक आदर्श का परिचय देते हुए केवल श्रीराम का ही ध्यान किया। पति–परायण, पतित भावना, भक्ति भावना, मृदुता, स्नेहमयी, वात्सल्यमयी सीता ने अपने चरित्र से सभी नारियों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया

गांधारी : गांधार देश के सुबल नामक राजा की कन्या होने के कारण धृतराष्ट्र की पत्नी को गांधारी कहा जाता था। गांधारी ने जब सुना कि उसका भावी पति अंधा है तो उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली

जिससे कि पतिव्रत धर्म का पालन कर पाए। यह पट्टी उसने आजन्म बांधे रखी। गांधारी पतिव्रता के रूप में आदर्श थीं।

शिव के वरदान से गांधारी के 100 पुत्र हुए, जो कौरव कहलाए। गांधारी दुर्योधन आदि की माता थी। महाभारत युद्ध के बाद गांधारी अपने पति के साथ वन में गई और वहां दावाग्नि में पति के साथ भस्म हो गईं।

द्रौपदीः द्रौपदी का जन्म महाराज द्रुपद के यहां होने सेत था द्रुपद पुत्री होने के कारण उन्हें द्रौपदी कहा जाता था।द्रौपदी को यज्ञ सेनी इसलि एक कहा जाता है कि मान्यता अनुसार उनका जन्म यज्ञ कुण्ड स हुआ था।उन्हें पांचाली भी कहा जाता था क्योंकि उनके पिता पांचाल देश के नरेश थे।उनका एक नाम कृष्णा भी था।द्रौपदी केभाई थे धृष्ट द्युम्न जिन्होंने महाभारत के युद्ध में गुरुद्रोण का सिर काट दिया था।

द्रौपदी के स्वयंवर में महाराज द्रुपदने शर्त रखी कि कि निरंतर घूमते हुए यंत्र के छिद्र में से जो भी वीर एक विशेष धनुष की प्रत्यं चाचढ़ा कर दिए गए पांच बाणों से, छिद्र केऊपर लगे,लक्ष्य को भेद देगा उसी के साथ द्रौपदी का विवाह कर दिया जाएगा।

कुंती–माद्री रू एक और गांधारी थी जिसके 100 पुत्रों के पालन–पोषण में राजपाट लगा था तो दूसरी ओर कुंती थी, जो अकेली ही अपने 5 पुत्रों का लालन–पालन कर रही थी। कुंती ने अपने पुत्रों को जो संस्कार और शिक्षा दी वह उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है।

कुंती श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव की बहन थीं। महाराज कुंतीभोज से इनके पिता की मित्रता थी, उसके कोई संतान नहीं थी, अतरू ये कुंतीभोज के यहां गोद आईं और उन्हीं की पुत्री होने के कारण इनका नाम कुंती पड़ा। धृतराष्ट्र के भाई महाराज पाण्डु के साथ कुंती का विवाह हुआ, वे राजपाट छोड़कर वन चले गए।

देवकी–यशोदाः भगवान कृष्ण की माता देवकी ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण वर्ष जेल में ही बिता दिए और कृष्ण को जिस माता ने पाला उनका नाम था यशोदा। इतिहास में देवकी की कम लेकिन यशोदा की चर्चा ज्यादा होती है, क्योंकि उन्होंने ही कृष्ण को बेटा समझकर पाल–पोसकर बड़ा किया और एक आदर्श मां बनकर इतिहास में अजर–अमर हो गई। माता पार्वती और माता यशोदा जैसी मां को ढूंढना मुश्किल है।

अरुंधति : अरुंधति महान तपस्विनी थी। अरुंधति ऋषि वशिष्ठ की पत्नी थी। आज भी अरुंधति सप्तर्षि मंडल में स्थित वशिष्ठ के पास ही दिखाई देती हैं।

अरुंधति भारत की महान महिलाओं में से एक है। भारत में नवविवाहित लड़कियां आकाश में अरुंधति को देखकर उनकी तरह आदर्श पत्नी बनने की कामना करती हैं। आकाश में एक तारा है जिसका हमारे प्राचीन वैज्ञानिकों ने नाम अरुंधति रखा है।

कहत हैं किस बसे महान कार्य होता है प्रत्येक जीव–जंतु और मानव की रक्षा करना। अरुंधति महानत पस्वीनी थी।अरुंधतिऋषिवसिष्ठ की पत्नी थी।आज भी अरुंधति सप्तर्षि मंडल में स्थित वसिष्ठ के पास ही दिखाई देती हैं।

किसी भी देश या समाज के विकास माप कों को महिलाओं और बच्चों की स्थिति ही स्पष्ट करती है।क्योंकि बच्चा जहां देश का भविष्य है वहीं स्त्री उसकी पहली शिक्षिका,पोषिका और दिग्दर्शिका है लेकिन वर्तमान समय में तमाम प्रयायों के बावजूद देश म ंमहिलाओं और बच्चों की स्थिति बेहद चिंताजनक है। वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्र संघ या यूनिसेफ जैसे अंतराष्ट्रीय संगठन जो आज भी अशिक्षा, निर्धनता और गरीबी के कारण कुपोषित जीवनजी रहे हैं बच्चों

निष्कर्ष–

उपरोक्तयह बताने के लिए काफी है कि महिला सशक्तीकरण एवं ज्ञानवान समाज के उदय में महिला शिक्षा का कितना महत्वपूर्ण योगदान है। जहा हम आधुनिक समाज एवं आजादी के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी नारी शिक्षा में शत–प्रतिशत तो दूर पुरूषों के समान स्तर पर भी नहीं पहुँच पाएँ है। जब हम वैदिक काल पर नजर डालते है तो हजारों साल पहले का समाज भी ज्यादा उन्नतीशील दिखाई देता है। जो जीवन को व्यर्थ नहीं मानता है बल्कि प्रवृत्ति मार्गी है जो जीवन के प्रति आशावादी एवं कर्मठ है। उनकी प्रार्थना की ऋचाएँ ऐसी है जो आदमियों के भीतर उमंग जगाती है, उनकी प्रार्थना लम्बी आयु, स्वस्थ शरीर, विजय, आनन्द और समृद्धि के लिए ही की जाती थी।

निश्चय ही ऐसे समाज में रहने वाली हर जाति, वर्ण, वर्ग एवं नारी को भी हर क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्रता मिली थी। वैदिक समाज में हमें पर्याप्त सामाजिक गतिशीलता देखने को मिलती है। यहीं वजह है कि वैदिकयुगीन नारियाँ आज भी नारियों के लिए आदर्श बनी हुई है

संदर्भ सूची–

1–त्रिपाठी, कुसुम. महिलाएँ दशा और दिशा. कुरूक्षेत्र. अंक, मार्च. 2007.

2– , अरविन्द और सुरेन्द्र कटारिया. सं. भारत में महिला सशक्तीकरणः प्रयास और बाधाए. मलिक एण्ड कम्पनी. जयपुर. 2013. पृ. 262.

3– रामधारी सिंह. दिनकर संस्कृति के चार अध्याय

4– वही

5– वही

6.डा० दानपति तिवारी एसो०प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष संस्कृत–विभाग साकेत पी०जी०कालेज अयोध्या –उ०प्र०।

डॉ0 दान पति तिवारी
एसो० प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत–विभाग
साकेत पी०जी० कालेज अयोध्या
उ०प्र०।

53

वैदिक साहित्य और नारी की महिमा।

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी

सारांशः

प्राचीन वैदिक काल से ही नारी का स्थान सम्माननीय रहा है और कहा गया है –

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः।।

जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा, वस्त्र, भूषण तथा मधुर वचनादि द्वारा सत्कार नहीं होता है, उस कुल में सब कर्म निष्फल होते हैं। उन दिनों परिवार मातृसत्तात्मक था। खेती की शुरूआत तथा एक जगह बस्ती बनाकर रहने की शुरूआत नारी ने ही की थी, इसलिए सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भ में नारी है किन्तु कालान्तर में धीरे–धीरे सभी समाजों में सामाजिक व्यवस्था मातृ–सत्तात्मक से पितृसत्तात्मक होती गई और नारी समाज के हाशिए पर चली गई। आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। ऋग्वेद काल में स्त्रियां उस समय की सर्वोच्च शिक्षा अर्थात् बृह्मज्ञान प्राप्त कर सकतीं थीं। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। नारियां शिक्षा ग्रहण करने के अलावा पति के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करतीं थीं। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, घोषाल, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं।

प्रमुखविदुषिया–

देवमाता अदिति–

– ये चारों वेदों की प्रकाण्ड विदुषि थी। ये दक्ष प्रजापति की कन्या एवं महर्षि कश्यप की पत्नी थीं। इन्होंने अपने पुत्र इन्द्र को वेदों एवं शास्त्रों की इतनी अच्छी शिक्षा दी कि उस ज्ञान की तुलना किसी से सम्भव नहीं थी, यही कारण है कि इन्द्र अपने ज्ञान के बल पर तीनों लोकों का अधिपति बना। अदिति को अजर–अमर माना जाता है।

देवसम्राज्ञी शची –

इन्द्र की पत्नी थीं, वे वेदों की प्रकांड विद्वान थी। ऋग्वेद के कई सूक्तों पर शची ने अनुसन्धान किया। शचीदेवी पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। शची को इंद्राणी भी कहा जाता है। ये विदुषी के साथ–साथ महान नीतिवान भी थी। इन्होंने अपने पति द्वारा खोया गया सम्राज्य एवं पद प्रतिष्ठा ज्ञान के बल पर ही दोबारा प्राप्त की थी।

सती शतरूपा स्वायम्भुव मनु की पत्नी थीं। वे चारों वेदों की प्रकाण्ड विदुषी थी। जल प्रलय के बाद मनु और शतरूपा से ही दोबारा सृष्टि का आरम्भ हुआ। ये योगशास्त्र की भी प्रकाड विद्वान और साधक थीं।

शाकल्य देवी –

महाराज अश्वपति की पत्नी थीं। एक बार अश्वपति महाराज ने ऋषियों से कहा कि मैं राष्ट्र में कन्याओं का भी निर्वाचन चाहता हूं। देश में ऐसी कौन महान वेदों की विदुषी है जो देवकन्याओं को वेदों की शिक्षा प्रदान करे। ऋषियों ने बताया कि आपकी पत्नी से बढ़कर वेदों की विदुषी और कोई नहीं है। तो राजा ने अपनी पत्नी शाकल्य देवी को वनवास दे दिया, ताकि वे वनों में रहकर कन्याओं के गुरुकुल स्थापित करें, आश्रम बनाएं और उसमें देश की कन्याएं शिक्षा पाएं। उन्होंने ऐसा ही किया। शाकल्य देवी ऐसी पहली विदुषी हैं, जिन्होंने कन्याओं के लिए शिक्षणालय स्थापित किए थे।

सन्ध्या–

वेदों की प्रकाण्ड विद्वान थीं। इन्होंने महर्षि मेधातिथि को शास्त्रार्थ में पराजित किया। वे यज्ञ को सम्पन्न कराने वाली पहली महिला पुरोहित थी। उन्हीं के नाम पर प्रातः संध्या और सायं सन्ध्या का नामकरण हुआ।

विदुषी अरून्धती ब्रहर्षि वसिष्ठ जी की धर्मपत्नी थीं। ये भी वेदों की प्रकाण्ड विद्वान थी। अपने ज्ञान के बल पर ही ये एकमात्र ऐसी विदुषी हैं, जिन्होंने सप्तर्षि मंडल में ऋषि पत्नी के रूप में गौरवशाली स्थान पाया। महर्षि मेधातिथि के यज्ञ में ये बचपन से ही भाग लेती थीं और यज्ञ के बाद वेदों की बातों पर तर्क–वितर्क किया करती थी।

ब्रह्मवादिनी घोषा–

काक्षीवान् की कन्या थीं। इनको कोढ़ रोग हो गया था, लेकिन उसकी चिकित्सा के लिए इन्होंने वेद और आयुर्वेद का गहन अध्ययन किया और ये कोढी होते हुए भी विदुषी और ब्रह्मवादिनी बन गई। अश्विनकुमारों ने इनकी चिकित्सा की और ये अपने काल की विश्वसुन्दरी भी बनी।

ब्रह्मवादिनी विश्ववारा वेदों पर अनुसन्धान करने वाली महान विदुषी थीं। ऋग्वेद के पांचवें मण्डल के द्वितीय अनुवाक के अटठाइसवें सूक्त षड्ऋकों का सरल रूपान्तरण इन्होंने ही किया था। अत्रि

महर्षि के वंश में पैदा होने वली इस विदुषी ने वेदज्ञान के बल पर ऋषि पद प्राप्त किया था।

ब्रह्मवादिनी अपाला–

आपला अत्रि मुनि के वंश में ही उत्पन्न हुई थीं। अपाला को भी कुष्ठ रोग हो गया था, जिसके कारण इनके पति ने इन्हें घर से निकाल दिया था। ये पिता के घर चली गई और आयुर्वेद पर अनुसंधान करने लगी। सोमरस की खोज इन्होंने ही की थी। इन्द्र देव ने सोमरस इनसे प्राप्त कर इनके ठीक होने में चिकित्सीय सहायता की। आयुर्वेद चिकित्सा से ये विश्वसुंदरी बन गई और वेदों के अनुसंधान में संलग्न हो गईं। ऋग्वेद के अष्टम मंडल के ९१वें सूक्त की १ से ७ तक ऋचाएं इन्होंने संकलित कीं।

विदुषी तपती–

आदित्य की पुत्री और सावित्री की छोटी बहन थी। देवलोक, दैत्यलोक, गान्धर्वलोक और नागलोक में उन दिनों उनसे अधिक सुन्दरी कोई और नहीं थी। वे वेदों की भी प्रकाण्ड विद्वान थी। उनके रूप और गुणों से प्रभावित होकर ही अयोध्या के महाराजा संवरण ने उनसे विवाह किया था। तपती ने अपने पुत्र कुरु को स्वयं वेदों की शिक्षा दी, जिनके नाम पर कुरूकुल प्रतिष्ठित हुआ।

ब्रह्मवादिनी वाक–

अभृण ऋषि की कन्या थी। ये प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानिनीं थीं। इन्होंने अन्न पर अनुसन्धान किया और अपने युग में उन्नत खेती के लिए वेदों के आधार पर नए–नए बीजों को खेती के लिए किसानों को अनुसंधान से पैदा करके दिया।

ब्रह्मवादिनी रोमशा–

बृहस्पति की पुत्री और भावभव्य की धर्मपत्नी थी। इनके सारे शरीर में रोमावली थी, इससे इनके पति इन्हें नहीं चाहते थे। लेकिन इन्होंने ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया, ऐसी बातों का प्रचार किया, जिससे नारी शक्ति में बुद्धि का विकास होता हो।

ब्रह्मवादिनी गार्गी–

के पिता का नाम वचक्नु था, जिसके कारण इन्हें वाचक्नवी भी कहते हैं। गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने के कारण इन्हें गार्गी कहा जाता है। ये वेद शास्त्रों की महान विद्वान थी। इन्होंने शास्त्रार्थ में अपने युग में महान विद्वान महिर्ष याज्ञवल्क्य तक को हरा दिया था।

विदुषी मैंत्रेयीदृ

महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी थीं। इन्होंने पति के श्रीचरणों में बैठकर वेदों का गहन अध्ययन किया। पति परमेश्वर की उपाधि इन्हीं के कारण जग में प्रसिद्ध हुई, क्योंकि इन्होंने पति से ज्ञान प्राप्त किया था और फिर उस ज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए कन्या गुरुकुल स्थापित किए।

विदुषी सुलभा–

महाराज जनक के राज्य की परम विदुषी थी। इन्होंने शास्त्रार्थ में राजा जनक को हराया एवं स्त्री शिक्षा के लिए शिक्षणालय की स्थापना की।

विदुषी लोपामुद्रा महिर्ष अगस्त्य की धर्मपत्नी थीं। ये विदर्भ देश के राजा की बेटी थी। राजकुल में जन्म लेकर भी ये सादा जीवन उच्च विचार की समर्थक थी, तभी तो इनके पति ने इन्हें कहा था– तुष्टोअहमस्मि कल्याणि तव वृत्तेन शोभने, अर्थात् कल्याणी तुम्हारे सदाचार से मैं तुम पर बहुत संतुष्ट हूं। ये इतनी महान विदुषी थी कि एक बार इन्होंने अपने आश्रम में राम, सीता एवं लक्ष्मण को ज्ञान की बहुत सी बातों की शिक्षा दी थी।

विदुषी उशिज–

ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि की धर्मपत्नी थी। महर्षि काक्षीवान इन्हीं के सुपुत्र थे। इनके दूसरे पुत्र दीर्घश्रवा महान ऋषि थे। वेदों की शिक्षा इन्होंने ही अपने पुत्रों को प्रदान की थी। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के ११६ से १२१ तक के मन्त्र पर अनुसंधान किया।

विदुषी प्रातिथेयी–

महर्षि दधीचि की धर्मपत्नी थी। ये विदर्भ देश के राजा की कन्या और लोपामुद्रा की बहिन थीं। इनका पुत्र पिप्पललाद बहुत बडा विद्वान हुआ है।

ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी। ये बहुत बडी विदुषी एवं ब्रह्मज्ञानसम्पन्ना थीं।

विदुषी विद्योत्तमा से परास्त होकर पण्डितों ने एक मूर्ख को मौनी गुरु बताकर संकेत से शास्त्रार्थ की चुनौती दी थी। पण्डितों ने दो अंगुली और मुक्का आदि के अलग अर्थ बताकर विद्योत्तमा को परास्त घोषित करके मूर्ख से विवाह करने को विवश कर दिया। विद्योत्तमा ने पति से उष्ट्र को उसट सुनकर उसे रात में ही घर से भगाकर दरवाजा बंद कर दिया। ''अनावृतकपाटं द्वारं देहि।''–कुछ वर्ष बाद एक घनघोर रात्रि में पति ने पुकारा। विद्योत्तमा ने द्वार खोलकर कहा, ''अस्ति कश्चित वाक् विशेषः।'' पत्नी के उपरोक्त तीन शब्दों पर अस्ति से कुमार सम्भव महाकाव्य, कश्चित् से मेघदूत खण्डकाव्य और वाक्विशेषः से

कुमार सम्भव महाकाव्य, कश्चित् से मेघदूत खण्डकाव्य और वाक्विशेषः से रघुवंश महाकाव्य की रचना पति महोदय ने कर डाली। इन तीनों कालजयी ग्रंथ के रचनाकार थे वही अतीत के मूर्ख, विश्व के सर्वश्रेष्ठ संस्कृत साहित्यकार अमर महाकवि कालिदास।

निष्कर्ष–

वैदिक काल में ''महिलाओं की स्थिति समाज में काफी ऊंची थी और उन्हें अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे धार्मिक क्रियाओं में भाग ही नहीं लेती थीं बल्कि, क्रियाएं संपन्न कराने वाले पुरोहितों और ऋषियों का दर्जा भी उन्हें प्राप्त था।'' उस समय महिलाएं धर्म शास्त्रार्थ इत्यादि में पुरूषों की तरह ही भाग लेती थी

संदर्भ सूची–

1. अरविन्द और सुरेन्द्र कटारिया. सं. भारत में महिला सशक्तीकरणः प्रयास और बाधाए. मलिक एण्ड कम्पनी. जयपुर. 2013. पृ. 262.

2. रामधारी सिंह. दिनकर संस्कृति के चार अध्याय
3. विमल, कुमार. रामधारी सिंह दिनकर रचना–संचयन. द्विवेदी, कपिलदेव. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति गोयल, प्रीतिप्रभा. भारतीय संस्कृति
4. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ. 257–58
5. ऋग्वेद (1.109.12), मैत्रायाणी संहिता (1.10.1), निरूक्त (6.9,1.3) तैत्तिरीय

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी
(प्रधानाचार्य)
एल0 पी0 के0 इण्टर कालेज
सरदार नगर, बसडिला
गोरखपुर
उ०प्र०

54

नाथ सम्प्रदाय में साधनात्मक समन्वय भावना

डॉ0 किरन मिश्रा

सारांशः

नाथ सम्प्रदाय भारत का एक हिंदू धार्मिक पन्थ है। मध्ययुग में उत्पन्न इस सम्प्रदाय में बौद्ध, शैव तथा योग की परम्पराओं का समन्वय दिखायी देता है। यह हठयोग की साधना पद्धति पर आधारित पंथ है। शिव इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु एवं आराध्य हैं। इसके अलावा इस सम्प्रदाय में अनेक गुरु हुए जिनमें गुरु मच्छिन्द्रनाथ ध्मत्स्येन्द्रनाथ तथा गुरु गोरखनाथ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। नाथ सम्प्रदाय समस्त देश में बिखरा हुआ था। गुरु गोरखनाथ ने इस सम्प्रदाय के बिखराव और इस सम्प्रदाय की योग विद्याओं का एकत्रीकरण किया, अतः इसके संस्थापक गोरखनाथ माने जाते हैं। भारत में नाथ सम्प्रदाय को सन्यासी, योगी, जोगी, नाथ, अवधूत, कौल, उपाध्याय (पश्चिम उत्तर प्रदेश में), आदि नामों से जाना जाता है। इनके कुछ गुरुओं के शिष्य मुसलमान, जैन, सिख और बौद्ध धर्म के भी थे। इस पंथ के लोगो को शिव का वंशज माना जाता है । नाथ सम्प्रदाय में किसी भी प्रकार का भेद–भाव आदि काल से नहीं रहा है। इस संप्रदाय को किसी भी जाति, वर्ण व किसी भी उम्र में अपनाया जा सकता है।सन्यासी का अर्थ काम , क्रोध , मोह , लोभ आदि बुराईयों का त्याग कर समस्त संसार से मोह छोड़ कर शिव भक्ति में समाधि लगाकर लीन होना बताया जाता है। प्राचीन काल में राजे –महाराजे भी अपना राज–पाठ छोड़ सन्यास इसी लिए लिया करते थे ताकि वे अपना बचा हुआ जीवन सांसारिक परेशानियों को त्याग कर साधुओ की तरह साधारण जीवन बिताते थे। नाथ संप्रदाय को अपनाने के बाद 7 से 12 साल की कठोर तपस्या के बाद ही सन्यासी को दीक्षा दि जाती थी। विशेष परिस्तिथियों में गुरु अनुसार कभी भी दीक्षा दि जा सकती है। दीक्षा देने से पहले वा बाद में दीक्षा पाने वाले को उम्र भर कठोर नियमो का पालन करना होता है। वो कभी किसी राजा के दरबार में पद प्राप्त नहीं कर सकता , वो कभी किसी राज दरबार में या राज घराने में भोजन नहीं कर सकता परन्तु राज दरबार वा राजा से भिक्षा जरुर प्राप्त कर सकता है। उसे बिना सिले भगवा वस्त्र धारण करने होते है ।हर साँस के साथ मन में आदेश शब्द का जाप करना होता है था किसी अन्य नाथ का अभिवादन भी आदेश शब्द से ही करना होता है । सन्यासी योग व जड़ी– बूटी से किसी का रोग ठीक कर सकता है पर एवज में वो रोगी या उसके परिवार से भिक्षा में सिर्फ अनाज या भगवा वस्त्र ही ले सकता है। वह रोग को ठीक करने की एवज में किसी भी प्रकार के आभूषण , मुद्रा आदि ना ले सकता हैऔर न इनका संचय कर सकता। सांसारिक मोह को त्यागना पड़ता है दीक्षा देने के बाद सन्यासी ,जोगी , बाबा के दोनों कानों में छेड़ किये जाते है और उनमे गुरु द्वारा ही कुण्डल डाले जाते है । जिन्हें धारण करने के बाद निकला नहीं जा सकता।बिना कुण्डल के किसी को योगी ,जोगी ,बाबा, सन्यासी नहीं माना जा सकता स नाथ सम्प्रदाय में सात्विक भाव से शिव की भक्ति की जाती है। वे शिव को श्अलखश (अलक्ष) नाम से सम्बोधित करते हैं। ये अभिवादन के लिए श्आदेशश या आदीश शब्द का प्रयोग करते हैं। अलख और आदेश शब्द का अर्थ प्रणव या श्परम पुरुषश होता है। नाथ साधु–सन्त हठयोग पर विशेष बल देते हैं।

श्री गोरक्ष वाणी–पवन ही जोग, पवन ही भोग,पवन इ हरै, छतीसौ रोग, या पवन कोई जाणे भ्, सो आपे करता, आपे दैव!

ष् ग्यान सरीखा गिरु ना मिलिया, चित्त सरीखा चेला, मन सरीखा मेलु ना मिलिया, ताथै, गोरख फिरै, अकेला !

कायागढ भीतर नव लख खाई, दसवँ द्वार अवधू ताली लाई ! कायागढ भीतर देव देहुरा कासी, सहज सुभाइ मिले अवनासी ! बदन्त गोरखनाथ सुणौ, नर लोइ, कायागढ जीतेगा बिरला नर कोई

नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख गुरु–

आदिगुरू :– भगवान शिव (हिन्दू देवता)

मच्छेन्द्रनाथ रू– 8वीं या 9वीं सदी के योग सिद्ध, ष्तंत्रष् परंपराओं और अपरंपरागत प्रयोगों के लिए मशहूर

गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) रू– 10वीं या 11वीं शताब्दी में जन्म, मठवादी नाथ संप्रदाय के संस्थापक, व्यवस्थित योग तकनीकों, संगठन , हठ योग के ग्रंथों के रचियता एवं निर्गुण भक्ति के विचारों के लिए प्रसिद्ध है

जालन्धरनाथ :– 12वीं सदी के सिद्ध, मूल रूप से जालंधर (पंजाब) निवासी, राजस्थान और पंजाब क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त है स

कानीफनाथ :– 14वीं सदी के सिद्ध, मूल रूप से बंगाल निवासी, नाथ सम्प्रदाय के भीतर एक अलग उप–परंपरा की शुरूआत करने वाले

चौरंगीनाथ :– बंगाल के राजा देवपाल के पुत्र, उत्तर–पश्चिम में पंजाब क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त, उनसे संबंधित एक तीर्थस्थल सियालकोट (अब पाकिस्तान में) में हैस

चर्पटीनाथ :–

हिमाचल प्रदेश के चंबा क्षेत्र में हिमालय की गुफाओं में रहने वाले, उन्होंने अवधूत का प्रतिपादन किया और बताया कि व्यक्ति को अपनी आन्तरिक शक्तियों को बढ़ाना चाहिए क्योंकि बाहरी प्रथाओं से हमें कोई फर्क नहीं पड़ता हैस

भर्तृहरिनाथ :

उज्जैन के राजा और विद्वान जिन्होंने योगी बनने के लिए अपना राज्य छोड़ दियास

गोपीचन्दनाथ :

बंगाल की रानी के पुत्र जिन्होंने अपना राजपाट त्याग दिया थास

रत्ननाथ रू– 13वीं सदी के सिद्ध, मध्य नेपाल और पंजाब में ख्यातिप्राप्त, उत्तर भारत में नाथ और सूफी दोनों सम्प्रदाय में आदरणीय

धर्मनाथ :

15वीं सदी के सिद्ध, गुजरात में ख्यातिप्राप्त, उन्होंने कच्छ क्षेत्र में एक मठ की स्थापना की थी, किंवदंतियों के अनुसार उन्होंने कच्छ क्षेत्र को जीवित रहने योग्य बनायास

मस्तनाथ :

18वीं सदी के सिद्ध, उन्होंने हरियाणा में एक मठ की स्थापना की थी ।

निष्कर्ष:

गुरु का जीवन में बहुत ही अधिक महत्व है चाहे वो लोग सांसारिक हो चाहे सन्यासी गुरु सबको बनाना चाहिए । गुरु का महत्व इसी बात से लगाया जा सकता है कि जितने भी अवतार हुए भगवान के उन्होंने भी गुरु धारण किया है गुरु के बिना जीवन उसी प्रकार है जैसे पानी बिना घड़ा । गुरु की रचना क्यों प्रभु ने की इसके पीछे भी बड़ा कारण है ।सभी इंसान के कर्म इतने अच्छे नही है जो प्रभु प्रत्यक्ष सबके साथ रहे और उनका मार्गदर्शन करें ।यही देखकर प्रभु से गुरु के रूप में अपने आप को प्रकट किया इसलिए गुरु और प्रभु में कोई भेद नही किया जाता । गुरु के रूप में भगवान खुद आपके पल पल साथ होता है ।जिससे जब चाहो अपने दिल का हाल कह सकते हो और उसका उचित उत्तर भी मिलता है लेकिन आप डायरेक्ट भगवान से प्रसन करो तो सम्भव नही है कि आपको तुरंत उत्तर मिले इसी कारण भगवान गुरु रूप में पृथ्वी पर विराजमान है । जो गुरु का सच्चा सेवक है उसे तो किसी बात का डर होना ही नही चाहिए । सांसारिक सुख दुःख तो आते रहते है आपने देखा होगा बहुत से साधक भयंकर बीमारी से घिर जाते है ऐसी हालत हो जाती है चला भी नही जाता आप सोचते है कुछ समय का मेहमान है लेकिन आप कुछ दिन आप उसको देखते है लगता है उसे कुछ हुआ ही ना हो ये सब पाप करमो का नाश होता है । जब तक आपको कर्मो का फल नही मिल जाता तब मोक्ष को प्राप्त नही हो सकते । ये हुआ गुरु का जीवन में महत्व अब बात करते है गुरु दीक्षा की हम जब भी किसी को गुरु बनाते है तो वो अपने अपने पंथ सम्प्रदाय अनुसार मन्त्र दीक्षा देता है । वो मन्त्र कोई साधरण मन्त्र नही होता उस मन्त्र में पूरी गुरु परम्परा के सभी सिद्ध महात्मो की शक्ति समाई रहती है । ये मन्त्र किसी को भी बताया नही जाता इसको बड़े गुप्त तरीके से गुरु अपने शिष्य के कान में फुकता है ताकि अपने चारों और विद्यमान अदृश्य शक्तियां भी उसे सुन ना पाए । ये मन्त्र हमे गुरु से अदृश्य रूप से जोडे रखता है ।गुरु मंत्र का जाप कभी भी वाचिक (बोलकर) उपांशु(जिस जप में बहुत धीमें होठ और जिव्हा हिले) नही करना चाहिए इसका जप मानसिक होता है । गृहस्थ लोगो के लिए गुरु मंत्र जप ही गुरु सेवा होती है ।गुरु दीक्षा में आपका नामकरण भी होता है जिसमे आपको 1 नया नाम दिया जाता है इसका भी 1 रहस्य है जो सभी नही जानते किसी से पूछो आपके गुरु ने आपको ये नाम क्यों दिया तो ज्यादा से ज्यादा यही कह पाता है कि हमारी परम्परा में सभी को मिलता है जैसे नाथ पंथ के साधु नाम के पीछे नाथ लगाते है । लेकिन दूसरा नाम इसलिए देते है क्योंकि आपके कर्म आपके नाम से जुड़े रहते है ।आपका नामकरण होते ही आपको नया जन्म शुरू हो जाता है पीछे के सभी कर्म आपसे कट जाते है ।इसी कारण गुरु धारण किये हुआ साधक साधना को 1 बार में ही सिद्ध कर लेता है बाकी लोग उसी साधना को 10 बार करने पर भी सिद्ध नही कर पाते जबकि साधना विधि आदि सबकुछ सही होता है ।क्योकि बिना गुरु वाला जब साधना में मन्त्र जप करता है तो उस जप का फल आपके पाप कर्म ले लेते जब आपके पाप कर्म नष्ट हो जाएंगे तब आप साधना सिद्ध करने लग जाओगे । यही कारण है पहले गुरु अपने शिष्य को गुरु मंत्र के रूप में गायत्री मंत्र देता था जो पाप नाशक है गायत्री मंत्र का जप करने से पापो का नाश होता है । ये एक वैदिक मन्त्र भी हैस

इसकी साधना कर सकते है उत्कीलन करके जो बहुत ही फलदायी होती है । अब जैसा की कलयुग है और कलयुग में शाबर मंत्र फलदायी है इसी लिए गुरु अपने शिष्य को गुरु मंत्र के रूप में शाबर मंत्र देने लग गए जिससे मन्त्र जप का प्रभाव जल्द से जल्द हो सके । नाथ सम्प्रदाय में शाबर मंत्र ही देते है स

संदर्भ सूची

1. रहस्यवादी जैन अपभ्रंश काव्य का हिंदी ग्रंथ पर प्रभाव लेखक– प्रेमचंद जैन
2. नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन
3. सिद्ध संप्रदाय हिंदी विश्वकोश खंड 4 नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी लेखक– फुल देव सहाय वर्मा
4. नाथ साहित्य –हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. वही
6. वही

डॉ0 किरन मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी

राम गुलाम राय पी0 जी0 कालेज देवरिया

(गोरखपुर) यू0 पी0

55

A Study on How Yoga Leads to Social Connectivity With Integrity

Dr. Dheeraj Sangwan, Dr. Rambir Jakhar

Introduction

Overview

In the growing world of digitalization where everyone is busy on some digital platform, it is difficult to find someone physically and have face to face conversation and little talk. In this time of digital generation, where everyone is virtually available but not there in physical form which deprive the feelings of belongingness and intimacy. Nowadays, people are using technology for very little sort of things which makes human feelings to lag behind. The digitalization and development of virtual technologies are important for world's growth and economic in one hand but in the other hand, it contributed towards the depletion in the feelings, emotions and gratitude among living beings. People found more satisfaction on social media sharing their bit of life rather than having a person or two in personal life to share their feelings and emotions. In this problem, Yoga becomes a powerful tool for making people understood and realizes the importance of having emotional and personal bond with other people. Yoga not only provides healing power to the body but also it empowers your thoughts, feelings and ultimately your soul.

Yoga is about opening us up to new opportunities, new perspectives and identifying some of our innermost thoughts, feelings and goals to ensure we are living authentically and in harmony with our values, maintaining and developing our integrity in our social space. We all need social surroundings to live. Generally, no one can live alone and isolated for long period of time. The need of other people or we can say, the presence of other living beings around us completes us and we enjoy our life in more satisfied manner.

As humans are the social species and have inhabitant in the surroundings of the society from their birth to the end of their life in the physical form. In mental form, human mentality is evolved from the history and background setting of the community they brought up and lives. The spiritual form is the flow of energy and peace of mind in human. These all three forms made up the consciousness of human behaviour and attitude. Drive and behaviour of human mainly depends upon the social habitant he/she lives in. The social life pleasures are same as the physical pleasures the human experience in their life.

When we talk about achieving the social connectivity with integrity through yoga we firstly need to understand the concept of yoga.

Concept of Yoga

The word Yoga comes from the 'YujDhatu' of Sanskrit whose meaning is to connect, unite and bind together. Yoga enables everyone to appraise and experience the world within and around us, to feel the beauty of all creation and enjoy the divine or joy. Yoga is an ancient discipline of bringing balance, harmony and truth between mind, body and soul. According to yogic scriptures practising yoga directs to the union and bond of individual consciousness with the universal consciousness, which leads to balance, integrity, harmony between mind, body and soul, human and nature.

Definition of Yoga according to Bhagavad Geetha:

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृ तदुष्कृ ते ।। तस्माद्योगाय युज्यस्व
योगः कर्मसुकौशल।।50

buddhi - yukta-endowed with wisdom ; jahti-get rid of ; iha - in this life ; ubhe- both ; sukita - duhkite - good and bad deeds ; tasmt - therefore; yogya - for Yog ; yujyasva - strive for ; yogha - yog is ; karmasukauhalam - the art of working skilfully. (bhavadgeeta, chapter 2, verse 50)

According to Patanjali Yoga Sutra:

योगश्चित्तवृश्रचत्तश्चिचरोधः॥२॥

yogas citta-vrtti-nirodhah - Yoga Sutras 1.2

"Yoga essentially consists of meditative practices culminating in attaining a state of consciousness free from all modes of active or discursive thought, and of eventually attaining a state where consciousness is unaware of any object external to itself, that is, is only aware of its own nature as consciousness unmixed with any other object."

Yoga is Self-realization practice, to overcome all kinds of sufferings which lead to 'the state of liberation' (Moksha) or 'freedom' (Kaivalya). Having freedom in all walks of life, health and harmony is the main objective of Yoga practice. Yoga generally understood as a therapy or exercise for health and fitness. While physical and mental health is common consequences of yoga, the goal of yoga is more

farreaching. Yoga is about harmonizing oneself with the world. Yoga is not about any particular religion, belief system or community; it is a science of inner wellbeing. Anyone who practices yoga with involvement can reap its benefits, irrespective of one's faith, belief, culture or value system they follow (basavaraddi, 2015).

Yoga focuses on taking care of the individual, the 'Being'. It is presumed that a good, balanced, integrated, truthful, clean, transparent person will be more useful to oneself, family, society, nation, nature and humanity as whole. "Different social customs and rituals in India reflect a love for ecological balance, tolerance towards other systems of thought and a compassionate outlook towards all creations. Yoga Sadhana of all hues and colours is considered panacea for a meaningful life and living. Its orientation to a comprehensive health, both individual and social, makes it a worthy practice for the people of all religions, races and nationalities."

The yoga is defined on eight parameters describing different aspects of the yoga practice, generally, categorised as 'eight limbs of Yoga'.

Eight Limbs Of Yoga

यश्रि् चर्यासिप्राणायार्प्रत्याहारधारणाध्यिास धयोऽष्टावङ्गाश्रि॥ २६॥

"Yama niyama asana pranayama pratyaharadharanadhyana Samadhi ayoashtav

angani" (II, Sutra 29) yama = restraint; niyama = observance; asana = postures; pranayama = regulation of breath; pratyahara = substitute food for the mind; dharana = ability to focus; dhyana= meditation; samadhi = higher states of consciousness; ashtau = eight; angani = limbs.

"Restraint, observance, postures, regulation of breath, substitute food for the mind, ability of the *mind to focus*, meditation and higher states of consciousness are eight limbs of yoga."

As the present study is about 'yoga leading to social connectivity with integrity' it is evidenced from literature review that the two first limbs of yoga direct the people towards that. Therefore, it is necessary to understand the first two limbs of yoga in detail.

1.YAMAS (Moral Discipline)

अश्रचहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचयामपररग्रहार्याः॥ ३०॥

"Ahimsa satyasteyabrahmacharyaparigrahayamaha" (II Sutra 30)

Ahimsa = non-violence; Satya = truth; Asteya = non-stealing; Brahmacharya = moving in the Brahman ; Aparigraha = non-accumulation; yamaha = are the yamas or restraints.

"Non-violence, truth, non-stealing, moving in the Brahman, non-accumulation are the five yamas."

The word 'Yama' is often translated as 'restraint', 'moral discipline' or 'moral vow', and Patanjali states that these vows are completely universal, no matter who you are or where you come from, your current situation or where you are going. The Yamas traditionally guide us towards practices concerned with the world around us, but often we can take them as a guide of how to act towards ourselves too.

1.1Ahimsa (Non-Violence)

अश्रचहिंसाप्रश्चतष्ठाययितत्सश्चिधौवैरत्यागः॥ ३५॥

The first and the most important – Yama, is 'Ahimsa', which means 'Non-violence' or 'non-harming'. ('Himsa' = 'hurt' and 'a' = 'not') In yoga we talk about nonviolence in all aspects of life. When we act with 'Ahimsa' in mind, this means not physically harming others, ourselves, or nature; not thinking negative thoughts about others or ourselves; and making sure that what we do and how we do it is done in harmony, rather than harming anyone. This implies that those who do not cause any harm provide 'harmonious vibrations', encouraging others to live peacefully and in harmony.

1.2Satya (Truthfulness)

सत्यप्रश्चतष्ठायांश्रियाफलाश्रयत्वं॥ ३६॥

The word 'sat' is translates as 'true essence' in sanskrit. Many Sanskrit words use the prefix 'sat' such as 'satsang' meaning 'true company' and 'sattva' meaning 'pure', which leads us to understand that 'sat' really means more than 'truth', it's something that is unchanged and pure. Our thoughts, emotions and moods are extremely interchangeable, yet these are the things that create our own truth and our whole life experience. This guide people in the direction of truthfulness and get rid from the thoughts of deceive others in our thoughts, as well as our words and actions. It refrain people from lying and betraying others. It talks about only speaking of what is true, and necessary. Don't keep secrets from family or loved ones. Be fair, accurate and frank in discussions. Admit your failings. Do not engage in slander, gossip or backbiting. Do not bear false witness against another.

1.3Asteya (Non-Stealing)

अस्तेयप्रश्चतष्ठायिां सवमरत्नोपस्थिा॥

The need to steal essentially arises because of a lack of faith in ourselves to be able to create what we need by ourselves. The moment we feel a sense of 'lack' in life – desire, want and greed arises. We begin to look for something to fill that 'empty' sensation, and often feel as though everyone else has what we want. Uphold the virtue of non stealing, neither thieving, coveting nor failing to repay debt. Control your

desires and live within your means. Do not use borrowed resources for unintended purposes or keep them past due. Do not gamble or defraud others. Do not renege on promises. Do not use others' name, words, resources or rights without permission and acknowledgment.

1.4Brahmacharya (Celibacy)

ब्रह्मचयमप्रश्चतष्ठायिा ंवीयमलाभः॥ ३८॥

The fourth of the Yamas, Brahmacharya, is often translated as 'celibacy' or 'chastity'. 'Brahmacharya' was meant to encourage those involved in the practice of yoga to conserve their sexual energy, in favour of using that energy to further progress along the Yogic path. Brahmacharya here reffered to 'right use of energy' leads us to consider how we actually use and direct our energy. Brahmacharya also evokes a sense of directing our energy away from external desires – you know, those pleasures which seem great at the time but are ultimately fleeting – and instead, towards finding peace and happiness within ourselves. "Practice divine conduct, controlling lust by remaining celibate when single and faithful in marriage. Before marriage, use vital energies in study, and after marriage in creating family success. Don't waste the sacred force by promiscuity in thought, word or deed. Be restrained with the opposite sex. Seek holy company. Dress and speak modestly. Shun pornography, sexual humor and violence".

1.5Aparigraha (Non-Greed)

अपररग्रहस्थैये जन्मकथन्तासम्बोधः॥ ३९॥

Aparigraha is the last Yama in Patanjali's Eight Limbs of Yoga. It often translates to non-greed and non-attachment.

The word 'graha' means to take, to seize, or to grab, 'pari' means 'on all sides', and the prefix 'a' negates the word itself – basically, it means 'non'. This important yama teaches us to take only what we need, keep only what serves us in the moment, and to let go when the time is right The more we hoard material possessions, the more we weigh ourselves down with not only physical, but energetic baggage, and the more we become attached to and worry about losing these said possessions. Believing that the new object we buy will bring us happiness is based on a feeling of lack that all too often enters our minds. In this sense, 'lack' is that sense of 'I'm not good enough' or 'I'm not whole without that new thing', when really we always were and always will be good enough no matter what. If we lighten the load a little by either selling some of the things we don't need, or even better by giving them to charity, then we move towards living a less cluttered life both in our homes and in our minds.

2.NIYAMA (Observances)

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रश्चणधिाश्रिचश्रिचर्याः॥ ३२॥

"Shouchasantoshatapahaswadhyayaeshwarapranidhananini yamaha" (II Sutra 32)

Shoucha = purity, cleanliness; Santosha = happiness; Tapaha = penance; Swadhyaya = self study; Eshwarapranidhana = devotion to God; Niyamaha = rules.

"Cleanliness, happiness, penance, self-study and devotion to God are the five rules or niyamas."

The word 'Niyama' often translates as 'positive duties' or 'observances', and are thought of as recommended habits for healthy living and 'spiritual existence'.

They're traditionally thought of as practices concerned with ourselves, although of course we can think of them as affecting the outside world too.

2.1Saucha (Cleanliness)

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसिंसगमः॥ ४०॥

Uphold the ethic of purity, avoiding impurity in mind, body and speech. Maintain a clean, healthy body. Keep a pure, uncluttered home and workplace. Act virtuously. Keep good company, never mixing with adulterers, thieves or other impure people. Keep away from pornography and violence. Never use harsh, angered or indecent language. Worship devoutly. Meditate daily. Allow yourself the expression of remorse, being modest and showing shame for misdeeds. Recognize your errors, confess and make amends. Sincerely apologize to those hurt by your words or deeds. Resolve all contention before sleep. Seek out and correct your faults and bad habits. Welcome correction as a means to bettering yourself. Do not boast. Shun pride and pretension.

2.2 Santosha (Contentment)

सन्तोषादुित्तर्सुखलाभः॥ ४२॥

Nurture contentment, seeking joy and serenity in life. Be happy, smile and uplift others. Live in constant gratitude for your health, your friends and your belongings, Don't complain about what you don't possess. Identify with the eternal You, rather than mind, body or emotions. Keep the mountaintop view that life is an opportunity for spiritual progress. Live in the eternal now.

2.3Tapas (Burning Enthusiam)

कायेद्धियश्चसद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः॥ ४३॥

Practice austerity, serious disciplines, penance and sacrifice. Be ardent in worship, meditation and pilgrimage. Atone for misdeeds through**prayashchitta**(penance), such as 108 prostrations or fasting. Perform self-denial, giving up cherished possessions, money or time. Fulfill severe austerities at special times, under a**satguru**'s guidance, to ignite the inner fires of self-transformation.

2.4 Svadhyaya (Study of the Self)

स्वाध्यायाश्चदष्टदेवतासम्प्रयोगः॥ ४४॥

The '**Sva**' means 'own', 'self' and '**Adhyaya**' meaning 'lesson' or 'reading' and can imply the practice of studying scriptures, as well as a practice of studying the Self.

By studying 'the self' and recognizing our habits and thought processes, we realise how much of what we do and think is far from who we really knowwe are. When we listen to the ego, we often do things that don't always align with our true beliefs or intuition. By studying our self, we become more aware of the things we do that harm us, and also those which serve us and bring us closer to that process of 'yoking' or 'uniting' with the true Self.

2.5 IsvaraPranidhana (Surrending to Higher Power)

सिाश्चधश्चसद्धिरीश्वरप्रश्चणधिात॥ ४५॥

The term 'IsvaraPranidhana′ is made up of two words; ***Isvara,*** which translates as 'Supreme Being', 'God', 'Ultimate Reality' or 'True Self' and ***Pranidhana,*** which means 'fixing'. In most translations of this Niyama, we're advised to 'surrender' to this Supreme Being or higher self, which in essence means cultivating a deep and trusting relationship with the universe, and making each action an offering to something bigger than us. Swami Satchidananda's translation of the Yoga Sutras mentions the practice of IsvaraPranidhana, likely because many of the oldest traditional yoga systems based their practice upon devotion and rituals which honoured nature, the universe, or 'god'.

3.Asana (Physical Postures)

द्धस्थरसुर्खार्सि॥ ४६॥

“sthirasukhamasanam”

The physical aspect of yoga is the third step on the path to freedom, asana here doesn't refer to the ability to perform a handstand or an aesthetically impressive backbend. It means 'seat' – specifically the seat people would take for the practice of meditation. The alignment instruction is “the posture should be steady and comfortable”. It is understood as 'a posture the practitioner can hold comfortably and motionlessness'. The common idea is to be able to sit in comfort position so people are not 'pulled' by aches and pains of the body, or restlessness due to an uncomfortable position.

4.Prayanama (Breathing Techniques)

तद्धस्मन्सश्चत श्वासप्रश्वासयोगमश्चतश्चवच्छेदः प्राणार्यिाः॥ ४६॥

The word Prana refers to 'energy' or 'life source'. “It can be used to describe the very essence that keeps us alive, as well as the energy in the universe around us. Prana also often describes the breath, and by working with the way we breathe, we affect the mind in a very real way. Pranayama can be understood as either 'pranayama' which would mean 'breath – control' or 'breath restraint', or it could be understood as 'prana-ayama' which would translate as 'freedom of breath', 'breath expansion' or 'breath liberation'. The breathing will change our state of being, but it's up to us as to whether we perceive this as 'controlling' the way we feel or 'freeing' ourselves from the habitual way our mind may usually be.”

5.Pratyahara (Sense Withdrawal)

स्वश्रचवषयासम्प्रयोगे श्रचचत्तस्य स्वरूपिुकार इवेद्धियाणिां प्रत्याहारः॥ ५४॥

'Pratya' means to 'withdraw' and the second part 'ahara' refers to anything we 'take in' by us, such as the various sights, sounds and smells our senses take in continuously. When sitting for a formal meditation practice, this is likely to be the first thing we do when we think we're meditating; we focus on 'drawing in'. The practice of drawing inward may include focussing on the way we're breathing, so this limb would relate directly to the practice of pranayama too. The phrase 'sense withdrawal' could conjure up images of the ability to actually switch our senses off through concentration. It is the being so concentrated and present to the moment at hand, that things like sensations and sounds don't easily distract the mind.

6.Dharana (Concentration)

Dharana means 'focused concentration'. Dha means 'holding or maintaining', and Ana means 'other' or 'something else'. Closely linked to the previous two limbs; dharana and pratyahara are essential parts of the same aspect. In order to focus on something, the senses must withdraw so that all attention is put on that point of concentration, and in order to draw our senses in, we must focus and concentrate intently.Tratak(candle gazing), visualisation, and focusing on the breath are all practices of dharana, and it is this stage many of us get to when we think we're 'meditating'.

7.Dhyana (Meditation)

The seventh limb is 'meditative absorption' – when we become completely absorbed in the focus of our meditation, and it happens when we're really meditating. All the things we may learn in a class, online or from a teacher are merely techniques offered to each person in order to help them settle, focus and concentrate, the actual practice of meditation is definitely not something we can actively 'do', rather it describes the spontaneous action of something that happens as a result of everything else.

8. Samadhi (Enlightenment)

Many of us know the word samadhi as meaning 'bliss' or

'enlightenment', and this is the final step of the journey of Patanjali's Yoga Sutras. After we've re-organised our relationships with the outside world and our own inner world, we come to the finale of bliss. The ability to 'see equally' and without disturbance from the mind, without our experience being conditioned by likes, dislikes or habits, without a need to judge or become attached to any particular aspect; that is bliss. Samadhi is not a permanent state. Patanjali's Yoga Sutras importantly tell us that unless we are completely ready, without 'impressions' such as attachment, aversion, desires and habits, and with a completely pure mind, we will not be able to maintain the state of Samadhi for long: Once our mind become pure and we truly do experience a state of Samadhi we can keep hold of, we attain moksha, also known as mukti, meaning a permanent state of being liberated, released and free.

Social connectivity is the feeling that the person feels toward a group or other people. It is the sense of belongingness towards some specific group and the people or generally to people. Social connectivity is the core psychological need, essential for feeling satisfied with ones' life. Our capabilities for social connection reflected in some of the most basic way humans communicate by subtle use of voice, facial expressions and sense of touch. Maslow's need hierarchy theory explains about the need of belongingness at third tier of the model, which includes the social connectivity.

Integrity is the quality of being honest with self and with others and having strong moral principles on which the actions, behaviour and foundation of one's' life are depends. When we talk about the integrity, it is the most common thing and quality every human should embrace in them. Integrity in human is the quality which makes them social and with that quality they have an edge over other beings. When the integrity is connected with social connectivity the most common thing that comes afloat is how human carry him/her self in the social surroundings. How well the person behaves with other people.

Remember that the word 'yoga' means 'unity', 'wholeness' or 'connectedness'; of course it's important to be mindful, gentle and present in class, but if this doesn't translate off the mat and connect into what we do in our day-to-day lives, we will never feel the real benefits of yoga.

STATEMENT OF THE PROBLEM

The aim of the present study is to understand the concept of yoga in social surroundings. How the integrity within human affects their social connections and bonds how yoga helps in to keep up with the relationships in the society. Therefore, the problem has been stated as to analyse how yoga leads to social connectivity with integrity.

Limitation of the Study

- in this study, only the social connectivity with integrity has been studied which is mainly based on the first two limbs of yoga. There are eight limbs of yoga which are broadly defined in yogic scriptures.
- he social concept of yoga is undertaken for study hence, it allow other researchers to study other aspects of yoga like physical, mental, spiritual.
- There, only 45 respondents were taken for the study dur to time and money constraints. In future, researchers may take large sample and cover large area for the study.

Significance of the Study

The Study will contribute in following way-

- he study will helps in gaining knowledge about the social aspect of the Yoga.
- he study may helps in understanding the impact of practicing yoga on the social surroundings of the people and also how social surroundings may impact the people.

Objectives of the Study

he objectives of the study are as follow:

- understand the concept of Yoga in social aspect.
- analyse how Yoga leads to social connectivity with integrity.

Literature Review

he review of literature for Study on How Yoga leads to social connectivity with integrityis done altogether on benefits, types and impacts of Yoga. It is in connection with the review of existing researches done in earlier past. Review of literature is the foremost step to get an insight into the area of proposed research. The proposed study/research never get to its final destination if the present researcher doesn' allow himself/herself to be familiar with the existing pool of researches already done. The researcher should go through from already conducted researches in the same area of interest sohe/she may get the better understanding of the research topic. The review of literature is the most significant tool for researcher to identify research gap, understand research problem, source of data availability and various methodologies used in the fild. So, keeping in view the importance of review of literature for the present study the existing research conducted in the similar area has been examined thoroughly to justify the relevance of the study. There are some research papers and thesis reviewedas mentioned below.

Mishra et al. (2020) in research paper analysed the

knowledge, attitude and practice of yoga in both rural and urban area nationwide. The objective of the study is to examine the knowledge among people and their attitude towards practising yoga on implicit perceptions. The Miistry of AYUSH initiated the programme 'ayantritMadhumeh Bharat'and conducted a national survey and data was collected through questionnaire via door-to-door visit. The data used in the study was taken from that survey. The number of participants in the study was 162,330 from all major zones of the country. The resultof the study shows that 11.8% participants perform yoga regularly. Half of the participants believed that yoga will improve their lifestyle and prevent diabetes. The study also reveals that there is wide gap among participants about knowledge of yoga and umber of people practising yoga is low. The researchers suggested that the knowledge gap may be filled if yoga will be integrated with medical care provided to the people. The researchers concluded that there is positive perception about yoga among people But due to lack of yoga centres and professionals the knowledge-practice gap prevails.

Kishida et al. (2019)describe in their paper about the influence of yoga on relational outcomes on daily basis. Researchers describe various physical and mental health benefits that are supported by various studies on yoga and there is wide gap in examining the impact of yogaon connections with the self and with others. The objectives of the study are(i) to analyse the daily yoga practices and relational outcome & (ii) to analyse the affects of practising yoga on relational outcomes. The result of the study shows that yoga has an indirect effect on compassion and social connectedness. Yoga increases mndfulness at the personal level and with others as well. The daily practice of yoga has positive impact on the person and with others. Researchers concluded that the daily practising of yoga form positive relational effect on self and others. Researchers uggested that practising yoga make a person to know oneself better and can relate to self and to others.

Shashidhara (2018)in paper explained about the effect of yoga on the performance in competitive sports. The researcher focuses on the benefits of yoga on the sports performances. Researcher described about thirteen problems like mental health, strength, flexibility, cardioascular, joint pain and arthritis, respiratory problems, blood pressure and how they can be solved through yoga. The study also discuss about effect of yoga on different factors. The researcher takes physical factor, psychological factors and team factors Further, discuss the effect of yoga on these factors. In physical factor it explains the point like improving joint mobility, contribution in improving cardiovascular fitness and stamina, enhancing coordination and agility etc. in psychological effects i explains about relieving performance anxiety and stress, developing determination and self-discipline, etc. In team factors it discuss about improving team cohesion, team motivation and trust, etc. the researcher concluded that the effect of yoga and execise indicates that yoga is effective in both healthy and diseased population in improving a variety of healthrelated outcome measures and yoga in sports is as important as other fields.

Semwal et al. (2016)nalysed about the recent developments in the field of yoga. Researchers describe yoga as a link between the self and the world. Yoga is widely known practice for physical, mental and spiritual health of the people which is advantageous to whole world. Resarchers explain yoga as a complimentary medicine to cure people from post-trauma stress and other trauma-related disorders with different level of effectiveness. The recent trends in yoga were that UN general assembly declared 21 June to be celebrated as nternational Yoga ay every year. The national status of yoga is in progressive way. The ministry of AYUSH, launched the scheme of SATYAM to promote the research in yoga. On International level, the Harvard Medical School studied he role of yoga and meditation on genes and brain activity in chronically stressed people And various other universities like University of California, Boston University of medicine etc are started research in yoga. The researcher concluded that the interest of public in yoga and health is increased due to their beneficial effects on physicaland mental health.

Sharma (2015)discussed about yoga in sports and how it affects the players in long run. Researcher explained that yoga is therapeutic and preventive and it offers physical and mental benefits to the body and mind. Prolonged stretching through yoga can minimize the chaces of injuries during the engagement in competitive sports. Researcher discussed about the benefits of yoga and fitness in sports, aim of yoga practice in sports training, health and yoga in sports, health benefits of yoga and improvement in players bodyand mind through yoga. Researcher concluded that yoga in competitive sports is as important as other things are. It helps players in different way. Yoga enhances the performance level of players in effective and efficient manner.

Yadav et al. (2015)describes about the significance of yoga in peoples'daily life. It defines yoga as raditional method of

meditation The study focuses on the daily life system consisting eight level of developments in four areas of health i.e. physical, mental, social and spiritual. Researchers explain that yoga provide peace of mind, consciousness and involves purification of soul. Te main point of the study is yoga in daily lifewhich stress upon maintaining physical health, attaining mental wellness, enjoying social life and gaining spirituality. The researchers also describes how the self-actualisation of the divine power prevails within us can be attained through meditation an by adopting the light of divinity. The more people believe in 'e'and demise the "mentality more they feels the divine power. The researchers concluded that yoga is free from religion, it is not based on any religion, it is a form of spirituality and wisdom. It is a process of identifying oneself and it teach us to have a happy and joyul life, live in harmony, and have compassion for others.

Bhavnani (2014)in review paper discuss about the role of yoga in health and disease. The paper is mainly based on the diseases human could have and the impact of practising yoga to overcome from those diseases. Researcher stated that physical and mental wellness can be tained by regular practice of yoga and the people who perform yoga regularly are healthier and have better managing skills for stress and anxiety as compared to normal population. Researcher gave opinion on how yoga promotes positive health and helps in oping stress. Further, the effect of yoga on cardiovascular conditions is also studied. Researcher mention about how the respiratory disorder can be solved through practising yoga. The researcher review metabolic and musculoskeletal conditions and stated hat the yoga have clinically proven benefits along with medical care to the patients. The researcher' review on cancer patients performing yoga indicates improvement in psychological health of the patients. The paper also mention about how yoga is helpful during pregnancy and the evidences from previous research shows yoga helps in reducing physical painin pregnant women when yoga is performed regularly. The other point mentioned in paper is Paediatric population and yoga. It studied the young population practising yoga and the improvement in adults'mental and physical health. The researcher concluded that oga has preventive, promotive as well as curative potential and yogic lifestyle confers many advantages to the practitioner

Teodora (2014)discussed about how an ancient fitness discipline has become the newest form of cross-training method to improve the performance and reducing the injury risk among athletes in competitive sports. The study mainly focuses on hatha yoga which is an umbrellaterm for different styles of yoga and importance of postural alignment for athletes. Researcher explains the hatha yoga forms and how they are performed along with their benefits. The hatha yoga forms explained are anusara, ashtanga, vinyaser, iyenger, biram, kripalu, kundalini and viniyoga. Further, the study describes how athletes can change their traditional training methods and add yoga in their routine training practice. Researcher concluded the study that before attempting yoga pose, it is importantto have knowledge and awareness about the importance of achieving and maintaining proper postural alignment during yoga poses.

Woodyard (2011)in review article discuss about the therapeutic effects of yoga on people and the ability of yoga practice to improve the quality of life. The objective of the study is to analysing the articles on therapeutic effects of yoga and then providing a comprehesive review about the benefits of yoga practice. The researcher selected those articles which are peer-reviewed and published between 1990 to 2009. The result shows that the people with mental health problems such as stress, anxiety, depression, etc seek edical treatment complimentarily with yoga. Further, it stated about the benefits, therapeutic effects and healing power of yoga. The researcher concluded the study on the note that yoga promotes personal health growth and wellness. Yoga decreases the varations of the mind which push us to live happily and suffer less.

Ryba (2006)explains the benefits of yoga in athletic sports. Researcher defines yoga as cting in such a way that all of our attention is directed towards the activity in which we are currently engaged Researcher in the study mention about the hatha yoga which is one of the six main types of yoga practiced in west. Researcher explains hatha yoga mainly focuses on physical transformation and breathing to attain concentration, flexibility, persistency, blance and self awareness. Furthermore, study explains the three core benefits of yoga in training in athletes which are, increased core stability, increased flexibility & motion range and improving in relaxation. The researcher concluded that practising yga during training provide basis for prevention of injury in sports training in theoretical and experimental manner. Researcher suggested that yoga should be included in training as injury prevention program.

Research Methodology

esearch methodology is the systematic approach for solving research problem. It perceived as how can research is conducted scientifically. It consists of various small acts

which are mainly embraces by researcher while studying his/her research problem. I is quite obligatory for researcher to understand and known to the methodology adopted for research problem in addition to research methods and techniques used thereof. Researcher should be known to the methods and techniques which are relevant for the stdy and what they mean and how do they work in attaining the solution for research problem. The researcher should frame his/her methodology regarding its research problem as the research methodology for one problem is differing from another.

Research Design

Research design is the arrangement of conditions for collection and analysis of data in a manner that aims to combine relevance to the research purpose with economy in procedure.

esearch design is the notional framework confines the structure in which research is conducted, it comprises of pattern for collection/gathering, measurement and analysis/scrutiny of data. Research design facilitates the well-ordered and plain sailing of esearch work and capitulate paramount information with least expenditure of cost, time and endeavour.

or the present study research design used is exploratory research design. The reason for choosing exploratory research design is that it conceives the research problem for specific analysis and examination. The design of the study has to be flexible so tht it provides chances regarding other distinct features of the problem under study. The vital prominence of exploratory research is to findings of new ideas, visions and savvy and to build up new alliances.

Sample Design

ample design taken into consideration about the methods of choosing items or objects to be studied for the research problem. It generally deals with two things i.e(i) the method of selecting sample and (ii) the size of the sample. For the present study the sampling methods used is convenience sampling method of non-probability sampling.

he sample size taken for the study is 45 respondents because analysing the whole universe is rather difficult as of cost and time constraints.

Data Collection: Source and Instrument

ince the data is the core of any research study specific recognition and attention should be given be to the methods which are used in process of data collection. Data derived from various sources regarding the given study serving as the base for analysisand interpretation therefore, choosing suitable method for data collection is very important. Primarily, there are two sources of data collection –Primary Source and Secondary Source. For the present study both sources are used for data collection.

Primary Source:

he data collected for the first time and afresh which have original characteristics. For the purpose of study Questionnaire was prepared with the help of supervisor and material available on internet for collecting data from primary source. Every single iformation and data accumulated through Questionnaire were measured and analysed. Questionnaire contains close-ended questions including two sections.

- First section includes the information about the general profile of respondents. This includes demographic variables likegender and age for the study.
- Second section included statements about the Yoga and its connectivity to the society.

Secondary Source:

or gaining the information and knowledge about the Yoga and theoretical backdrop/scenario of social connectivity and integrity following sources are explored:

- Internet
-
- Books
-
- Websites of concerned authorities

Data Processing

Data processing generally means preparing data for analysis. To analyse the data correctly it should be presented into specific and understandable form through graphs and tables. Therefore data processing includes classification, codification and tabulatio of data collected so that data can be analysed in meaningful manner. Codification of data means assigning specific value to certain variables used in the study or the variables regarding which has been collected. The codification of data for present stud was done the help of statistical software package SPSS (Statistical package for social sciences) version 21.0 which provide great assistance in coding of data. In every study coding of data plays an important role for reliable and relevant interpretationof the results. The data collected through questionnaire has been coded manually first and then entered in the worksheet of SPSS package. All the questions and responses were provided certain codes and then entered in the SPSS worksheet. In the present stdy data is presented in pie-diagrams and tables so that analysis would become

easier and understandable.

Data Analysis Tools

The analysis of data has been undertaken with concern to have consideration about the Yoga leading to social connectivity with integrity. The collected data was processed and entered into SPSS and analysed with the help of certain statistical tools. The sttistical analysis tools used are Descriptive Statistics and Percentage methods.

Findings, Recommendations And Conclusion

As this is the final chapter of the dissertation, that will discuss about the major findings, recommendations and the conclusion of the study. The findings of the study are as per the objective of the study which is fulfilled by analysing the data collecte through questionnaire in statements as primary source and from reviewing existing literature as secondary source.

The findings from primary source of data which is questionnaire based are:

• The demographic variables i.egender and age of respondents which are collected through questionnaire were analysed. In gender variable the male and female ratio is 18:82, which indicates that female are more conscious about their health and prefer to have more connections and maintai & develop integrity in social surroundings. Changing environment and demographic in world, where females start dominating in some areas and started exploring those areas which are supposed to be banned for them. Now, in today' world females exploring new avenues and opportunities and take advantages of them to make their life more valuable and satisfied whether physically, mentally or socially and Yoga prove to be true companion for them in this journey.

• The age group demographic shows that practicing yoga is not limited to some specific age. All age group people participate in yoga practice and form their social connections and bonds with integrity. Like, the old age group practising laughing therapy in prks, it gives the idea what kind of connections and bond that particular group have within. We can generally found them helping each other, sharing their feelings, having group discussions regarding any random topic of their choice. They are found to be tgether in all situations whether in sadness or happiness. And that is the most wonderful quality of yoga which makes people more vulnerable and compassionate for others. he statements which were asked to respondents reveals that people feel compassionate towards others as a result of practising yoga, most of the people like to do yoga in groups, through Yoga they feel connected to other people, feel positivity in their beaviour. Yoga helps most people to alter their attitude with others as they feel calmness and have happy body, mind and soul after practising yoga which is evidenced from data analysis. Most of the yoga practitioner like to have group and wanted to connectwith people. Yoga helps them to keep calm and have peace of mind which follows them to live in harmony and show gratitude to the people which ultimately leads them to have better social skills and connections with integrity.

Findings from secondary source of data are:

• Social connectivity and integrity in yoga are defined in first two limbs of yoga that are YAMAS and NIYAMAS, which direct people how to behave and live in society. YAMAS consists five main points which are NonViolence, Truthfulness, Non-Stealing, Moderatio of Sense and Non-Greed. The NIYAMAS includes Cleanliness, Contentment, Discipline, Self-Study and Surrending to higher Power. All these points of YAMAS and NIYAMAS direct every normal person to develop integrity within them and taught them how to form, mintain and keep the connections and bond with others in the society.

• From literature review it is evidenced that when yoga is performed in groups and in social surroundings like park, community hall, playgrounds, etc it helps the practitioner in curing boredom and loneliness. It is vital for happiness to have social connectons. Integrity in oneself helps to have good health as it provide iscipline and honesty and strong moral principles When people are around, every living being feel good as it provide assurance and security to have someone around as.

Summary of the Study

he present research study was undertaken with a view to study how the yoga leads to social connectivity with integrity. The study was done in order to get the desired result by analysing the responses of 45 respondents who are yoga practitioner from Delhi The data was collected through questionnaire. For understanding the concept of social connectivity with integrity in accordance of Yoga, the existing literature was reviewed from various online websites and books available on internet. The analysis of reponses of the respondents was done on percentage statistical tool and displayed through tables and pie-diagrams. The result of the study shows that yoga helps in connecting people with others. Yoga practicing leads to develop integrity within self which i very much described by the first two limbs of the yoga practice. The social

connectivity with integrity can be achieved through yoga if the practitioner put themselves fully in the world of yoga. Yoga is not only about the physical or mental fitness, it s very much gives stress on the social aspects of human life as well. The human is social animal and yoga helps them in living their lives in accordance of society values, cultures and traditions while maintaining their own choices and dignity.

Recommendations of the Study

- People who feel bored or alone should try to practice yoga in group as it cure them from boredom and loneliness.
- People suffering from anxiety, stress and depression should practice yoga as it provides calmness and peace of mind and helps them to connect with people.
- People performing yoga would develop confidence and have better interacting skills which helps them to feel more compassion and empathy towards others. Therefore, people should practice yoga to have better social interaction and live in harmony.

Conclusion of the Study

ere, researcher provides the conclusion of the study on the basis of data analysis and findings from the study.

- Practicing yoga make them to have positive thoughts and outlook which gave them satisfaction.
- Practicing yoga helps in anger management which is crucial while having people around you. You need to be calm and controlled. Through practising yoga one can feel motivated, energetic and having positive attitude which help anyone to spread happiness and joy around oneself.

Bibliography

Books:

- Digambarji, S. &Gharote, M.L. (1978). Gheranda Samhita. Lonavala: Kaivalyadham.
- Lyenger, BKS. (2005). The Illustrated Light on Yoga. New Delhi: HarperCollins Publishers India
- Karambelkar, P.V. (2005). Patanjala Yoga Sutras. Lonavla: Kaivalyadham.
- Pariwarrjak, .S. 2001). Yogdharshanam. Gujrat: Darshan Yoga Mahavidhalaya.
- Rangnathan, Shyam. (2008). Patanjali' Yoga Sutra. New Delhi: Penguin Books Pvt. Ltd.
- Sankaracharya,S. (1982). BhagavadgiyaBhasya (with text and English translation). Mylapore: Shree Ramkrishna Math.
- Vivekananda, S. Patanjali Yoga Sutras (Sanskrit text with Transliteration, Translation & Commentary).

Research Papers And Articles:

- Bhavanani, A. (2014). Role of yoga in health and disease. Journal of Symptoms and Signs, 3. 399-406.
- Kishida M, Mogle J, &Elavsky S. (2019). The Daily Influences of Yoga on Relational Outcomes Off of the Mat. International Journal of Yoga, 12(2). 103-113. doi:10.4103/ijoy.IJOY_46_18
- Mensinga, Jo. (2011). The Feeling of Being a Social Worker: Including Yoga as an Embodied Practice in Social Work Education. Social Work Education. 30. 650-662. 10.1080/02615479.2011.586562.
- Mishra, AS., SK, R., HS, V., et al. (2020). Knowledge, Attitude, and Practice of Yoga in Rural and Urban India, KAPY 2017: A Nationwide Cluster Sample Survey. Medicines (Basel). 7(2), 8. doi:10.3390/medicines7020008
- Ryba, T. (2006). The Benefits of Yoga for Athletes: The Body. Athletic Therapy Today, 11. 32-34. 10.1123/att.11.2.32.
- Semwal, D. & Chauhan, A. & Mishra, S. &Semwal, R. (2016). Recent Development in Yoga: A Scientific Perspective. Journal of AYUSH: Ayurveda, Yoga, Unani, Siddha and Homeopathy, 5. 14-20. Sharma, L . (2015). Benefits of Yoga in Sports- A Study. International Journal of Physical Education, Sports and Health, 1(3), 30-32.
- Shashidhara. (2018). Effect of Yoga on Sports Performance. International Journal of Yoga, Physiotherapy and Physical Education. 3(1), 20-23.
- Teodora, D. (2014). The Power of Yoga for Sports Performance. Indian Journal of Applied Research, 4(5), 608-609.
- Woodyard C. (2011).Exploring the therapeutic effects of yoga and its ability to increase quality of life. International Journal of Yoga, 4(2), 49-54. doi:10.4103/0973-6131.85485
- Yadav, .K. 2015). importance of yoga in daily life. 0.13140/RG.2.1.4538.3842.

Questionnaire

Please answer the following questions. All questions to be answered. Your privacy will be protected. Thank you.

ame (optional):

Gender:

- Male
- Female Age:
- Below 20
- 1-30
- 1-40

- 1-50
- Above 51

Please mark the option given for the following questions.

1. Do you feel calm after doing yoga?
   - Yes
   - No
   - Maybe
2. Do you feel motivated towards your goals after yoga practice?
   - Yes
   - No
   - Maybe
3. Do you think a healthy body and mind are ingredients for a happy soul and yoga fulfils all the three?
   - Yes
   - No
   - Maybe
4. Does practicing Yoga help in changing your attitude towards others (colleagues, relatives, etc)?
   - Yes
   - No
   - Maybe
5. Do you feel the positivity in your behaviour through yoga?
   - Yes
   - No
   - Maybe
6. Do you think yoga connects you with other people?
   - Yes
   - No
   - Maybe
7. Does yoga helps in maintaining and developing integrity within you?
   - Yes
   - No
   - Maybe
8. Do you feel compassionate towards other as a result of yoga practice?
   - Yes
   - No
   - Maybe
9. Are you happy after accepting yoga as your fitness regime?
   - Yes
   - No
   - Maybe
10. part from weight loss, yoga gives patience and strengthening as by-products.

    Do you agree?
    - Yes
    - No
    - Maybe
11. Could you like to do yoga individually?
    - Yes
    - No
    - Maybe
12. Could you like to do yoga in group?
    - Yes
    - No
    - Maybe

Dr. Dheeraj Sangwan
Assistant Professor.
AAhir college Rewari.

DrRambirJakhar
Assistant Professor
KLP college Rewari

56

Ruskin Bond's Fiction as a Social Document

Shilpi Agarwal

Abstract

This paper takes into account the social and anthropological dimension of life in the Garhwal Himalayas as visualized, experienced and portrayed in his short stories and novellas. Stories present a realistic account of the people , their customs and beliefs that lay scattered in the valleys and mountains of the Himalayas. This paper also intends to analyze the social life and experience of the Garhwali people as is reflected in the stories of Ruskin Bond. . Ruskin portrays their life with vividness. He looks at India but not as an intruder or an observer but as an insider and a participant. He does not indulge himself in any political or historical analysis. Rather the sights and smells of India that he crafts in his stories are real and easily recognizable in his stories.

Keywords: India, society, Garhwali, portrayal

Research Paper

Social life in a country of the size of India is so full of vagaries and varieties that the novelists with an observant eye and an understanding heart will find the material spread out before him to be literary inexhaustible. Life in the countryside represents an eternal India where life has changed very little indeed during the last two thousand years. Urban life in India attracts the novelists by its excitement, perversion, sophistication and violent contradictions between affluence and poverty, splendour and squalor. In the interior, the areas of obscurity have their attraction too and sometimes bring out the best in the creative novelist.

Ruskin Bond is British by race, but has assimilated the spirit of India not only in his writing but also in his soul. Ruskin has made his abode in the beautiful Garhwal hills where lives a unique culture, with values, myths and traditions of north India. His stories present a realistic account of the people, their customs and beliefs that lay scattered in the valleys and mountains of the Himalayan foothills. People in the hills have been living for thousands of years on the same bare land struggling yet being at peace with its elements. Ruskin portrays their life with vividness. He looks at India but not as an intruder or an observer but as an insider and a participant. He does not indulge himself in any political or historical analysis rather he portrays that "Indian reality which he himself has experienced and which has become a part of his psyche."(1) The sights and smells of India that he crafts in his stories are real and easily recognizable. In an interview with Ruby Gupta he takes up his identity as-

"As Indian as anybody is! Because you have to realize that many of our writers, particularly those working in English are not completely Indian themselves. I mean perhaps they have lived abroad many years, or they've had a very

English education in say convent schools, or other schools. So very often they have an almost Westernized viewpoint. And are almost themselves looking at India through ...through..a....(laughs).

Q. Through Westernized spectacles?

A.(smiles) Through their own spectacles, yes. And the very fact that they often grow up in urban settings. And I think a vast majority of our writers who work in English have grown up in cities or towns so they very rarely deal with may be rural India or a ...greater India."(2)

Ruskin in his above given lines calls our attention to that pantheon of English writers of India genesis who reside in the West or have a Westernized viewpoint. Their work as V. S. Naipaul accuses as ä mimicry of the West-the Indian self violation."(3)These authors maintain a utilitarian attitude because for them writing is not a mere passion but a part of their profession. And as Renuka Chatterjee, Managing Director, Roli, presents the fact that "the books are usually published abroad often with huge advances. This makes news and the stamp of published by Bloomsbury or Fable arouses an interest in those books that other writers who are only published in India, normally don't get."(4)

Thus to add vividness and colours to their work this canon of writers try and add a nostalgic flavour. they try to explore the Indian world, or make a constant attempt to return to their ancestral village in their fictional world. They add Indian background to attract attention of the West and to receive accolades. But their passionate urge to present true India and remains biased. They start their novels by taking up a rural background with tints of nostalgia, but most often end up with a lament or discourse on the political, social, industrial and economical conditions of India. They juxtapose India with the western milieu and therefore the culture, and traditions that form the skeleton of India are lacking.

For Ruskin, writing is not a utilitarian aspect of life. It is a means of expressing his inner feelings-his understanding

and love of man, of Nature and of God. It is his passion for nature and life and his way of paying homage to all those that have created in him the vision of an author. He has the abilities to look at the realities of life of Garhwalis and transforming them in a concrete form and presenting it. He has also taken the task of reincarnating the true essence of Indian culture which lies in the lyrics, short stories and myths of India whose ancestry goes back to several centuries. He stitches them seamlessly with the people, customs, traditions and life of the Garhwalis. His love for the flowers, plants,trees, mountains, birds, animals and attachment to the people of the Himalayas have rooted him in the soil of the Himalayas and popularize his recognition as a Garhwali. Nayantara Sehgal, the famous writer affirms this in his 'Íntroduction' to 'Beautiful Garhwal'-

"This book tells us it is about Garhwal..but it gives us a man who goes up in the mountains and walks along their valleys for sheer pleasure and is as companionable with some of the moist awesome sights on earth as he is with the villagers in the mountain villages.."(5)

Ruskin Bond presents some devastatingly beautiful sights of heaven on earth in his stories. His tales posses a charm of their own, in fact, they are recorder of human situations in terms of beauty, power and universality. Ruskin writes of what he understands and loves most. According to Renuka Chatterjee: "The ability to tell a good story with a strong theme and plausible characters, in the space of a few pages, and without the wider canvas of a novel as a skill and not every author has it"(6) Ruskin is at ease while portraying real life and people in his stories. He believes in presenting life as he sees it rather than analyzing it psychologically. According to Dr Nagendra Prasad-"In his stories both his passion ns compassion spin the plot-passion or lust caused by Yeatsian longings and compassion or rich milk of human kindness for the neglected groups and the rural hill folk around Garhwal or Doon."(7) Ruskin cognizance of Indian society can be illustrated from several of his stories.

His stories chronicle the social changes that are taking place rapidly giving place to modernity. The sports like kite-flying or wrestling have been discarded along with no longer fashionable ideas and sports. In the story The Kite Maker we get a glimpse of the story of the city life of Mahmood unfolds itself. the city was once a lively place with kite-flying at its height. It speaks of the past euphoric days-

".. .. When grown men flew kite, and great battles were fought, the kites swerving and swooping in the sky, tangling with each other until the string of one was severed. Then the defeated but liberated kite would float away into the blues unknown. There was once a good deal of betting and money frequently changed hands.

Kite-flying was then the sports of the kings."(8)

'The Kite Maker 'is also a story of dying traditions where swiftly changing and competitive world had made kite making and kite-flying a thing of indifference. Kite has been a symbol of freedom. Long in the past kite-flying was a spacious game. But with the advent of cities, the evils of modernism have strangulated the free breathing kites. In today's milieu-

"Ädults disdain them, and children preferred to spend their money at cinema. Moreover there were not many open spaces left for the flying of the kites. The city had swallowed up the open grasslands tht had stretched from the old fort's walls to the river bank."(9)

Now it is a congested city like any other in India. Mahmood is poor but neither his poverty nor his death is horrible or pathetic, it is tragic like the demise of a big, gamut ancient banyan tree. It is also the eradication of an era and a convention.

Another story that he has woven around the unique Indian reality is 'The Grassland on His Brow'. It evokes the image of India caught in a period of transition. Hasan, the famous wrestler acts as the protagonist of the story. the narrator becomes nostalgic and goes back to remember the time when wrestling was taken as the game of skills and power. And Hasan was known for being "the outstanding representative of his art in the entire district."(10) He was idolized by the small boys for his magnificent built with great wide shoulders and powerful legs.

But with the passing of the time, the social changes took place rapidly and modernism dictated wrestling as a sport that could be discarded along with no longer fashionable ideas abd sprts. Ruskin makes a vivid comparison of the 'Good Old Days Gone By' with the present fast moving indifferent life which as reduced the status of a wrestler to a beggar where only rescue left to escape from this humiliating life was death.

"Fifty years ago, a popular local wrestler would never have beeb allowed to fall into a state of poverty and neglect. He would have fed by his old friends and have been

told by his legendary powers. He would not have been neglected. But those were leisurely times, when the individual had his place in the society, when a man was praised for his past achievements and his failures were tolerated and forgiven. But life had since become fast abd cruel and unreflective, and people were too busy counting their gains to bother about the idols of their youth."(11)

This also brings alive the bitter truth about how the competitive and modern life had made man mechanical. The warmth , friendship, love and empathy that were once the natural ornaments of people are replaced by artificial cones. Peoples are busy within themselves to keep pace with the fast moving world. They have no time to think of anything other than their own profit.

The Last Tonga Ride is another story of the series which enlivens the excitement and ecstasy of a tonga ride. it explores the period when mechanized transport was rare. But even in this story too, the author through the protagonist, Bansi, Prognosticates about the time when power drawn vehicles will outlive all the older ones.

"Time are changing, memsahib

Do you know that there is now a taxi-a motor car-competing with the tongas of the Dehra? You are lucky to be leaving. If you stay you will see me starve to death."(12)

Ruskin Bond's cognizance of child psychology is quite intense. He had a great sympathy and concern for children. Even his first story 'Úntouchable', though not much poignant brings forth the flight of a sweeper boy. The ten year old sweeper boy has lost much o his innocence, childhood plays and zest for life, hardworking in the house of 'sahib'.

"Sweeper boy-all day he pattered up and down between the house and the water tank with the bucket clanging against his knees."(13)

At a very tender age he becomes responsible about earning money for his living. He has to face the cruelty of his master, is compared with animals and is sacked from the job for a small mistake. Moreover, he is deprived of his hard earned money. As the boy speak up to Rustyin The Room on the Roof about the behaviour of Harrison towards him-

"Don't know, but he gone for good.

Before he get, I drop the bathroom water on the verandah and the sahib, he hit me on the head with his hand,put!

...I say, sahib, you are cruel, and he say cruelty to animals, no? Then he tell me I get sack, he leaving anyway. I lost two days pay. "(14)

Ruskin's heart is full of the milk of human compassion and love for children. It is this virtue of his which enabled him to become friendly with a deformed, retarded and grotesque boy in the 'Most Beautiful". The narrator was not able to resist the cruelty of those dozen boys who were tormenting the retarded boy, Suresh, by throwing stones at him. Thus the narrator rescued Suresh out of that unpleasant situation. He neither sympathized nor pitied the boy for his deformities or his ugliness, rather he became his companion and spent his time with him. he got so much attached to the boy that Suresh's indifference when he was leaving hurt him. This unnamed relation becomes so intense that the narrator began to realize Suresh as quite normal:

Änd that was the last i saw of Suresh, lying alone on the crowded platform, alone in teh grey darkness of the world, crooked, bent and twisted

..the most beautiful boy in the world."(15)

In his poetic works, Ruskin juxtaposes two sets of imagery, the one depicting the resourcefulness of nature's beauty and the other unearthing the problem of hunger among people. He ironically portrays the plight of the people and poets who remain blind to the problems of the people living amid rich and lofty hills. His sympathies with the forest folk are explicit:

"There is hunger of children at noon; yet

There are those who sings of sunsets.

And the gods and glories of Himachal

Forgetting no one eats sunsets."(16)

Bond writes frequently of the social and economic milieu of the Garhwal. In the story 'From Small Beginnings' he brings forth the natural phenomenon of the migration of men from the hills.

"So the young men leave their villages to find work, and to find work they must go to the plains. The lucky ones go into the army, enter domestic service or take job in the garages, hotels, wayside tea shops, schools..."(17)

He also presents an account of the scarcity of job opportunities in small hill towns which compel men to leave their land and face the tribulations of the plains. Their innocence is lost in the obscurity and poverty of their life.

'The Summer Season' is another such story where a waif, Vishnu has to leave his native village where a waif, Vishnu, has to leave his native village to work as a helper in a cinema's tea stall. After his father's death, Vishnu at a tender age of fourteen years, has to pull over the responsibility to look after his family. Out in the town he sometimes even becomes victim of exploitation. For instance-

"When Vishnu splits some tea over an aggressive

college student he received the vicious kick in his sheen.
He complained to the tea stall proprietor but the employer said, 'The customer is always right. You should have gone out of the way in time."(18)

This instantly reminds of Munoo the sturdy hill boy, and the protagonist of Mulk Raj Anand's novel ' Çoolie'. Munoo like the characters of Ruskin has a thirst for life, an essentially un-spoilt nature, a readiness to respond to kindness but he was not fortunate enough to return back to his native village like Ruskin's characters. Ruskin's characters also become victims of absurdities of life and face problems, but they come to an end or are solved with a minimum of fuss and tremendous dignity. Their self respect and consciousness stops them to pay homage to any ill rather they keep on moving facing the absurdities of life with courage and determination. Their heroic struggle and optimistic approach to life creates appreciative sense in the readers. The characters of Ruskin have no ambitions; they prefer to remain on earth with their gentle dreams. They lead a simple life where there is no place for materialism.

The miracle of transcendence and the renewal of life, love , beauty and peace forms the core of the fictional work of Ruskin and Narayan, their works amid all the small comic gestures and frantic movements are sketches of Faith enacting its own mysterious sunrise in minds darkened and deadened by the sickness of modern life. From 'In my beginning is my end' to Ín my end is my beginning' is a full circle indeed.

Ruskin is a writer of the proletariat and believes in portraying life first hand, what he had seen and felt about people and their lives-living in Garhwal for twenty five years. Though the works of Ruskin lacks the 'high seriousness., that may compel the attention of the intellectuals or get his reputation established in the first ran of Indian authors, they have the capability to sustain the interest of every literate person.

References

1. Ruby Gupta: 'Ruskin Bond's Treatment of Indian Reality in the short Stories', Studies in Contemporary Literature(Ed.) R.S.Sharma (New Delhi, Sarup and Sons, 2000),p.125.
2. ibid.,p.164.
3. C.D. Narsimhiah:Ón Literatures in English',ibid.,p.14.
4. Paramita Ghosh: 'Between the Lines', Hindustan Times, Sunday Magazine, Aug 3,2003.
5. Nayantara Sehgal: 'Introduction', Beautiful Garhwal by Ruskin Bond(Dehradun, the English Book Depot, 1988) p.3.
6. Paramita Ghosh: 'Between the Lines', Op. Cit.
7. Nagendra Prasasd: 'The Aesthetic of Ruskin Bond', The Creative contours of Ruskin Bond Ed. Prabhat K. Singh, p.37.
8. Ruskin Bond: 'the Kite Maker', The Night Train at Deoli and other stories (New Delhi, Penguin Books,1988), p.102.
9. ibid.
10. Ruskin Bond: 'The Garland on His Brow', Collected Fiction (New Delhi, Penguin Books,1966). p.50.
11. ibid., p.52.
12. Ruskin Bond: 'The Last Tonga Ride',ibid.,p.154.
13. Ruskin Bond: 'Untouchable', ibid.,p.420.
14. Ruskin Bond: 'The Room on the Roof', ibid.,p.646.
15. Ruskin Bond: 'Most Beautiful', ibid., p.287.
16. Ruskin Bond: 'Garhwal Himalayas', It Isn't Time That's Passing (Calcutta, Writer's Workshop,1972),p.18.
17. Ruskin Bond: 'From Small Beginnings', Delhi is Not Far (Penguin Books India Pvt. Ltd,1994).,p.66.
18. ibid.

Shilpi Agarwal
Research Scholar
Prof (Dr) K K Kapoor
Former Reader and Head
Bareilly College,
Bareilly

57

An Examination of Arthur Miller's Plays in Respect of Moral Elements

Dr Anjul Bhagi, Dr A. K. Sharma

Abstract:

This paper throws light on the dramatic approaches of Arthur Miller, who is one of the greatest American playwrights. Miller in his plays has successfully presented together the social and the psychological views of life. Miller's approach to playwright and the drama itself is real and his plays may be called realities and are based on moral elements.They are also naturalistic and expressionistic. So, his play concentrates and portrays the conflict between the individual and the society.

Keywords: American Society, Modern, Poverty, Depression, Unemployment Depression, Common man

Arthur Miller, in full Arthur Asher Miller, American writer, who combined social awareness with a looking out concern for his characters' inner lives. Miller was formed by the Great Depression, that brought bankruptcy onto his father, atiny low manufacturer, and created the young Miller the insecurity of recent existence. Miller, the proper dramatic creative person, has brought out variety of plays of that two have drawn the best worldwide admiration- All My Sons and also the Death of a salesperson. He fixed up social realism to American theatre. From the start of his dramatic career he endeavored to counterpoint the realistic vogue with analysis of life.All My Sons is a realistic play in the true sense of the term. Like his other plays he offers a moral lesson through this play as well. America passed through a number of stages at different period of time. It witnessed a number of realities of life the worst being the period of depression which brought poverty, unemployment and sufferings of every kind. Everybody loved money and power.

One of them was Joe Keller who cares for nothing but power. He runs a business with Steve Deever, another gentleman. He is sixty one years of age. He has a wife Kate Keller and two sons Chris and Larry. In the family of Steve Deever there is his wife, his son George Deever, and his daughter Annie Deever who has been betrothed to Larry. Joe Keller gets an order for an urgent supply of cylinder heads for Air Force. The cylinder heads were being manufactured and supplied to the Air Force. Suddenly one lot of cylinder heads comes out with a hairline crack. They were defective. At that time Steve Deever who was an honest man, was in the factory. He seeks for Joe Keller`s advice as to what to do. Joe Keller is a slave of gold. Hence he advises Steve Deever to weld the cylinder heads and supply them to the Air Force. Steve Deever followed it. The result is more than twenty young promising pilots died. Naturally the firm was prosecuted and Steve, the innocent partner is sentenced to long imprisonment. Joe Keller pretended that he knew nothing about the supply of defective cylinder heads as he was unwell and was at home on that particular day.

Soon Joe`s elder son Larry was said to be missing. All of them except Kate Keller thought that he had died. Joe Keller says that Larry was born in the month of August and now if alive he would have been twenty seven years old. Just at that time there appears Joe Keller`s younger son Chris who knows that his elder brother Larry has died at the time when a number of young pilots had fallen a victim to the defective cylinder heads. Chris knew that more then 20 young and promising pilots had died. He found no interest in the society around him. For the people of this society it was like a bus accident which is forgotten. Anne Deever, the daughter of Steve Deever has a feeling that her father is guilty. Therefore, she dislikes him. She never wrote even a single letter since her father was sent to jail. In the mean time her brother George Deever informs her that the responsibility lies with Joe who got it all done. Therefore it is Joe Keller who should be punished. George conveys to Chris all that his father told him. Chris comes to his father and asks that he is guilty. He is responsible for the loss of all those precious lives. He is ready to take him to the police station. He tells his father, "You did it for me, and don`t you have a country. Don`t you live in the world. You are an animal. No animal kills his own....." .

Joe Keller repents. He says about Larry, " Surely he was my son but all are my sons." Suddenly he shot himself. He had such an intensity of painful feelings that he decided to end his life.

Miller's next play, Death of a Salesman, became one of the most famous American plays of its period. It is the tragedy of Willy Loman, a man destroyed by false values that are in large part the values of his society. For Miller, it was important to place "the common man" at the centre of a tragedy. As he wrote in 1949 :

> The quality in such plays [i.e., tragedies] that does shake us... derives from the underlying fear of being displaced, the disaster inherent in being torn away from our chosen image of what and who we are in this world. Among us today this fear is as strong, and perhaps stronger, than it ever was. In fact, it is the common man who knows this fear best.

Willy Loman returns home exhausted after a business trip he has cancelled. Worried over Willy's state of mind and recent car accident, his wife Linda suggests that he ask his boss Howard Wagner to allow him to work in his home city so he will not have to travel. Willy complains to Linda that their son, Biff, has yet to make good on his life. Despite Biff's promise as a football star in high school, he failed in mathematics and was unable to enter a university.

Biff and his younger brother, Happy, who is temporarily staying with Willy and Linda after Biff's unexpected return from the West, reminisce about their childhood together. They discuss their father's mental degeneration, which they have witnessed in the form of his constant indecisiveness and daydreaming about the boys' high school years. Willy walks in, angry that the two boys have never amounted to anything. In an effort to pacify their father, Biff and Happy tell their father that Biff plans to make a business proposition the next day.

The next day, Willy goes to ask his boss, Howard, for a job in town while Biff goes to make a business proposition, but both fail. Willy gets angry and ends up getting fired when the boss tells him he needs a rest and can no longer represent the company. Biff waits hours to see a former employer who does not remember him and turns him down. Biff impulsively steals a fountain pen. Willy then goes to the office of his neighbor Charley, where he runs into Charley's son Bernard, now a successful lawyer. Bernard tells him that Biff originally wanted to go to summer school to make up for failing math, but something happened in Boston when Biff went to visit his father that changed his mind. Charley gives the now-unemployed Willy money to pay his life-insurance premium. Willy shocks Charley by remarking that ultimately, a man is "worth more dead than alive."

Happy, Biff, and Willy meet for dinner at a restaurant, but Willy refuses to hear bad news from Biff. Happy tries to get Biff to lie to their father. Biff tries to tell him what happened as Willy gets angry and slips into a flashback of what happened in Boston the day Biff came to see him. Willy had been having an affair with a receptionist on one of his sales trips when Biff unexpectedly arrived at Willy's hotel room. A shocked Biff angrily confronted his father, calling him a liar and a fraud. From that moment, Biff's views of his father changed and set him adrift.

Biff leaves the restaurant in frustration, followed by Happy and two girls that Happy picked up. They leave a confused and upset Willy behind in the restaurant. When they later return home, their mother angrily confronts them for abandoning their father while Willy remains outside, talking to himself. Biff tries unsuccessfully to reconcile with Willy, but the discussion quickly escalates into another argument. Biff conveys plainly to his father that he is not meant for anything great, insisting that both of them are simply ordinary men meant to lead ordinary lives. The feud reaches an apparent climax with Biff hugging Willy and crying as he tries to get Willy to let go of the unrealistic expectations. Rather than listen to what Biff actually says, Willy appears to believe his son has forgiven him and will follow in his footsteps, and after Linda goes upstairs to bed (despite her urging him to follow her), lapses one final time into a hallucination, thinking he sees his long-dead brother Ben, whom Willy idolized. In Willy's mind, Ben approves of the scheme Willy has dreamed up to kill himself in order to give Biff his insurance policy money. Willy exits the house. Biff and Linda cry out in despair as the sound of Willy's car blares up and fades out.

The final scene takes place at Willy's funeral, which is attended only by his family, Charley and Bernard (Bernard says nothing at the funeral, but in the stage directions, he is present). The ambiguities of mixed and unaddressed emotions persist, particularly over whether Willy's choices or circumstances were obsolete. At the funeral Biff retains his belief that he does not want to become a businessman like his father. Happy, on the other hand, chooses to follow in his father's footsteps, while Linda laments her husband's decision just before her final payment on the house.

Miller had been exploring the ideas underlying Death of a Salesman since he was a teenager, when he wrote a story about a Jewish salesman; he also drew on memories of an uncle. He wrote the play in 1948, and it opened in New York City, directed by Kazan, in February 1949. The play won a Tony Award for best play and a Pulitzer Prize for drama, while Miller and Kazan again each won individual Tonys, as author and director respectively. The play was later adapted for the screen (1951 and several made-for-television versions) and was revived several times on Broadway.

Miller based The Crucible (1953) on the witchcraft trials in Salem, Massachusetts, in1692-93, a series of persecutions that he considered an echo of the McCarthyism of his day, when investigations of alleged subversive

activities were widespread. Though not as popular as Death of a Salesman, it won a Tony for best play. It was also adapted numerous times for film and television. In 1956, when Miller was himself called before the House Un-American Activities Committee, he refused to name people he had seen 10 years earlier at an alleged communist writers' meeting. He was convicted of contempt but appealed and won.

Arthur Miller has given expression to the self-awareness and search for identity in their plays. This gets reflected in almost all his plays like A view from the Bridge, The Misfits, After the Fall, Incident at Vichy and The Price. The central conflict in all the plays grows out of a crisis of identity. Each of the protagonists in these plays is suddenly confronted with a situation which he is incapable of meeting and which eventually puts his name in jeopardy. In that continuing battle, he often forgets who he is, finally his inability to answer the question who am I? Produces calamity and his ultimate downfall. Joe Keller, Willy Lowman, John Proctor and Eddie Carbone are alike caught up in a problem of identity that is normally characteristic of youth and their deaths are caused by their lack of self-understanding. In every case, this blindness is in a large measure due to their failure to have resolved the question of identity at an earlier and more appropriate time in life. Miller presents this crisis as a conflict between the uncomprehending self and a solid social or economic structure – the family, the community and the system. The drama emerges either when the protagonist breaks his connection with society or when unexpected pressures reveal that such a connection has in fact, never been even existed. Miller sees the need 'for such a connection as absolute and the failure to achieve and maintain it is bound to result in catastrophe:

"Each of the plays written during the first period is a judgement of man's failure tomaintain a viable connection with his Surroundings because he does not know himself. The protagonists of the earlier plays belong to a strange breed. In every instance, they are unimaginative, inarticulate, and they want to love and to be loved, but they are incapable of either giving or receiving love. They are haunted by aspirations toward a joy in life that his humdrum spirit is quite unable to realize. Yet, in spite of all these negative characteristics they do engage our imagination and win our sympathies."

what dramatist teaches United States is this: Personal failure isn't continuously a product of social injustice, and ,revolt,anger and bitterness are ne'er a noble kind of protest. Of course, his writings--from the 1949 Death of a Salesman to last year's Finishing the image--always insisted on the alternative. Miller's plays were stuffed with bitterness,protest,revolt invariably and that they found society itself accountable for any flaw within the human condition. however the approach he really lived, that is the real drama. Arthur Miller's life is that the nice American drama of the 20th century.

Certainly all of America's newspapers thought therefore, notwithstanding they attended get the ethical wrong. once Miller died on February ten at age 81, the media raced to inform the playwright's life as a story during which American hypocrisy and evil were overcome by the force of one man's talent and unyielding honesty. The Washington Post, whereas relating Miller's confrontations with the House disloyal Activities Committee, insisted he had been "blacklisted," a whole invention that not even Miller might have claimed for himself with a facial gesture. Across the state, Miller was eulogized as a brave victim World Health Organization had withstood the Babbitts and therefore the McCarthys and therefore the Mrs. Grundys to indicate America because it is. The New royal line Times hailed his "work that exposed the issues within the material of the dream," whereas the Washington Post divided the figure of speech in two: the "Playwright of Broken Dreams" World Health Organization "Showed blemished Characters."

The American intellectuals has continuously differed from its European counterparts by holding out disillusion, instead of hope, because the basis of its message. Even the harshest plays of, say, dramatist and dramatist were supported ideals of cooperation and courageousness, whereas Willy Loman, the hero of Miller's Death of a salesperson, represents a world during which courageousness is absent.

But dramatist was nothing if not a product of the leftist disaffection with yankee existence, and it's probably on this score that the New royal line Times could declare him the "most American" of our nice playwrights. that is a curious conclusion, for Death of a Salesman hasn't aged notably well. within the post-Reagan era of triumphant entrepreneurship, a drama proclaiming the unusefulness of exertions and devotion to employment lacks the force it once perceived to have. Still, in its use of language and skillful temporal order, Death of a Salesman has its points. it had been along with his 1953 play The Crucible that Miller fell entirely into the self-dramatizing of his own politics. The play has been scan by immeasurable high-school students as a figure of speech equation yankee anticommunist with the Salem witch trials.

Here the essential untruthfulness of Miller's politics came to the fore. The Crucible effectively

dramatizes the fear of false accusation and maltreatment. And yet, as Peter Mullen wrote within the London Times, "There were no witches in Salem, Mr. Miller. however there have been lots of communist enemies of the state in America." Indeed, the national capital purge trials of the Thirties, during which folks lost their lives, ar a additional important parallel to the Salem tragedy than ar the yankee law-makers hearings of the Nineteen Fifties, that caused many to lose their jobs. AND YET, the effectiveness of Death of a Salesman and The Crucible--Miller's best work, by an outsized measure--suggest the person was one thing quite a propagandist changed into a literary icon, AN author of tokenish talent whose name was grossly inflated by the recusant left. Rather, he falls into the class of writers of some real talent whose careers were spoilt by their allegiance to leftist ideology. Bertolt Brecht was such a figure. therefore was the Spanish writer Rafael architect, World Health Organization began as an excellent member of that country's literary generation of 1927 and complete as a Stalinist hack. therefore were the French surrealists Aragon and Paul luard, World Health Organization dedicated themselves to strident praise of the Russian police and its purge operations. The yankee left provided another, and worse, example in Henry author, author of the classic novel Call It Sleep (1934), World Health Organization was convinced by the Communist cadres to show his back on literature for years to figure as a works hand. Miller ne'er abandoned literature for proletarian employment, though he created some extent of reminding those who he had worked within the borough naval shipyard, throughout warfare II, as a shipfitter's helper.His once popular A read from the Bridge (1955) mythologized the lives of longshoremen and alternative working-class characters. And yet, even during this later arrange to notice some normal Americans whom he might treat as objects of fellow feeling, he couldn't escape the overwhelming tone of discontent with America--or the self-dramatization of presenting "informers" because the nation's nice evil.Miller was ne'er capable of the contemplation and insight found in really nice artists. His 1987 autobiography Timebends was additional notable for what it failed to say than what it aforementioned, and far of the latter was demonstrably dishonest, like the specious claim that Elia metropolis, his on-again, off-again friend and collaborator, scarf the substance of the Oscar-winning 1954 movie On the Waterfront from him.To be fair, Miller inevitably recognized that it had been incumbent upon him to denounce tyranny, particularly against writers, in some Communist states (except, notably, Castro's Cuba), additionally to railing against the disappointments of laissez-faire economy. however his basic grudges, as well as his spite regarding his failure with actress, never died. His last work, Finishing the Picture, was supported the creating of The Misfits, and, once again, delineated Monroe, below the name Kitty, as a mentally unstable pill-head. Deborah Solomon, writing in the New royal line Times, utilized a feminist bromide with devastating accuracy: "Like any range of male intellectuals, dramatist isn't continuously wise once the topic turns to girls."What a life. All those plays, every straining to be the enduring declaration of the failure and meaninglessness of yank life within the twentieth century, when, really, it had been dramatist himself World Health Organization best incontestible the purpose.

References:

1) All My Sons
2) Death of a Salesman
3) After the Fall
4) The Misfits
5) Crucible
6) J. R. Brown: American Theatre London 1967 Birnard Harris
7) Horst Frenz: American Playwrights on drama: Hill and Wang New York, 1965
8) Gerald Welaces: American drama since World War II, Harcourt, New York 1962
9) D. S. R Welland: Arthur Miller Oliver and Boyd, London 1961
10) Dennis Welland: Miller, A Study of and Mathuen
11) Ronald Hayman: Arthur Miller, Heinemann London
12) Arthur Miller: Tragedy and the Common Man (Article The New York Times USA 1964)
13) Arthur Miller: Morality and the Modern Drama(An interview) Educational Theatre, Journal, 1958

Dr Anjul Bhagi
Research Scholar
Guided by
Dr A. K. Sharma
Reader
Hindu College
Moradabad

58

Folklores, Myths and Supernatural Element as Portrayed in Ruskin Bond's Stories

Shilpi Agarwal

Abstract

Bond's stories are manifestation of his agony. He started writing from his teen to emancipate his loneliness and sufferings. Bond uses plot or background to form the atmosphere of insecurity as he himself had featured this insecurity throughout his childhood. With the passage of time there's a marked variation in presentation of the ghosts. His readers believe that he writes from soul. Without using serious informative tone he preaches man to like nature as a sensitive environmentalist, to know a child's perspective as a master storyteller of children literature. He is a master story teller is well known for his short stories among the young and the old. He draws out the warmth of rural life or the life of the small towns when things are generally colored with superstitions and realistic tradition with a touch of originality. Bond's paranormal tales not just haunted but haunting .They do not frighten but often unsettle, in a lyrical and quietly touching way.

Key words: Ghost, myths, Himalayas, folklores

Every country has his own store of ghost stories. And India with its several myths and superstitions abounds in them. And howsoever one would say, 'I don't believe in ghosts', the fact remains that a tale of paranormal always succeeds in enchanting the audience. Ruskin, a master story teller has been well known for his short stories among the young and the old. He draws out the warmth of rural life or the life of the small towns when things are generally colored with superstitions and realistic tradition with a touch of originality. A he himself writes:

"I am fortunate to be living and working in the mountains, in full view of majestic snow peaks of the furthest Himalayan ranges-those some peaks where the Gods and Godesses of Hindu mythology have their abode and I am doubly fortunate in being able to look down from the mountains upon the plains of India. A melting point of races and religion, where so much has happened, and still happens, to excite the mind and spirit."(1)

For Ruskin, India is more than a land –it is an atmosphere and through his magical stick he has tried to recapture some of its old charm and imprisoned it in the tales. In 'Flight of thePigeons' he narrates naturally the rituals of the bath, the baisakhi celebrations, the superstitions about the spirit and the pigeons on graves-thus adding authenticity to his story. He even uses Muslim ways of life and customs. The readers usually forgets the genesis of Ruskin when he reads in his stories the references to evil spirits and sprites. Like he usually narrates about aerial beings called jinns who are easily attracted by the long hair and pretty eyes of a girl. As Ruth's mother speaks in 'Flight of the Pigeons'-

"There was once a lovely girl who had a wealth of black hair,' said mother, 'Quite unexpectedly she became seriously ill, and in-spite of every attention and the best medical advice, she grew worse everyday. She became thin as whipping post and lost all her beauty, with the exception of her hair, which remained beautiful and glossy until her dying day. A young jinn would appear to her, and tell her that he had fallen in love with her beautiful hair , one evening when she was drying it after a bath, and that he intended to take her away. She was in great pain, yet in the midst of her suffering her invisible tormentor never ceased to visit her; and though her body became shriveled, there shone in her eyes an unearthly light and when her body decayed and died her gorgeous head of hair remained as beautiful as ever."(2)

Ruskin Bond has a store of the incredible amount of folklores. Though a Christian, he has explored several Muslim superstitions which he uses time to time in write tales to astonish the readers. Like the one in which he tells us about a 'munjia', a ghost, who takes up his abode in the branches of a lonely peepal tree. When the 'munjia ' is annoyed , he rushes out of the tree and upsets tongas, bullockcarts and cycles. He even warns the people that anyone passing beneath a tree at night must be careful not to yawn without covering his mouth or snapping his fingers in front of it. If he forgets, the 'munjia' dashes down his throat and presumably ruins his digestion.

Ruskin is also at ease with handling Hindu mythology, vivid uses of lores from the epics of Hindus represent his cognizance of Hindu tradition. In Panther's

Moon he uses the myth of Ganesha-

"When Bisnu was dressed, he stood with folded hands before the picture of Ganesh. Ganesh is the god who blesses the beginnings. The author who begins to write a new book, the banker who opens a new ledger, the traveler who starts on a new journey, all invoke kindly help of Ganesh. And as Bisnu made a journey everyday he never left without the good will of the elephant headed God."(3)

In "Sita and the River' he presents a world where both man and nature are part of a man's creation. Here Bond has tried to portray nature's duality, her mysterious power both creative and destructive with ease and felicity. Sita in the story is the character depicted with symbolic overtones. She is the representative of Jagat Janni and protectors Durga. At the same time, she became one with the forces of nature, while Krishan her savour with the flute and the peacock is symbolic of Lord Krishna himself. Bond has imbibed the Hindu values tradition religion and social norm to a greater extent. For instance he says-"That I put out hand and touched the rough bark of the tree and this felt good to me. So I removed my socks and the shoes as people do when they enter a holy place."(4)

This is purely an Indian concept according to which trees are taken as a part of devotion. People in India worship trees and take them as the abode of Gods and Godesses. The belief in the trees as totem lays the foundation of yet another story o f Ruskin, 'The King and The Tree Goddess.'

'The Haunted Bicycle' and 'The Eyes of the Cat' both deal with the same theme of transformation of what is beautiful and innocent into something that is terrible. In the first story, lost children, a boy and a girl on a deserted forest road, metamorphoses into specters with bloated faces and hairy limbs at dusk. There is a variant of the 'churail' folk story, widely known throughout the country, of a female malevolent spirit, disguised as a young girl who lures innocent travelers to their doom. In 'The Eyes of the Cat' a young person enacts a bloody vengeance from her teacher who has been mocking at her in school. The girl does by transforming into the leoparf by the light of the moon and killing her teacher.

'A Face in the Night' reveals another face of the hill myths. It is more obviously an adaptation of a folklore which as wide currency all over India. The ghost of a dead school boy with no face-"The eyes, nose, mouth…nothing not even an eyebrow! The wind blew the lamp our; Mt Oliver had his heart attack." (5)

One can encounter the feeling of horror while reading these lines extracted from the story 'Whispering in the Dark' from 'Time Stops at Shamli'-

"As I turned from the mirror thought I saw someone, something, some reflection other than mine, and move behind me in the mirror. I caught a glimpse of whiteness, a pale oval face, burning eyes, long tresses, golden in the candle light. But when I looked in the mirror again there was nothing to be seen but my own pilled face."(6)

Bond is quite economical with his words and is appreciated and admired for writing from his heart. He is an expert master story teller who is good at capturing atmosphere of the deserted cottage with a grotesque mirror of rococo design and portraits thing in the wall seems springing to life. 'Whispering in the dark' is one of such Ruskin's horror story that successfully changes the reader's perception towards the theory of paranormal activities. This story compels the reader to conjure up the vision of that dark night in deserted cottage when you've retired to bed and as soon as you close the eyes some whispers break open your sleep-

"I blew out the candle—and the darkness closed in around me, and the whispering began.....The whispering began as soon as I closed my eyes and couldn't tell where it came from". (7)

The atmosphere created by Bond is so vivid and real like that these unconvincing stories tend to be convincing sometimes. In one of his other interesting story

'The Haunted Bicycle', the narrator while cycling along a quiet unfrequented forest road noticed a small boy standing in the middle of the road in such late hours, which was indeed surprising. The unusual behavior of the child made the narrator afraid and bound to think as to how this is possible. The reader find himself unable to stay away from the fact that as the story moves he is unable to avoid the undoubtedly scary feelings which really haunts him till late -

"The wind was against us, and as I cycled on, I shivered with cold but the boy did not seem to feel at".

"I noticed that the boy's hands, which were raising on the handle bar, had grown long and black and hairy. Their tone now was menacing and far from childlike .I took a quick

glance over my shoulder and had my worst fears confirmed. The girl's face was long and bloated. Her legs, black and hairy were trailing along the ground." (8)

"Roads to Mussoorie" is one such another assortment of Bond's stories that fills the reader imagine and visualize the vividness with that he has place his imagination in his stories. 'Some Hill Station Ghosts' is meticulously written by Bond with an outline of paranormal encounters.

The horror and feeling of terror is formed by a personality of ladies in white sitting on the parapet by the facet of the road. She is referred as Bhoot Aunty by the resider's there and to offer her a lift is taken into account on court disaster.

In a similar story there's an outline of a deserted house that is believed to be the haunted one. Strange sounds are heard in the night which at makes the atmosphere terribly shuddery. A terrifying experience of a character Mr. Jacob is mentioned here who does a night duty at the morgue. It's necessary to say the subsequent lines from the text that lends a convincing bit to the incident:

"The morgue had no electricity, just a kerosene lamp, and after sometime I noticed that the flame was very low. Lamp went out and something moved very softly and quietly past me. I felt quite sick and could hear my heart pounding away. Presently the footsteps came nearer and nearer. Something cold and icy touched one of my hands. It was behind me. I was in the arms of the corpse. "(9)

'Roads to Mussoorie' is one such another assortment of Bond's stories that fills the reader imagine and visualize the vividness with that he has place his imagination in his stories. 'Some Hill Station Ghosts' is meticulously written by Bond with an outline of spectral encounters. The horror and feeling of terror is made by a personality of ladies in white sitting on the parapet by the facet of the road. She is referred as Bhoot auntie by the resider's there and to it's mentioned within the on top of story that when this horrible expertise, Mr. Jacob refused doing any longer night duty at the edifice. Bond has given a true like description of a lady in white who wore a wicked smile, was engaging and appears were extraordinarily scaring together with her canines protrusive slightly in evil spirit fashion. An additional mention is created of a house in Dehradun that was lying deserted with no inhabitants for many years. Chowkidars of the house himself tells that he hear strange sounds within the night. The subsequent lines be mention, supply her a carry is takes into account on court disaster.

"The atmosphere of the place doesn't bother him, but he does hear strange sounds in the night, like someone crawling on the floor and someone groaning". (10)

Bond has weaved the story in several dimensions also mentioning about a place called Chakrata, where he come across a large black cat and when called out to it, the creature turned with the eyes of human and a face of ugly woman. Following lines are worthwhile to be mentioned:

"The creature turned, and looked full at me with eyes that were human and a face of an ugly woman. The creature snarled at me, and the snarl became an angry howl. Then it vanished! (11)

These Bond sends a fearful sensation by giving such an unusual description of a cat into human and then suddenly disappearing. It is undoubtedly true that stories having elements of horror and terror are enveloped with a kind of fatal attraction. It cannot be denied that the scarier, the better.

Bond uses his plots to evoke a sinister atmosphere of thunder, lightening, whisper and figures seen by visible radiation. The background of 'Whispering within the Dark' is frightening. He writes from soul. He preaches man to like nature. It's very troublesome to know why and the way he provides impetus to existence of ghosts. Bond portrays ghosts in such the simplest way that readers are compelled to believe on the supernatural component. There's life on the far side the circle of sunshine that our eyes will see, within the realm of darkness that solely a number of have full-fledged. different stories 'Dead man's Gift', 'The Haunted Bicycle',

'The Eyes of the Cat' etc. are stories skillfully weaved to bring reader into another world and enhances the impact of terror. Once writing children's novels for a long time when asked about intrigued about the horror as a theme, Bond replies, "when I run out of real people to write about make up supernatural characters."

The interest and curiosity Bond garners through his remarkable stories like, A Face in the Dark, The Haunted Bicycle, The vision, Whistling in the Dark, The Black Cat, The Wind on Haunted Hill, The Ghost in The Garden, Eyes of the Cat, Night of the millennium etc. is astonishing . Ruskin remarks that he doesn't believe in ghosts but saw them in wood, in a bar, in a crowd, in a deserted cottage or

house etc. There is a description of haunted places, weird atmosphere and strange atmosphere which do not take place in real life. A face in the Dark is full of fear and dark atmosphere of hills and one of his story The Vision in which Bond shares his own experience at Dehradun where he saw his father who was dead. Once while riding a bicycle he saw figure, also in the balcony and near mountain stream.

Bond's stories are manifestation of his agony. He started writing from his teen to emancipate his loneliness and sufferings. Bond uses plot or background to form the atmosphere of insecurity as he himself had featured this insecurity throughout his childhood. With the passage of time there's a marked variation in presentation of the ghosts. His readers believe that he writes from soul. without using serious informative tone he preaches man to like nature as a sensitive environmentalist, to know a child's perspective as a master storyteller of children literature. In this context this is often extremely troublesome to know why and the way he offers impetus to existence of ghosts, that is simply a superstitious notion. The supernatural component is additionally maybe a hidden expression of his temperament. It is not visible superficially however it exists in black darkness of any a part of Bond's temperament.

Bomd has a penchant for writing ghost stories containing the elements of mystery, suspense and hushed up secrets. 'His legends, parables, the folk tales, the ghost stories as the mythology of the mountainuous landscape. Indian reality is thus an integral part of Bond's stories. It is not a practice with him to use an Indian setting to provide an unusual background for the benefit of the foreign reader. On the other hand he finds it impossible to give any other setting apart from an Indianone. His stories grow out of the unique setting that Bond has been exposed to and has loved all his life. His Bond with the land of his birth is so strong that he compares the countryside of England with the natural surrounding of the Himalayan foothills. According to Prabhat K Singh-

"His art of writing, therefore is the art of feeling, the art of seeing, the art of hearing, the art of using all senses whether directly or through imagination, somewhat like Conrad who was Polish by birth, French by literary culture writing in English. Bond with European blood in his veins lyrically recreates in English Language the Indian ethos and the variegated phenomenon of his surrounding especially the hills and the people."(12)

References

1. Ruskin Bond: 'Bond's Comments',Twentiethe Century Children's Writers (London, St. James Press,1990) p.115.
2. Ruskin Bond: 'A Flight of Pigeons', Collected Fiction, p.869.
3. Ruskin Bond :'Panther's Moon', ibid, p.122.
4. Ruskin Bond :'The Last Tonga ride', ibid, p.122.
6. Ruskin Bond :'A Face in the Dark', ibid, p.98.
7. Ruskin Bond: 'Whispering in the Dark', Time stops at Shamli. Delhi:Penguin Books India,1989. p.56. 8. Ruskin Bond: "The Haunted Bicycle". Time Stops at Shamli.New Delhi:Penguin Books, ndia,1989. p.140.
9. Ruskin Bond: "Eyes of the Cat".Time Stops at Shamli:New Delhi:Penguin Books India,1989. p. 67.
10. ibid.,p.69.
11. ibid., p. 143.
12. Prabhat K. singh:'General Introduction'. Op. Cit., p.8.

Shilpi Agarwal
Research Scholar
Prof (Dr) K K Kapoor
Former Reader and Head
Bareilly College,
Bareilly

59

Arthur Miller- A Writer of Social Tragedy

Dr Anjul Bhagi, Dr A. K. Sharma

Abstract:

This paper throws light on Arthur Miller's heores' struggle for survival in a conventionalized business oriented society in which everything is controlled and shaped by Mammon,a society in which moral values are largely disregarded a society in which men and women have hardly any moral or spiritual force as guide in their behaviour . So, his plays concentrate and portray the conflict between the individual and the society.In his tragedies he is mainly concerned with contemprorary social reality.

Arthur miller is one of the greatest dramatic artist of modern America. He comes of a family which is not well to do. It was for this reason that he had to work as an assistant on a shop, and after gathering enough money, he started his education. He joined Chicago university where he was particularly interested in the study of drama and social problems. Endowed with the strong humanitarian spirit he was particularly interested in the common man who was exploited immensely and unjustly by the profiteering class.

Man was seen as a product of life. The financial bases of social dissatisfaction is quite evident in his play entitled "All My Sons". Man is the victim of his society. In his another play "Death of a Salesman", the salesman is destroyed by the social forces around him.In his essay "Tragedy and the Common Man", Miller formulates his theory on the nature and unction of tragedy. He says that the tragic feelings are invoked in s when we are in the presence of a character who is ready to end his life to secure personal dignity. In a tragedy we always come across an individual who tries to gain rightful place for himself in the society. Man's failure to achieve his personal dignity is the fault of the society. Miller asserts that the personal factor is not entirely passive. While examining a tragedy we should not exclude the individual's flaw though the most dominating factor is the society.

Shakespeare also in his plays has laid due emphasis on the shortcomings of the individual which he calls tragic error or tragic flaw. Aristotle calls it Hamartia. He lays emphasis on the social factors, not on the heroes inner weakness. The truth remains that the morality of a tragedy, and its lesson and the enlightenment of a tragedy consists in this discovery of moral law, not the discovery of some abstract metaphysical consciousness. Miller's concept of the tragedy is clearly reflected in his explanation of the tragic flaw. The heroes flaw in a tragedy is not regarded as a source of great weakness. Everybody has a desire to rise above his circumstances. Thus, tragic flaw is a shortcoming in the hero's character which precipitates the catastrophe. This makes his defeat morally tolerable.

Miller sees the human situation as the product of forces operating outside the individual and the tragedy inherent in the situation as a consequence of the individual's total disaster against an order that tends to degrade him. It is the function of the society that it reveals the truth. It is the society that denies the personal dignity to the individual. It is tragedy which throws light on the moral law.

All my sons, one of the most popular and the best plays by Arthur Miller in primarily concerned with social problems. For example real tragedy in the play lies in the character of Chris Keller who develops a conflict between his affection to his father and his sense of duty and responsibility. Ultimately Joe Keller, the father comes to realise that Chris, "What more can we be," Chris replies, "You can be better." Once for all you can know that there is a universe outside, and you, are responsible for it, and because you did not know that you threw away your own son and caused his death."In The Death of a Salesman also Miller lays emphasis on the forces of the society as the main tragedy. But here is a difference in what he says in his Tragedy and the Common Man, is adequately applicable to The Death of a Salesman. Miller chooses the common man as fit subject for tragedy. The idea that a tragedy can be based on the lives of common man is not new. Ibsen had initiated the common man as the hero of the play long ago. Miller's is one who struggles against the so called settled cosmos because he wants to secure his rights and his dignity. This is a common view of tragedy. But it is not applicable to The Death of a Salesman. Willy Loman does not gain from the tragic occurrence. He is, no doubt, the victim of the social forces. It is at the end of the play that he realizes that Biff really loves him. Still he prefers death to life. He is a pathetic figure but Miller says that pathos has no play in a tragedy.

In his other plays too Miller was guided by the same principle. For example The Crucible, the first scene appears to be not concern with the role as of one man, John Proctor,

though prompted by the outside forces the play has an inner crisis. The intensity of tragedy results from the increasing concentration on the individual or the tragic hero who in his dilemma epitomized the whole tragic structure. The higher degree of conscience is very important as it raises the position of the hero and makes him a worthier protagonist, and renders more significant.

Like the modern writers of tragedy Miller has been seeking a new explanation of the human situation with its tragic aspects. He sells it materialistic and humanistic terms, not in transcendental terms. Our ignorance of conscience in remediable. Our men's ethical system though faulty can be improved. Our environment which restricts and defeats us can be altered in will. The modern dramatists have to postulate free will in what appears as an otherwise mechanistic world. This is what a modern playwright has to face. This dilemma is discernible in The Death of a Salesman.

Miller's really accomplished work was the play All My Sons which had a long broad way run, of performance. The play as already said established Miller as a dramatist of high repute. It is a traditional will made play. Like Ibsen's plays All My Sons starts immediately before the climax. Most of the story has begun before the play has started, and the curtain has been raised. A lot of it is made before the curtain rises and revealedby exposition subtly under woven by the current action. This structure was not a unique one with Miller or Ibsen. One may find primarily the same structure in Oedipus Complex and in Sophocles play as in Miller's. The revelation of a criminal whose crime occurred years earlier is the crux of the present action. However, as, Oedipus, Miller's play in two parts one half being the father and criminal, and the other half the son and detective. The promise of All My Sons was fulfilled with the advent of The Death of a Salesman. To many persons the play served the most meaningful and moving statement made about American life upon the stage to a great many years, and it is still considered Miller's master piece. The play was awarded The Pultzar Prize for drama and satisfied its author's reputation as a leading American dramatist and one of the country's significant writers.

Miller was highly influenced by Ibsen. He liked Ibsen's Economy of the people. Although not an eloquent play, Miller's version is fluent and easy. Many of Ibsen's long expositions and tirades are drastically reduced so that the adoption is only about two third the length of the original. Ibsen had a tendency to lengthen sometimes almost interminably, the action following the climax. Miller's abridgement of the last act makes the play more emphatic to modern ears than Ibsen's by recompilations of each dramatic point. The other main abridgement is in the meeting scene which Miller may have paired.

The points raised by Miller in favour of The Death of a Salesman being a tragedy are quite convincing. As a critic of his own drama, Miller displays a sense of objectivity and astuteness which is rather unique among writers. Miller states in the introduction that The Death of a Salesman grew out of the loss, futility, barrenness, sterility as well as aging. In one sense Willy's life is tragic because he has gone through the loss implied in the simple process of growing old. On the last day of his life he is a sad dejected old man rejected by the sons and the rest of the world. His life is surrounded by images of broken things – broken refrigerator bulb, broken washing machine, broken car etc. Not only this he has suffered from broken relationship with his sons and his employer. Thus altogether Miller would have us believe the play to be positive in its effect. The overwhelming sense of loss which is an essential ingredient of tragedy cannot be ignored.

Willy who is still in an unstable state of mind begins to plant his garden in the barren patch of land.His next play A Memory of Two Mondays is a short auto-biographical play based on Miller's days of struggle when as a grown up boy he had to work as a shop servant to support himself and earn money for his education because, as it has been stated above, he did not belong to a well-to-do family. A young and romantic adolescent boy is eager to reach out to people and make friends. But he feels unhappy because he knows that he is nobody in a complex world in which people are preoccupied with their own affairs.

He finds that people are apathetic mostly. Those whom we call friends deserve to be somebody else. We may think that they are different because they have no consideration for others. On the other hand the fact remains that they are unsparingly occupied. It is clear from the above that they are unsparingly occupied with their own concerns. Thus, it is clear that the play is an effective comment upon the life of people.

Another play, A View from the Bridge depicts a poor neighborhood. Edie Carbone is a middle class sailor. He gives shelter to two illegal immigrants in his house. They are his wife's distant relations. Catherine, his wife's niece also lives in his house. Catherine gives a soft behavior to Edie.

Edie becomes jealous of Rudolhab's interest in Catherine. In this play also man is shown to be a victim of outside forces, instinct and passion. He can also be a slave of the mysterious forces working within himself. After a gap of almost nine years Miller wrote his next play, After The Fall which is in fact the most complex and the most

autobiographical of his plays.

The action takes place in the mind of the hero. Thus, the stage is supposed to be the mind of the hero where other characters walk in and out just as memories and ideas appear in the mind without any other connection. The entire play is an exercise in analysis and examination of guilt in queen's relationship with the society in general. The complex form of the play helps the playwright in bringing to the surface some very subtle aspects of human relationship. The play is regarded as highly controversial. Some critics consider it as highly controversial, while others regard it as Miller's master piece. While still others regard it as a failure. The characters of Maggie is, indeed, very important in the play. Maggie is the second wife of Marilyn Monrae.As a social critic, he believed that a social drama can not but be very serious. The evil and virtue of society form an essential part of the social drama. It is undesirable that All My Sons and Crucible have a beginning of very high seriousness. Miller had a personal experience of Depression which brought people misery and harassment. Miller had also studied history as a subjuct at the college. It is the publication of Encyclopedia Britannica that created his deep interest in the past. He says he looks things up of all time to remind himself of detail to face the fact that there is so little really known. He used it to learn again what he once knew before.

The early years are a period of preparation for his work. Some of them might be called permanent dissertations on the craft applicable to any play. But most of them have a connection with the time, the overall idea he is trying to illustrate. And the decision as to whether a given note is worth putting down, whether it is relevant or not, define to, that is, the play he is trying to get to emerge as a whole. All the time he is trying to take these notes.

All these things do not savour of a judicious composition. It happened that for quite some time Miller`s attention remained fixed on a character or characters or on some feeling which when the play begins to take shape in his mind, suddenly the aphorism disappears. High praise was lavished on the The Death of a Salesman when it was performed on the play. It is not a pessimistic play. It focuses on Willy Loman and his struggle to regain his identity. Biff`s virtues were distorted by his father who thought it undesirable that his son was a thief as long as the boy was well liked. Biff loved and respected his father till suddenly he underwent a change when he discovered the woman in Willy`s room. Now he begins hating Willy Loman. He finds him lost not only to Biff but also to himself. He makes up his mind not to follow his example, not to follow his pretending self.

In spite of much similarity the tragic hero of The Crucible is different from the heroes of the other plays. John Proctor, unlike Joe Keller refuses to comment on the unsocial action. He loses his wife because he will not admit that he is a witch, a confession that would save his own life but make the others who would not confess seem guilty, and thereby justify the trials. He refuses to sign the confession because it would meanhanding his conscience to the judges as he puts it. John Proctor is neither brave nor good. Indeed, he previously committed adultery with the chief accuser of the witches, Abigail Williams, and the relationship is one of the main causes of witch hunt. Abigail desires Proctor`s wife to hang so that she may have him feel himself strongly guilty. Now he has come to regard himself as guilty and fraudulent person. His adultery and guilt have presented him from felling as one with his community and from his wife also he has been spiritually and mentally separated.

But Proctor like Biff Loman finds himself during the course of the play. But in order to save his wife he admits to the community without hesitation that he is indeed a lecher. The central crucible is John Proctor`s lust. He has a choice between life without conscience and death. He tries to save his identity even though it means death.

Thus, in most of Miller`s plays we have both discovery of conscience as well as its death. But The Death of a Salesman is not a pessimistic play. Not only does it focus on Willy Loman`s loss of conscience but it also lays emphasis on Biff`s struggle to regain his identity. His father had distorted his values. Biff was a thief but he took no time to change when he found the woman in his father`s hotel room. His attitude towards Willy Loman is instantly changed.

Anti social action is also discernible in yet another of Miller`s play entitled A View from the Bridge. The Longshire man, Edie Carbon has taken his wife`s niece to his home. When Catherine grows young, his love is violated. His is no longer the love of a father for a daughter. When Catherine comes of age she comes in contact with the two young men. Eddie shows himself a degraded man. He allows both the young men to have illicit relations with his wife. Eddie violated a code of behaviour. Early in the play Eddie accords with the idea of helping immigrants to help them have a start in life. It is indeed, an act of honour. Even in The Crucible where Miller cares to choose a plot from history one comes across a similar situation.

Unlike the plays of Tennessee Williams and Edward Albee, the psychological process in Death of a Salesman is introduced by the play's orientation towards a tragic end as it establishes Willy's mental reactions as inevitably self-destructive. This functions as atragic flaw

leading to tragic blindness. The confrontation has fostered Biff as having an insight and recognition of which Willy seems incapable. This is one of the arguments put forward by some critics to deny the play its tragic status. However, such a view does not seem to take into account a major feature of the play that is the duality of its dramatic structure and effect. Biff is represented as a parallel center of interest to Willy in this phase of the action but it is obvious that it is Willy who is destined to the role of the central figure accomplishing the play's tragic structure. Willy's last act maintains the consistency of tragic blindness leading to his tragic end. The final scene is structured as to give the play the dimensions of tragedy. The element of identification and cathartic effect are ensured by the fact that Willy's tragic end is brought about by feelings that are fully human and universal. The recognition element is associated with Biff and is retained to a post-tragic phase in the 'Requiem' scene. This double aspect marking the play's resolution- Willy's tragic blindness and Biff's recognition is central to the play's message about the individual versus the system theme, even though it constitutes in our sense, an element of weakness in the tragic structure. In fact, the final scene is poignantly marked by the lonely figure of a man racing into his death

For Miller, tragedy is driven by 'Man's total compunction to evaluate himself justly'. In the process of doing this, and for attaining his dignity, the tragic hero often loses his life. Society destroys him. But there is something affirmative about this for Miller, because the audience will be driven to evaluate what is wrong with society that it could destroy a man unjustly like that. Thus we as a society will gain a greater understanding of what is wrong with society, and will be able to improve society. Thus the hero's death offers hope.

More than this, Miller sees tragedy as inherently optimistic. This is because it's about what he calls man's 'thrust for freedom'. The hero will be destroyed at the end of the play, but there must always be the possibility that he could have succeeded and won out against society. If the hero is fighting a battle that cannot possibly be won, then that's nogood – that is not true tragedy, because the hero cuts a pathetic figure fighting an impossible battle.But if there is a fine balance between what is possible and what is impossible, this is when you have a great tragedy, because tragedy can then teach us about what he calls the 'perfectibility of man'.

For Miller, the tragic flaw, what Aristotle had called the hamartia,is redefined in modern terms as the hero's inherent unwillingness to remain passive in the face of what he conceives to be a challenge to his dignity and rightful status in society. As you may have gathered by now, the flaw is not within the individual or hero,but within society itself.

Miller shifts the hamartia onto society, and the individual is a victim of this flaw.

This is a liberal conception of the individual and his/her relation to the social order. The end or culmination of modern tragedy is that it ends with a man's destruction that results from his challenge to the status quo. This is what demonstrates that the wrong or 'evil' resides not in the individual but in his society. The social wrong: conditions which suppress man, pervert his creative instinct, and stifle his freedom.

'Tragedy and the Common Man' is observational rather than prescriptive in its approach. It doesn't lay down tenets of modern tragedy but merely note down a few elements which Miller believes make up much of modern tragedy in the theatre. Miller's argument is based not only on his own artistic perspective about what constitutes good tragedy, but also about what he notes other modern playwrights are making out of the classical form. It describes an emerging dramatic form. But it gives a new lease of life to the genre that must end with death: the theatrical tragedy.

References:

1) All My Sons
2) Death of a Salesman
3) After the Fall
4) The Misfits
5) Crucible
6) J. R. Brown: American Theatre London 1967 Birnard Harris
7) Horst Frenz: American Playwrights on drama: Hill and Wang New York, 1965
8) Gerald Welaces: American drama since World War II, Harcourt, New York 1962
9) D. S. R Welland: Arthur Miller Oliver and Boyd, London 1961
10) Dennis Welland: Miller, A Study of and Mathuen
11) Ronald Hayman: Arthur Miller, Heinemann London
12) Arthur Miller: Tragedy and the Common Man(Article The New York Times USA 1964)
13) Arthur Miller: Morality and the Modern Drama (An interview) Educational Theatre, Journal, 1958

Dr Anjul Bhagi
Research Scholar
Guided by
Dr A. K. Sharma
Reader
Hindu College
Moradabad

60

साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में आपात स्थिति का चित्रण

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांशः

कोई भी साहित्यकार, जिस वर्तमान में जीता है उसके अनेक प्रश्नों से उसे जूझना पड़ता है। समसामयिक को अनुभव करना और समय द्वारा रखी की गई सभी समस्याओं का सामना करना ही जीवन्तता की निशानी है। चेतना के धरातल पर जो व्यक्ति जितना प्रबुद्ध होगा, समस्याओं की गम्भरता को उतनी ही तीव्रता से अनुभव करेगा। विशुद्ध साहित्य जीवन का दर्पण होता है।

देश में आपात स्थिति की घोषणा 25 जून 1975 को हुई। इस घोषणा में कहा गया कि ''आन्तरिक उपद्रवों के कारण भारत की सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न हो गया है जिसके कारण गम्भीर आपात स्थिति मौजूद है। उसमें सरकार को अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर देने, नागरिक अधिकार लागू करवाने के बारे में अदालतों में मुकदमे रूकवा देने आदि के अधिकर मिल गये।''

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद सतारूढ़ और विपक्षी दलों में हई गहरी राजनीतिक प्रतिक्रिया के कारण ही श्रीमती गाँधी ने राष्ट्रपति को 'आन्तरिक एमरजेन्सी' की घोषणा की। असामान्य सलाह दी और ऐस उन्होने स्वयं को सत्ता में बनाये रखने के लिए किया जिसके कारण लोगों ने कहा कि ''जब तक लोकतंत्र श्रीमती गाँधी को गद्दी पर बनाए रख सका तब तक श्रीमती गाँधी ने लोकतंत्र को बनाए रखा। जिस दिन लोकतंत्र उन्हे प्रधानमंत्री बनाए रखने में नाकामयाब होने लगा, श्रीमती गाँधी ने लोकतंत्र को नाकामयाब कर दिया।

विचाराभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध तथा नागरिक अधिकारों के हनन की प्रतिक्रिया स्वरूप आपातकाल के दौरान अनेक नाटकों की रचना की गई जिन्होने अप्रकाशित रहकर भी मंचन द्वारा सत्ताकांक्षी भ्रष्टाचारी शासन के विरूद्ध जन–आक्रोश को चरम सीमा पर पहुँचाया। सन् 1977 में हुए लोक सभा के चुनावों में 30 बर्षों से स्थिर शासन समाप्त हुआ तथा जनता पार्टी सतारूढ़ हुई व देश को अधिनायकत्व से मुक्ति मिली। इस समय में जो नाटक लिखे गए वे भी आपातकाल की प्रतिक्रिया ही है क्योंकि अभी तक 19 माह के कारावास की यन्त्रणा, पीड़ा, घावों की टीस शेष थी। इन नाटकों में आपातकाल की जिन प्रमुख स्थितियों का निरूपण हुआ है उसमें –अधिनायकवाद, अखबारों पर प्रतिबन्ध, नसबन्दी, पुलिस उत्पीड़न, कैदियों के साथ दुर्व्यवहार, मकान गिराने की घटनाएँ, राजनीति आतंक से घिरी भ्रष्ट नौकरशाही आदि शामिल हैं।

आपातकाल की प्रतिक्रियास्वरूप अनेक ऐसे नाटक प्रणीत हुए जिसमें शासक दल का निरंकुश, स्वेच्छारी एवं अत्याचारी रूप उभरकर सामने आया है। 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक का इन्द्र ऐसा इन्द्र है जिसने सम्पूर्ण प्रशासन, तंत्री, विधान व्यवस्था, प्रबन्ध और प्रणालियों को न केवल अपने अधीन ही किया है बल्कि अपनी तत्कालिन अपेक्षाओं के अनुसार उन्हें संशोधित एवं परिवर्द्धित भी किया है। समाजवाद के नाम पर अपने परिवारों एवं परिजनों के नाम पर उत्पादन संस्थान खोले हैं। जनवाणी का गला घोटने के लिए या तो चुनावों को स्थगित किया है या उन्हे काले धन से जीतकर अपनी शक्ति का बढ़ा प्रदर्शन किया है। अपने इन्द्रासन की रक्षा के लिए आपातकाल को लोकमंगलकारी सिद्ध किया तथा निर्वाचन काल की अवधि को बढ़ाया। डा. लक्ष्मी नारायण लाल ने अपने नाटक 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में इन्द्र बने देवधर सत्ता के निरकुंश प्रयोग को शक्ति का अधिकार मानते हुए कहते हैं – 'जब तक मेरे पास ताकत है तब तक मुझे कोई कुछ नहीं कह सकता।''

आपात स्थिति के दौरान घटी घटनाओं और दुर्घटनाओं से जिनकी व्याख्या को एक नया अर्थ मिल गया है। 'कथा एक कंस की' का कंस केवल द्वापर युगीन मथुरा का कंस नही रह जाता और अनायास ही निरंकुश, स्वेच्छाचारी और अत्याचारी शासन तंत्र का प्रतीक बन जाता है – जो द्वापर में या त्रेता में भी था और आज कलियुग कहलाने वाले युग में भी समान रूप से विद्यमान है। इसलिए यह नाटक द्वापर युग का सत्य होकर भी अनायास ही आपात स्थिति के वर्तमान से जुड़ जाता है। आपात् स्थिति के दौरान जिस प्रकार सत्ता पक्ष का विराध करने वालों पर अमानवीय अत्याचार किए जाते थे उसी प्रकार की स्थिति का चित्रण इस नाटक में इन शब्दों द्वारा हुआ है – '(बाहुक (भागते हुए प्रवेश करके) मगध सैनिकों ने प्रतिशोध में बीस नागरिकों को काल के गाल में पहुँचा दिया।'' आपात काल के समय सारे देश में बर्बर शक्ति का प्रदर्शन हो रहा था और जहाँ कोई रत्ती भर भी सिर उठाने की कोशिश करता उसे बेरहमी से कुचल दिया जाता था। 'कथा एक कंस की' नाटक में – ''तीनों (तीन भेद भरी फुसफुसाहट में) यादव पराजिता हो गये हैं। जिसने सिर उठाया, सिर काट दिया गया। जिसने आँख दिखायी, आँख निकाल ली गई।'' आपातकालीन काल में घटी घटनाओं और अत्याचारों को जिस प्रकार लोग देखकर अनदेखा तथा सुनकर अनसुना कर देते थे वही स्थिति इस नाटक में भी चित्रित है। जिसके समर्थन में निम्नलिखित उदाहरण लिया जा सकता है'' पहला प्रहरी – तुम उनका रोना सुनते हो। आँखों पर पट्टी बाँध लो। कानों में

रूई ठूँस लो। बाहर से आनेवाला कोई स्वयं मत सुनों।'' सत्ता लोकतान्त्रिक न रहकर एक परिवार की बपौती बनकर रह जाती है। जैसा कि आपातकाल में घटी घटनाओं और अत्याचारों को जिस प्रकार लोग देखकर अनदेखा तथा सुनकर अनसुना कर देते थे वही स्थिति इस नाटक में भी चित्रित है जिसके समर्थन में निम्नलिखित उदाहरण लिया जा सकता है। ''पहला प्रहरी – तुम उनका रोना सुनते हो। आँखों पर पट्टी बाँध लो। कानों में रूई ठूँस लो। बाहर से आने वाला कोई स्वर मत सुनो।'' सत्ता लोकतांत्रिक न रहकर एक परिवार की बपौती बनकर रह जाती है जैसा कि आपातकाल में हुआ। आपात काल के दौरान श्रीमती गाँधी जिस प्रकार अपनी सत्ताकांक्षा को खुलकर प्रकट कर रही थी और संजय गाँधी को अपने उत्तराधिकारी के रूप में आगे ला रही थी उसी स्थिति पर इस नाटक में व्यंग्य किया गया है।

तीसरा प्रहरी – राजा को तभी कष्ट होता है जब उसका राज्य छोटा पड़े।

चौथा – हाँ, उसकी तो संतान का भी राज बढ़ रहा है।'' आपातकाल की निरंकुशता, आतंक, हिंसा, व्यक्ति स्वातन्त्रय के हनन को नाटककार ने पौराणिक संदर्भों द्वारा प्रमाणिक पात्र न होकर आज के निरंकुश शासक का प्रतीक है जा व्यक्ति है जा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का घोर विरोधी है। हिरण्यकशियु और प्रह्लाद की लड़ाई सत्ता और स्वतंत्रता (जनता) की लड़ाई है। प्रह्लाद हिरण्यकश्यप की निरंकुशता की ओर संकेत करता हुआ कहता है –''एक निरंकुश राजा के बाद दूसरा निरंकुश राजा नहीं आये, प्रजातन्त्र आये यही है मेरी चिन्ता।''

जनतन्त्र में प्रेस और समाचार पत्रों की रचनात्मक भूमिका रहती है। उनका दोहरा दायित्व है, एक है शासन तंत्र तक जनता को सही प्रतिक्रियाओं और प्रभावों को पहुँचाना ओर दूसरा साधारण जनता के लिए शासन तन्त्र की नीतियों की व्याख्या करना। इसके अतिरिक्त वे अंकुश कार्य भी करते है परन्तु आजकल प्रेस और समाचार पत्रों के उपयुक्त दायित्व और धर्म को दोगली और भ्रष्ट राजनीति ने खत्म कर दिया है – ''सत्तारूढ़ शक्तियों का प्रेस शासन की जन विरोधी नीतियों का समर्थन करने पर तुला है और विरोधी पार्टियों का प्रेस तन्त्र की लोक कल्याणकारी नीतियों को भी लोकहन्ता सिद्ध कर रहा है।''

आपातकाल में सत्ता पक्ष के द्वारा जन प्रचारों के साधनों का खुलकर प्रयोग हुआ। आपातस्थिति लागू करने के बाद देश के सभी समाचार पत्रों तथा अन्य प्रकाशनों पर सेंसरशिप लगा दी गई जिसके अनुसार कोई भी समाचार अथवा लेख सेंसरबोर्ड की स्वीकृति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त सरकार ने पहले से ही केन्द्र सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अन्तर्गत आने वाले आकाशवाणी, दूरदर्शन ओर पत्र–सूचना कार्यालय को अपने नियंत्रण में कर रखा था। आपातस्थिति की घोषणा के बाद यह नियंत्रण और भी अधिक हो गया तथा सरकार ने अपनी इच्छानुसार इनका उपयोग किया लेकिन इसके बाद भी हिन्दी में आपातकालीन क्रुर काली शक्तियों को चुनौती देनेवाले प्रखर नाटकों की रचना हुई। घोर सेंसरशिप के बावजूद सेंसरशिप की खिल्ली उड़ाने वाले नाटक लिखे गये। 'राम गोपाल राय के नाटक 'एक और अभिमन्यु' नाटक का नायक अमित सेंसरशिप का प्रबल विरोधी है तथा जनता को वास्तविक का बोध कराना अपना कर्तव्य समझता है – 'एक निर्भय सम्पादक के नाते, एक निष्पक्ष प्रेस की गरिमा रखते हुए मुझे उस व्यवस्था का जिसके क्रुर तन्त्र से जनसाधारण का, आम आदमी का शोषण, उत्पीड़न हो रहा है और भ्रष्टाचार का दानव जिस व्यवस्था का प्रहरी है, उसके विरूद्ध आवाज उठाकर जनजागृति पैदा करना मेरा पावन कर्तव्य है। एक स्वतंत्र देश के स्वतंत्र प्रेस की यही एक गरिमा है।'

आपातकाल में लोगों की जर्बदस्ती नसबन्दी कर दिए जाने का कार्यक्रम तेजी से चलता था। प्रत्येक मुख्यमंत्री के लिए यह तय कर दिया गया कि उन्हे कितनी नसबन्दी करानी है। इस दर्दनाक अभियान की झलक हिन्दी के नाटकों में मिलती है।

..... पुलिसवाले जिले के अधिकारियों के आदेश पर लोगों को पकड़ने के लिए पागलों की तरह जुट गए। गाँवों के लोगों में आतंक छा गया, वे लोग इज्जत व जान बचाने के लिए खेतों पर जाकर छिप गए। पुलिस वाले बस अड्डों एवं रेलवे स्टेशनों पर खड़े रहते और लोगों को जबरन पकड़कर नसबन्दी करा देते थे। सुशील कुमार ने 'नागपाश' नाटक में इस स्थिति का चित्रण इस प्रकार है – ''तीन – (चिल्लकाता है) मत ले जाओ मुझे.... क्यों ले जा रहे हो अस्पताल? .... मेरी तो शादी भी नहीं हुई.... बच्चे भी नहीं हैं... मैं तो बेकार हूँ.... छोड़ दो... मेरी माँ.... मेरा बाप... मुझे नौकरी।''

नसबंदी के नाम पर लोगों को अमानवीय कष्टों का सामना करना पड़ा। लोगों की भावनाओं की पूरी तरह उपेक्षा करके शासक वर्ग ने आबादी की रोक के लिए अपनी शक्ति का मन माना प्रयोग किया।

आपातकाल में शासकों को नसबन्दी के अलावा दिल्ली को खुबसूरत बनाने की धुन थी। शासन की ओर से अफसरों को इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए निर्देश दिए जाते थे और इस सिलसिले में जितना काम होता था उसका पूरा लेखा–जोखा रखा जाता था। बहुत बड़े पैमाने पर गैर कानूनी झुग्गी'झोपड़ियों को गिरा दिये जाने के कारण कई बस्तियों के पुराने बसे हुए परिवार अपने घर–बार छोड़कर जाने लगे। मुस्लिम आबादी वाले इलाकों में बेरहमी से बुलडोजर चलाये गये तथा पुलिस के साथ हुए संघर्ष में सैकड़ों लोग मारे गए। संजय गाँधी के चाटुकार अधिकारियों ने मानवीयता की सभी सीमाओं को पार करके अमानवीयता के नए उदाहरण प्रस्तुत किए। इस चाटुकार प्रवृति एवं शक्ति के अंध

समर्थन की पुष्टि 'नाग पाश' नाटक के इस उदाहरण से होती है –

चार – हो महारानी युवराज ने देश की कितनी बड़ी–बड़ी समस्याओं को चुटकियों में सुलझा दिया है।....

तीन – नगरों का सुन्दरीकरण किया।

चार – गन्दी और बदबूदार बस्तियाँ रातों–रात उजड़वा दी।

बुद्धिजीवी अपने परिवेश की प्रत्येक घटना को चिन्तन के गहन स्तर पर अनुभव करता है और उसके विशेष रूप से प्रभावित होता है। ऐसे समय में सत्ताविहिन दलों को अपनी पहचान खोते देर नहीं लगी क्योंकि उनके पास न तो जनमत था, न जनसमर्थन जबकि सत्तारूढ़ कांग्रेस अपनी पहचान और शाक्ति को कानूनी मदद से निरंकुश हदों तक ले गयी। इनमें सबसे अच्छे बुद्धिजीवी कहलाने वाले स्कूलों–कालेजों में पढ़ाने वाले, कानून के जानकार, सरकारी नौकर, डाक्टर आदि थे लेकिन उन्होंने भी ऐसे समय चुप्पी साधने में अपनी भलाई समझी। ऐसे विशेष व्यक्यिों में नाटककार भी थे जिन्होने अपनी कृतियों के द्वारा ऐसे लोगों पर खुलकर व्यंग्य किया। शंकर शेष ने अपने नाटक 'एक ओर द्रोणाचार्य' में सड़ी गली शिक्षा व शिक्षण व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। द्रोणाचार्य अर्थात ऐसा शिक्षक जिसे सत्ता ने पोसा है। एक ऐसे वर्ग का चित्रण जो सत्ता द्वारा पालित एवं पोषित है।

द्रोणाचार्य – उस दासता ने मुझे सुरक्षा दी, झुठी प्रतिष्ठा दी, सुविधाओं ने मेरी धार भोंधरी कर दी।''

निष्कर्ष –

हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में आपात स्थिति का निरूपण करके अपने नाट्कीय दायित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है। आपातकाल अपनी क्रूर एवं विद्रूप स्थितियों के साथ इन नाटकों में निरूपिन हुआ है। इन नाटकों में अनेक ऐसी ध्वनियाँ निकलती है जो इस संकटकाल की अधिकाधिक विद्रूपताओं को हमारे सामने प्रकट करती हैं। जैसे – अधिनायकबाद की प्रतिष्ठा, बलात् नशबन्दी, झुग्गी–झोपड़ियों को गिराकर लोगों को खुले आसमान के नीचे रहने को मजबूर करना, पुलिस दमन, मीसा एवं आसुका के अन्तर्गत विरोधियों पर किए गए अत्याचार, सत्ता विरोधी एवं सत्ता समर्थक दोनो प्रकार के बुद्धिजीवियों की यथा स्थिति का हृदयस्पर्शी चित्रण भी इन नाटकों में मिलता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. दीनानाथ मिश्र, आपातकाल में गुप्त क्रान्ति, पृ० 11, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्र.सं. 1977
2. डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द, प्र.सं. 58
3. सत्यव्रत सिन्हा, कथा एक कंस की, प्र.सं. 45
4. वही प्र.सं. 49
5. गिरीराज किशोर, प्रजा ही रहने दो, प्र.सं. 20, नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली प्र.स.1977
6. वही, प्र.सं. 5
7. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल, नरसिंह कथा, पृ0 113, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, पृ.सं. 1976
8. डॉ0 चन्द्रशेखर, हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा, पृ0 118, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1979
9. राम गोपाल राय, एक ओर अभिमन्यु, पृ. सं. 76
10. सुशील कुमार सिंह, नागपाश, पृ. 34, साहित्य सहमार, दिल्ली प.सं. 1977
11. वही, पृ. 57
12. डॉ0 शंकर शेष, एक ओर द्रोणाचार्य, पृ. 87, पराग प्रकाशन, बीकानेर, प्र. सं. 1979

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सह–प्रोफेसर (हिन्दी–विभाग)

गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय,

पलवल (हरियाणा)

61

सस्कृत सन्दर्भे अवधीब्रजोर्दूभाषानां भाषा वैज्ञानिकत्वम्

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी

सारांशः

लोक साहित्यदृष्टया अवधीभाषाब्रजभाषयोः तथा उर्दूभाषायाः महन्महत्वं भजतेराम्। हिन्दी भाषायां तिसृणां भाषानां विशिष्ट स्थानं विराजतें । सूरदास–तुलसीदास, नन्ददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, रत्नाकरादयः कवयः प्रामुख्यनेादरं भजन्ते अवधीभाषाभाषिणः त्रिकोटिसख्याकाः जनाः तिष्ठन्ति। अत्र जायसीउस्मानादयः सफूीकवयः तुलसीदास– बाबारामचरणदास रघुराजसिंहादीनां रामकवीनां प्रचुरं साहित्यं प्राप्यते। अत्र विभिन्नानां भाषावैज्ञानिकानां डॉ0 हरदेवबाहरी–डॉ0 भोलानाथ तिवारी–डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा–डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी इत्यादीना ं विदुषां मतानां प्रस्तुतीकरणं स्वीकृतम्।

अवधीभाषाया ं दिग्दर्शनमत्र यथामति क्रियते यथा माली शब्दः सस्कृते भवति। अवधीभाषाया मालिया, मलियवा, मलीवा, संस्कृते घोटक शब्दः भवति अवधी भाषायां घोड़ा , घाडेवा, घाडेउवा, नदीशब्दस्य कृते नदिया नदीववा, दृष्टम् इत्यस्य देखलिन, कथितम् इत्यस्य कहिलिख, कहिस, इत्यादयः प्रयोगाः भवन्ति। उर्दू भाषाया ं संस्कृत भाषातः तथा अवधीब्रजभाषातः शब्दाः समागताः।

ध्वनिदृष्ट्या सर्वत्र भेदो दृश्यते। यत्र कुत्रापि ओकास्य प्रयोगः दृश्यते बागंला भाषायां अकारस्योच्चारणं आकोरस्य समीपे तिष्ठति, परन्तु पश्चिमायां दिशि ओष्ठानां वृत्तता संवृत्तता च समाप्तप्रायं जायतो पश्चिमीहिन्द्यां अकारः आधिक्यने विवृत्तः यथा– कृपा– क्रिपा, कृपया– कृप्या, क्रिपया, हृदयं – हि्दयं हरदयं भवति। पश्चिमी अवधीभाषायां इकारः उकारश्च ईकारस्य अकारस्य निकटे दृश्यते, परन्तु पूवी अवधीभाषाया ं इकारः उकारः ह्स्वता ं भजतो अवधीभाषायां ऋकारस्य प्रयोगः रि इत्यनेन जायते। हद्रिका शब्दः हल्दी, मृतः शब्दः मरलिया मर गया इत्यादिभिः ज्ञायते। अहम् इत्यत्र हौं हऊ, मम मेरा, मेरो तव इत्यस्य तेरा तेरो, अस्माकं इस्यस्य हमारा हमारी म्हारो, तव इत्यस्य कृते तुम्हारा तुम्हारो तिहारो इत्यादयः भवन्ति। चलनं इत्यस्य चलना, चलनो, चलणा, व्रजभाषायां चलवो चलवा भवति। चलिष्यति स्थाने चलेगा, चलैगो, होगा होएगो चली चलि है, देखी देखि हैं ब्रजभाषायां हतो हते हती आसीत्। संस्कृते मारितः प्राकृते मारिदो ब्रजभाषाया ं मारयो निमाड़ी , इत्यत्र मार्यो वुन्देली, इत्यत्र मारो पजांबी भाषायां मारिया अवधीभाषायां मारेउ, मारिस, मारेस भवति भाजे पुरी इत्यत्र मरवस मरलो भवति।

संस्कृते आर्या श्रेष्ठनारी कृते भवति अवधीभाषायां अय्या भवति। ब्रजभाषा मथुरा–अलीगढ़– धौलपुर–आगरा–मैनपुरी–एटा–बदायूं – बरेलीनगराणां मध्ये उच्यते जनैः। अस्या ं उपभाषाः भकुसा, अन्तर्वेदी, भरतपुरी डागीं, माधुरी इत्यादयः सन्ति।

अकारस्य ओकारस्य प्रयोगाः अधिक्येन भवति। यथा आगतः इत्यस्य, आयो, गतः इत्यस्य गयो, एतादृशः, इत्यस्य अइसो जातः अस्याः भाषायाः सम्बन्धः शौरसेनी अपभ्रंशेन सह वर्ततो अस्योप्पत्तिः एकसहस्रशततमे (1000) ईसवीये जातः। परसर्गरूपणे अहं मैं स्थाने (कुत्र), कहु (कः) कौ कू सौ, सम (त्वम्) तै ते को के की कऊ इत्यादयः भवन्ति। सर्वनाम रूपणे हौं हऊ मइं मो मोहि मेरो मोरी मेर (अहम्) सो ताको (तव) वहइ (सः) उनको, कौण, आपणे आपणो आत्मरूपाणा ं प्रयागे ाः जाताः। अवधीभाषाया ं तदा (तब) यदा (जब) कदा (कब) आगे (अग्रे) आभ्यन्तर (भीतर) कुत्र (कहाँ) कदापि (कब्बो) शब्दाः प्रयुज्यन्ते।

अवधीभाषा अयोध्यातः प्रचलिता। अयोध्यातः औध औधत् अवधनाम जातम्। अवध प्रान्तस्यान्तर्गताः लखीमपुरखीरी– बहराइच– गाणेडा– बाराबकीं – लखनऊ– सीतापुर– उन्नाव– फैजाबाद– सुलतानपुर– मसरेली– हददोई जनपदाः सन्ति। एतदतिरिक्त ं प्रयागराज–फतहे पुर– जौनपुर–मिर्जापुर–मध्येऽपि अवधीभाषा उच्यतो शकू र– सुअर, समाषः–समोसा, आलकू ः–आलू महिष–भसैं, वत्स–बछड़ा, गर्दभः–गधा, ज्येष्ठः–जेठ, वत्सा–बछिया, बृद्धः–बूढ़ा, बृद्धा–बुढिया, दरिदः–दरिदर, भिक्षा–भीख, बुभुक्षः–भूख, पिपासु–प्यासा, उष्टः–ऊंट, मिष्टं–मीठा, इत्यादयः भवन्ति।

सख्यायाः कृते संस्कृतशब्दाः अवधीभाषायाः बाहुल्येन प्राप्यन्तो द्वि–दुई, त्रि–त्रीणि, चत्वारः –चार, पञ्च–पाचं , षड्–छः, सप्त–सात अष्टौ–आठ, एकादश–ग्यारह, षोडश–सोरा, एकोनविशंति–ओनइस, एकविंशति–एकइस, एकानेविंशति–आन्तिस, चतुर्चत्वारिशंात्–चऊआलिस, एकोनपञ्चाशत्–आन्चोस, पञ्पञ्चाशत्–पचपन, षष्टिः–साठि, षडसष्ठिः–छाछठ, शत– सौ सउ, कोटि–करोरि, प्रथमः–पहलि, द्वितीयः–दोसर दूसर इत्यादयः भवन्ति।

क्रियाविशेषणस्य कृते निम्नलिखिताः शब्दाः प्रयुज्यन्ते निर्गतः निकार, निकरबा भवति। सहायकक्रियारूपेण अस्ति–अहै, वर्तते–वाटे रूपेण समाद्रियते। सहायक क्रियायाः कृते वर्तमान काले– हिन्द्याम्– मै हूँ, वह है आदयः भवन्ति।

पुरुष	एकवचन पुरुष	एकवचन स्त्री	बहुवचन पुरुष	बहुवचन स्त्री
प्रथम	अस्मि– है, अहै, हइ, बाटै	स्मः – है, अहै, हई, बा बाटै	है अहै, हई, बाटै	अहै, अहई, है, बाटी, बाटिन
मध्यम	अस्ति – हई,	स्थः– हइस,	हौं अहौ,	हइव, अहिब
	अहै, अहिस, बाटे, बाटिस	अहिस, बाटिस	वाह्यो	वाटिओ
उत्तम	अस्ति– हौं अहौं, अहैः	सन्ति– अहऊ, हइउ	हई अही, बाटी	हइन अहिन, वाटिन

भूतकाल में – हिन्द्यां– मैं था

पुरुष	एकवचन पुरुष	एकवचन स्त्री	बहुवचन पुरुष	बहुवचन स्त्री
प्रथम	आसीत– रहा, रहै	रही	रहें, रहेन	रहीं रहिन
मध्यम	आसीत– रहे, रहय	रहे, रहिस	रह्यो	रहिउ
उत्तम	आसम्– रह्यो	रहिऊ	रहे	रहिन

भविष्यत् काल में – हिन्द्यां मैं, हुंगा, हम होंगे

पुरुष	एकवचन पुरुष	एकवचन स्त्री	बहुवचन पुरुष	बहुवचन स्त्री
प्रथम	भविष्यति – होई	किमपि परिवर्तन नास्ति	होइहैं	किमपिभेदः नास्ति
मध्यम	भविष्यसि– होवे, होई	''	होव्या, होइहौ	''
उत्तम	भविष्यामि–होवौं होरेहौं	''	होवे होवइ	''

अत्र–हिया, तत्र–हुआ, बहिः–बाहर, उपरि–उप्परि, निकटं– नियरे, निकषा–नगीचे, इतः–इधर, ततः–उधर, यथा–जइसन, अद्य–आज, परश्वः–परसों, परपरश्वः–तरसों, स्कन्धः–कन्धा, एकत्र– एकलगं, कृष्ण–करिया, गुरुः–गरु, ग्रामीणः–गवइया, पर्यङ्कः–पलगं, मानवः–मनई, श्यालः–साला भवन्ति।

ज्ञानार्थं कचे न शब्दाः दीयते यथा त्वम् (तुम) नश्यति (नशाना) भजं नम् (भजं निहारा) काऽे पि (काऊे), आदेशः–आयसु किम्–किन, सः सो, भतू :–भयऊ, तत्कालम्–तत्काला, निमग्नम् मज्जन, स्नानम्–नहाना, शिक्षा–सीखना, रूप्यकम्–रूपैया, आम्रः–अमिया, इक्षु–ईख, भ्राता–भाई, भइकरा, गौ–गाय, सिहं –शेर, शिरः–सिर, हस्तः–हाथ, दुग्धम्–दधू, घटिका–घडी़ सूर्यः–सरूज,आकाशः–आकाश, नापितः–नाई, सर्पः–सापं , विडालः–विलार, मषूकः–मसू, गाधेमू –गहूं चणकः–चना, सर्षपः–सरसौं, वरयात्रा–बराती, वर्षा–बारिस, धर्मः–धाम, गौरः–गोरा, भल्लकू :–भालू, हिरणः–हिरन, अक्षिः–आँख, शून्यम्–सनू, कर्णः–कान, इत्यादयः शब्दाः अवधीभाषां पोषयन्ति।

उर्दूभाषायामपि संस्कृतस्य असंख्याः शब्दाः प्राप्यते। उर्दूशब्दः सर्वे विद्वांसः भलू तः तुर्की भाषायाः स्वीकुर्वन्ति। अस्य मलूार्थं शाहीशिविरं भवति, परन्तु मन्यते तुर्की भाषायाः नास्ति। सम्भवतः शब्दोऽयं चीनी भाषातः समागतः। तुर्कमगांले तातारषे विभिन्नार्थेषु प्राप्यतो और्दू इत्यस्यार्थः चीनीभाषायां यायावरः भवति। यूरोपेदशेस्य असख्यासु भाषासुओर्दूभाषातः निर्गताः शब्दाः सम्प्रत्यपि यायावररुपणे ग्राह्यन्तो एवं चीनदशत् निर्गत्य मंगोलियातः तुर्कीतः तुर्कजनैः सह भारतमायातः। हाकाजाब्सनमहादे यानुस्वरणे शब्दोऽयं बाबरकाले भारतं समागतः। परन्तु एवं नास्ति तुर्कैः सहैव भारतं समागतः। सैनिकैः कौरवीपजांबीब्रजभाषासु उर्दूभाषायाः प्रयोगा विहिताः। परन्तु संस्कृतस्य केचन शब्दाः बाहुल्येन दृश्यते। वाणी शब्दः वान ततो वान जातः। नमः शब्दः नमाजरूपेण ज्ञायते तत्रैव योगः भवति। नमन ं तत्र स्वतः भवति। विना (विनु) शुकः (सुगना) दृष्टः (देख्या) हामे : (होमिया) दुग्धः (दधूहि) पुत्रः (पतू) रचना(रचेऊ) आम्रः (अमवा) धीः (धिय) गाबे रः (गाबे रा) लिम्पति (लीपैं) चौपाल (चौपरिया) शिवः (सिउ) धनुः (धनुहा) आश्चर्यम् (अचरज) त्रुटिः (तोरि) अल्प (अलप) सुकुमारी (सकु वारि) विस्फाटे : (फूटि) कञ्च (काचं) माता (मइया) सूर्पः (सूप), साधुः (साधू) स्वभावः (सुभाय) इत्यादयः शब्दाः अपि अवधीभाषायां सस्ं कृतमेवोपयन्ति।

एवमेव व्रजभाषायां संस्कृतस्य शब्दाःभाषावैज्ञानिकदृष्टया समाजेषु प्रचलन्ति। महादेवस्य विवाहः (महादेव को व्याहलो) भर्तृहरि (भरथरी) सरोवरः सरवर, मोरध्वजः (मोरधुज) वीरः (वीरा) मुण्डः (मडू) मुण्डनम् (मुडाना) कारणम् (कारने) प्रियः (प्यारा) विस्मरणम् (विकराई) हरणम् (हरी) गोरक्षः (गोरख) सुशोभितः (सोहाता) श्रावणः (सरवन) तीर्थः (तीरथ) वनम् (वनु) कुमारः (कुंवर) बबलू : (बबूर) मधकू : (महआु) दुखम ् (दुक्ख) धरणी (धरनी) कर्तनम् (कढवाय) धर्मः (धरम्) कर्म (करम) वैदेशिकाः (परदशे ी) पद्वी (पदवी) नियमः (नमे) भ्रष्टः (भगं) श्रवणम् (सुनाई) जीवः (जिउ) जातः (हुए) घट्टः (घाट) देशः (देसवा) सरयू (सरयु) प्रिया (पिया) द्वितीयः (दोसर दूसर) स्थाली (थाली) वाद्यम् (वाजा) समधीः
(समधी) पूर्वी (पुरवैया) भवानी (भवानी) गौः (गइया) वत्सः(बछड़ा) इत्यादयः शब्दाः प्रयागे समायान्ति। चन्द्रः चादं , उर्दूभाषा भवति इतिरूपणे सर्वेः ज्ञायतो मेहनत शब्दे नतः कसरतशब्दे रतः शब्द सजांतः तत्तु संस्कृतस्यैव तिष्ठन्ति। साहित्यकोर्दूभाषायां अरबी फारसी भाषायाः शब्दाः बाहुल्येन भवन्ति। द्वयोः व्याकरणं प्रायः एकैव प्रतीयतो श्वेतः (सफेद), सप्ताहः (हफ्ता) वर्षा (वारिस) भ्राता (भाई) सर्यूः (सूरज) चन्द्रमा (चादं) हस्तः (हाथ) कुक्कुरः (कुत्ता) कर्म (काम) काकः (कौआ) जिह्वा (जीभ) रात्रिः (रात) दिनम् (दिन) एकम् (एक) द्वि(दो) त्रि (तीन) चत्वारः (चार) पञ्चम (पांच) षड् (छः) सप्त (सात) अष्टौ (आठ) नव (नौ) दश (दस) गौः (गाय) लोकः (लोग) भगिनी (बहन) नवीनः (नया) पत्रम् (पत्ता) कर्णः (कान) नासिका (नाक) वाहुः (बाँह) द्रुतम् (दौड़) स्कन्धः (कन्धा) अङ्गुरीयकम् (अगं ुली) सामे वारः (सामे) मगंलवारः (मगंल) बुधवारः (बुध) खाद् (खाना) तर् (तैरना) पिब् (पीना) पक्षी (पक्षी) इत्यादयः शब्दाः सस्ं कृतभाषातो उर्दूभाषाया ं समागताः। संस्कृतस्य प्रभावः अवधी–ब्रज–उर्दभूाषासु प्राचुर्येण दृश्यतो समासतः कथितुं शक्यते यत् एवमेव गढवाली–कुमायनीं –हरयाणवी–राजस्थानी–बुन्देली–कन्नौजी–बघेली– छत्तीसगढ़ी–

भोजपुरी– मगही– मैथिली, भाषासु संस्कृतस्य शब्दाः बाहुल्येन प्रयुक्ताः भवन्ति।

सन्दर्भ

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ–तारिणीश झा, रामनारायणलाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद
2. अवधी शब्दकोश–निरत प्रकाशन अयोध्या, उ0प्र0
3. ब्रजभाषा सूर कोश–दीनदयाल उपाध्याय, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
4. भाषा विज्ञान–भोलानाथ तिवारी, किताब घर इलाहाबाद।
5. अवधी की ग्रामीण शब्दावली–सयू र्ं प्रसाद दीक्षित उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
6. उर्दू हिन्दी शब्दकोष–हाशमी–उर्दअू कादमी लखनऊ
7. साहित्यिक ब्रजभाषा कोश–(3खण्ड सकं लन) चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद,मुख्यसम्पादक–विद्यानिवास मिश्र

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी
(प्रधानाचार्य)
एल0 पी0 के0 इण्टर कालेज
सरदार नगर, बसडिला
गोरखपुर
उ०प्र०

62

देवेन्द्र नाथ टैगोर के नेतृत्व में ब्रह्म समाज की नीतियों में परिवर्तन

डॉ0 संध्या मिश्रा, डॉ0 प्रेम शंकर

सारांश –

प्रस्तुत शोध पत्र के शीर्षक में देवेन्द्र नाथ टैगोर व उनके साथियों ने ब्रह्म समाज को नई दिशा देने का प्रयत्न किया। ईसाई मिशनरियों के प्रहारों से हिन्दुओं और उनके धर्म की रक्षा की। भारतीय नवयुवकों को ईसाइत के आकर्षण से दूर करने के उद्देश्य से आधुनिक विवेकवाद के आधार पर ईसाइमत के सिद्धान्त को त्रुटिपूर्ण सिद्ध किया तथा अपने धर्म का परिषत रूप शुद्ध विवेकावाद के आधार पर प्रस्तुत किया।

राजा राम मोहन राय के पथ पर चलते हुए और प्रसिद्ध केशव चन्द्र सेन का अनुसरण करते हुए देवेन्द्र नाथ टैगोर ने सामाजिक और धार्मिक सुधार का कार्य उनसे धरोहर के रूप में ग्रहण किया। देवेन्द्र नाथ जिन्होंने राजा का चोला धारण किया, अपने जीवन में राजा राम मोहन राय के समाज सुधार के कार्य को आगे बढ़ाया। देवेन्द्र नाथ के अन्दर आन्दोलनकारी उत्साह की कमी थी, परन्तु किसी के किये हुए कार्यों को दृढनिश्चय और व्यवस्थित ढंग से करते रहे और संसार के सभी भागों से जुड़े रहे जिसने केशव के प्रयासों को चारित्रिक किया। फिर भी उनके समाज सुधार के प्रयास निःसन्देह भारतीय समाज के लिए असाधारण और अद्‌भुत थे।

देवेन्द्र नाथ टैगोर, धनी ब्राह्मण परिवार से सम्बन्ध रखते थे। जो आध्यात्म, मानव जाति के लिए प्यार और जनता की हमदर्दी के लिए प्रसिद्ध था। राजकुमार द्वारिकानाथ टैगोर के पुत्र, इनका पालन पोषण विलासिता के मध्य हुआ। देवेन्द्रनाथ उसी तरह से पले बढ़े जैसे कि धनी अभिभावक उन दिनों बच्चों का पालन पोषण करते थे। लेकिन उन्होंने अपने कंधो पर समाज के सुधार का ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने बचपन से ही भौतिक संसार से, आध्यात्मिक संसार में अधिक रूचि ली। यह आगे बढ़ने का एक पवित्र आदर्श साधुत्व और विद्वत्तापूर्ण जीवन उनकी दादी द्वारा उनको प्रदान की गयी जो एक पवित्रतापूर्ण और चारित्रिक शक्ति वाली महिला थी।

अपनी दादी की पवित्र कट्टरवादिता हिन्दुत्व की वर्तमान रूप की सोच वाले देवेन्द्रनाथ में लम्बे समय तक रही। हालांकि स्कूल व हिन्दु कॉलेज में पश्चिमी तौर तरीको वाली शिक्षा मध्य में अलग–अलग तरीके से पश्चिमी विचार और शिक्षा उन्हें विचलित नहीं कर सकी यह राजा राम मोहन राय का प्रभाव था जिसके साथ वह अपनी युवावस्था से ही जुड़े हुये थे जिसने उनको यह स्वीकार करने में मदद की, कि भगवान एक है। अपनी इच्छा के अनुसार अधिक सत्य, ज्ञान और धार्मिक किताबों के बारे में जानने की बजाय देवेन्द्र नाथ ने 6 अक्टूबर 1839 को तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की। इस सभा की स्थापना के सन्दर्भ में तत्वबोधिनी पत्रिका इंगित करती है कि इसका जन्म इसके निर्माता के द्वारा अचानक की गयी खोज है जो कि राजा राम मोहन राय की प्रति ''उपनिषद्'' पर आधारित है जिसमें अधिकांश रूप से दैवस्थान को प्राप्त करने वाले शुद्ध विचार हो सकते है (भगवान सब जगह है) उन्होंने जाना कि समाज, धर्म का एक हिस्सा है। सभा के प्रारम्भ में केवल दस सदस्य ही थे। लेकिन जल्दी ही इसकी लोकप्रियता अत्यधिक रूप से फैली और 1846 में इसके 638 सदस्य और 1847 में 800 सदस्य थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के शहरी बंगाल के नवयुवक और ब्राह्मण एवं शिक्षित हिन्दू प्रयत्क्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस सभा से जुड़े हुए थे। यह इस प्रकार की सभाओं में से सबसे अधिक शक्तिशाली थी और इसका कार्य शिक्षित पुरूषों और महिलाओं में विचारों और कार्यों का उत्साह पैदा करना था। अन्धविश्वास और मूर्ति पूजा के विरूद्ध आन्दोलनात्मक रूप से लड़ने के अतिरिक्त तत्वबोधिनी सभा ने इन नवयुवकों के लिए एक प्रशंसा योग्य सेवा की। मुख्य रूप से देश को ऊपर उठाना, इसने ब्रह्म समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाया, उसके उपरान्त 1859 में यह ब्रह्म समाज में विलय हो गयी तत्वबोधिनी सभा के कार्यों को मुख्यतः छः भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. ब्रह्म समाज का पुर्नःनिर्माण
2. शिक्षा के वास्तविक ढाँचे पर तर्क–वितर्क
3. बंगाली भाषा और साहित्य पर विचार विमर्श
4. मातृभाषा बंगाली के माध्यम से शिक्षा का प्रसार
5. मिशनरियों के आक्रमण से भारतीय धर्म और साहित्य की सुरक्षा
6. लोगों के अन्दर विदेशी प्रभाव की बुराई के विरूद्ध भारतीय धर्म ओर साहित्य को प्रसारित करना।

1842 में देवेन्द्र नाथ ने ब्रह्माज्य को अपनाया, ब्रह्म समाज से जुढ़ने पर उन्होंने इसे वैसी ही दयनीय स्थिति में पाया। बंगाली नवयुवक राधाकान्त देव के नेतृत्व में इसके सदस्यों को अर्द्ध स्वतन्त्र

कहकर हँसें, धर्म सभा कहा और ईसाई मिशनरी ने वेदान्त की निर्ममतापूर्वक आलोचना की, देवेन्द्र नाथ ने पाया कि जातिवाद, समाज के सदस्यों द्वारा अभ्यस्त में था और शूद्रो को वेदों की कविताओं में और समाज के निर्णय को, एकत्र होने और सुनने नहीं दिया जाया करता था, अवतारवाद में विश्वास करते थें। राम को एक अवतार के रूप में घोषित किया गया था देवेन्द्र नाथ को यह सभी भ्रामिक, झूठे और निर्माता के वास्तविक उद्देश्य के विरूद्ध प्रतीत हुए उन्होंने तुरन्त इन बुराइयों को समाज से हटाने की जरूरत महसूस की। उन्होंने इसे जातिवाद से दूर करने की कोशिश की जो कि समाज में फैली हुई थी और शूद्रो को वैदिक कविताओं के पठन–पाठन के समय हाल में उपस्थित होने की अनुमति दी, उन्होंने समाज के पुजारियों से अवतारवाद का अनुसरण करने को मना किया। समाज के पुनर्गठन के दृश्टिकोण के साथ देवेन्द्रनाथ ने कहा कि केवल वे लोग जो मूर्ति पूजा के त्याग की शपथ लेते थे और एक निराकार भगवान की पूजा करने को सहमत थे, समाज में सम्मिलित किये जायेगें। इस उद्देश्य के दृष्टिकोण से प्रतीक के रूप में कार्य की प्रक्रिया में उनके द्वारा ब्रह्म समाज को खींचा गया और अधिक से अधिक 21 व्यक्तियों को ब्रह्म में विश्वास के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया।

इस प्रयासों से समाज की पुर्नःस्थापना और पुनर्रूजीवन मिला, सदस्यों के बीच नये जीवन का संचार हुआ। ब्रह्म धर्म का प्रचार और धर्म में अब काफी उत्साह आने लगा था। समाज पुर्न–वास करने के लिए काफी मजबूत हो गया था और परिवर्तन को न पसन्द करने वाले हिन्दुओं के हमलों को सहन करने की क्षमता और ईसाई मिशनरियों के तीखे आलोचनात्मक और पाश्चात्य शिक्षा से पथ भ्रष्ठ करता हुआ शहरी युवा और समाज जल्द ही शहर की सीमित सीमाओं में पूजा के छोटे स्थान से पूरे भारत में धार्मिक संस्था बन गयी। सामाजिक और धार्मिक सुधार के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया था क्योंकि ऐसी बातें समाज के विश्वास कार्यों में नहीं कही गयी थी।

देवेन्द्र नाथ के नेतृत्व में समाज के सदस्यों ने देश के विभिन्न भागों में भ्रमण किया और लोगों को इसके आदर्शों से तथा सुधार के प्रयासों से लोगों को अवगत कराया। इसके अनेक सदस्य अपने अच्छे चरित्र, उच्च शिक्षा तथा आधुनिक दृष्टिकोण के द्वारा एक प्रेरणा के साधन के रूप में भारतीयों के मेजबान बने। वास्तव में देवेन्द्र नाथ के द्वारा ब्रह्म धर्म को स्वीकार करने और तत्वबोधिनी सभा का ब्रह्म समाज में विलय करने की घटनाएं 19वीं शताब्दीयों के भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। देवेन्द्र नाथ को ब्रह्म समाज के नेता के रूप में तथा ईसाई मिशनरियों के अलेकजैण्डर डफ के प्रहारों का सामना करना पड़ा और जो भारत और भारत के उद्देश्य के रूप में अपना लेख प्रकाशित कर चुका था। देवेन्द्र नाथ ने इस प्रहार को ध्वस्त किया। उन्होंने इस प्रहार को वेदों के आधार पर झूठा साबित कर दिया जो भी हम सोचते है इसका तथ्य केवल वेदों में है और हमारे पवित्र ढाँचों का आखिरी भाग इंगित करता है हिन्दुत्व के आखिरी बंटवारे की तरफ जिसे वेदान्त कहते है। देवेन्द्र नाथ भी बंगाली भाषा से गहरा लगाव रखते थे। उन्होंने एक बार राज नारायन बोस की भाषा पर पूर्णतया अधिकार करने की सलाह दी थी। अपने निजी जीवन में उन्होंने एक पत्र को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया क्योंकि यह बंगाली भाषा में नहीं लिखा गया था। इस दृष्टिकोण को तत्वबोधिनी पत्रिका में स्पष्ट रूप में प्रकाशित किया गया। उन्होंने कहा कि हम अपने आपसी बातचीत में 75 प्रतिशत अंग्रेजी और 25 प्रतिशत बंगाली भाषा का प्रयोग करते है। जो एक सच्चा देश भक्त कभी नहीं करेगा।

देवेन्द्र नाथ ने 1840 में तत्वबोधिनी पाठशाला की स्थापना की जो बंगाली मध्यम का एक स्कूल था और भारतीय प्रथा के अनुसार ज्ञान का प्रसार करता था। उन्होंने एक हिन्दू हितार्थी विद्यालय प्रारम्भ किया जो एक चौरिटेबिल संस्था के रूप में था जिसका उद्देश्य हिन्दू लड़कों को ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म परिवर्तन रोकने से था।

ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से हिन्दुओं के बालकों को बचाने के लिए महर्षि ने हिन्दू हितार्थी विद्यालय की स्थापना की। उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज हिन्दू धर्म का मजबूत हितैषी हो गया और महर्षि ने अपनी आत्मकथाओं में स्वयं लिखा कि तब से आगे ईसाई प्रक्रिया का बन्धन रूक गया और मिशनरियों का खाका अपने ही सिर पर गिर पड़ा। देवेन्द्र नाथ महिलाओं को समान अधिकार के अवसर प्रदान करने के लिए चिन्तित थे। उनका निजी जीवन इस बात को दर्शाता है। हिन्दू कॉलेज में शैक्षिक तरीके की शिक्षा में तत्वबोधिनी पत्रिका। देवेन्द्र नाथ के शब्दों को महत्व देते हुए निश्चित रूप से दर्शाती है कि छात्रों के सामूहिक विकास के लिए कला और विज्ञान दोनों की ही व्यवस्था होनी चाहिए। वे भारत में नवयुवकों के लिए तकनीकि शिक्षा को आसान बनाने के पक्ष में थे जिससे वे अपना जीवकोपार्जन कर सकें तथा अपना औद्योगिक विकास कर सकें उन्होंने पत्रिकारिता की शिक्षा की वकालत की। वह महिला शिक्षा के एक प्रतीक थे उनकी पत्नी को कोई भी अनौपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त हुई थी और जब उनकी लड़कियाँ बड़ी हुई उन्होंने उनकी शिक्षा पर निश्चित ध्यान दिया। अषाढ़ की 25 तरीख (1851) शाखा 1773 को लिखे गये उनके पत्र में पाया गया मैंने सुदामनी को विथून के महिला स्कूल में भेजा है। अब इसका परिणाम देखते है। उन्होंने

अपनी पुत्रियों को कविताओं की रचना करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपनी भतीजियों में से एक के लिए चित्रकला में पाठों की व्यवस्था बनायी। उन्होंने अपने परिवार की महिलाओं की वेशभूषा में भी परिवर्तन किया। क्योंकि उन्होंने यह नहीं सोचा कि पुरानी वेशभूषा महिलाओं की बाहरी कार्य कलापों के लिए पर्याप्त उचित है उन्होंने उनके लिए पैसोहयाज की तरह एक पोशाक से परिचित कराया। उनका पुत्र सतेन्द्र नाथ जो महिला आन्दोलन के समर्थक थे, ने परिवारों को पश्चिमी पोशाकों से परिचित कराया उनके परिवार की महिलाओं को सर्वप्रथम पर्दा तोड़ना पड़ा और दिन के समय में भी खुली छत पर आना पड़ा और खुली घोड़ा–गाड़ियों में कस्बों में घूमना पड़ा। यह सभी बिल्कुल विरोधात्मक था क्योंकि यह वह समय था जब पर्दा प्रथा उन दिनों का आदेश था और महिलाएं एक ढकी हुई पालकी में बाहर जाया करती थी बाद में देवेन्द्र नाथ ने विधवा पुर्नःविवाह आन्दोलन को सहयोग किया।

उस समय में जब पूरा समकालीन समाज दूषित था जब खर्चा बड़ी मात्रा में था और दौलत का बंटवारा साधारण रूप से धनी एव उच्च वर्ग के बीच था तब नैतिकता का स्तर काफी नीचा था जैसे झूठ, धोखेबाजी, रिश्वतखोरी, जालसाजी जैसी बुराईयाँ धन इक्टठा करने के लिए लोग खुले रूप से कई महिलाएं रखने में, कई वेश्याओं से सम्बन्ध रखने में अपना घमण्ड समझते थे। देवेन्द्र नाथ ने उच्च स्तरीय धार्मिक जीवन को व्यवस्थित किया। उनका सात्यविक चरित्र ने उनके लिए 'महर्षि' का नाम कमाया। वह जिनके लिए भौतिक संसार का कोई आकर्षण नहीं था। अगस्त 1843 से देवेन्द्र नाथ ने 'तत्वबोधिनी पत्रिका' नामक एक मासिक पत्रिका बंगला भाषा में प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया था। प्रारम्भ से ही बंगला के जनमत को प्रशिक्षित करने में इसने बड़ा योगदान दिया और बंगला भाषा को सम्पन्न भी बनाया।

उस काल में भारत में विदेशी विचारों और विदेशी जीवन–प्रणाली ने भारत की निजी जीवन–काल पर भीषण, प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया था। सत्य, न्याय और विवेक के आधारों पर राष्ट्र का पुर्नःनिर्माण करने के उद्देश्य को लेकर पत्रिका ने उस प्रहार का जमकर सामना किया जिससे भारत को अपनी आत्मा की पुर्नप्राप्ति करने में अपूर्व योग मिला। पत्रिका में 1850 से 1855 तक अनेक प्रगतिशील विचारों का प्रचार किया गया जैसे कि शिक्षा के क्षेत्र में भारतवासियों को स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए, ईसाई धर्मोपदेशकों के प्रहारों से हिन्दुओं और अनेक धर्म की रक्षा की जानी चाहिए, महिलाओं की शिक्षा का प्रबन्धन किया जाना चाहिए, बहुविवाह और मदिरापान बन्द किये जाने चाहिए, भारतवासियों की शारीरिक शक्ति का विकास किया जाना चाहिए, नील की खेती में लगे भारतीय श्रमिकों के साथ किये जाने वाले अत्याचार बन्द होने चाहिए, शासकों और शासितों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए।

भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में एक उल्लेखनीय तत्व विवेकवाद और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का रहा है। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने स्पष्ट रूप से धर्मग्रन्थों की प्रमाणिकता को अस्वीकार किया और आत्मा, परमात्मा तथा मोक्ष सम्बन्धी विचारों के सम्बन्ध में मानव विवेक की संप्रभुता स्वीकार की। देवेन्द्रनाथ के निर्देशन में ब्रह्म समाज ने न केवल वेद अपितु सभी धर्मग्रन्थों की सर्वोपरिता को अस्वीकार कर दिया। देवेन्द्रनाथ का कहना था कि वेदों और उपनिषदों की हमें वहीं बातें मान्य होनी चाहिए, जो कि विवेक के अनुकूल हैं, हम उनकी ऐसी बातें स्वीकार नहीं कर सकते कि मैं ब्रह्म हूँ। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मसमाज आधुनिक भारत में प्रथम बुद्धिवादी और व्यक्तिवादी आन्दोलन था जिसने भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की भूमिका के निर्माण में योग दिया। देवेन्द्रनाथ को कर्मकाण्ड और मूर्तिपूजा से कितनी चिढ़ थी, यह इस बात से सिद्ध होता है कि उन्होंने अपने पिता के श्राद में भाग नहीं लिया और मूर्तिपूजा के उत्सवों में वे भाग ले न पावें इस उद्देश्य से वे बंगाल में सदियों से प्रचलित दुर्गा पूजा के अवसरों पर लम्बी यात्राओं पर निकल जाते थे। मूर्तिपूजा के बहुदेववाद के विरूद्ध उन्होंने ब्रह्म समाज के एकेश्वरवाद को आधार देने के लि, जो प्रार्थना ग्रन्थ रचा उसमें वेदों को कोई स्थान न देकर केवल उपनिषदों के एकेश्वरवाद को आधार माना है।

राम मोहन राय की भाँति देवेन्द्रनाथ प्राचीन हिन्दू धर्म के पवित्र आध्यात्मिक आदर्शों और उपनिषदों के एकेश्वरवाद के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे परन्तु उनकी तरह ईसा मसीह के प्रति देवेन्द्रनाथ को कोई आदरपूर्ण भाव नहीं था। उन्हें विश्वास था कि भारत को ईसाई धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है और उन्होंने कभी ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइबिल से किसी तथ्य की पुष्टि नहीं की। भारतीय संस्कृति ओर धर्म के विरूद्ध उस समय के प्रख्यात ईसाई पादरी डॉ0 एलेक्जैण्डर डफ ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया एण्ड इण्डिया' प्रकाशित कर मूर्तिपूजक और अमूर्तिपूजक सभी प्रकार के हिन्दू धर्म की तीव्र भर्त्सना की, तो देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने 1845 में तत्वबोधिनी पत्रिका में अनेक लेख लिखकर डफ की आलोचनाओं का मुँह तोड़ जवाब दिया। बाद में भी ब्रह्म समाज का ईसाई धर्म के विरूद्ध अभियान चलता रहा जिसके परिणामस्वरूप डॉ0 डफ ने अपनी हार मान ली और वह भारत छोड़कर चला गया।

हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की तीव्र भर्त्सना करने के अतिरिक्त ईसाई धर्मोपदेशक हिन्दुओं को ईसाई बनाने के प्रयत्न में भी लगे हुए

थे। अधिकांशतः ईसाई शिक्षण संस्थाओं के छात्र उनके इस अभियान के शिकार हो जाते थे। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उस क्षेत्र में भी ईसाईयों से तीव्र संघर्ष किया। उन्होंने स्वयं ब्रह्म समाजियों द्वारा ईसाइयत के प्रचार के विरूद्ध लोगों को सचेत किया और जनमत के समस्त वर्गों को ईसाई धर्मोपदेशकों के कार्यों के विरूद्ध लोगों को सचेत किया और जनमत के समस्त वर्गों को ईसाई धर्मोपदेशकों के कार्यों के विरूद्ध संगठित करने में सफलता प्राप्त की। हिन्दू बालकों को ईसाई पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की भाँति निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो 'हिन्दू हितैषी विद्यालय' की स्थापना की। देवेन्द्रनाथ द्वारा चलाया हुआ यह आन्दोलन शीघ्र ही कलकत्ता से बाहर फैल गया और ऐसी संस्थाएं, पनिहाटी, कृष्णनगर, अपूर्वपुर आदि स्थानों में स्थापित की गई। देवेन्द्रनाथ के निर्देशन में तत्वबोधिनी पत्रिका में उन कारणों पर भी प्रकाश डाला गया जो ईसाई धर्म के प्रचार एवं प्रसार में क्रियाशील थे। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीय नवयुवकों को ईसाइयत के आकर्षण से दूर करने के उद्देश्य से देवेन्द्र नाथ ने आधुनिक विवेकवाद के आधार पर ईसाई मत के सिद्धान्तों को त्रुटिपूर्ण किया। इससे नवशिक्षित भारतीय युवक वर्ग ने ईसाई धर्म की श्रेष्ठता का भण्डाफोड़ किया और दूसरी ओर भारत के लोगों के सामने अपने ही धर्म का परिष्कृत रूप शुद्ध विवेकवाद के आधार पर प्रस्तुत किया।

निष्कर्षः

देवेन्द्रनाथ ठाकुर कोरे धार्मिक नेता नहीं थे। वे राजनैतिक स्वतन्त्रता के प्रति भी जागरूक थे। उन्होंने ब्रह्म समाज और बंगला में प्रकाशित तत्वबोधिनी पत्रिका के माध्यम से धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में जो चेतना उत्पन्न की उसने भारत के शिक्षित वर्ग के अन्दर राष्ट्रीय आत्म–सम्मान और राष्ट्र प्रेम के भाव उत्पन्न किये। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने अंग्रेजी के विरूद्ध बंगला भाषा का समर्थन किया, यद्यपि वे स्वयं अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार रखते थे। उन्होंने अपने भतीजे ज्ञानेन्द्र मोहन ठाकुर को ब्रह्म समाज की बैठकों में अंग्रेजी भाषा में बोलने की स्वीकृति नहीं दी। तत्वबोधिनी पत्रिका के माध्यम से अपनी मात्र भाषा बंगला को सम्पन्न बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण योदगान दिया।

देवेन्द्र नाथ ठाकुर के नेतृत्व में ब्रह्म समाज द्वारा आधुनिक भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि के निर्माण हेतु दिया गया योगदान भारत के राष्ट्रीय जीवन के इतिहास में स्मरणीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Six leaders fo the Braham Samaj, Devendranath Autobiography, 67.
2. Six leaders of the Braham Samaj, 66.
3. Ibid, 17.
4. तत्व बोधिनी पत्रिका 1847, 45
5. देवेन्द्र नाथ टैगोर, आतोवियोग्राफी, 24
6. तत्व बोधिनी पत्रिका (अशाढ़ 1768), 67, 102
7. Ibid, 121
8. ए0के0 चक्रवर्ती, 121।
9. Ibid, 274.
10. अक्षय कुमार दत्त इसके सम्पादक बनाये गये थे जो अपने समय के एक प्रतिश्ठित साहित्यकार थे।
11. प्रतापचन्द्र मजूमदार, 'दी फेथ एण्ड प्रोग्रेस ऑफ दी ब्रह्म समाज', 115
12. अतुलचन्द्र गुप्त, 'स्टडीज इन दी बंगाल रेनेसाँ, 36।

डॉ0 संध्या मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

डॉ0 प्रेम शंकर
एम0ए0 (इतिहास), पीएच0डी0
बरेली कॉलेज, बरेली

63

नारीवादी आंदोलन का भारतीय समाज पर प्रभाव

डॉ0 निभा रानी

सारांशः

यह भारतीय समाज के भीतर महिलाओं के अधिकारों को संकल्पना है।भारतीय नारीवादी आंदोलनाओं के द्वारा की गई प्रगतिके बावजूद आधुनिकभारत में अभी भीमहिलाओं को भेदभावपूर्ण अनेक मुद्दों का सामना करना पड़ता है।भारतकी पितृसत्तात्मक संस्कृति ने भूमिस्वामित्व के अधिकार और शिक्षा तक पहुंच को चुनौतीपूर्ण बना दिया है।नारीवाद शब्द का मूलअर्थ लिंगों की समानता के आधार पर महिलाओं के अधिकारों का वकालत करना है। नारीवादी आंदोलन के केंद्र में है नारीवादी और उससे जुड़े विविध मुद्दे जो समय–समय पर विविध रूपों अथवा सिद्धांतों के रूप में सामने आते हैं और इसी आधार पर नारीवाद कई रूप में प्रकट हुए हैं – उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी सामाजिक नारीवाद, रेडिकल नारीवाद, मानो विश्लेषक नारीवाद, समतामूलक नारीवाद, वैदिक नारीवाद, व्यैक्तित्व नारीवाद, सांस्कृतिक नारीवाद, पर्यावरणीय नारीवाद आदि। जब भी नारीवाद की चर्चा की जाती है तो यह सभी विचार उसमें समाहित होते हैं। यही कारण है कि नारीवादी आंदोलन एक नहीं बल्कि अनेक विचारों पर केंद्रित रहते हैं।

धर्म, साहित्य और समाज में स्त्रियां अनेक रूप में परिभाषित की गई हैं। वह कभी पुरुषों की अनुगामिनी, कभी अबला और कभी त्याग की मूर्ति के रूप में बताई गई। कभी आवेश मई चंचल जो तर्क के बंधन को नहीं मानती है। इन सारी परी भाषाओं को उस लिंग विशेष से जोड़ा गया है। उसके विपरीत पुरुषों को सदा शौर्य एवं वीर्य का प्रतीक माना जाता है। यह लैंगिक परिभाषा ही नारीवाद का परम शत्रु है और इस परिभाषा को बदलना ही नारीवाद का परम लक्ष्य है। पारिभाषिक दृष्टि से अगर देखा जाए तो नारीवाद एक विशिष्ट मतवाद है, जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि स्त्रियों को इस पुरुष प्रधान समाज में निम्न स्थान दिया जाता है। प्रिया भी पुरुषों के समान अधिकार एवं प्रतिष्ठा की हकदार हैं और यह हक, प्रतिष्ठा एवं अधिकार उन्हें मिलना चाहिए। नारीवाद उन सभी संघर्षों के लिए एक मत है जो स्त्री पर उसकी जैविकी कारण उसी के ऊपर थोपे जाते हैं।

नारीवादी आंदोलन की सही मायने में शुरुआत फ्रेंच लेखिका, " सिमोन द बाउवार " की महत्वपूर्ण पुस्तक " द सेकंड सेक्स " और बेनी फृडन की 1963 में प्रकाशित पुस्तक " दि फेमिनिन मिसटीक " से होती है। फ्रांस की बुद्धिजीवी एवं सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता " सिमोन द बोउवार " की पुस्तक 1919 मैं प्रकाशित हुई। उसका हिंदी अनुवाद प्रभा खेतान ने "स्त्री उपेक्षिता" शीर्षक से किया है। उस पुस्तक ने स्त्री मुक्ति की चेतना को एक विश्वव्यापी आंदोलन के रूप में उभार दिया। कालांतर में उसी आंदोलन ने सामाजिक क्षेत्र में तथा सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में भी एक महत्वपूर्ण क्रांति का सूत्रपात किया और "सीमोन द बुउवार" नए महिला आंदोलन की बहुचर्चित नारीवादी समर्थक बनी। " द सेकंड सेक्स " ने दर्शन शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और मानवशास्त्र का सहारा लेते हुए यह साबित किया कि स्त्रियों का दमन इतिहास और संस्कृति की उपज है, और इससे एक प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं समझा जा सकता है। उनका मानना है कि औरत पैदा नहीं होती है बल्कि बना दी जाती है। यही कारण है कि स्त्री पुरुष बराबरी व अन्य सामाजिक मान्यताओं के लिए प्रतिबद्ध समाजवादी जनकल्याण राज्य को विस्तृत एवं समृद्ध बनाने का अवसर मिला।

स्त्रियां जैसे–जैसे रोजगार और कामकाज की दुनिया में शामिल हुईं, उनकी स्थिति और विचार में काफी परिवर्तन आए, जो काम के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहे। स्त्रियों की आजादी की दृष्टि से साठ का दशक काफी महत्वपूर्ण रहा है। महिलाओं के संगठित आंदोलन हर दिशा में हो रहे हैं समाज और परिवार में नारी की सुरक्षित स्थिति के लिए तथा महिलाओं की सुरक्षा के लिए कानून पास करवाए जा रहे हैं।

महिलाओं का देश की उन्नति में 20वीं सदी से ही एक एक बड़ा योगदान रहा है जो 21वीं सदी में बढ़ता ही जा रहा है। नारी से घर की शान नहीं होती बल्कि देश की भी शान होती है जो लगातार सिद्ध करती जा रही है।

नारी वादियों की चिंता का घेरा बलात्कार, पत्नी प्रताड़ना, परिवार नियोजन, सामान श्रम सामान चेतन, समान अधिकार के साथ–साथ संसार के हर उस मुद्दे से संबंधित स्त्रियों से है, जो कि हर बात पर, हर घटना में उन्हें प्रभावित करती है। वस्तुतः एक स्त्री होने के साथ–साथ एक मनुष्य भी है, वह संसार की आधी आबादी भी है। अतः हर क्षेत्र में स्त्री का विशेष स्थान है।

जैसा कि पश्चिम भारत में नारीवादी आंदोलन की कुछ आलोचनाएं हुई है, विशेष रुप से पहले से विशेषाधिकार प्राप्त महिलाओं पर ध्यान केंद्रित करने, महिलाओं के जरूरतों और प्रतिनिधित्व की उपेक्षा करने के लिए उसे अन्याय के खिलाफ संघर्ष के रूप में उसकी आलोचना की गई है। जिसका परिणाम यह हुआ कि कई जाति विशेष के नारीवादी संगठनों और आंदोलनों का उदय

हुआ।

स्त्रियों का अधिकार वह अधिकार है जो प्रत्येक महिला या बालिका का विश्वव्यापी समाजों में पहचाना हुआ जन्म सिद्ध अधिकार या हक है। 19वीं शादी में महिला हक संग्राम 20वीं शादी में फेमिनिस्ट आंदोलन का यह आधार रहा है। कई देशों में तो यह कानूनी तौर पर अंदरूनी समाज द्वारा या लोगों के व्यवहार द्वारा लागू किया जाता है तो कई देशों में यह लागू नहीं किया जाता है और कई देश ऐसे हैं जहां यह प्रचलित नहीं है। कई देशों में व्यापक तौर पर मानवाधिकार का दावा निहित इतिहास और परंपरागत झुकाव के नाम पर महिलाओं और बालिकाओं का हक पुरुषों और बालकों के पक्ष में दे दिया जाता है।

भारत में नारीवाद भारतीय महिलाओं के लिए समान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को परिभाषित करने, स्थापित करने, समान अवसर प्रदान करने और उनका बचाव करने के उद्देश्य से आंदोलनों का एक समूह है। यह भारत के समाज के भीतर महिलाओं के अधिकारों की संकल्पना है।

दुनिया भर में अपने नारीवादी समकक्षों की तरह, भारत में नारीवादी लैंगिक समानता, सामान मजदूरी के लिए काम करने के अधिकार, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए समान पहुंच का अधिकार और सामान राजनीतिक अधिकार चाहते हैं। भारत के पितृसत्तात्मक समाज के भीतर संस्कृति विशिष्ट मुद्दों जैसे कि वंशानुक्रम कानून और सती जैसी प्रथा के खिलाफ लड़ाइयां लड़ी हैं।

नारीवादी सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना है और इससे पैदा होने वाले भेदभाव, पैदा होने वाले राजनीतिक एवं शक्ति संतुलन के सिद्धांतों पर इसके असर की व्याख्या करना है। स्त्री विमर्श संबंधी राजनैतिक प्रचार ओं का जोर, प्रजनन संबंधी अधिकार, यौन उत्पीड़न भेदभाव एवं यौन हिंसा पर रहता है।

स्त्रीवादी विमर्श संबंधी आदर्श का मूल कथ्य यह है कि कानूनी अधिकारों का आधार लिंक ना बने।

नारीवाद सभी प्रकार की असमानता, दबाव एवं दमन हटाकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय रूप से समतामूलक, न्यायिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था से युक्त समाज की स्थापना करना चाहता है। विभिन्न तरह की पारस्परिक कट्टरताओं, स्त्री विरोधी रूढ़ियों, अत्याचारों और पुरुषों की मनमानी के खिलाफ लंबी प्रक्रिया को चलते हुए उस विचार के समर्थकों ने दुनिया के सामने नारीवादी आंदोलन को एक प्रबल आंदोलन के रूप में खड़ा किया।

सांस्कृतिक नारीवाद, नारीवाद का वह सिद्धांत है जिसमें नारियों की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को पढ़ाने एवं सांस्कृतिक हीनता को कम करने के लिए प्रयासरत हैं।

शोषण की जड़े संस्कृति में है, जो पितृसत्ता में समाहित है उन से महिलाओं को बाहर निकालने एवं पुरुषों के समान अधिकार दिलाना नारीवाद का सांस्कृतिक सिद्धांत है।

आता महिलाओं को संस्कृति का सृजन स्वयं करना चाहिए, जिससे उन्हें समाज में स्वयं श्रेष्ठता मिले।

नारीवादी आंदोलन एक ऐसा विचार है जो स्त्री और पुरुष के बीच और समानता को अस्वीकार कर नारी के बौद्धिक और व्यवहारिक रूप में सशक्तिकरण पर बल देता है। यह लैंगिक भेदभाव को अस्वीकार करता है। जो कि नारी की स्थिति का प्रमुख कारण है। उस विचारधारा की उत्पत्ति की प्रमुखता पितृसत्तात्मक पुरुषप्रभुत्व या पुरुष द्वारा शक्ति के दुरुपयोग करने की सत्ता के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ।

भारत में नारीवाद के इतिहास को तीन चरणों में देखा जा सकता है। पहले समय की कई शक्तिशाली महिलाएं थी जो लगातार सामाजिक मानदंडों के खिलाफ लड़ती रहीं, 18वीं शताब्दी में यह सुधार बड़े पैमाने पर शुरू होते देखा गया था। लगभग 1850 के दशक के शुरुआत में, भारत में नारीवाद के पहले चरण के मुख्य व्यक्ति टॉर्च बियरर्स थे जिन्होंने सामाजिक बुराइयों को खत्म करने के लिए काम किया था।

भारतीय नारीवादी आंदोलनों द्वारा प्रगति तो की गई है लेकिन दूसरी तरफ उन प्रगति के बावजूद आधुनिक भारत में रहने वाली महिलाओं को अभी भी भेदभाव के मुद्दों का सामना करना पड़ता है। भारतवर्ष की पितृसत्तात्मक संस्कृति ने भूमि स्वामित्व के अधिकार प्राप्त करने और शिक्षा तक पहुंच को चुनौतीपूर्ण बना दिया है। पिछले कुछ दशकों में लिंग चयनात्मक गर्भपात की प्रवृत्ति भी सामने आई है, यही कारण है कि भारतीय नारी वादियों के लिए उसे अन्याय के खिलाफ और न्याय के पक्ष में संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। भारत में प्राचीन काल से ही महिलाओं को देश, समाज, परिवार आदि का आधार माना जाता था, जिसे संपूर्ण एवं समृद्ध बनाने के लिए वह अपनी इच्छाओं का त्याग करती हैं। 21वीं शादी में महिलाओं के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल रहा है और वे अपना अस्तित्व देख रही है जो वास्तव में कल्याणकारी है।

समाज की दृष्टिकोण को बदलने के लिए महान लेखकों ने महिलाओं की शक्तियों को कविताओं के माध्यम से उनका वर्णन किया है जो काबिले तारीफ है, हालांकि उनकी गाथाओं को शब्दों में नहीं पिरोया जा सकता है, लेकिन लेखकों ने काफी हद तक इस का गुणगान कविता के माध्यम से किया है जो पढ़ने योग्य है।जिसमें नारी के अनेक रूपों की चर्चा की गई है।

नारी तेरे रूप अनेक, सभी युगों और कालों में है तेरी शक्ति का उल्लेख।

ना पुरुषों के जैसी तू है ना पुरुषों से तू कम है। प्रेम करुणा का सागर शक्ति और ममता का गागर।

तुमने सिम के कितने गांव हैं।गर कथा तेरी रोचक है तेरी व्यथा से आंखें नम है।

मिटमिट हर बार संवरतीहै।।

भारत में नारीवादी आंदोलन आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पिछले दशक में औरतों ने बहुत बड़ी संख्या में विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक आंदोलनों में भाग लिया है। यह आंदोलन भारतीय समाज में तेज होते सामाजिक अंतर्विरोध रूप को प्रदर्शित करते हैं। नारी आंदोलन के विकास के लिए परिस्थितियां परिपक्व हैं, फिर भी नारीवादी आंदोलन की मुख्य प्रवृत्ति स्वायत्त नारी आंदोलन के मेहराब के संकट का सामना करना पड़ रहा है।

प्राचीन काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति आधुनिक काल से अच्छी थी। प्राचीन काल में महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज में काम करती थीं। प्राचीन काल में यहां तक कहा जाता था कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है लेकिन आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति प्राचीन काल से बहुत खराब है और यही कारण है कि आज का समाज महिला सशक्तिकरण पर विचार कर रहा है और कोशिश भी की जा रही है कि महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाया जा सके। अगर भारत आने वाले समय में एक विकसित देश बनना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि हम भारतीय महिलाओं को सशक्त करें।

वास्तव में परिवार में स्त्रियों को जन्म से ही वह समझा जाता है। बचपन से उन्हें मूल सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। जिससे स्त्री को स्वास्थ्य पोषण तथा उच्च शिक्षा अवसरों के लाभ पुरुषों के सम्मान प्राप्त नहीं होते हैं। रीको पिता या पति के संपत्ति पर पूर्ण स्वामित्व नहीं माना जाता है। घ हराया पुरुष ही घर के मालिक क्या कार्यकर्ता होते हैं। पुरुष प्रायः गृह कार्य से दूर रहते हैं। इस प्रकार कामकाजी स्त्रियों को बच्चों की देखभाल पर अधिक जोर देना पड़ता है। जिसका परिणाम यह होता है कि स्त्री घर और बाहर दोनों जगहों के कामों में बुरी तरह फंस जाती है। कौन कितना उपयोगी कार्य कर रहा है, या फिर किसका कितना योगदान है, इन अनुभूतियों पर अक्सर बात होती है। पर उपयोगी कार्य और योगदान का स्पष्ट शब्दों में निरूपण नहीं किया जाता। अतः स्त्रियों को उनके श्रीराम का उचित मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता है। उसके विरोध में नारीवादी लेखिकाओं ने महत्वपूर्ण लेखन किया है।

नारीवादी आंदोलन में बोउवार, केटमिलेट आदि इस बात पर विशेष बल दिया कि कोई भी कलाकृति, रचना लिंग, राजनीति, लिंग भेद के अंतर्विरोधों से निरपेक्ष नहीं हो सकती है। उनमें पैतृक राजनीति का होना आवश्यक है। कैथरीन एन रोजेज की पुस्तक सेक्सुअल पॉलिटिक्स, 1971 नैया अंतर्दृष्टि प्रदान की कि किस प्रकार पितृसत्ता में लिंग द्वारा साहित्य, संस्कृति, कला, चिंतन और जीवन में लिंग भेद, लिंग राजनीति को बढ़ावा दिया गया।

नारीवादी सिद्धांत सभी स्थित स्त्रियों को एक समान रूप से देखते हैं। इस प्रकार इन समस्याओं को समझने के लिए हमें सांस्कृतिक सापेक्ष वाद के सहारे अलग–अलग वर्ग की महिलाओं की समस्याओं का विश्लेषण कर उनको दूर करने का प्रयास करना पड़ेगा। जिस तरह से दुनिया के हर देश की अपनी संस्कृति होती है उसी तरह से हर देश की महिलाओं की समस्याएं भी अलग अलग प्रकृति और महिलाओं में समानता अनेक नारीवादी विचारक एवं लेखिकाओं द्वारा बताए गए हैं। जैसे वंदना शिवा, सुनीता नारायण, मेधा पाटेकर आदि। इनका मानना है कि प्रकृति और महिला में काफी समानता है। औ महिलाएं प्रकृति के सर्वाधिक निकट है। अतः पर्यावरण का सर्वाधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। अतः पर्यावरणीय अप्राकृतिक उत्थान द्वारा नारी की स्थिति को बेहतर बनाया जा सकता है। प्रकृति को स्त्री माना गया है। धरती को तथा नदियों को मां का दर्जा दिया गया है। इस तरह हमारी तथा प्रकृति में समानता है।

अगर निष्कर्ष रूप में देखा जाए तो नारीवादी आंदोलन का प्रारंभ पश्चिमी देशों से हुआ। अब यहां पर प्रश्न यह उठता है कि क्या नारीवाद भारत में देखा जा सकता है या नहीं? हर देश की अलग अलग संस्कृति होने के कारण और व्यक्तियों के अलग–अलग विचारों के कारण भारत में नारीवाद उस रूप में लागू नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार से पश्चिम में। भारत में महिला बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के आश्रित रही हैं। यहां पर प्राचीन काल से ही स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में कम माना गया है। इस तरह की मान्यताओं को बदलने में काफी समय लगता है। निष्कर्षतरू नारीवाद एक ऐसी विचारधारा है, जो स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों पर बल देती है। नारीवाद के अनुसार स्त्री और पुरुष के बीच बहुत सारी समानताएं हैं। यह ना तो प्राकृतिक है और ना ही आवश्यक। इसलिए इन और समानता ओं को बदला जा सकता है। ताकि स्त्री और पुरुष एक समान जीवन व्यतीत कर सकें।

डॉ0 निभा रानी
सहायक प्रोफेसर,आर.के.डी.एफयूनिवर्सिटी,रांची।
पता– 504।. विमल श्याम विहार,
ओपोजिट एस. बि. आई बैंक,
पुनदाग, रांची– 834004

64

प्राचीन भारत में विज्ञान व तकनीकी विकास

डॉ० प्रखर

सारांशः

प्राचीन भारतीय समाज किसी भी यूरोपीय समाज से ज्यादा विकसित था। इस तथ्य को विदेशियों ने भी माना और उजागर भी किया। यह विदेशी या तो औषध शास्त्र से संबंध रखने वाले थे या यात्री या प्रशासनिक अधिकारी या सैन्य अधिकारी या वह व्यक्ति थे जिन्हें यूरोपीय धर्म और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए भेजा गया था। जो कुछ उन्होंने देखा उसे कलमबद्ध कर के अभिलेखों का रूप दिया। उनके द्वारा किए गए प्रलेखन (दस्तावेजीकरण) ने ना केवल विदेशियों का ध्यान भारत की समृद्ध संस्कृति की ओर खींचा बल्कि कुछ ऐसे भारतीयों का भी जो अपनी संस्कृति को हेय मानने लगे थे। हम गर्व से कह सकते हैं कि प्राचीन काल में भी भारतीय विज्ञान व तकनीक काफी विकसित थी। भारतीय विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में निपुण थे चाहे खगोल शास्त्र हो, डॉक्टरी का क्षेत्र हो ,भौतिकी , रसायनशास्त्र ,बीज गणित ,अंकगणित हो या फिर भाषा शास्त्र । प्राचीन भारत के विभिन्न खोजों जैसे ग ड्रिल हल , प्राकृतिक रेशे जैसे सूत , सिंधु घाटी की पहली फ्लश टॉयलेट, बटन, पहले से बने घर और चल इमारतें , उच्च श्रेणी की स्टील , जिंक धातु का पिघलाना, जहाज निर्माण, बर्फ बनाना ,कागज बनाना , श्सनश और श्डामरश बनाना आदि के लिए भारत विश्व में जाना जाता है।

भारतीय और यूरोपीय लोगों में अपनी खोजों और विकास के बारे में बताने को लेकर काफी काफी अंतर है। जिस ड्रिल हल का आविष्कार ऑस्ट्रिया में 1662 ईसवी में जोसेफ लॉकटेल के द्वारा किया गया उसका प्रयोग भारत में काफी पहले से हो रहा था। भारतीय संप्रभुता और राजनीतिक पतन के कारण कुछ समय के लिए विज्ञान व तकनीक के विकास को झटका तो लगा परंतु उसने निराशा ज्यादा उत्पन्न की। जिसका फायदा विदेशियों ने उठाया गणित के प्रोफेसर जोहन प्लेफेयर ने 3102 साल बी०सी० से जुड़ी खगोलीय गणनाओं को परीक्षण के बाद सही पाया [1] पर वे भारतीयों को इसका श्रेय देने को तैयार नहीं थे । दूसरी ओर भारतीय विद्वान और खगोल शास्त्र के ज्ञाता दो कारणों से संवादहीन थे । पहला वे गोपनीयता में विश्वास करते थे। दूसरा वे सोचते थे कि उनके वैज्ञानिक सिद्धांत कुछ ज्यादा ही जटिल और समझने में मुश्किल थे। भारतीय अपनी खोजों के प्रति कितने लापरवाह थे यह बात सर रॉबर्ट बार्कर ने भी नोट की जब वे 1772 में बनारस की बेधशाला का अवलोकन करने गए तो इसे बहुत ही बदहाल पाया जैसे नजरअंदाज किया गया हो ।[2] जबकि बनारस की बेधशाला को दुनिया की पांच प्रसिद्ध बेधशालाओं में से एक माना गया है । लापरवाही इस हद तक थी कि जो बेधशाला 16 वीं शताब्दी के आखिर में बनी थी उस को चिन्हित करने के लिए पट्टीकाओं को 18वीं शताब्दी के शुरू में लगाया गया। इससे ज्यादा हास्यास्पद और क्या हो सकता है कि बनारस के एक ब्राह्मण जो अपने को खगोल विद्या का ज्ञाता मानते थे उसने कहा कि यह बेधशाला लाभदायक ज्ञान को बढ़ाने की बजाय केवल दिखाने के लिए बनाई गई थी। जबकि एक पाश्चात्य विचारक क्योंकि उसे खगोल विद्या का ज्ञान नहीं था इसलिए बेधशाला के वैज्ञानिक उपकरणों का वर्णन नहीं कर पाया पर उसने भी इसके अनेक उपकरणों का सही माप लेने की कोशिश की। विलियम हंटर ने भी 1798 में माना कि अंबेर का राजा जयसिंह जिसने 18वीं शताब्दी में इन बेधशालाओं को बनवाया था, इनके निर्माण से अपने देश के वैज्ञानिक सत्य से अवगत करवाना चाहता था। परंतु विलियम हंटर ने पूर्वी राष्ट्रों पर पाश्चात्य श्रेष्ठता जताने के लिए यह झूठ भी बोला कि यह ज्ञान उन्हें विदेशी स्रोतों से प्राप्त हुआ ।3

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक विकास को हम निम्नलिखित क्षेत्रों के माध्यम से दर्शा सकते हैंः

1. **खगोल शास्त्र का ज्ञान :**

पाश्चात्य विद्वान पीयर्स ने खुद माना कि भारतीयों के पास बहुत ही विकसित दूरदर्शी यंत्र होंगे तभी वे खगोल विद्या का इतना विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सके।[4] उन्हें बृहस्पति के चार उपग्रह और शनि के सात उपग्रहों का ज्ञान भी था जबकि यूरोप में 1609 तक बृहस्पति के चार उपग्रहों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इसी तरह शनि के छठे उपग्रह को यूरोप में 28 अगस्त 1789 में खोजा गया और सातवें उपग्रह की खोज 17 सितंबर 1789 को हरसेल नामक वैज्ञानिक द्वारा की गई। ज्योतिष वेदांग (500 बी०सी०) में 27 नक्षत्रों और पूरे और नए चंद्रमा की अवस्था की गणना करने के नियम दिए गए हैं । आर्यभट्ट ने सूर्य ग्रहण, चंद्र ग्रहण के कारण और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है इस तथ्य को उजागर किया । उन्होंने ष्आर्यभट्टष नामक किताब में ष्पाईष की कीमत और पृथ्वी की गोलाकार आकृति के बारे में भी लिखा । वहीं वराह मिहिर ने अपनी पुस्तक बृहतसंहिता (छठी शताब्दी ए०डी०) में बताया चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है ,पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है ।

2. **गणितः**

भारत ने गणित में अंकन या चिन्ह प्रणाली दी जिसे बाद में अरब ने अपनाया। गणितज्ञ आर्यभट्ट ने दशमलव प्रणाली दी और त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने का नियम दिया जिससे ट्रिग्नोमेट्री (त्रिकोणमिति गणित) का जन्म हुआ । पांचवी सदी बी०सी० में सुलवसुत्रा ने बीजगणित का ज्ञान दिया । जिन पहाड़ों को बेधशाला में भी दर्शाया गया वह भी यह बताता है कि भारतीयों को अंकगणित , बीजगणित और गणना जिसने त्रिकोणमिति गणित को जन्म दिया का अच्छा ज्ञान था । द्विपद प्रमेय बायो नोमियल थियोरम क्षेत्रमिति फार्मूला (मेंसुरेशन फार्मूला)आदि का ज्ञान भी भारतीयों को यूरोपियन से पहले था । यूरोप में बायो नॉमियल थियोरेम की खोज न्यूटन द्वारा की गई । स्वयं बर्रो विद्वान ने अपने एक लेख ष्भारतीय द्विपद प्रमेयष में जो 1790 में कलकत्ता में छपा था इस बात को स्वीकार किया। 458 ए०डी० में 0 को एक अंक के रूप में स्वीकार करवाने का श्रेय भी भारत को जाता है। अंक रोटेशन सूत्र, फिबोनैकी की संख्या , चक्रवाला अलगोरियन प्रणाली , स्केल या फूटा से माप भी भारत में प्राचीन काल से ही ज्ञात थी ।

3. **दवा या औषध क्षेत्रः**

प्राचीन भारत में शल्य चिकित्सा का ज्ञान यूरोप से भी पहले से था। स्वयं कर्नल किड ने माना है कि भारतीय डॉक्टर बड़ी सफलता से फोड़े का ऑपरेशन करके निकाल देते थे जिसे यूरोपियन डॉक्टर (शल्य चिकित्सक) नहीं कर पाते थे। किड मानते हैं कि प्राचीन सुश्रुता ने भारत में प्लास्टिक शल्य चिकित्सा भी थी।सुश्रुता छठी बी०सी० में सफलतपूर्वक कैटरेक्ट का ऑपरेशन कर सकते थे और स्वाभाविक लेंस जब अपारदर्शी हो जाते थे तो उनकी जगह कृत्रिम लेंस लगा सकते थे । पथरी को निकालने के लिए उन्हें सही स्थान पर काटने का ज्ञान भी था जो यूरोपियन शल्य चिकित्सकों को नहीं था। भारतीय डॉक्टर जिनकी नाक खत्म हो जाती थी उनको नई नाक भी लगा सकते थे । उन्हें पशुओं के अंगों को जोड़ने वाली सीमेंट का ज्ञान भी था। चेचक का जो टीका यूरोप में डॉक्टर ई जेनर ने 1798 में बनाया था उसका ज्ञान भारतीयों को काफी पहले से था। विद्वान माधव ने आठवीं शताब्दी में इसे जान लिया था और जिन भारतीयों को चेचक का टीका लगा होता उनकी मृत्यु दर 200 में से 1 थी जबकि कलकत्ता में यूरोपियन लोगों में यह 60 या 70 पर एक व्यक्ति थी। भारतीयों को कोढ़ बीमारी का ज्ञान था और इसका इलाज अथर्ववेद में दिया गया था । भारतीय ऋषि–मुनियों को आयुर्वेद का ज्ञान भी था। उपेंद्रनाथ ब्रह्मचारी ने काला ज्वर का इलाज ढूंढा। चरक की ष्चरकसंहिताष्और सुश्रुता की ष्सुश्रुतसंहिताष औषध के क्षेत्र में प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ है जिनमें अनेक बीमारियों , शल्य चिकित्सा के लिए सुन्न करना आदि का वर्णन है।

4. **भौतिकीः**

भारतीयों को पूर्ववैदिक समय 3000 बी०सी० से पहले से ज्ञान था कि विश्व पांच तत्वरू पानी,भूमि,अग्नि,वायु,आकाश से मिलकर बना है और उन्हें अणु का ज्ञान यूनानियों से भी पहले से था। व्यसेशिका स्कूल ने अणु का सिद्धांत दिया। ब्रह्मगुप्त ने न्यूटन से पहले ही गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत बता दिया था। टीपू सुल्तान और उसके पिता हैदर अली ने लोहे के आवरण वाले धातु के बने सिलेंडर राकेट का प्रयोग अंग्रेजों के साथ मैसूर युद्ध में किया था।

5. **रसायन शास्त्रः**

भारतीयों को धातुओं का अच्छा ज्ञान था। सुल्तानगंज की बुद्ध की तांबे की मूर्ति और महरौली दिल्ली का लोहे का स्तंभ इसके उदाहरण है । पंचधातु की नटराज की मूर्ति , इत्र , मरहम ,रंग ,शीशे के पॉलिश करना और अजंता एलोरा की गुफाओं में प्रयुक्त प्राकृतिक रंग इस बात को बताते हैं कि प्राचीन भारतीयों का रसायन ज्ञान कितना विकसित था ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. धर्मपाल ,18 वीं शताब्दी में भारतीय विज्ञान व तकनीकः कुछ समकालीन यूरोपीय वर्णन, पेज 30.
2. रॉबर्ट बार्कर और जॉन ल्योड विलियम्स, दार्शनिक आदान–प्रदान, लंदन,1793, पेज 45.
3. विलियम हंटर , खगोल शास्त्रः हिंदू श्रेष्ठता , हरबिलास शारदा ,पेज 332 से 348.
4. धर्मपाल अग्रवाल, धर्मपाल से प्रकाश की चमक , (2000) पेज 1 से 6.
5. शकील अनवर, प्राचीन भारत के महत्वपूर्ण तथ्यः विज्ञान और तकनीक , जागरण जोश ,अक्टूबर 5,2016.
6. आर. एस. फूकन, रोचक भारतीय खोज और अन्वेषण जिन्हें विश्वव्यापी स्वीकार किया गया, अगस्त 1, 2019.
7. डॉक्टर विनोद बिहारी सतपथी, भारत में विज्ञान व तकनीक का इतिहास , पेज 1 से 188.
8. संचारी पाल,16 महत्वपूर्ण विज्ञान व तकनीकी खोजें जो प्राचीन भारत ने विश्व को दी, 30 जुलाई 2016.

डॉ० प्रखर

एक्सटेंशन लैक्चरर,

इतिहास विभाग

डॉ. बी.आर. अंबेडकर राजकीय

महाविद्यालय,

पलवल

65

नारी अस्मिताः चेतना और सशक्तीकरण का एक मूंल्याकन

डॉ0 नीरज कुमार, सुमन कुमारी

सारांश –

हमारे चारों और 1 प्रश्न बार–बार मंडराता है कि भारतीय समाज में नारी का जीवन कभी उसके लिए अर्थपूर्ण रहा? संकीर्ण अर्थ में भारतीय नारी घर की चार दीवारी में कैद होकर अपने जीवन के अर्थ को कभी ढूढ नहीं पाई। वह तो खूंटी से बधी गाय की तरह रही है। पुचकारा और दूध दुह लिया। वह खुले मेंदानों के चारागाह में स्वतंत्रता से कभी मंडरा नहीं पाई। उसके पीछे डंडा लिए एक चरवाहा रहता था,। जो उसको हाँकता रहता था। वह स्वंत्रता होकर भी स्वतंत्र नही थी। नारी की ठीक यही स्थिति भारतीय ग्रामीण अंचलों और कस्बाई संस्कृति में देखने को मिलती रही है। पाँच लाख से अधिक भारतीय गाँवो में नारी नारी अस्मित की अवधारणा पर बात करना आज भी बेईमानी लगता है। भूमिहीन ग्रामीण पुरूश व स्त्री दोनों खेतो में काम करके दो जून की रोटी कमाते हैं। शिक्षा इनके पास नहीं आई और निर्धरता के कारण वह शिक्षा के पास नही पहुँच पाई। फिर नारी चेतना खेत–खलिहानों की मिट्टी में सनकर रह गई। और अपने को समझने का कभी अवसर ही नहीं मिला। आखिर मिलता भी कैसे? एक सामन्ती व्यवस्था में जमीदार वह सुविधाँए नही देता कि भूमिहिन श्रमिक की पत्नियाँ शिक्षित व प्रशिक्षित होकर स्वावलम्बी बन जाए।

अपने समाज में महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार को रोकने के लिए और उनके विरूद्ध हिंसा को कम करने के लिए हमें क्या उपाय करने चाहिए? यह सुझाव वैध व तर्क संगत हो सकता है। कि स्त्रियों की सामान्य प्रतिश्ठा और शिक्षा, प्रभावी वैधानिक उपायों ओर परिक्षण और रोजगार के अवसर देकर सुधारी जा सकती है। तो यह महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को कम करेगी, परन्तु यह अत्यन्त व्यापक सुझाव है। इसी प्रकार यह सुझाया जाता है, कि जनसंचार माध्यमों से महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के प्रकरणों को बहुत अधिक महत्व नही दिया जाना चाहिए। यद्यपि जनसंचार माध्यमों में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को संन्सर करने के नैतिक और मानवतावादी कारण हैं, परन्तु हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है, कि ऐसी कार्यवाई से आवश्यक रूप से कमी आ जाएगी। यहि अपराध कर्ताओं को निवारक दण्ड देने और उसके सबधियों द्वारा उसका सामाजिक बहिश्कार करने के बारे में भी सही है। ये उपाय उनके सामाजिक प्रभावों के लिएए वाछनीय हो सकता हैं, परंतु हमें विश्वास नही हो सकता कि वे किसी सीमा तक महिलाओं के शोशण को कम कर देगें। यह मालूम करने के कोई प्रमाण नहीं है, कि कौन–सी नीतियों को प्राथमिकता दी जाए। फिर भी कई ऐसे उपाय हैं। जिनके किए जाने से महिलाओं का उत्पीड़न कम हो सकता है। पहले हम उस प्रकरण को लेते हैं। जो पहले से कई महिला संगठनों और राजकीय एवं निजी/सार्वजनिक संस्थाओं का ध्यान आकृशित कर रहा है। यह पीड़ितो की सुरक्षा, मदद, और सलाह की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। कुछ महिलाओं को (यद्यपि सब को नहीं) जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है, वह है आश्रय। महिलाएँ जो तानाशाह सास–ससुर और शराबी पतियों के साथ रह रहीं हैं,। अस्थायी अथवा स्थायी रूप से वह अपना घर छोड़ देगी, यदि उनके पास कोई आश्रय उपलब्ध हो। स्वंयसेवी संगठनो को, जो स्त्रियों को ऐसा आवाश मुहैया कराते हैं, अपनी परियोजनाओं का प्रचार करना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए। कि वर्तमान में जो महिलाओं क लिए घर हैं, वे आवश्यकता के अनुशार मांग को पूरा नहीं कर पाते हैं। उनमें अक्सर भीड़भाड़ होती है, वित्तीय सहायता का अथवा होता है और वे सुरक्षा नियमों का पालन नहीं करते । महिलआ संगठन कई स्त्रियों के दुःखों उपसमन में योगदान देगी यदि वे उन्हे अल्पकलिक आवाश की सुविधा प्रदान करती है और अन्ततः स्थाई मकान दिलावेन में मदद करती हैं, विषेश रूप से उन विवाहित स्त्रियों को जो कश्ट में हैं या बलात्कार, भगाऐ जाना, मार डालने की कोशिश जैसी हिंसा की शिकार हैं। विभिन्न प्रकार के अल्पकालिक आवारा जो पीड़ित स्त्रियों और विधवाओं को दिए जा सकते हैं, उनका मूल्यांकन और तुलना करना अति आवश्यक है।

हिन्दु महिलओं की इस छवि पर सुधार वादियों द्वारा प्रश्न चिन्ह लगाए जाने के अलावा 1860 के बाद के महिला लेखन में भी इसकी बुनियाद की गंभीर जाँच पड़ताल की गई है। इन दोनों में महिलाओं को शिक्षा से दमर रखने और छोटी बच्चियों को नए परिवार में भेजने की प्रथा की समान रूप से आलोचना की गई है। रास सुंदरी एक आदर्श घरेलू हिन्दू महिला थी। वह सावधानी पूर्वक अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करती थी, व्यवस्था के बारे में अपनी काब को कभी खुलकर नहीं करती थी। वह करती हैं, मैं इन सब पुरानी बातों को याद करती हैं, तो मन घृणा से भर जाता है। गँवारू कपड़े भारी भरकम गहने, शंख की चूड़िया और सिंदूर।' दुल्हनो के लिए निशेध की चर्चा करने के लिए वह अँधे, गूंगे और लकवाग्रस्त व्यक्ति व कोल्हू में जुत रह आँखो पर पट्टी बाँधे बैलो की छवि का इस्तेमाल करती हैं।, वह जुबान बंद रखने, तयशुदा, चुनिंदा जगहों पर आने जाने, अधिकतर वृद्ध और पुरूश रिश्तेदारी से कोई संबध नही रखने के लिए मजबूर हैं। चूँकि घर के अन्दर चहलकदमी की

सीमा हर घर में अलग–अलग थी। इसलिए कोई दुल्हन यह अंदाजा नही लगा सकती थी कि उस पर क्या–क्या पाबदियाँ लगाई जाएगी। पत्नी बनने के ढेरों दिनाो बाद और कई बच्चियों की माँ होने के बाद भी राससुंदरी सोचती है कि उसे अपने पति के घोड़े क सामने जाने पर भी पाबंदी थी पूरे आलेख में राससुंदरी अपने भाग्य की तुलना उन आधुनिक लड़कियो से करती हैं जिन्हें इन दिनों शिक्षा की सुविधा, रोजगार, की सुविधा यातायात की सुविधा, प्राप्त है। उनके अपने समय में हर कोई यही मानता था कि सुविधा, प्राप्त है। उनके अपने समय में हर कोई यही मानता था कि महिलाा सिर्फ घर का कामकाज करने के लिए बनी हैं।

स्त्रियों को विशेश छूट एवं विशशाधिकार दिए जाने की मागों को अधिकार मानते हैं, न कि दान या मानव उपकार। जब पंचायतों में स्त्रियों के लिए आरक्षण की घोशण की गई थी, कुछ लोगों ने इसका समर्थन किया और कुछ लोगों ने कहा थ कि इससे कलंक की भावना पेदा होगी। पंचायत स्तर पर संविधान में (73 वाँ) संशोधन करके स्त्रायों के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित कर दियें गए थे। बाद में अनुसूचित जातियों और जन जनजातियों के कोटे में से इन स्त्रियों के लिए एक तिहाई स्थानों को सुरक्षित करने की प्रथक धारा इसमें जोड़ दी गई थी। इसका अर्थ है कि मान लिया जाए कि एक स्थानीय निकाय मे 100 स्थान हैं, उसमें से 33 स्थान दलित और जनजातियों के लिए आरक्षित कर दिए गए। तब इन 23 स्थानों में से 7 या 8 स्थान दलित और जनजातियों के लिए रखे जायगें स्त्रियों के लिए आरक्षित 33 स्थानों में से ही 7 या 8 दलित/जनजातिय स्त्रियों के स्थान को समायोजन भी इन्हीं में होगा, ताकि स्त्रियों के लिए आरक्षित सामान्य श्रेणी के स्थान 33 स्थानों में से 26 रह जायगें। दिसम्बर, 1998 में लोक सभा में स्त्रियों के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण से सम्बधित विधेयक के प्रस्तुत किए जाने से पूर्ण यह तीन अन्य अवसरों पर भी प्रस्तुत किये जाने सें रोका गया था, एक 1996 में प्रधानमंत्री देव गोड़ा के समय में, दूसरा 1997 में प्रधानमंत्री गुजराल के कार्यकाल में और एक 1998 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में। एक स्तर पर तो (इन्द्र कुमार गुजराल के कार्यकाल में) यह विधेयक गीता मुख्र्जी को सौपा गया था, जिसने 1996 नवम्बर में प्रस्तुत की गई रिर्पोट मे स्त्रियों के लिए एक तिहाई आरक्षण की सिफारिश की थी। महिला विधेयक जो अब नवम्बर 2000 में ससंद में विचार के लिए रखा जाने वाला है उसमें प्रावधान है कि (a) विधायकों में स्त्रियों के लिए 33% स्थान होगें, (b) जाति के आधार पर आरक्षण का सुझााव इसमें नही होगा (अर्थात यह दलित/जनजाति/पिछड़ी जाति की स्त्रियों के लिए आरक्षण की अनुमति नहीं देगा, (c) इसमें चक्रीय व्यवस्था का सुझाव है।

1991 की जनगणना कमिश्नर की अनुसार शहरों व गाँवो में दोनों में घर की चार दीवारी से बाहर आकर काम करने वाली महिलाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1971 की जनगणनाओं के आँकड़ो के अनुसार देश की कुल कार्यशक्ति में 13. 0% महिला श्रमिक थी यह प्रतिशत 1981 में 25.89 और 1991 में 28. 57 हो गया। (The hindustan Times'April 1993)। लगभग 80% महिला कृशि कार्यो में लगी हैं। केवल 12% महिलाँये ही केन्द्रीय व राज्य प्रशासनिक सेवाओं और सार्वाजनिक प्रतिश्ठानों में लगी है। भारत के कुल कामकाजी महिलाओं में से प्रत्येक 100 सेवायुक्त महिलाओं में से 52.59 अशिक्षित हैं, 28.26 प्राइमरी या पिडिल स्तर तक शिक्षित है। 13.78 सेंकेण्डरी स्तर तक शिक्षित हैं और 5.07% स्नातक और इससे उपर शिक्षित हैं। शहरी क्षेत्रों में प्रत्येक 100 सेवायुक्त महिलाओं में से 25.83 अशिक्षित, 35.49% प्राइमरी और मिडिल तक 25.71 सेकेण्डरी शिक्षित हैं और 12.97 स्नातक और अधिक तक शिक्षित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक 100 सेवायुक्त महिलाओं में से 88.11% अशिक्षित, 10.68 प्राइमरी व मिडिल तक थता 1.21 मिडिल से शिक्षित हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि महिला रोजगार क्यों ढूढती हैं? स्त्रियों में रोजगार के लिए प्रेरणा पुरूशों से भिन्न होती है। स्पश्ट कारण तो है धन की आवश्यकता, लेकिन यह कहना गलत होगा की सभी महिलाएँ धन के कारण ही नौकरी करती हैं। एक अध्ययन में 728 कामकाजी महिलाओं के अध्ययन में नौकरी के प्रमुख कारण इस प्रकार पाए गयेः पति के अप्रर्याप्त वेतन के कारण, पति की मृत्यु, पति की बीमारी, पति के सहारा न देने के कारण पति द्वारा परित्याग तथा घर से बाहर काम करने की वरियता देने के कारण मोटे तौर पर कहा जाए तो, 89.0% महिलाएँ आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ही नौकरी करती हैं।

सुधार आन्दोलन और महिलाओं की स्थिति स्वतंत्रता पूर्व भारत में सुधार आन्दोलनों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के प्रयास किए। जैसे 1, ब्राहमा समाज –1828 में राजा राम मोहन राय ने ब्राहमा समाज की स्थापना करके सती प्रथा के विरूद्ध आन्दोलन किया उनके प्रयासों के परिधाम स्वरूप ही 1829 में सती प्रथा को समाप्त करने के लिए सती प्रथा निबंध अधिनियम बनाया गया। राजा राम मोहन राय ने महिलाओं को संम्पत्ति के अधिकार देने बाल विवाह, समाप्त करने एवं महिलाओं में शिक्षा का प्रसार करने क क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये।

2, आर्य समाज– 1875 में महर्शि दयानन्द ने की थी और बैद्धिक आर्दर्शो की ओर हिन्दू समाज को ले जाने का प्रयास किया। इस संस्था ने उत्तर भारत में महिला शिक्षा का प्रसार करने, प्रथा तथा बाल विवाह रोकने के लिए अच्छा कार्य किया।

3, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर– इन्होने बिना किसी संस्था की स्थापना किए व्यक्तिगत स्तर पर महिलाओं की दशा सुधारने के लिए विघवा

पुर्नविवाह पर बल दिया तथा बहु पत्नी विवाह सम्बन्धी परमपरागत नियमों का विरोध किया, और स्त्रियों की शिक्षा पर बल दिया। उन्होने अपने पुत्र की शादी एक विधवा स्त्री से करके आर्दश प्रस्तुत किया। उनके प्रयत्नों से 1856 में 'हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम पास हो गया। समाज सुधारकों के प्रयत्नों से ही 1891 में 'एज ऑफ कनसेन्ट' बिल पारित हुआ। जिसके द्वारा लड़कियो के विवाह के लिए आयु 12 वर्श निश्चित की गई। कैशव चन्द्र सैन के प्रयत्नो के फलस्वरूप 'नेटिव मैरिज एक्ट' पास हुआ जिसमें बहु विवाह को दण्डनीय अपराध माना गया, और बाल विवाह निशेध ठहराया गया तथा अर्न्तरजातीया विवाह को मान्यता दी गयी। 1971 में 'भारतीय महिलाओं की भारतीय समिति; चेन्नई की स्थापना की गई, जिसमें श्रीमति एनी बेसेन्ट को अध्यक्ष चुना गया। इसके अतिरिक्त कुछ महिला संगठनों, जैसे– भारतीय स्त्री मण्डल, पूजा सेवा सदन सरोजनी दत्त महिला समाज, आदि का विकाश हुआ। इन विभिन्न संधो ने 1929 में एक साथ मिलकर कार्य करने के लिए 'अखिल भारतीय महिला समेलन ' को संगठन बनाया। इस संगठन ने सगंठित रूप से अपना कार्य 1929 से प्रारम्भ किया। जिसके मुंख्य लक्ष्य निम्नलिखित थे। (1) स्त्री शिक्षा प्रसार के लिए सक्रिय कार्य करना (2) दहेज, बाल विवाह, बहुविवाह, और विवाह से सम्बन्धित अन्य कुरितियों को दूर करना। (3) स्त्रियों के लिए समान अधिकारों को और अवशरों को प्रदार करना, (4) स्त्रियों को नागरिकता की शिक्षा देना और उनके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की कोशिश करना, (5) अर्न्तराश्ट्रीय सदभावना एवं विश्व शान्ति के लिए कार्य करना। अखिल भारतीय स्तर पर कार्यरत अन्य महिला संगठनों में 'महिलाओं की राश्ट्रीय समिति,'विश्वविद्यालय महिला संघ' कस्तूरबा गाँधी राश्ट्रीय स्मारक समिति, इसाई नवयुवती समिति प्रमुख हैं। ये संगठन सहरों के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों मे भी शिक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण के कार्य करते है। महिलाओं में शिक्षा का प्रसार और अपने अधिकारों और अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूकता इन्ही सुधार आन्दोलनों के परिणाम है।

समकालीन भारतीय राजनीति में महिलाओं के प्रश्न के महत्व को लेकर एक अवधारणा रही है कि भारतीय समाज में पितृ सत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था के कारण महिलाएँ उत्पीड़न का शिकार रही है और समाज में उचित दर्जा दिलाने के लिये कदम उठाने की आवश्यकता है। समकालीन भारतीय महिला आंदोलन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूपं से स्थापित व्यवस्था को चुनोती देने में सक्षम रहा है। जना एविरेटट ने ऐसे पाँच कारक बताए हैं जिनके कारण भारतीय स्त्रियों के सुधार वादी आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। य हैं– (1) श्रेणी बद्ध जाति व्यवस्था, (2) हिन्दू धर्म, (3) संयुक्त परिवार व्यवस्था, (4) इस्लामी शासन, और (5) ब्रिटिश उपनिवेशवाद। ये आन्दोलन महिला आदोलन रहे क्योकि इनके नेताओं ने महिलाओं पर हो रहे उत्पीड़न का कारण स्त्री–पुरूश की दैहिक रचना को भेद बताया। महिलाएँ एक तरफ सांमतवादियों तथा राज्य के विरूद्ध तथा दूसरी तरफ, समाज के विरूद्ध खड़ी हुई। स्त्रियों के मुददे् की मान्यता ही भारतीय महिला आंदोलन का आधार बनी। 1930 और 40 के दशक में महिलाओ की सक्रियता बढने लगी, इन्होने कई संस्थात्मक संगठन स्थापित किए।

यह सत्य है कि हमारा समाज जाति, धर्म, वर्ग के आधार के साथ'–साथ जेंडर असमानता द्वारा संस्तरित है। इस विशय पर समाज शास्त्र और समाजसास्त्रीय सिंद्यांतों का अभाव रहा है। इसलिए जो प्रश्न दिमाग में अक्सर आता है वह है कि जेड़र असमानता क्या है? हम इसे परिभाशित करने के लिए कह सकते हैं। कि मनुश्य लिंग के आधार पर दो भागों में बटा है, स्त्री और पुरूश। लिंग असमानता प्राणी सास्त्रीय है, जबकि जेडर, असमानता सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से निर्मित है।' मानव मात्र प्राणीशास्त्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से निर्मित है। स्त्री प्राणीशास्त्रीय के रूप में हनी, अपितु उसमे सामाजिक नियम प्रथा, संस्कृति इत्यादि के आधार पर भी कार्यो को प्रतिपादित करना होता है। प्रत्येक महिला का लिंग स्त्री होता है, लेकिन उसकी स्थिति अलग–अलग समाज व परिवारो में अलग–अलग होती है, जहाँ या तो उसका हुआ है। या विवाह। यह एक सार्वभौतिक सत्य है। पश्चिमी देशों में नारीवाद की शुरूआत लेखों के माध्यम से मानी जाती है। जिनमें लिग संबधी भेदों का प्रतिवाद किया गया है।

संदर्भ सूची–

1. वी.एन.सिंह व जनमें जय सिंह, (नारीवाद), 2018, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृं0सं0 164
2. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएँ, (2016), रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृं0सं0 239
3. दिलीप एम.मेमन, आधुनिक भारत का सांस्कृति इतिहास, (2010), ओरयिंट ब्लैक स्वान, 1/24 आसफ अली रोड़, न इ ं दिल्ली– 110002, पृं0 सं0 68,69
4. राम आहूजा, भारतीय समाज, (2000) रावत पब्लिकेषन, जयपुर, पृं0सं0 139,140.
5. राम आहूजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, (2019) रावत

पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृं0 सं0 93,94.
6. डॉ0 एस.सी.सिंहल, भारतय षासन एवं राजनीति, (2018) लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 282002, पृं0सं0 420,421.
7. बासुक नाथ चौधरी व युवराज कुमार, आज का भारत और राजनीति और समाज, (2013) ओरियट बैंक स्वान आसफ अली रोड़, नई दिल्ली–110002 पृं0सं0 51,52
8. राम गणेष यादव, भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास (2014) ओरियंट ब्लैक स्वान, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली–110002, पृंसं0 126,127

डॉ0 नीरज कुमार
डिपार्टमैन्ट ऑफ राजनीति शास्त्र
S.S.V.P.G.
कॉलिज हापुड़, (यूपी)

सुमन कुमारी
शोधार्थीनी
Dep. of Sociology मोनाड
विश्वविद्यालय हापुड़ (यूपी)

66

मद्यु कांकरिया कृत 'हम यहाँ थे' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ

सुमित्रा

सारांश –

'' समस्या शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाशा के 'समस्या टॉप' से हुई है जिसका अर्थ है उलझन वाली ऐसी विचारणीय बात, जिसका निराकरण सहज में न हो सकता हो अथवा कठिन या विकट प्रसंग।'' 'यहाँ हम कह सकते हैं कि समस्या का सीधा सम्बन्ध कठिनाई या उलझन से है। मनुश्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे निर्धनता, बेरोजगारी, मद्यपान, भ्रश्टाचार आदि। ये ऐसी समस्याएँ है जो केवल एक व्यक्ति को प्रभावित नहीं करती बल्कि पूरे समाज को प्रभावित करती हैं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्याएँ ऐसी समस्याएँ है जिन्हें समाज अपने विकास में बाधक मानता है। एक साहित्यकार भी समाज में रहता है। वह अपने चारों ओर के परिवेश को देखता है और उसमें उसे जो समस्या दिखाई पड़ती है, उसी का वर्णन वह अपने साहित्य में करता है।

मद्यु कांकरिया जी ने भी अपने आस – पास के परिवेश में जो कुछ देखा वही अपनी रचनाओं के माध्यम से यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। उन्होने लगभग छः उपन्यासों और सात कहानी संग्रह लिखे। 'हम यहाँ थे' उनका नीवनतम उपन्यास है जिसमें उन्होने आंतरिक और बाहरी जगत की सच्ची घटनाओं का लेखा जोखा है। उनकी रचनाएँ प्रगतिवादी दृश्टिकोण को अपनाते हुए रूढ़िगत परम्पराओ पर प्रहार करती है। उन्होने अपने कथा साहित्य में अपने निजी अनुभवों को बेबाक तरीके से अभिव्यक्त किया है। 'हम यहाँ थे' एक ऐसा उपन्यास है जो जीवन के कठोर सत्य को वर्तमान के तीखे प्रकाश में परिभाशित करता है। यह उपन्यास जीवन में व्याप्त करूणा, प्रतिरोध, संघर्श, स्वप्न, संकल्प और समपर्ण का अनुसंधान है। इस उपन्यास की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक व सांस्कृतिक समस्याओं को मद्यु जी ने बहुत ही सूक्ष्मता से दिखाया है।

दीपशिखा 'हम यहाँ थे' उपन्यास की नायिाक है जिसके इर्द – गिर्द ही उपन्यास की कथा – वस्तु घूमती है। लगभग तीस वर्शीय दीपशिखा ने अपने पति का घर छोड़ दिया है। वह अपने मायके में अपने पौने तीन साल के बच्चे (सोनू) के साथ रहती है। उसका पति राजीव जोकि बेरोजगार था जिसके चलते घर में हर रोज महाभारत रहती थी। जहाँ राजीव दब्बू किस्म का व्यक्ति था वही दीपशिखा खुले विचारों वाली महिला। रोज – रोज के झगड़े से तंग आकर दीपशिखा अपने पति से अलग अपने मायके में ही रहने लगती है। वहाँ भी दीपशिखा की अम्मा उसे चैन से रहने नहीं देती। दीपशिखा का मायके में रहना उसे पसंद नहीं, वह बार – बार दीपशिखा को नए सिरे से जीने के लिए कहती है। वह पुराने विचारों वाली महिला थी जिसका मानना थ कि पति चाहे जैसा भी हो लड़की की सही जगह वही होती है जहाँ उसका पति रहता है। अम्मा की बातों को नजरअंदाज कर दीपशिखा वहीं अपने मायके में रहने लगती है। वह एक स्वाभिमानी माँ है जो किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती। इसलिए वह 'सुमगलम कम्प्यूटर सेंटर में' नौकरी करने लगती है। अपने बेटे के स्कूल के दाखिले के लिए भी दीपशिखा को शर्मिंदा होना पड़ता है क्योंकि लगभग सभी जगह बच्चे के माता और पिता दोनों की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। उसके पति राजीव ने तो कही भी जाने से साफ मना कर दिया। दीपशिखा को ही हर जगह अकेले ही साक्षात्कार के लिए जाना पड़ता है। अपनी नौकरी के दौरान भी उसे कभी बस में तो कभी ऑफिस में भद्दे प्रवचन सुनने को मिलते।

इसी उपन्यास में लाल बहादुर व्यक्ति भी आता है जिसे लगभग चालीस साल पहले नेपाल के किसी पहाड़ी अंचल से लाया गया था। वह दीपशिखा के पड़ोसी सेठ जमनालाल के यहाँ नौकरी करता है। बचपन में ही शादी हो जाने के कारण लालबहादुर अपनी पत्नी तक को याद नहीं करता। जानलेवा भूख और गरीबी से बचने के लिए सोलह वर्शीय लालबहादुर को उसके पिता ने अपने किसी परिचित रामश्रेश्ठ के साथ कलकत्ता भेज दिया था। जहाँ वह सेठ जमनालाल के यहाँ घर का काम व बच्चों को भी संभालता है। वह पूरा दिन एक बैल की तरह काम करता है वो भी सिर्फ दो वक्त की रोटी के लिए। अंगूठा छाप लालबहादुर तो अपने गाँव का नाम – पता तक भी भूल जाता है। उसे याद रहता है तो सिर्फ और सिर्फ काम। सेठ जमनालाल के शब्दों में ''मैनें इसे आदमी रहने ही कहाँ दिया है जो यह आदमी की तरह सोचता। मैनें तो बैल बना डाला इसे, अब यही हो गई है इसकी किस्मत। जब तक घास खाएगा, हल में जोता जाएगा।'' (2) यहाँ हम देखते है कि पेट की भूख और गरीबी कैसे एक अच्छे खासे इंसान को बैल बना देती है जिसे काम के अलावा कुछ नही सूझता।

दीपशिखा की अम्मा रूढ़िवादी विचारों की पूजा –पाठ में ध्यान लगाने वाली महिला है। जो धर्म के नाम पर कभी दीपशिखा को तो कभी घर के नौकर – नौकरानी को डाँट – फटकार लगाती रहती है। जब नागपंचमी के दिन दीपशिखा सुबह – सुबह गर्म चाय पी लेती है तब अम्मा माथे पर हाथ मारती हुई कहती है – ''देखो कुलक्षणी को, आज के दिन भी गर्म चाय पी ली।'' (3)क्योंकि अब तक नागपंचमी के दिन वह दीपशिखा से पहले नाग देवता की पूजा

करवाती है और बाद में कुछ खाने को देती है और वह भी ठंडा। ऐसा करने के पीछे अम्मा ने एक कहानी सुना रखी है वह यह कि नागपंचमी के दिन दीपशिखा के ही गोत्र की किसी कन्या ने मुँह अंधेरे ही चूल्हा सिलगाया था जिसमें नाग देवता तड़प – तड़प के मर गये थे। उस नाग के अभिशाप के कारण ही बिना नाग देवता की पूजा के घर में चूल्हा भी नहीं जलता। यदि कोई ऐसा करता है तो उसे सुहाग सुख नही मिलता। घर में आरती के समय पंखा नही चलाया जाता ताकि आरती का दीपक न बुझ जाए। भले ही आरती के धुएँ से किसी का दम घुट जाए। अम्मा के खाना खाते समय और आरती करते समय झाडू नही लगाई जाती। एक तरह से आरती के समय घर के सभी काम रूक जाते थे। घर में जमादार के आने पर अम्मा हॉल में रखी साड़ियों को उठा लाने को कहती है ताकि जामदार का शरीर कही टच न हो जाए। दीपशिखा के साथ – साथ जब अम्मी की बहु भी इस बात का विरोध करती है तो अम्मा दीपशिखा पर बरसती हुईकहती है – '' ओ राम जी, सुनो इसकी बात! खुद तो जिंदगी भर की दुश्मन बन रही, अब बहुओं को भी दुश्मन बना रही है। सब घोल – घाल के पी गई। अरे भंगी है, उससे दूर नही रहूं तो क्या उसे अपने सिर पर मुतवाऊ? चली है गाँधी बनने। (4) ''केवल जमादार ही नही घर में काम करने वाली पचपन वर्शीय जयंती से भी अम्मा ऐसे ही भद्दे तरिके से बात करती। वह जयंती को मुँह घुमाकर बात करने को कहती। अम्मा का कहना है कि मूं बासता है उसका, इसलिए मूं घुमाकर बात करने को कहा है। इस बात पर दीपशिखा कुछ बोली अम्मा पूरी ताकत के साथ बिखरी पड़ी – ''खबरदार जो कुछ बोली'' हगते बीच हाथ डालने की आदत पड़ गई है तेरी, अब तू कहेगी कि इसका बासता मूं भी सूंघो, दफा हो जा यहाँ से। '' (5) अम्मा के इस व्यवहार से जमादार या फिर जयंती के स्वाभिमान को कितनी ठेस पहुँची होगी, यह अंदाजा लगाना भी मुश्किल है। लेकिन अपने हालात के हाथों मजबूर है वे यह सब सुनने को।

ऐसी ही छुआछूत की समस्या हमें काली जोकि दीपशिखा के घर पर काम करती है, के उदाहरण से देखने को मिलती है जहाँ अम्मा काली को भंगिन कहकर उसका अपमान करती है, और उसे धक्का देकर चोट पहुँचाती है। ''अम्मा के लिए भंगी का मतलब– '' एक जीता–जागता इन्सान नहीं बरन् – गंदगी में लिपटा एक ऐसा कीड़ा था जिससे दूर रहकर सिर्फ सिर्फ गंदगी ही साफ करवाई जा सकती थी।''(6) दीपशिखा के घर काम करने वाली पहले रूपा और बाद में जयंती के माध्यम एक अन्य समस्या सामने आती है वो है माँ – बाप की देख – रेख के बिना बच्चों का गलत रास्ते पर चले जाना। रूपा अपने सात साल के बेटे को अपनी झोपड़ी में अकेला छोड़कर काम पर चली जाती है। जहाँ उसकी गैर हाजिरी में कुछ नशाखोर उसके बेटे को कुछ रेजगारी या चॉकलेट का लालच देकर घंटे – दो घंटे के लिए झोपडी में नशेबाजी करते है। उनको देखकर रूपा का सात वर्शीय बेटा भी नशे की दलदल में फंसता चला जाता है उसके इलाज के लिए वह अपनी पुश्तैनी जमीन तक को गिरवी रख देती है ताकि बेटे का भविश्य संवर सके। ऐसा ही कुछ जयंती के साथ भी होता है। अपनी चौदह वर्शीय बेटी को घर में अकेला छोड़ वह रोज काम पर निकल जाती है। जिसकी गैर हाजिरी में उसकी बेटी एक मुश्लिम ड्राइवर के साथ भाग जाती है। घर में हर वक्त हाय तौबा, हर चीज का टोटा, प्यार के दो शब्द कहने वाला कोई नहीं, ऊपर से जयंती का उसको पीटना उसे मजबूर कर देता है उस मुस्लिम ड्राइवर मंसूर अली खान के साथ भागन को। यहाँ हम देखते है कि माँ – बाप की गैर हाजिरी में बच्चे कितना बिगड़ जाते हैं।

कलकत्ता की सिंकदर बागान बस्ती में रहने वाली लगभग हर काम वाली बाई की एक जैसी ही समस्या देखने को मिलती है। टीन की छप्पर वाली छतों सी बजबजाती सारी बस्तियाँ अपने श्रम से आस पास के भव्य मकानों को संभाले हुए थी। सुबह तीन–चार बजे ही इनके गोरखधंधे शुरू हो जाते। सुबह उठते ही सरकारी नलके पर लाइन लगाकर पानी भरना, फिर शौच की लाईन से निपटना। तीस–चालीस खोलियों के बीच हगने,मूतने और नहाने के लिए दो टूटे दरवाजों के टायलेट। साढे छः या सात बजे तक अपने घर के लोगों के लिए खाना बनाकर व अपने बच्चों को राम भरोसे छोड़कर दूसरों के घरों में खाना पकाने, चौका बर्तन, कपड़े धोने व सफाई करने निकल जाती। दूसरों के खानों में अपने श्रम से स्वाद भरने वाली इन बाइयों का खुद का खाना कितना स्वादहीन होता है, आप शायद ही इसका अनुमान लगा सकें। आंधी हो, तूफान हो, बारिश हो, होली हो, दीवाली हो, वे हाजिर। जहाँ पति – पत्नी दोनों को एक दूसरे की भावनाओं की कद्र करनी चाहिए वहीं पति अपनी पत्नी को केवल भोग विलास की वस्तु समझता है। यह समस्या दीपशिखा की सहेली तवलीन और उसकी माँ के द्वारा हमारे समक्ष आती है। तवलीन का रसिया बाप काम से आते ही उसकी माँ को अन्दर कमरे बुलाता और अपनी वासना को शांत करता। दो – दो जवान बेटियों के सामने उसकी माँ को छेड़ने में बिल्कुल भी नहीं हिचकिचाता। तवलीन की माँ उसके बाप की हर इच्छा को अपनी मजबूरी के चलते पूरा कर रही थी। क्योंकि तवलीन के भाई बबलू के इलाज के लिए सारा पैसा उसका बाप ही देता था। क्योंकि उसके भाई को कैंसर था। ऐसे ही हालात हमें तवलीन के भी दिखाई देते हैं जहाँ उसका पति जो सुबह उठते ही चुटकी बजाकर कहता है 'चाय दो मिनट में'। उसकी इस हरकत से तवलीन को लगता है जैसे वह पत्नी नही बांदी है। यहाँ तक कि वह अपने दोस्तों के सामने भी ऐसी हरकते करने से नहीं चुकता। वह औरत के मामले में भूखा जानवर दिखाई पड़ता है। तवलीन के शब्दों में – ''हर रात बेकाबू सांड की तरह घूसता है वह मेरे कमरे में और मुझे अपनी मर्दानगी के बोझ तले कुचलकर संतुश्ट सुअर की तरह सो जाता है।'' (7) यहाँ तक कि जब तवलीन को चार पाँच साल तक कोई संतान नहीं हुई तो उसके लिए भी तवलीन को दोशी ठहराया जाता है। लेकिन वास्तव में उसका पति ही वीर्यहीन था। लेकिन हमारे पुरूश प्रधान समाज में

सारा दोश स्त्री के सिर ही मंढ दिया जाता है। ऐसे लोगों की मानसिकता को बदलना बहुत जरूरी है।

इस उपन्यास में भ्रश्टाचार की समस्या भी देखने को मिलती है। जहाँ दीपशिखा के चचेरे भाई रवि जोकि फौज में मेजर है, उन्हीं का एक सहकर्मी मेजर कुलकर्णी के प्रसंग से हमें भ्रश्टाचार की समस्या देखने को मिलती है। जहाँ दोनों मेजर के यहा काम करने वाली बाई को पगार की जगह फौजी कैंटिन से लाई हुई टैक्स फ्री वाइन की बोतले दी जाती हैं। वह बाई हजार की बोतलों को दुगुने दामों पर दुकानदार को बेच देती है। इससे हमें पता चलता है कि व्यक्ति चाहे कितने बड़े पद तक पहुँच जाए, भ्रश्टाचार उसे भी नहीं छोड़ता।

जिस राम मंदिर बनवाने के पीछे खून – खराबा हो जाए, तो मंदिर की नींव कितनी मजबूत हो सकती है। जहाँ धर्म के नाम पर मस्जिद को ध्वंस करके राम मंदिर निर्माण की बात चल रही हो, तो वहाँ पर दंगे होना स्वाभाविक है। धर्म के नाम पर एक इंसान दूसरे इंसान की कब्र खोदने को तैयार हो रहा है। क्या वास्तव में हिन्दू हित और देश हित दो अलग – अलग धाराएँ है?तो फिर हिन्दू और मुस्लिम के नाम पर दंगा – फसाद क्यों?

दीपशिखा के मुहल्ले में तो एक 'हस्ताक्षर अभियान' भी चलाया जा रहा थ जिसमें राम मंदिर बनवाने की इच्छा रखने वालों के हस्ताक्षर लिए जा रहे थे। दीपशिखा के अनुसार – ''अपनी नासमझी में मैनें भी न सिर्फ खुद उन पर हस्ताक्षर किया, वरन घर के नौकर – चाकर यहाँ तक कुतों, बिल्ली से भी हस्ताक्षर करवा लिया और जब फिर भी मेरी लक्ष्य संख्या पूरी नहीं हो पाई तो मैनें फर्जी हस्ताक्षर करने शुरू कर दिए।'' (8) इस प्रकार धर्म के नाम पर किसी को ठेस पहुँचाना गलत है। वास्तव में मानवता ही सच्चा धर्म है, हर इंसान को उसी धर्म को अपनाना चाहिए। हमें ऊँच – नीच, हिन्दू – मुस्लिम सभी बातों को पीछे छोड़, मानवतावादी धर्म का ही पालन करना चाहिए। इंसान का दूसरे इंसान के काम आना ही सच्चा धर्म है। मानवतावादी इस धर्म को अपनाकर ही हम धर्म के नाम पर होने वाले इन दंगे फसाद को रोक सकते हैं।

इस उपन्यास में हमें आदिवासियों से जुड़ी अनेकों समस्याओं का पता चलता है। जहाँ उन्हें पूरखों की जमीन से बेदखल किया जा रहा है। उन्हें हर रोज गरीबी, भुखमरी, बेबसी और बिमारियों का सामना करना पड़ता है। अरबों की केन्द्रीय सहायता आती जरूर है परंतु इन लोगों तक पहुँचती नहीं। पीने के पानी के लिए इन्हे तपती धूप में चार – पाँच किलोमीटर पैदल जाना पड़ता है। जंगली जानवरों का भय इन्हें चैन से सोने भी नहीं देता। शिक्षा का प्रसार भी यहाँ नहीं हुआ है। कहीं कोई पढ़ने की इच्छा भी रखता है तो वो भी लालटेन की रोशनी में। जहाँ आज सभी गाँवों में बिजली पहुँच चुकी है, वहीं ये इलाके आज भी अंधेरे में ही डूब रहे है। हाड – तोड़ मेहनत के बावजूद भी इन्हें दो वक्त का खाना सुख से नसीब नहीं होता। जहाँ पहाड़ी रास्तों में हम बिना किसी की सहायता से नहीं चल पाते, ऐसे रास्तों से ये लोग भारी भरकम सामान ढोह कर निकलते हैं। एक आदिवासी सत्येन ने बताया कि – '' यहाँ तो इतने भीमकाय और चिकने पत्थर हैं कि जरा सी चूक हुई तो खोपड़ी के दो टुकड़े हो जाएंगे, भालू तो फिर भी आंख ही नोचेगा।'' (9) यहाँ इस कदर भूखमरी छायी हुई है कि भूख के कारण सुखी काया देखकर हम भ्रमित हो जाते है कि यह स्त्री है या पुरूश। यहाँ के लोग सिर्फ अपने लिए ही नहीं वरन जल जंगल और जमीन को बचाने में लगे हैं। इन लोगों का मानना है कि ''हम धरती की संतान है, हम उसे नश्ट नहीं होने दे सकते। इसलिए हम व्यक्तिगत भूख की बजाय वृक्ष और वन के बारे में सोचते है।'' (10) ये लोग पेट्रोल, डीजल और टेक्नोलाजी तो दूर की बात बिजली और गैस तक के बिना गुजारा कर लेते हैं। आज भी कहीं – कहीं इन लोगों में जादू – टोना, टोटका और झाड़ – फूंक की पूरी दुनिया आबाद है। यहाँ की आदिवासी महिलाएँ भी बहुत मेहनती हैं। वे पत्थर तोड़ना, पत्थरों पर खुदाई करना, सिल बट्टे पर खुदाई करना अच्छे से जानती है।

इस प्रकार हम देखते है कि मधु जी ने अपने उपन्यास 'हम यहाँ थे' में ऐसी बहुत सी समस्याओं को उजागर किया है जो किसी न किसी रूप में हमसे जुड़ी हुई हैं। समस्या चाहे जो भी हो चाहे वो पारिवारिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक हो या फिर आर्थिक हो। हर समस्या का समाधान जरूरी है। यदि शीघ्र ही कोई उपाय न सोचा गया तो ये समस्याएँ हमारे समाज को अन्दर ही अन्दर दीमक की तरह खोखला बना देंगी। अतः हमें इन समस्याओं के निवारण के बारे में गम्भीरता से सोचना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामचंद्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ0 273
2. मधु कांकरिया, हम यहां थे, पृ0 39
3. वही, पृ0 43
4. वही, पृ0 55
5. वही, पृ0 63
6. वही, पृ0 134
7. वही, पृ0 90
8. वही, पृ0 107
9. वही, पृ0 181
10. वही, पृ0 161

सुमित्रा
पीएच. डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

67

नमिता सिंह मूँछोंवाली

डॉ0 मधुकांत अनूप बंसल, पिंकी गर्ग

पुस्तक समीक्षा

मधुकांत जी किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं सभी उनके नेक कार्यों और उनकी उदारता, व्यवहार से भली–भांति परिचित हैं। जैसा की शुरुआत में ही मधुकांत जी ने बताया श्यामलाल कौशल जी के स्नेह भरे उपहास का प्रसंग, इस पुस्तक का शीर्षक थोड़ा विचित्र तो है ही कोई भी हँसे बिना नहीं रहेगा। बहुत–बहुत सुंदर उपन्यास जिसके लिए शब्द नहीं हैं मेरे पास, आज की नारियों की पीड़ा, सामाजिक बुराई को दर्शाता व उचित व्यंग्यों द्वारा प्रहार करता उपन्यास है ये और साथ ही मानव को प्रेरित करता है कि ऐसी घटनाओं से ही कहीं ना कहीं इन्सान के अंदर लेखक का जन्म होता है। फिर अपने उद्‌गारों को वो शब्दों का रुप देकर रचना सृजन कर सकता है।लेखक सभी में छिपा होता है केवल पहचानने की जरूरत होती है। सच्चे मित्रों का त्याग, समर्पण, प्रेम सब इसमें समाहित है। इसे पढ़ते–पढ़ते मैं नमिता सिंह के किरदार में खो गई। यह उपन्यास औरतों के साथ होने वाली यातनाओं को भी पूर्ण रुप से उजागर करता है और नारी के अदम्य साहस बल का भी इसमें समावेश है।

हॉकी मैच जितने के बाद जो भी शब्द–भाव रखे गए वो बहुत सुंदर, सटीक थे मन को छू गए। जैसे सच्चाई को बयां किया गया है। फिर नमिता की माँ के गुजर जाने के बाद के दृष्य को जिस प्रकार से उन भावनाओं को पिरोया गया मन भाव–विभोर होकर पढ़ते–पढ़ते उसमें खो गया। पुस्तक को पढ़ने की जिज्ञासा बढ़ती गई। मृत्यु के पश्चात घर का वातवरण, फिर शादी–ब्याह की बात सब कुछ मानो आपने इस पुस्तक में आज के युग का सजीव चित्रण उतार दिया हो।लेखक का चिंतन पुरुष की भावनाओं को भी बखूबी दर्शाता है।

जीवन में हर कदम पर आगे बढ़ते हुए नमिता के जहन में उठते प्रश्नों का सुंदर चित्रण किया गया। एक बात बहुत अच्छी कही आपने कि नमिता को हॉस्टल भेजने के लिए उसके पिता का चिंतित होना स्वाभाविक था पर उसकी नयी माँ ने यह समझाया कल को शादी करके पराये घर जाएगी तब भी तो संतुष्टि करनी होगी। अक्सर महिलाओं को खासकर लड़कियों को बाहर भेजने, उनके सपनों को पूरा करने में इसी प्रकार की दिक्कतें आती हैं। ऐसे में एक हौंसले भरा हाथ उनके कंधों पर बहुत आवश्यक है।शादी के उपरांत भी तो वे सब संभाल लेती हैं, एक अंजाने घर में आकर। यह विश्वास कहीं न कहीं अभिभावकों को परिवार जन को उनके प्रति दिखाना चाहिए।

साथ ही साथ नमिता की कहानी के माध्यम से रक्तदान का भी अति उत्तम तरीके से संदेश निहित किया गया है इसमें। जब नमिता और सुविधा का हीमोग्लोबिन 12 से कम मिला तो अच्छी ठिठोली की जैसे एक अनुतीर्ण व्यक्ति, दूसरे असफल व्यक्ति को खोजता है.....।

फिर अगले पहलू में स्वच्छता पर नाटक के माध्यम से मंच पर संदेश दिया गया, साथ ही ष्नमिता सिंह मूँछोंवाली ष नामकरण भी सुंदर तरीके से पेश किया गया। नारी–पुरुष की समानता का अद्‌भुत और उम्दा चित्रण किया गया है।

जब नमिता के साथ कुछ लड़कों ने जबरदस्ती करनी चाही तो वहाँ भी आज की दशा का चित्रण किया और साथ ही बचाने आए लड़के को गोपाल नाम देकर यह भी बताया गया कि कलयुग में भी कोई न कोई कृष्ण बनकर मजबूर स्त्रियों की मदद कर सकता है।

कन्याभ्रूण का शाप (नाटक) बहुत ही लाजवाब लगा। सभी पात्रों के नाम भी बहुत उचित चुनकर लिए गए हैं–पत्नीदास, चरणदास, बीवीमार आदि बहुत बढ़िया। नाटक के माध्यम से बहुत उम्दा संदेश साथ ही चरणदास और कम्मो के संवाद में हास्य, व्यंग्य से बहुत खूब शब्दों को बातचीत की माला में पिरोया गया है । स्त्री के प्रति जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है वे सभी बहुत ही खूबसूरती से इसमें समाहित किये गए हैं वाह!

विश्विद्यालय में छात्र संघ के चुनाव के दौरान रक्तदान शिविर का अच्छा संदेशप्रद निर्णय। फिर आखरी चरण में नामी साहित्यकारों द्वारा सृजन की हुई लघुकथाओं का वर्णन महिला दिवस के अवसर पर बेहद सराहनीय है। सभी रचनाएं एक से बढ़कर एक हैं बड़े–बड़े संदेश देती छोटी–छोटी लघुकथाएं सभी लेखक बधाई के पात्र हैं। अंत में नमिता को डायरी पढ़कर यह अहसास हो गया कि कहीं न कहीं उसकी गलती थी जिसके लिये उसे तमाचा लगा। कई बार किसी बात का दूसरा पहलू हम नजरंदाज कर देते हैं।

बहुत सुंदर उपन्यास जरूर पढ़े ।

समीक्षा

पुस्तक–नमिता सिंह मूँछोंवाली

लेखक–डॉ. मधुकांत अनूप बंसल

दिशा प्रकाशन, त्रि नगर ,दिल्ली

पिंकी गर्ग

रोहतक